बर्नियर की भारत यात्रा

बर्नियर की भारत यात्रा

फैंक्विस बर्नियर एम. डी.

अनुवाद

गंगा प्रसाद गुप्त

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

बर्नियर की भारत यात्रा

दुनिया को सैर करने की इच्छा से मैं पलेप्टाइन और ईजिप्ट गया, फिर वहां से भी आगे बढ़ने की मेरे मन में अभिलाषा हुई। लाल समुद्र को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देखने का विचार होते ही मैं ईजिप्ट की राजधानी कैरो से, जहां एक वर्ष से कुछ अधिक काल तक मैं ठहरा था, चल पड़ा—और कारवां की चाल से बत्तीस घंटे में स्वेज नगर में आ पहुंचा। यहां से मैं एक जहाज पर सवार हुआ। जहाज किनारे किनारे चल रहा था। 17 दिन के बाद मैं जद्दे पहुंचा। जद्दे से मक्का पहुंचने में दो पहर लगते हैं। यहां पहुंचना मेरी आशा के विरुद्ध था और उस प्रतिज्ञा के भी विरुद्ध जो मुझे लाल समुद्र के तुर्की अधिकारी की ओर से दी गई थी। अतएव लाचार होकर मुझे मुसलमानों की उस पवित्र भूमि पर जहाज से उतरना पड़ा जहां कोई ईसाई जब तक कि वह गुलाम न हो पांव रखने का साहस नहीं कर सकता। यहां कोई पांच सप्ताह ठहर कर मैं एक छोटे जहाज पर सवार हुआ जिसने अरेबिया फेलिक्स के किनारे किनारे चलकर पंद्रह दिन में मुझे बाबुल मंदब की समुद्री धूनी के पास वाले मुखा नामक बंदर पर पहुंचा दिया। यहां पहुंच कर मेरा यह इरादा हुआ कि मसोआ और आर्कि के टापुओं को देखता हुआ हब्शियों की राजधानी अथवा इथियोपिया राज्य के मुख्य नगर गोंडर को जाऊं, परंतु इनमें मुझे यह समाचार मिला कि राज माता के कपट प्रबंध के कारण जिस दिन से गोवा से जासूस पादरी को अपने साथ लाने वाले पाचुगीज लोग मारे गए अथवा देश से बाहर कर दिए गए उस दिन से रोमन केथलिक वालों का वहां उतरना सुरक्षा की बात नहीं है। और वास्तव में कुछ समय पूर्व इस राज्य में प्रवेश करने का प्रयत्न करने के अपराध में एक अभागे कृस्तान साधु का सवाकीन में वध भी किया गया था। मैंने सोचा कि यदि मैं आर्मिनियन अथवा ग्रीक जैसा भेष बनाकर चलूंगा तो भय कुछ कम रहेगा और संभव है कि बादशाह मेरी योग्यता और कामों को देखकर मुझे कुछ जमीन दे देगा जिसे यदि मैं उन्हें खरीद सकूंगा तो गुलाम जोते बोएंगे। परंतु साथ ही यह खटका हुआ कि इस वेष में मुझे वहां विवाह भी अवश्य ही कर लेना पड़ेगा, जैसे कि एक योरपीय संन्यासी को जिसने अपने को ग्रीक के बादशाह का वैद्य प्रसिद्ध किया था ऐसा करने के लिए विवश होना पड़ा था। और फिर इस अवस्था में मुझे इस देश के छोड़ने की आशा एक बार ही परित्याग करनी पड़ेगी।

मुगल वंश

इस तथा अन्य कई कारणों से जिनका हाल मैं आगे चलकर कहूंगा, मैंने गोंडर जाने का विचार परित्याग किया और एक जहाज की सवारी ली जो हिंदुस्तान को जाता था और बाईस दिन में बाबुल मंदब की समुद्री धूनी के मार्ग से सूरत में जो मुगल राज्य भारतवर्ष की बंदरगाह है आ पहुंचा। यहां पहुंचकर मुझे मालूम हुआ कि वर्तमान बादशाह का नाम शाहजहां है, जो जहांगीर का पुत्र और अकबर का पौत्र है। अकबर का पिता हुमायूं था। शाहजहां के पूर्व पुरुषों की वंशावली देखने से मालूम होता है कि वह तैमूर की दसवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ ! तैमूर ने जिसके पराक्रम और विजय की बात सारे जगत में विख्यात है अपनी एक संबंधिनी स्त्री अर्थात उस बादशाह की इकलौती पुत्री से अपना विवाह किया था जो उस समय तातारियों की मुगल नामक प्रसिद्ध जाति पर राज्य करता था। परंतु अब मुगल शब्द उन सब अन्य देश के निवासियों के लिए बोला जाता है जो वर्तमान समय में भारतवर्ष के राजकीय आसन पर विराजमान हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि भरोसे और मान मर्तबे के पद अथवा सेना के बड़े बड़े ओहदे केवल मुगलों ही को दिए जाते हैं। परदेसियों में ईरानी, तुर्क और अरब हैं, उनको भी अच्छे अच्छे पद प्राप्त होते हैं। जिन लोगों को आजकल यहां मुगल कहा जाता है उनको पहचानने के लिए इतना संकेत बहुत है कि उनका रंग गोरा होता है और वे मुसलमानी धर्म को मानते हैं। यूरोप के ईसाइयों की पहचान जिनको यहां फिरंगी कहते हैं यह है कि उनका रंग सफेद होता है और मत ख्रष्टीय। और हिंदू यह देखकर पहचाने जा सकते हैं कि रंग उनका गेहुंआ और धर्म मूर्ति पूजा होता है।

मैंने सूरत में आकर यह भी मालूम किया कि शाहजहां की उमर इस समय सत्तर वर्ष के लगभग है और उसके चार पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं और कई वर्ष हुए उसने अपने चारों पुत्रों को भारतवर्ष के बड़े बड़े चार प्रदेशों का जिनको राज्य का एक एक भाग कहना चाहिए संपूर्ण अधिकार प्रदान कर दिया है। मुझे यह भी विदित हुआ है कि एक वर्ष से कुछ अधिक काल से बादशाह ऐसा बीमार है कि उसके जीवन में भी संदेह है और उसकी ऐसी अवस्था देखकर शाहजादों ने राज्य-प्राप्ति के लिए मंसूबे बांधने और उद्योग करने आरंभ कर दिए हैं। अंत में भाइयों में लड़ाई

छिड़ीं और वह पांच वर्ष तक चली।

इस युद्ध की कई प्रधान घटनाएं मैंने स्वयं देखी हैं, उनका इस ग्रंथ में वर्णन करने का मैं यत्न करूंगा। राज्य के बड़े बड़े नगर आगरा और देहली हैं। वहां जाते समय रास्ते में लुटेरों के द्वारा लूटे जाने तथा सात सप्ताह की यात्रा के खर्च के कारण मैं तंगी में आ गया। इससे मुगल राज्य में मुझे नौकरी करनी पड़ी और आठ वर्ष तक मुगलों से मेरा संसर्ग रहा। पहले मैं राज्य का हकीम नियत हुआ परंतु थोड़े ही दिनों में भाग्यवशान दानिशमंदखां नामक एशिया खंड के एक श्रेष्ठ विद्वान का मुझे आश्रय मिला जो पहले मीरबख्शी अथवा घोड़ों के सरदार के पद पर नियुक्त था परंतु इस समय मुगल दरबार का सबसे शक्ति संपन्न और प्रतिष्ठित उमरा हो गया था।

शाहजहां के बड़े बेटे का नाम दारा शिकोह, दूसरे का सुलतान शुजा, तीसरे का औरंगजेब, चौथे का मुरादबख्श, और दोनों पुत्रियों में बड़ी का नाम बेगम साहब, और छोटी का रोशनआरा बेगम है।

इस देश में राजकुटुंब के लोगों का ऐसा ही नाम रखने की रीति है जो राज्य का बड़प्पन प्रगट करे। इसलिए शाहजहां की बेगम का नाम जो अपनी सुंदरता के लिए जगत प्रसिद्ध थी ताजमहल था। ताजमहल की दर्शनीय समाधि के सामने जो आगरे में है ईजिप्ट व मिस्र देश के बड़े बड़े पिरामिड जो संसार के सात अद्भुत स्थानों में समझे जाते हैं अनगढ़ पत्थरों के ढेर और बेढंगे पथरीले ढोकों के समान मालूम होते हैं, वैसे ही जहांगीर की बेगम का नाम पहले नूरमहल था पश्चात नूरजहां बेगम हुआ। इसने बहुत दिनों तक अपने पति की उस अवस्था में जब कि वह सब काम काज छोड़कर मद्यपान और विलासिता में लिप्त हो गया था राज्य को स्वयं संभाल लिया था।

भारतवर्ष में जो ये बड़े बड़े और प्रतिष्ठित नाम राजकुटुंब के लोगों और उमरा के रखे जाते हैं और यूरोप की भांति स्थान अथवा राज्य अधिकार का परिचय देने वाले नाम नहीं रखे जाते इसका कारण यह है कि यहां सब जमीन बादशाही समझी जाती है। अतएव यूरोप की तरह यहां कोई अर्ल मार्क्विस अथवा ड्यूक नहीं हो सकता क्योंकि दरबारियों को जो कुछ भूमि आदि दी जाती है वह केवल पेंशन की भांति और उनके निर्वाह के लिए, और जो कुछ उनको दिया जाता है उसको बढ़ाना या उसे वापिस कर लेना बादशाह की इच्छा पर निर्भर रहता है। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि राज्य के उमरा ऐसी प्रतिष्ठित पदवियों से भूषित किए जाते हैं, जैसे कोई राजंदाजखां, कोई सर्फकुनखां, कोई बरकंदाजखां, कोई दियानतखां, या दानिशमंदखां, या फाजिलखां इत्यादि।

दारा शिकोह

दारा में अच्छे गुणों की कमी नहीं थी। वह मितभाषी, हाजिर जवाब, नम्र और अत्यंत उदार पुरुष था। परंतु अपने को वह बहुत बुद्धिमान और समझदार समझता था और उसको इस बात का घमंड था कि अपने बुद्धिबल और प्रयत्न से वह हर काम का प्रबंध कर सकता है। वह यह भी समझता था कि जगत में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो उसको किसी बात की शिक्षा दे सके। जो लोग डरते डरते उसे कुछ सलाह देने का साहस कर बैठते, उनके साथ वह बहुत बुरा बरताव करता। इस कारण उसके सच्चे शुभचिंतक भी उसके भाइयों के यत्नों और चालों से उसे सूचित न कर सके। वह डराने और धमकाने में बड़ा निपुण था यहां तक कि बड़े बड़े उमरा को बुरा भला कहने और उनका अपमान कर डालने में भी वह संकोच न करता था परंतु सौभाग्य की बात यह थी कि उसका क्रोध शीघ्र ही शांत हो जाता था। दारा का जन्म मुसलमान जाति में हुआ था इसलिए वह इस रीति-नीति के अनुसार चलता और लोगों पर ऐसा प्रकट करता कि जैसे उसकी धर्म पर बहुत आस्था है, परंतु वास्तव में हिंदुओं के साथ वह हिंदू बन जाता और ईसाइयों के साथ ईसाई। बहुत से हिंदू पंडित सदा उसे घेरे रहते और पुरस्कारों में उससे बहुत धन पाते। ऐसा भी कहा जाता है कि इन्हीं लोगों की संगति के कारण मुसलमानी धर्म के प्रति उसका विश्वास कम हो गया था। इस संबंध में आगे चलकर हिंदुओं के धर्म के विषय में लिखते समय मैं कुछ विस्तार के साथ लिखूंगा। कुछ काल तक उसने बुजी नामक एक पादरी की शिक्षा भी बड़े ध्यान से सुनी थी और उस शिक्षा की सत्यता पर उसे कुछ कुछ विश्वास भी उत्पन्न होने लगा था। इतना होने पर भी लोग ऐसा कहते हैं कि असल में दारा नास्तिक था और यह दिखाऊ बातें केवल कौतुक और मनोविनोद के लिए थीं। कुछ लोगों का यह भी कथन है कि वह जो कभी ईसाईपन दिखाता उसका यह कारण है कि ईसाई लोग जो उसके तोपखाने पर नौकर थे और जिनकी संख्या बहुत थी उसे चाहें, और हिंदूपन प्रकट करने से उसका यह अभिप्राय था कि जिसमें राज्य के प्रतिष्ठित राजाओं और सरदारों की वह प्रीति संपादन कर सके, ताकि काम पड़ने पर दोनों जाति के लोग उसकी सहायता करें। परंतु इन दो तीन धर्मों के बीच में पड़कर वह न केवल अपनी युक्तियों में विफल ही हुआ बल्कि अंत में उसे अपने प्राणों से भी हाथ धोने पड़े। इस इतिहास के आगे चलकर पाठकों को मालूम होगा कि औरंगजेब ने उसे काफिर अथवा धर्मद्रोही और धर्मरहित कहकर ही उसके प्राण लिए।

सुलतान शुजा

शाहजहां का दूसरा पुत्र सुलतान शुजा बहुत-सी बातों में अपने बड़े भाई दारा से मिलता जुलता था, परंतु उसकी अपेक्षा यह अधिक विनयी और दृढ़ विचार का मनुष्य था। सामान्य चरित्र और बोलचाल में भी यह दारा से बढ़कर था। किसी प्रकार का कपट प्रबंध भी यह बड़ी दक्षता से कर लेता। गुप्त रूप से धन देकर बहुत से रईसों, उमरा और (जोधपुर-नरेश) महाराज यशवंतसिंह जैसे बड़े बड़े प्रतिष्ठित राजाओं को अपना मित्र बना लेना भी खूब जानता था। परंतु इतने गुण होने पर भी शुजा के उस आनंद और विलास रस में जिस समय सुंदरियों के जमघट में वह बैठता उस समय नाच-रंग, गान-तान और मद्यपान में दिन दिन और रात रात भर बीत जाते। ऐसे समय उसका कोई मुसाहिव जो अपनी भलाई चाहता उससे कुछ कहने का साहस न करता। तरंग में आकर वह अपने प्रिय पात्रों को उत्तमोत्तम वस्त्रादि इनाम दे देता और अपने आश्रितों का वेतन भी घटा या बढ़ा देता। ऐसे रंग तान के दिन बीतने के कारण उसके प्रांत का राज्य संबंधी कारोबार बिगड़ने लगा और प्रजा की प्रीति उस पर से दिन पर दिन कम होती गई।

यद्यपि शुजा का पिता और उसके भाई तुर्कों का धर्म मानते (अर्थात सुन्नी) थे, परंतु वह स्वयं ईरानियों के धर्म का अनुगामी (अथवा शिया) था। मुसलमानी धर्म में बहुत-से भेद हैं जैसा कि पुस्तक 'गुलिस्तां' के रचयिता प्रसिद्ध शेखसादी के एक शेर के भावार्थ से जो आगे दिया जाता है जान पड़ेगा।

"मैं एक घूमने फिरने वाला शराबी फकीर हूं मेरा कोई धर्म नहीं है ! तो भी मैं बहत्तर जाति में गिना जाता हूं।"

इन बहुत-सी जातियों में दो मुख्य हैं और इन दोनों के लोग एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हैं। इनमें एक जाति तुर्कों की है जिनको ईरानी उसमान का अनुगामी बतलाते हैं। इस जाति के लोग उसमान को अपने पैगंबर मुहम्मद का सच्चा और योग्य प्रतिनिधि मानते हैं और कहते हैं कि खलीफा अथवा स्वतंत्र धर्माध्यक्ष और कुरान का अर्थ समझाने तथा धार्मिक वाद-विवाद का समाधान करने वाला केवल वही था। दूसरी जाति ईरानियों की है जिनको तुर्क लोग राफजी वा शिया और अलीमर्दान अर्थात धर्मद्रोही और अली के धर्म को पक्षपाती कहते हैं। कारण यह कि ईरानियों को इस बात का विश्वास है कि उत्तराधिकारी और धर्म गुरु होने का स्वत्व केवल मुहम्मद के दामाद अली को ही था।

सुलतान शुजा ने जो शिया धर्म ग्रहण किया था इसमें उसकी चतुराई थी। शाहजहां बादशाह के दरबार में उस समय अधिकतर इसी धर्म के लोग बड़े बड़े पदों के अधिकारी थे और दरबार में उनका बड़ा मान था। शुजा को आशा थी कि काम पड़ने पर इन लोगों से बहुत कुछ सहायता मिलेगी और लाभ पहुंचेगा।

औरंगजेब

तीसरा भाई औरंगजेब यद्यपि दारा के समान शिष्ट और उदार मन का नहीं था तो भी उसकी अपेक्षा अधिक दृढ़ विचार और ऐसे मनुष्यों को चुनने में अधिक चतुर था जो उसके कामों को भक्ति और योग्यता के साथ पूरा कर सकते। उसके इनाम आदि बांटने में यह विशेषता थी कि वह केवल उन्हीं लोगों को खूब इनाम देता जिनको प्रसन्न करना या प्रसन्न रखना उसके लिए अत्यंत आवश्यक होता। वह अपने भेद को बहुत छिपा कर रखता, धूर्तता और कपटता उसमें कूट कूट कर भरी थी। जिस समय वह अपने पिता के दरबार में जाता उस समय जो भक्ति उसमें जरा भी न होती उसके भी दिखाने का प्रयत्न करता और सांसारिक सुख वैभव को धिक्कार बताता परंतु भीतर ही भीतर भविष्य में ऊंचा पद पाने का मार्ग तैयार करता जाता। यहां तक कि जब उसे दक्षिण की सूबेदारी दी गई तब भी उसने बहुतों से यही कहा कि "अगर मुझे तर्क, दुनिया और दरवेशी की इजाजत मिल जाती तो मैं ज्यादा खुश होता क्योंकि मेरी दिली तमन्ना भी थी कि बाकी जिंदगी पारसाई और इबादत ही में सर्फ करता। अफकारे दुनियावी और उमूर सल्तनत की जिम्मेदारी में पड़ना मुझे नामरगूब और नापसंद है।" यद्यपि औरंगजेब का समस्त जीवन धूर्तता और कपटाचरण में ही बीता तथापि वह ऐसी बुद्धिमानी के साथ काम करता कि उसके भाई दारा शिकोह को छोड़ दरबार के सभी लोग उसकी चतुराई के समझने में धोखा खा जाते। शाहजहां बादशाह के औरंगजेब के विषय में ऊंचे विचार थे, इसमें दारा को ईर्ष्या होती और अपनी मित्र मंडली में बैठकर वह कभी कभी कहा करता कि "अपने सब भाइयों में मुझे सिर्फ एक ही का शुबहा और खौफ है। वह और किसी का नहीं इन्हीं हजरत दीनदार और नमाजी साहब का।"

मुरादबख्श

शाहजहां का सबसे छोटा पुत्र मुरादबख्श विचार और विवाद में अपने तीनों भाइयों से उतर कर था। जिस तरह हो मौज करना ही उसका प्रधान उद्देश्य था और शिकार तथा भोजन के लक्ष्य में उसका अधिक समय बीतता था। तो भी वह उदार और सभ्य था। परंतु उसे इस बात का गर्व था कि वह कोई भेद की बात रखता ही नहीं, छिपी सलाहों और छलबल से उसे घृणा थी और इस बात को वह लोगों पर प्रकाशित करना चाहता कि वह केवल तलवार और अपने भुजबल का भरोसा रखता है। वास्तव में मुराद साहसी था। यदि इस साहस और वीरता के साथ साथ उसमें चतुराई और बुद्धिमानी होती तो यथासंभव वह अवश्य अपने तीनों भाइयों से ऊपर

हो जाता और निस्संदेह हिंदुस्तान की बादशाहत प्राप्त करता जैसा कि आगे चलकर मालूम होगा।

बड़ी शाहजादी बेगम साहब

बादशाह की बड़ी बेटी बेगम साहब अत्यंत रूपवती, प्रसन्न और अपने पिता की बहुत ही प्यारी थी। पिता का अपनी पुत्री के साथ ऐसा संबंध हो जाने की खबर थी कि जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कहते हैं कि मुल्लाओं ने यह व्यवस्था दी थी कि बादशाह का उसी वृक्ष के फल का आनंद लेना जिसको उसने स्वयं लगाया है अनुचित और अन्याय नहीं है। शाहजहां को अपनी इस प्यारी पुत्री पर बेहद विश्वास था। यह भी अपने पिता की सुरक्षा का खूब ध्यान रखती और उसकी रक्षा करने में यहां तक सावधान रहती कि कोई भोजन जो स्वयं उसके सामने बना न होता वह बादशाह के लिए नहीं भेजा जाता। इसलिए बेगम साहब का शाहजहां से संबंध रखने वाली बातों में इतना अधिक अधिकार रहना और बादशाह के मिजाज की बागडोर उसके हाथ में होना तथा राज्य के बड़े और गंभीर विषयों में भी उसका पूरा दबाव माना जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बादशाह की ओर से मिलने वाली बंधी हुई वार्षिक रकम में से और अपने अधिकार में सौंपे हुए सहस्रों राजकीय कामों से तथा चारों ओर से आने वाली बहुमूल्य भेंटों से बेगम साहब ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया था। दारा अपने कामों में सफलता प्राप्त करता, सुखी होता और बादशाह की उस पर अधिक प्रीति रहती, इसका यह कारण था कि बेगम साहब उसके कामों में बराबर भाग लेती, उसका हित चाहती और खुल्लमखुल्ला लोगों पर अपने को उसका पक्षपात करने वाली प्रकट करती। बेगम साहब की कृपा बढ़ाने का दारा भी निरंतर यत्न करता और यह भी कहा जाता है कि उसने उससे प्रतिज्ञा भी की थी कि जब मैं बादशाह हो जाऊंगा तब तुरंत तुझको शादी करने की अनुमति दे दूंगा। किंतु दारा की यह प्रतिज्ञा हिंदुस्तान के बादशाहों की नीति के विरुद्ध थी जिसके अनुसार शाहजादियों का विवाह बिल्कुल अनुचित माना गया है। इसका पहला कारण तो यही है कि कोई व्यक्ति राजकुटुंब का संबंधी होने के योग्य नहीं समझा जाता, दूसरा यह कि इस बात का खटका रहता है कि कहीं शाहजादी का पति किसी समय बलवान होकर राज्य लोभी न बन जाए और राज्य को अपने अधिकार में कर लेने का उद्योग न करने लग जाए।

बेगम साहब की प्रेम संबंधी दो बातें यहां पर लिखकर मैं आशा करता हूं कि इसके पढ़ने वाले मुझ पर किसी प्रकार का संदेह नहीं करेंगे। मैं जो कुछ लिखता हूं वह ऐतिहासिक है और हिंदुस्तान की रीति-नीति का पूरा पूरा विवरण लिखना

मेरा मुख्य उद्देश्य है। प्रेम का जैसा भयंकर परिणाम एशिया में होता है वैसा यूरोप में नहीं होता। फ्रांस देश में ऐसी प्रेम घटनाओं को लोग हंसी और मनोविनोद का कारण समझते हैं और थोड़े दिनों में भूल जाते हैं। परंतु संसार के इस भाग अर्थात हिंदुस्तान में कोई ही ऐसा अवसर आ पड़ता है जब ऐसी बातों का महाभयानक और दुखद परिणाम नहीं होता, नहीं तो बहुत बुरी दशा दिखाई पड़ती है।

शाहजादी बेगम साहब महल के अंदर रहती और दूसरी स्त्रियों की तरह उस पर भी पहरा रहता किंतु इतना होने पर भी कहते हैं कि किसी छिपी रीति से उसके पास एक नवयुवक का आना जाना आरंभ हो गया जो यद्यपि कोई ऊंचे दर्जे का मनुष्य नहीं था तथापि सुंदर बहुत था। परंतु ऐसी बातों का बेगम की सहेलियों और बांदियों से छिपा रहना संभव नहीं था। इस बात की खबर शाहजहां को लगी [कि उसकी बड़ी बेटी छिपे छिपे किसी युवा पुरुष से मिलती है] तब उसने धोखे और कुसमय में महल में जाकर इस बात की जांच करने का निश्चय किया। एक दिन बादशाह अकस्मात ऐसे समय महल चला गया और उसके आने की खबर इतने पीछे बेगम को मालूम हुई कि अपने प्रेमी के छिपाने का विचार करने तक का अवकाश उसे नहीं मिला। लाचार एक पानी गर्म करने की बहुत बड़ी देग जो रखी हुई थी उसी में उसने उस घबराए हुए प्रेमी को लिटा दिया। जिस समय बादशाह अंदर आया उस समय उसके चेहरे पर क्रोध और आश्चर्य का चिह्न नहीं था, बल्कि सदा की भांति आकर उसने बेगम से अनेक प्रकार की बातें करना आरंभ किया। कुछ देर के बाद उसने कहा, "मालूम होता है तुमने आज हस्ब-मूम गुस्ल नहीं किया है। हम्माम गर्म करना चाहिए।" इतना कहकर ख्वाजासराओं को देग के नीचे आग जलाने की आज्ञा दी। फिर जब तक उसे इस बात का निश्चय नहीं हो गया कि वह व्यक्ति (अर्थात शाहजादी का प्रेमी) जल कर प्राण रहित नहीं हो गया तब तक वह वहां से नहीं हटा।

कुछ दिन बाद शाहजादी एक दूसरे पुरुष के प्रेमजाल में उलझ गई और अंत में वह भी ऐसी ही शोकजनक दशा को प्राप्त हुआ। अब की बार उसने नजरखां नामक एक ईरानी नवयुवक को जो कि सुंदरता में प्रसिद्ध होने के अतिरिक्त सुयोग्य, बुद्धिमान, साहसी और वीर पुरुष था और जिसको दरबार के सब लोग बहुत मानते थे अपने खानसामा के पद के लिए पसंद किया। औरंगजेब का मामा साइस्तखां इसकी बहुत प्रशंसा करता यहां तक कि एक दिन भरे दरबार में उसने यह प्रस्ताव कर डाला कि "यह ईरानी शख्स इस काबिल है कि बेगम साहब की शादी इससे कर दी जाए।" शाहजाहां को यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। उसे पहले ही से कुछ कुछ संदेह था कि नजरखां और शाहजादी में परस्पर कुछ अनुचित संबंध हो गया है। अब इस नवीन प्रस्ताव को सुनकर वह संदेह और भी पक्का हो गया फिर तो उसने उस नवयुवक को इस संसार से विदा करने के लिए कोई विशेष उपाय या सोच-विचार

करने की आवश्यकता नहीं समझी वरन दरबारे आम में उसे बुलाकर कृपा दिखाने की रीति पर अपने हाथ से उसे पान का बीड़ा खाने को दिया। पान लेने के समय युवक के मन में किसी प्रकार का खटका या संदेह नहीं हुआ क्योंकि इस राज्य में पान देना बड़े मान और प्रतिष्ठा की बात है। अतएव उसने बीड़ा लेकर मुंह में रख लिया। इस बात का उसे कुछ भी ध्यान नहीं था कि इस हंसमुख बादशाह ने धोखे से उसे विष दे दिया है। यह सोचकर कि अब बादशाह की कृपादृष्टि होने के कारण दिन पर दिन उन्नति होती जाएगी वह हर्षपूर्वक पालकी पर सवार होकर अपने घर की ओर चला परंतु विष का असर बहुत कड़ा होने के कारण अपने घर पहुंचने से पहले ही वह दूसरे घर पहुंच गया।

रोशनआरा बेगम

शाहजहां की छोटी बेटी रोशनआरा बेगम सुंदरता में अपनी बड़ी बहन से कम थी और बुद्धिमत्ता में भी कुछ ऐसी प्रसिद्ध नहीं थी। तो भी वह वैसे ही मौजवाली चंचला और विलासिनी थी। वह औरंगजेब का बहुत पक्ष करती और बेगम साहब तथा दारा से खुलेआम ईर्ष्या रखती। कदाचित इसी कारण से वह बहुत धन इकट्ठा नहीं कर सकी और राज्य संबंधी कामों में भी उसका बहुत कम अधिकार रहा। परंतु फिर भी महल में रहने और धोखेबाजी तथा चतुराई में निपुण होने के कारण वह बराबर आवश्यक बातों की सूचना जासूसों के द्वारा औरंगजेब के पास पहुंचाती रहती।

भाइयों का राजलोभ–लड़ाई में कई वर्ष पहले शाहजहां का चित्त अपने उपद्रवी स्वभाव के पुत्रों से दुखित और भयभीत हो गया था। यद्यपि उसके चारों पुत्र ब्याहे हुए और बालिग थे तो भी वे आपस में बंधुभाव नहीं रखते थे वरन राज्य के लोभ से एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हो रहे थे यहां तक कि दरबार में शाहजादों के भिन्न भिन्न पक्षपातियों के भी भिन्न भिन्न दल हो गए थे। शाहजहां स्वयं अपने प्राणों के भय से सदा कांपा करता और भविष्य में आने वाली आपत्तियों की चिंता में डूबा रहता। उसने अपने पुत्रों को ग्वालियर के सुदृढ़ और दुर्भेद्य पहाड़ी किले में जहां स्वच्छ जल और रसद आदि की कमी नहीं थी और जिसमें पहले भी अनेक बार राजकुटुंब के लोग नजरबंद रखे जा चुके थे, प्रसन्नतापूर्वक कैद कर दिया होता परंतु सोच विचार कर अंत में उसने इस बात को अपने मन में मान लिया कि वास्तव में अब वे इतने सबल हो गए हैं कि उनके साथ ऐसा बरताव नहीं किया जा सकता। बादशाह को निरंतर इस बात का भय लगा रहता है कि यदि यह परस्पर लड़ गए तो या तो अपने लिए अलग अलग स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लेंगे–या

राजधानी में ही मार-काट मचाकर उसे एक घोर संग्राम की रंगभूमि बना डालेंगे।

इन भविष्य में आने वाली आपत्तियों और दुखों से बचने के लिए उसने अपने पुत्रों को चार सुदूर प्रदेशों का अधिकारी बनाना निश्चित किया। अपने विचार के अनुसार शुजा को बंगाल, औरंगजेब को दक्षिण, मुराद को गुजरात और दारा को मुलतान, एवं काबुल का हाकिम बनाया, सुलतान शुजा, औरंगजेब और मुरादबख्श तुरंत अपने अपने प्रांत को चले गए और वहां जाकर उन्होंने स्वतंत्र नरेशों की भांति रहना आरंभ किया। इस प्रकार उनकी राज्य लोलुपता शांत हुई। वे राज्य की आमदनी स्वयं अपने कामों में खर्च करने और देशियों तथा विदेशियों पर रौब रखने के बहाने बड़ी बड़ी सेनाएं इकट्ठी करने लगे। परंतु दारा ने जो अपने सब भाइयों में बड़ा था और जिसे इस बात की आशा थी कि शाहजहां के बाद गद्दी का अधिकार मुझको ही मिलेगा अपने पिता का दरबार नहीं छोड़ा। शाहजहां ने भी उसे राज संबंधी कामों में अनेक अधिकार प्रदान कर तथा दरबार में अपने सिंहासन के पास ही एक दूसरे नीचे सिंहासन पर बैठने की अनुमति देकर उसकी आशाओं को उत्तेजना दी। जिस समय दरबार लगता और पिता पुत्र दोनों अपने अपने आसन पर विराजमान होते उस समय ऐसा जान पड़ता कि मानो दो नरेश एक ही राज्य का शासन कर रहे हैं। इन बातों से यद्यपि प्रगट में तो यही मालूम होता है कि स्वयं बादशाह, दारा की आशाओं को पुष्ट करता परंतु इस बात का पूरा प्रमाण तैयार है कि यद्यपि दारा अपने पिता को बहुत चाहता और उसके प्रति अपने मन में कपट नहीं रखता परंतु उसे सदा विष दिए जाने की चिंता लगी रहती और ऐसा कहा जाता है कि औरंगजेब जिसके विषय में उसके विचार ऐसे ऊंचे थे कि वह लड़का राज्य शासन के लिए बहुत ही योग्य और उपयुक्त है, यह छिपे छिपे पत्र व्यवहार भी करता।

इस इतिहास की उन बातों को अच्छी तरह समझाने के लिए जो आगे आने वाली हैं मैंने शाहजहां और उसके पुत्रों का संक्षिप्त वृतांत भूमिका की भांति लिख देना आवश्यक समझा। उसी प्रकार उसकी दोनों पुत्रियों का भी कुछ हाल दे देना उचित ही हुआ क्योंकि यह दोनों भी इन भयंकर घटनाओं से बहुत बड़ा संबंध रखती हैं। कदाचित लोग इस बात को न जानते हों और अपनी अज्ञानता के कारण उनकी निंदा और उनके विषय में शंकाएं करते हों परंतु हिंदुस्तान, कुस्तुंतुनियां और एशिया के अन्यान्य देशों की बहुत बड़ी बड़ी घटनाएं प्रायः औरतों ही के द्वारा हो जाया करती हैं।

भाइयों में संग्राम आरंभ होने के पहले औरंगजेब शाह गोलकुंडा और उसके मंत्री मीर जुमला से संबंध रखने वाली जो घटनाएं हुईं उसका कुल हाल यहां पर लिख देने से आशा है कि इस पुस्तक का आगे का वृतांत समझने में पाठकों को अधिक सुभीता जान पड़ेगा और यह भी मालूम हो जाएगा कि शाहजहां के बाद हिंदुस्तान का बादशाह होने वाला तथा इस इतिहास का नायक औरंगजेब कैसा था

और उसकी युक्ति तथा रीति नीति किस ढंग की थी। मीर जुमला ने जिस भांति शाहजहां के तीसरे पुत्र औरंगजेब की क्षमता और सर्वोपरिता का सिक्का जमाया उसका विवरण इस प्रकार है।

मीर जुमला

जिस समय औरंगजेब को दक्षिण की सूबेदारी दी गई थी उस समय मीर जुमला नामक एक व्यक्ति शाह गोलकुंडा का मंत्री और उसकी सारी सेना का प्रधान अध्यक्ष था। मीर जुमला का जन्म ईरान देश में हुआ था और भारतवर्ष में आकर उसने बड़ी प्रसिद्धी प्राप्त की थी। यह व्यक्ति उच्च कुल का न होने पर भी बुद्धिमान बहुत था। वह पूर्ण योद्धा और कामकाज में विशेष निपुण था। उसके पास बहुत धन था, परंतु यह धन उसने केवल गोलकुंडा नरेश का मंत्री होने के कारण से नहीं इकट्ठा कर लिया था वरन देश देशांतरों में व्यापार की फैलावट तथा हीरे की खानों के ठेकों से भी जो दूसरों के नामों से ले रखे थे, पैदा किया था। इन खानों की खुदाई निरंतर इतने परिश्रम से होती और उससे इतनी अधिकता के साथ हीरे निकलते थे कि उनकी गिनती न की जा सकती थी। उनकी गणना के लिए उसने यह नियम जारी कर रखा था कि हीरों से भरे बड़े बड़े टाट के बोरे गिन लिए जाया करते थे। उसकी राजनैतिक शक्ति भी बड़ी प्रबल थी, जैसा कि इस बात से मालूम होगा कि गोलकुंडा नरेश का प्रधान सेनाध्यक्ष होने के सिवा उसने खास अपने लिए अपने खर्च से एक बहुत बड़ी सेना, एक तोपखाने सहित जिसमें प्रायः ईसाई नौकर थे, नियुक्त कर रखी थी। यहां पर यह भी कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि कर्नाटक पर अधिकार करने के बहाने उसने वहां के सब प्राचीन देव मंदिरों को लूट लिया और इस प्रकार अपनी संपत्ति को बहुत ऊंचे दरजे तक पहुंचा दिया था।

गोलकुंडा का शाह मीर जुमला को अपने पास से दूर कर देने अथवा मार डालने का अवसर ढूंढ़ रहा था। उसे स्वाभाविक रीति से ही ऐसे मंत्री को देखकर डाह होती और एक आज्ञाकारी नौकर न समझ कर उसे वह अपना भयंकर शत्रु समझता था। इतना होने पर भी इसके शुभचिंतकों और मित्रों के डर से जो सदा दरबार में वर्तमान रहते थे, वह अपना इरादा बहुत छिपा कर रखता था। गोलकुंडा शाह की मां की उमर अधिक हो गई थी तो भी अब तक वह बहुत सुंदर थी। बादशाह को कहीं से खबर मिली कि मंत्री और उसकी मां में कुछ अनुचित संबंध पैदा हो गया है। इतना सुनते ही जो बात बहुत दिन से उसके हृदय में छिपी थी वह सहसा फूट पड़ी। उसने ठान लिया कि इस भयानक शत्रु को इस अपराध के लिए अवश्य दंड देना चाहिए।

इस समय मीर जुमला कर्नाटक में था परंतु दरबार में बड़े बड़े पदों पर उसके साथ उसकी स्त्री के संबंधियों और मित्रों के नियुक्त होने के कारण इन आने वाली आपत्तियों की खबर तुरंत उसके कानों तक पहुंच गई। उस धूर्त मंत्री ने पहली कार्यवाही तो यह की कि अपने एकमात्र बेटे मुहम्मद अमीरखां को जो उस समय गोलकुंडा में था लिखा कि "जिस हीले और बहाने से मुमकिन हो इस मुहिम में अपने शरीक होने की जरूरत शदीद जाहिर करके तुम फौरन मेरे पास चले आओ।" परंतु जब उसका पुत्र शाही चौकीदारों के पहरे से बचकर निकलकर न आ सका तब उसने एक दूसरी चाल चली। उसकी यह चाल ऐसी प्रबल थी कि उसने गोलकुंडा शाह को एक बार ही बरबादी के किनारे पर पहुंचा दिया। सच है जो शासक अपना भेद छिपाकर नहीं रख सकता वह अपने राज्य की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकता। मीर जुमला की दूसरी चाल यह थी कि औरंगजेब को जो दक्षिण की राजधानी दौलताबाद में था नीचे लिखे अनुसार एक पत्र लिखा।

पत्र

"साहबे आलम"

"मैंने शाह गोलकुंडा की वह बड़ी बड़ी खिदमतें की हैं कि जिनको तमाम जमाना जानता है और जिनके लिए उसे मेरा बहुत ही ममनून होना चाहिए। मगर इतने पर भी वह मेरी और मेरे खानदान की बरबादी की फिक्र में है। इसलिए मैं आपकी पनाह लेना और आपके हुजूर में हाजिर होना चाहता हूं और इस दरख्वास्त की कुबूलियत के शुक्राने में जिसकी पिजीराई की आपकी जानिब से कामिल उम्मीद है एक मनसूबा अर्ज करता हूं जिसके जरिए से आप बा आसानी बादशाह मज़कूर को गिरफ्तार करके उसके मुल्क पर कब्जा कर सकेंगे। आप मेरे वादे की सच्चाई पर ऐतबार और भरोसा फरमाएं। इंशा अल्लाह यह मुहीम न तो कुछ मुश्किल ही होगा न कुछ खतरनाक ही। यानी आप पांच हजार चीदा सवारों के साथ बहुत जल्द और बिला तवक्कुफ कूच करते हुए गोलकुंडा की तरफ चले आएं जिसमें सिर्फ सोलह दिन लगेंगे और यह मशहूर कर दें कि शाहजहां का सफीर शाह गोलकुंडा से बाज जरूरी मुआमिलात में गुफ्तगू करने को भागनगर जाता है और यह फौज उसकी अर्दली में है। चूंकि वह दवीर जिसकी मार्फत हमेशा उसे उमूर की इत्तला बादशाह को हुआ करती है मेरा करीबी रिश्तेदार है और उस पर मुझे कामिल भरोसा है। इसलिए मैं वायदा करता हूं कि ऐसा हुक्म जारी हो जाएगा जिसकी वजह से बगैर पैदा होने किसी शक व शुबहा के आप भागनगर के दरवाजे तक पहुंच जाएंगे और गोलकुंडा वाले आपको सफीर के सिवा कोई दूसरा शख्स नहीं समझेंगे।

बस जब बादशाह मामूल के मुवाफिक फर्मान के इस्तकबाल के लिए जो सफीर के पास हुआ करता है आए तो आप उसे बा आसानी पकड़ कर जो कुछ मुनासिब जाने उसकी निस्बत तजवीज कर सकते हैं। माहजा इस मुहीम का खर्चा मैं आपको दूंगा और इसके एख्तताम तक पचास हजार रुपये रोज देता रहूंगा।

—न्याजमंद मीर जुमला

गोलकुंडा—औरंगजेब जो सदा ऐसे विचारों में लगा रहता मीर जुमला की प्रार्थना के अनुसार तुरंत तैयारी करके गोलकुंडा की ओर चल खड़ा हुआ और इस ढंग से चला कि भागनगर पहुंचने तक किसी को भी यह संदेह नहीं हुआ कि एक बहुत बड़ी सेना शाहजहां के सफीर वा एलची की नहीं है। यहां तक कि बादशाह उस नियम के अनुसार जिसका बरताव ऐसे समयों पर किया जाता है उस नकली एलची की अगवानी के लिए आया। परंतु इसी बीच में जब कि वह निशंक मन से अपने विश्वासघाती शत्रु की ओर जा रहा था और संभव था कि 10-12 जार्जियन गुलाम जो पहले ही से इस काम के लिए नियुक्त थे उसे पकड़ लेते कि इतने में एक उमरा जो इस कपट प्रबंध में शामिल था मन में पश्चाताप और दया आ जाने से एकदम चिल्ला उठा, "जहांपनाह झटपट निकल जाएं वरना फंस जाएंगे। यह औरंगजेब है एलची नहीं।" इस अवसर पर बादशाह के चित्त में कितनी घबराहट और हैरानी आई होगी उसका कहना ही क्या ? वह वहां से भागा और जो घोड़ा उसे पहले मिला उसी पर सवार होकर भागनगर के तीन मील के अंतर पर गोलकुंडा नाम के किले की ओर बड़ी तेजी के साथ निकल गया।

यद्यपि औरंगजेब अपने शिकार से निराश हुआ तो भी उसने सोचा कि यह डरने का अवसर नहीं है। निडर भाव से उसके पकड़ने के उपायों और युक्तियों में लगा रहना चाहिए। अतएव सबसे पहले उसने यह काम किया कि भागनगर के समस्त महलों को लूट लिया, सब बहुमूल्य वस्तुओं को अपने अधिकार में कर लिया। परंतु महल की स्त्रियों को पूर्वी बादशाहों की रीति के अनुसार सावधानी से उसने बादशाह के पास भेज दिया। इसके बाद उसने बादशाह को जो गोलकुंडा के किले में था कैद करने का विचार किया। यद्यपि तोपों के न होने से वह लाचार था तथापि उसने यह निश्चय किया कि दुर्ग को घेरे रखना चाहिए क्योंकि इस दशा में बादशाह को रसद आदि के न पहुंचने के कारण देर तक बचाव करना कठिन होगा। किंतु इसी अवस्था में जब कि वह दुर्ग को घेरे पड़ा था और दो महीने बीत चुके थे कि इतने में शाहजहां का यह आज्ञा-पत्र आया कि तुरंत किला छोड़कर अपने सूबे को चले आओ। इस समय गोलकुंडा का दुर्ग भोजन के पदार्थ और युद्ध की सामग्री न होने के कारण अपनी अंतिम अवस्था को पहुंच चुका था। परंतु ऐसा अवसर पाकर भी लाचार होकर औरंगजेब को लौटना पड़ा।

औरंगजेब का विश्वास था कि दारा और बेगम साहब के आग्रह से ही बादशाह ने यह आज्ञा भेजी है। कारण कि वे यह समझते होंगे कि यदि औरंगजेब गोलकुंडा नरेश पर विजय प्राप्त कर लेगा तो बहुत ही बलवान हो जाएगा। परंतु इतना होने पर भी उसने कुछ भी क्रोध न दिखाकर एकदम पिता की आज्ञा मान ली। दुर्ग की घेराबंदी छोड़ने से पहले चढ़ाई करने में जो व्यय हुआ था उसके बदले में उसने हरजाने की रीति पर गोलकुंडा नरेश से बहुत-सा द्रव्य प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त इससे इस बात की प्रतिज्ञा कराई कि जिससे मीर जुमला को अपने कुटुंब और माल असबाब के सहित राज्य के बाहर हो जाने की आज्ञा दे दी जाए और भागनगर राज्य के चांदी के सिक्कों पर शाहजहां बादशाह के शस्त्र की छाप रहे। यह सब हो जाने के बाद राज्य की बड़ी शाहजादी के साथ उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतान महमूद (मुहम्मद सुलतान) का विवाह किया और बादशाह से इस बात का भी वचन ले लिया कि शाहजादा ही अब से गोलकुंडा राज्य का उत्तराधिकारी समझा जाएगा। शाहजादी के साथ साथ कौतुक में उसने रामगढ़ का दुर्ग भी उसके सब सामानों सहित ले लिया।

औरंगजेब और मीर जुमला बहुत दिनों तक एक साथ नहीं रहे तथापि उन दोनों ने साहस के बड़े बड़े काम किए। दौलताबाद को लौटते समय रास्ते में ही उन्होंने बीदर के दुर्ग को जो बीजापुर प्रदेश में एक अत्यंत दृढ़ स्थान है घेर कर जीत लिया। वहां से दौलताबाद में आकर वे बड़े मित्र भाव से रहने लगे। इस बीच में उन्होंने भविष्योन्नति के अनेक अच्छे अच्छे उपाय किए। औरंगजेब और मीर जुमला की मैत्री हिंदुस्तान के इतिहास में एक चिरस्मरणीय बात समझी जाने के योग्य है, कारण कि औरंगजेब को जो कुछ बड़प्पन, प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा आदि मिली वह इसी के संबंध से मिली।

दौलताबाद पहुंचते ही मीर जुमला ने इस ढंग का पत्र व्यवहार आरंभ किया कि शाहजहां बादशाह की ओर से उसके लिए निमंत्रण पर निमंत्रण आने लगे। अंत में वह आगरे को गया और इस आशा से अपने साथ भेंट में देने को बहुत-सी वस्तुएं लेता गया कि जिससे बादशाह उसके उभारने में आकर गोलकुंडा और बीजापुर राज्यों तथा पुर्तगालों के साथ युद्ध करने पर उद्यत हो। वह यही अवसर था जब कि उसने कोहेनूर नामक एक अद्वितीय हीरा बादशाह को उपहार में दिया था, जो अपनी सुंदरता, बहुमूल्यता और बृहदाकार के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। उसने बादशाह को समझाया कि कंदहार के कंकड़ पत्थरों की अपेक्षा, जहां आप चढ़ाई करने वाले हैं, गोलकुंडा राज्य पर जिसकी खानों से बड़े बड़े बहुमूल्य रत्न निकलते हैं अधिकार कर लेने से अनेक लाभ हैं। उसने यह भी कहा कि आपको गोलकुंडा राज्य के प्रति अपनी सैनिक शक्ति उस समय तक बराबर काम में लानी चाहिए जब तक आप समस्त देश कन्याकुमारी तक अपने अधीन न कर लें।

यह आश्चर्य नहीं कि मीर जुमला की बातों ने शाहजहां के चित्त पर बहुत असर किया हो और इसी कारण उसने उसके विचार पसंद किए हों परंतु बहुत लोगों का यह कहना है कि वास्तव में शाहजहां ने दारा की बराबर बढ़ती ही जाने वाली उद्दंडता और बेअदबी को रोकने के लिए ही चढ़ाई के निमित्त एक नई सेना नियुक्त की और मीर जुमला की सम्मति मान ली।

अस्तु कारण जो भी कुछ हो परंतु बादशाह ने इस बात का दृढ़ निश्चय कर लिया कि मीर जुमला की अध्यक्षता में एक सेना दक्षिण की ओर अवश्य भेजी जाए।

दारा से शाहजहां के रुष्ट होने का यह कारण था कि उसने अपनी सर्वोपरिता और गौरव बनाने के लिए छिपे प्रबंध रचने के उद्योग किए थे। बल्कि एक ऐसा काम किया था जिसके कारण शाहजहां उससे बहुत ही घृणा और भय करने लगा था। उसके इस अपराध को वह क्षमा नहीं कर सकता था। दारा का यह अपराध था कि उसने वजीर सआदुल्लाखां को जिसे शाहजहां एशिया भर में एक प्रवीण और सुयोग्य मंत्री समझता था और जिस पर वह इतना स्नेह रखता कि समस्त दरबार के लोग इस बात को खूब जानते थे, उसे दारा ने मरवा डाला था। मालूम नहीं कि वह कौन-सा अपराध था जिसके कारण दारा ने वजीर सआदुल्ला को वध किए जाने के योग्य समझा। कदाचित उसने यह समझा होगा कि बादशाह की मृत्यु हो जाने पर अपनी शक्ति के कारण यह बात उसके अधिकार में होगी कि वह जिसे चाहे उसे राज्य पर बिठा दे अथवा बादशाह का ताज शुजा के सिर पर रख दे जिसका वह पक्षपाती जान पड़ता है। यह भी कहा जाता है कि सआदुल्लाखां हिंदुस्तानी था अतएव दरबार के ईरानियों को देखकर उसे ईर्ष्या होती थी। दारा के उस पर क्रुद्ध होने का यह भी एक कारण हो सकता है, क्योंकि लोगों ने ऐसी गप्प उड़ा रखी थी कि बादशाह के देहांत के पश्चात वह मुगलों के हाथ से गद्दी का अधिकार छीन लेने को है। कुछ लोग कहते थे कि वजीर स्वयं अथवा अपने पुत्र को राज्य का अधिकारी बनाना चाहता है और कुछ की यह राय थी कि वह पठानों को राज्य का स्वामी बनाने के विचार में है। इस गप्प की पुष्टि के लिए यह बात गढ़ी थी कि उसकी स्त्री पठानी है और अपने कामों में सहायता लेने के लिए उसने जुदे जुदे स्थानों में पठान सिपाहियों की सेनाएं नियुक्त कर रखी हैं।

दारा भली भांति जानता था कि वह बड़ी सेना जो दक्षिण को भेजी जाती है औरंगजेब का बल बढ़ाने के लिए ही जा रही है। अतएव उसने अनेक युक्ति-प्रयुक्ति और वाद-विवाद से जहां तक उससे बन सका बादशाह के विचार को रोकना चाहा परंतु जब उसने देखा कि इस विचार को रोकना किसी प्रकार संभव नहीं है तब उसने नीचे लिखे अनुसार शर्तें उपस्थित कीं—

1. यह कि औरंगजेब इन बातों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। 2. कि

वह दौलताबाद से बाहर न निकले। 3. यह कि उसे जिस प्रदेश का अधिकार प्रदान किया गया है वह उसी के प्रबंध में लगा रहे, इस युद्ध से उसका कोई संबंध न रहे। 4. यह कि सेना की अध्यक्षता का संपूर्ण अधिकार केवल मीर जुमला के ही हाथ में रहे परंतु वह अपने सब आत्मीय संबंधियों और बाल बच्चों को अपनी विश्वस्तता के लिए शरीर-बंधक की रीति पर देहली में छोड़ जाए।

यह पिछली बात यद्यपि मीर जुमला को एकदम नापसंद थी परंतु शाहजहां ने उसे यह समझाकर संतुष्ट कर लिया कि यह केवल दारा को प्रसन्न रखने और उसका संदेह मिटाने के लिए ही है, तुम्हारे बाल बच्चे बहुत शीघ्र तुमसे जा मिलेंगे। निदान मीर जुमला ने उस सुंदर सेना का अध्यक्ष बनकर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और बिना कुछ विलंब किए वहां से कूच करके वह बीजापुर प्रदेश में पहुंच गए। यहां आते ही उसने कल्यानी नामक दुर्ग को जो (बीदर से 30 मील दक्षिण की ओर) एक बहुत ही दृढ़ स्थान है घेर लिया।

इस समय जब कि देश की ऐसी दशा थी शाहजहां की उमर सत्तर वर्ष के पार हो चुकी थी और वह ऐसी बीमारी में फंस गया था जिसकी अवस्था का वर्णन करना उचित नहीं है। इतना ही कहना बहुत होगा कि ऐसे वृद्ध को ऐसे खटपट में पड़ना कदापि योग्य नहीं था, वरन बची हुई शारीरिक शक्ति को नष्ट न करके सावधानी के साथ उसकी रक्षा करना उचित था।

भाइयों में युद्ध—बादशाह की इस बीमारी के कारण राज्य भर में विशेष भय और घबराहट फैल गई। दारा ने राज्य के प्रधान नगर देहली और आगरे में बड़ी बड़ी सेनाएं इकट्ठी कीं। बंगाल में शुजा ने भी ऐसी ही तैयारियां आरंभ कीं। उधर दक्षिण और गुजरात में औरंगजेब तथा मुरादबख्श ने भी समर सज्जा से इस भांति अपने को सज्जित किया जिससे उनके विचार साफ प्रकट होते थे। चारों भाइयों ने हर ओर से अपने मित्रों और सहायकों को बुला बुला कर एकत्रित किया, इधर पत्र भेजे, बड़ी बड़ी प्रतिज्ञाएं कीं और भांति भांति की युक्तियां और उपाय करने आरंभ किए। यद्यपि दारा ने उनमें से कुछ पत्र पकड़कर पिता को दिखलाए, अपने भाइयों की खूब निंदा की और (उसकी बहन) बेगम साहब ने भी अवसर देखकर बहुत लगाव बुझाव किया, परंतु बादशाह को दारा पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। यहां तक कि उसकी ओर से उसे इस बात का पूरा संदेह था कि वह उसे विष दिलवाने की चेष्टा कर रहा है और इस कारण वह खाने-पीने के समय बहुत सचेत और सावधान रहता था बल्कि यह भी कहा जाता है कि उसने औरंगजेब से भी कुछ पत्र-व्यवहार किया था जिससे समाचार पाकर और क्रोध में आकर दारा ने पिता को बहुत धमकाया भी था। इस बीच में बादशाह की बीमारी इतनी बढ़ी कि उसके मरने की खबर उड़ गई और सारे दरबार में उथल-पुथल मच गई। आगरे के निवासियों

में इतना भय समाया कि कई दिन तक बाजारों में हड़ताल रही, चारों राजकुमारों ने खुले आम यह बात प्रकट कर दी कि अब तलवार हम लोगों की इच्छाओं का निर्णय करेगी। वास्तव में अब उनको उनके इस इरादे से रोकना बहुत ही कठिन था, क्योंकि जीत की दशा में तो राज्य पाने की आशा थी और हार की अवस्था में प्राणों का नाश होना निश्चित था। अब केवल दो ही बातें थीं या तो मृत्यु या राज्य लाभ। जिस भांति शाहजहां ने अपने भाइयों के रक्त से हाथ भरकर राज्य का अधिकार प्राप्त किया था उसी भांति इनको भी पूरा पूरा विश्वास था कि यदि हम भी अपनी आशाओं में सफल होंगे तो हमारे विजयी और शक्तिमान शत्रु (भाई) डाह के मारे हमको मरवा डालेंगे।

निदान सबसे पहले सुलतान शुजा ने जिसने कुछ तो अपने प्रांत के राजाओं को बर्बाद करके और कुछ और लोगों को लूट खसोटकर अपने को विशेष धनवान बना लिया था, एक बड़ी सेना एकत्रित की और बड़ी शीघ्रता के साथ आगरे की ओर चल खड़ा हुआ। शुजा को दरबार के ईरानी उमरा का भी जिनका धर्म वह स्वयं मानता था बहुत कुछ भरोसा था। उसने यह बात प्रसिद्ध कर दी कि ''चूंकि बादशाह को दारा शिकोह ने जहर देकर मार डाला है इसलिए हम इस खूनेनाहक और हरकते नाशाइस्ता का बदला लेंगे और तख्ते सल्तनत पर जो खाली है जुलूस करेंगे।'' यद्यपि शाहजहां ने दारा के आग्रह से बहुत शीघ्र इस संवाद का जो उसकी मृत्यु के संबंध में फैल गया था खंडन किया और स्पष्ट शब्दों में यह लिखकर कि दवा से मैं अच्छा होता जाता हूं उसे अपने प्रांत को लौट जाने की आज्ञा दी तथापि वह बराबर आगरे की ओर बढ़ता ही चला आया और यह बहाना उसने कर दिया कि ''मुझे बंदगानेवाला की सलामती की खबर पर यकीन नहीं आता और बिलफर्ज अगर वे जिंदा और सलामत हैं तो कदमबोसी हासिल करने और इर्शाद व अहकाम से सर्फराज होने की मुझे बड़ी तमन्ना है।''

इधर दक्षिण से औरंगजेब ने भी ऐसे ही विज्ञापन प्रकट किए और अपनी सेना को कूच की आज्ञा दी। यह भी ठीक उसी समय आगरे की ओर बढ़ा जिस समय शुजा बंगाल से चला था। इसे भी दारा और शाहजहां की ओर से लौट जाने का आदेश हुआ जिसमें दारा ने तो यहां तक लिख दिया कि ''अगर तुम दक्खिन से हटोगे तो सजा पाओगे।'' परंतु शुजा की भांति इसने भी वही बहाना करके पत्र का उत्तर भेज दिया। औरंगजेब की आय बहुत अधिक नहीं थी और सेना भी उसके अधीन औरों की अपेक्षा कम थी। इसलिए जो काम सामरिक बल से नहीं हो सकता था उसे उसने बुद्धिबल से करने का विचार किया। मुरादबख्श और मीर जुमला ही दो ऐसे व्यक्ति थे जो तुरंत उसकी चाल के जाल में फंस सकते थे। अतएव उसने मुरादबख्श को नीचे लिखे अनुसार एक पत्र भेजा—

''प्यारे भाई, इस बात की याद दिलाने की कोई जरूरत नहीं कि उमूर सल्तनत

की मेहनत उठाना मेरे असली मिजाज और तबीयत के किस कदर खिलाफ है। इस वक्त जब कि दारा और शुजा निहायत सरगर्मी से हुसूल सल्तनत के लिए कोशिश और सई कर रहे हैं। मैं सिर्फ फकीराना जिंदगी बसर करने में मुतरद्दित हूं। मगर, प्यारे अजीज, अगर्चे सल्तनत के हक हुकूक और दावों से मैं बिल्कुल दस्तबरदार हूं। ताहम इस राय और खयाल से आपको मुत्तिला करना वाजिब समझता हूं कि यही नहीं कि दारा शिकोह फरमा रवाई के अबसाफ से खाली है बल्कि ला-मजहब और काफिर होने की वजह से बिलकुल ताज व तख्त के काबिल नहीं। बड़े बड़े उमराए-सल्तनत और अरकाने दौलत सब उससे मुतन्निफर हैं। अलाहाजलकयास शुजा भी सल्तनत के काबिल नहीं, क्योंकि वह राफजी मजहब और हिंदुस्तान का दुश्मन है। बस इस सूरत में इस अजीमुश्शान सल्तनत की फरमारवाई लायक सिर्फ आप ही हैं। यह सिर्फ मेरी ही राय नहीं है बल्कि पायए-तख्त के तमाम मशीर और अमीर जो आपकी बहादुरी के कायल हैं सब इसमें मुत्तफिकुर-राय और हमजबान होकर दारुलखिलाफत में आपकी रौनक बख्शी के मुंतजिर हैं। मेरी बाबत तो यह तसौव्वर कर लीजिए कि अगर आपकी तरफ से मुस्तहकम तौर पर मुझे यह वादा मिल जाएगा कि जब खुदा के फजल से आप बादशाह हो जाएंगे तो मुझे कोई खिलवत के मौके का गोशए आफियत बइत्मीनान खातिर इबादत-इलाही बजा लाने के लिए इनायत फरमाएंगे तो बस इतने ही से मैं फौरन आपकी तरफदारी में खिदमत बजा लाने को आमादा और तैयार हो जाऊंगा, और सलाह व मशवरे से, अपने दोस्तों और रफीकों से, अपनी तमाम फौज आपके हुक्म में कर देने से, गरज किसी किस्म की मदद से मैं दरेग नहीं करूंगा। बिलफैल मैं आपकी खिदमत में एक लाख रुपये भेजता हूं और उम्मीद करता हूं कि आप इसको बतौर नजर कुबूल फरमाएंगे जो कि मेरी खुशी का बायस होगा। हुनर-आजमाई और जवांमर्दी का यही वक्त है, बस आप एक लम्हा भी जाया न कीजिए, मौके को गनीमत समझिए और जल्दी से सूरत के किले पर जहां मुझे खूब मालूम है कि बेशुमार दौलत मदफून है कब्जा कर लीजिए।"

मुरादबख्श जिसकी आर्थिक और सामरिक अवस्था औरों की अपेक्षा घटकर थी, भाई की इस प्रार्थना से जिसके साथ इतने रुपये भी आए थे बहुत ही प्रसन्न और आशान्वित हुआ। उसने इस भरोसे पर वह पत्र बहुत लोगों को दिखलाया कि जिससे युवा पुरुष उसकी सेना में भरती होना चाहें और धनाढ्य महाजन जिनसे वह बलपूर्वक रुपए मांग लिया करता था उसे ऋण देने में आगा पीछा न करें। इस पत्र के आने के बाद से मुराद लोगों से ऐसी ऐसी प्रतिज्ञाएं करने लगा कि मानो वह स्वयं बादशाह हो और ऐसी युक्ति और विजय से उसने काम लिया कि थोड़े ही समय में उसके पास एक बहुत बड़ी और सुंदर सेना एकत्रित हो गई। सेना एकत्र करने के बाद सबसे पहले उसने यह काम किया कि शाह अब्बाश नामक ख्वाजासरा

के अधीन जो एक बड़ा वीर योद्धा था उनमें से तीन सहस्र सिपाहियों को चुनकर सूरत का दुर्ग घेर लेने के अभिप्राय से उस ओर भेज दिया।

इधर इस ओर से निबट कर औरंगजेब ने मीर जुमला की ओर दृष्टि डाली। अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतान को जिसका विवाह गोलकुंडा शाह की पुत्री से हुआ था उसने मीर जुमला के पास भेजा और उसे इस आशय का एक पत्र लिखा कि एक बहुत ही आवश्यक कार्य आ पड़ा है आप जरा आकर मुझसे मिल जाइए। परंतु मीर जुमला अपनी दूरदर्शिता से तुरंत इस आवश्यक कार्य का मतलब समझ गया। उसने औरंगजेब के पत्र के उत्तर में लिखा, "कल्यानी का मुहासरा छोड़ और फौज से अहलदा होकर मेरा दौलताबाद आना नहीं हो सकता। अलावा अर्जी आप यकीन फरमाएं कि मैंने आगरे से अभी इस मजमून की ताजी खबर पाई है कि शाहजहां हनोज जिंदा हैं। इसके सिवा यह बात है कि जब तक मेरे अहलों अयाल दारा शिकोह के काबू में हैं तब तक मैं आपके साथ शरीक नहीं हो सकता बल्कि मेरी असल मंशा तो यह है कि मैं इस हंगामे में किसी का भी तरफदार न बनूं।"

इच्छानुसार कार्य न होते देख मुहम्मद सुलतान मीर जुमला से बहुत रुष्ट होकर दौलताबाद लौट आया परंतु औरंगजेब इस बात से निराश नहीं हुआ। उसने अपने छोटे पुत्र सुलतान मुअज्जम को फिर उसके निकट भेजा। इसने ऐसी चपलता और सुजनता से काम लिया कि मीर जुमला किसी प्रकार इसकी बात नहीं टाल सका बल्कि ऐसी चतुराई की कि जिससे लाचार होकर किले के रक्षकों को उसे खाली कर शरण में आ ही जाना पड़ा। इसके बाद अपनी सेना में से चुने हुए मनुष्यों को लेकर वह बहुत शीघ्रता के साथ दौलताबाद की ओर बढ़ा।

जिस समय मीर जुमला दौलताबाद पहुंचा उस समय औरंगजेब ने "बाबा, और बाबाजी, कहकर बड़ी प्रीति और आदर से उसका स्वागत किया। फिर सैकड़ों बार उसके गले मिल अलग ले जाकर उससे कहा—मुझे बखूबी मालूम है कि आपने जो सुलतान मुहम्मद से इंकार किया था वह मजबूरी के बायस से था और बेशक मेरे सब दूरंदेश अहले दरबार की भी यही राय है कि जब तक आपके बाल बच्चे दारा शिकोह के काबू में हैं तब तक आपको जाहिरा कोई ऐसी हरकत हरगिज न करना चाहिए जो हमारे हक में मुफीद नजर आती हो। लेकिन आप जैसे आकिल शख्स को इस बात के समझाने की कोई जरूरत नहीं कि दुनिया में हर मुश्किल काम की आखिर एक तदबीर होती है। चुनांचे एक मनसूबा मेरे ख्याल में गुजरा है, जिससे बजाहिर हो कि आप हैरान होंगे। मगर जब उनके नसेवो-फराज पर बखूबी गौर करेंगे तो बेशुबहा आपके अहलो-अयाल की सलामती के लिए वह एक यकीनी जरिया हो जाएगा। वह मनसूबा यह है कि आप बजाहिर कैद होना मंजूर कर लें। इससे तमाम जहान को मेरी और आपकी दुश्मनी का यकीन कामिल हो जाएगा और इस हिकमत से हम लोग अपनी तमाम ख्वाहिशों में कामयाब हो सकेंगे, क्योंकि किसी शख्स

को हरगिज ऐसा गुमान नहीं होगा कि आप जैसे रुतबे का कोई आदमी इस तरह अपनी खुशी से कैद हो गया। इसके साथ ही मैं आपकी फौज का एक हिस्सा जिस वजा और हैसियत से आपको पसंद और मुनासिब मालूम होगा नौकर रख लूंगा। मुझे यह भी यकीन है कि जिस तरह पहले आप बारहा मुझसे वादा करते रहे हैं इस वक्त कुछ रुपए देने से भी इंकार नहीं करेंगे क्योंकि मुझे रुपयों की बड़ी जरूरत है और आपके इस रुपये और लश्कर से मैं अपनी किस्मत आजमाई करूंगा। इसलिए अगर इजाजत हो तो मैं आपको इसी वक्त दौलताबाद के किले में पहुंचा दूं। उस जगह मेरा एक बेटा आपका निगराने हाल रहेगा। बाद इसके हम दोनों इस मुहीम की दुरुस्ती की तदबीरों की निस्बत बाहम गौर व फिक्र कर सकेंगे। इस सूरत में हरगिज मेरे खयाल और कयास में नहीं आता कि दारा शिकोह के दिल में कोई शुबहा पैदा होगा और वह ऐसे शख्स के बाल बच्चों के साथ बदसलूकी करेगा जो बजाहिर मेरा इस कदर दुश्मन हो।"

मैं विश्वास के साथ कहता हूं कि मीर जुमला से बातें करते समय औरंगजेब ने ऐसी ही नम्रभाषा का प्रयोग किया था। इस विचित्र योजना के उत्तर में उसने क्या कहा यह तो मुझे नहीं मालूम, परंतु हां इसमें संदेह नहीं कि उसने औरंगजेब की प्रार्थना मान ली और अपना लश्कर उसके अधीन कर देने तथा धन से सहायता करने और साथ ही दौलताबाद के किले में कैद हो जाने पर भी वह राजी हो गया जो कि एक बड़े ही आश्चर्य की बात है। कुछ लोग यह कहते हैं कि औरंगजेब ने मीर जुमला को समझा बुझाकर सचमुच इस बात का विश्वास करा दिया था कि आपके प्रसन्नतापूर्वक कैद हो जाने से बहुत लाभ होंगे और मीर जुमला भी उसकी पुरानी मैत्री और सहायता का स्मरण कर वास्तव में कैद हो जाने पर राजी हो गया था। औरों को जिनकी बात अधिक सकारण मालूम होती है यह कथन है कि उसने केवल भयभीत होकर इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया था, क्योंकि कहते हैं कि इस साक्षात्कार और बातचीत के समय औरंगजेब के दो युवा पुत्र (एक सुलतान मुअज्जम, दूसरा मुहम्मद सुलतान) उसके सिर पर खड़े थे और यद्यपि सुलतान मुअज्जम का अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होना स्पष्ट बतला रहा था कि यदि उसने प्रार्थना अस्वीकार की तो बहुत ही बुरा परिणाम होगा। परंतु मुहम्मद सुलतान तो सचमुच तलवार लिए मूंछों पर इस भांति ताव दे रहा था कि मानो अब वह उसे मार ही डालना चाहता है। सुलतान मुहम्मद के इतना क्रोध प्रकाश करने का इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं था कि मीर जुमला की ओर से उसका पहले अपमान हो चुका था, क्योंकि उसका छोटा भाई मीर जुमला को औरंगजेब के पास तक ले आने में कृत कार्य हुआ था और वह स्वयं नहीं। अतएव उसे अपने क्रोध और दुख को छिपाने की कुछ भी चिंता नहीं थी।

जब मीर जुमला के कैद होने का संवाद चारों ओर प्रसिद्ध हो गया तब उसकी

सेना के उस भाग ने जो बीजापुर से उसके साथ आया था प्रबल शब्दों में कहा कि हमारे सरदार को छोड़ दो नहीं तो हम बलपूर्वक उसे छुड़ा ले जाएंगे। वास्तव में यदि औरंगजेब अपनी चतुराई से उस समय तुरंत उनका संतोष न कर देता, तो वे अवश्य मीर जुमला को निकाल ले जाते। औरंगजेब ने यह किया कि उस सेना के बड़े बड़े सरदारों को तो यह समझा कर अपना मित्र बना लिया और शांत कर दिया कि मीर जुमला अपनी इच्छा और प्रसन्नता से कैद (नजरबंद) हुआ है और यह भी कहा कि यह एक चाल है जो असल में मेरी और उसकी सलाह से की गई है। और सैनिकों को खूब जी खोलकर इनाम देकर अपने बस में किया। तात्पर्य यह कि उसने सरदारों को तो भविष्योन्नति की बहुत-सी प्रतिज्ञाएं करके और साधारण सिपाहियों को उनका वेतन बढ़ा के तथा तीन महीने का (वेतन) पेशगी देके अपना पक्षपाती बनाया।

सूरत में लूट—इस उपाय से जो सैनिक अब तक मीर जुमला के हाथ में थे वे औरंगजेब की नीति-कुशलता से उसकी सेना में आ मिले। उसने समझ लिया कि अब सब काम अच्छी तरह से हो जाएंगे। अतएव सबसे पहले उसने सूरत की ओर कूच किया, क्योंकि किले वाले जैसा कि अनुमान किया गया था अभी तक मुरादबख्श की सेना से अधीन नहीं किए जा सके थे और उसकी इच्छा यह थी कि बहुत शीघ्र यह किला ले लिया जाए परंतु उसके सूरत की ओर चल पड़ने के कुछ दिन बाद उसे समाचार मिला कि मुराद ने सूरत के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यह समाचार सुनते ही उसने अपने विजयी भाई के पास बधाई और धन्यवाद सूचक एक पत्र भेजा, जिसमें उसने इस बीच में मीर जुमला और उसके संबंध में जो बातें हुई थीं उन सबको भी लिख दिया। उस पत्र में अपने विषय में उसने लिखा—"मैं एक बड़ी फौज की सरदारी में हूं और दौलत भी मैंने बेशुमार इकट्ठी कर ली है। बड़े बड़े उमराव-दरबारशाही की मुझसे पुख्ता बातें हो चुकी हैं और अब बुरहानपुर व आगरे की तरफ बढ़ने में मेरी तरफ से कुछ भी देर नहीं है। बस आप से भी इल्तिजा करता हूं कि आप भी कूच में देर न कीजिए और दोनों लश्करों के मिल जाने के लिए कोई जगह करार देकर जल्द मुझे खबर कीजिए।

सूरत दुर्ग में आशा के विपरीत बहुत थोड़ा खजाना मिलने से मुराद बहुत निराश हुआ। इस कमी का कारण या तो यह था कि लोगों ने केवल झूठ ही यह बात प्रसिद्ध कर दी थी कि वहां बहुत धन है अथवा यह हो सकता है जैसा कि बहुतों को संदेह था कि दुर्ग के हाकिम ने स्वयं बहुत-सा द्रव्य चुपचाप उड़ा लिया था। अस्तु वहां से जो रुपये मुरादबख्श के हाथ लगे, वे इतने ही थे कि उनसे केवल उन सैनिकों को वेतन दिया जा सका जो यह लालच देकर नौकर रख लिए गए थे कि सूरत की लूट में बहुत धन प्राप्त होगा। इस दुर्ग का घेरा करने और उसके जीतने

में मुराद की कोई अमर कुशलता भी नहीं प्रकट हुई, क्योंकि यद्यपि वह (दुर्ग) जैसा कि चाहिए युद्ध के सब सामानों से सुसज्जित नहीं था तो भी उसके पाने में मुराद को बहुत परिश्रम करना पड़ा और जब तक कि डच जाति के ईसाइयों ने (जो उसकी सेना में थे) सुरंग लगाने की युक्ति उसे नहीं सिखलाई तब तक घिराव आदि से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। डचों की पहले ही पहल सिखाई हुई युक्ति से दुर्ग की दीवार का एक बड़ा भाग उड़ गया जिससे उसके भीतर के लोगों में बड़ी व्याकुलता फैल गई और कुछ शर्तें उपस्थित कर वे शरण में आ गए।

सूरत के दुर्ग पर अधिकार हो जाने से मुरादबख्श को भविष्य में करने वाले कामों के लिए बहुत सुगमता हो गई। इस जीत से उसका बड़ा नाम हुआ और यहां के लोग सुरंग लगाने की रीति भली-भांति नहीं जानते थे इसलिए उसकी इस युक्ति ने लोगों के चित्त पर बहुत ही विचित्र असर डाला। इसके सिवा यह बात भी सर्व-साधारण में प्रसिद्ध हो गई कि सूरत से मुरादबख्श को बहुत धन प्राप्त हुआ है परंतु इस जीत के कारण इतनी प्रशंसा और प्रसिद्धि होने पर भी तथा औरंगजेब की ओर से बहुत से—वचनों से भरे प्रतिज्ञा-सूचक पत्रों के आते रहने पर भी, शाहअब्बास ख्वाजा मुरादबख्श को बराबर ऐसा ही समझाता रहा कि आप अपने भाई की व्यर्थ बातों पर भरोसा और विश्वास करके कदापि अपने को उसके हाथों में न फंसाएं। यह ख्वाजा मुराद का बड़ा शुभचिंतक था। एक दिन उसने स्पष्ट वाक्य में उससे कहा—"आप अब भी मेरी सलाह मान लें, और अगर आपकी ऐसी ही मरजी है तो औरंगजेब को चिकनी-चुपड़ी बातों से फुसलाएं रखें, लेकिन फौज और लश्कर लेकर उससे शामिल हो जाने का इरादा हरगिज न फरमाएं। बिलफैल आगरे की तरफ उसे अकेला ही जाने दें। रफ्ता रफ्ता जब हमको बादशाह की सेहत और मर्ज की पुख्ता खबर और सही हालत मालूम हो जाएगी तब उस वक्त जैसा मुनासिब मालूम होगा वैसा किया जाएगा। इस अर्से में आप सूरत के किले को जो इस तरफ में सबसे ज्यादा कारआमद मुकाम है खूब मुस्तहकम बना लें। इस जगह के काबू में कर लेने से एक वसीह और जरखेज मुल्क की हुकूमत आपके हाथ आ जाएगी। और फिर थोड़ी सी तदबीर से शहर बुरहानपुर भी जो सूबे दक्षिण का दरवाजा और निहायत कारआमद मुकाम है आपके कब्जे में आ जाएगा।"

मुराद और औरंगजेब

इधर औरंगजेब की ओर से मुरादबख्श के पास बराबर यही पत्र आते रहे कि तुम अपने काम में सुस्ती न करना, अतएव बुद्धिमान और स्वामिभक्त शाहअब्बास ख्वाजा की शिक्षा एक बार ही अस्वीकृत हुई। यह ख्वाजा दृढ़ राजनीतिज्ञ, उत्साही और दयालु

स्वभाव का मनुष्य था और स्वभाव से ही इसे मुराद से प्रीति थी। अच्छा होता यदि मुराद भी अपने इस समझदार मित्र की बात मान लेता, परंतु वह तो राज्यलोभ में अंधा हो रहा था। तिस पर उसके कुटिल भाई के प्रतिदिन इस आशय के आग्रहपूर्ण पत्र आते रहे कि मैं तुम्हारे कामों में बहुत अनुरक्त हूं। मुराद ने सोचा कि वह काम जिसमें बादशाही और राज्य मिल जाने की आशा है अकेले नहीं हो सकेगा। अतएव अहमदाबाद से जहां डेरे डाले पड़ा था उसने कूच कर दिया और गुजरात से चलकर पहाड़ों और जंगलों का सीधा मार्ग अवलंबन किया, जिसमें कि जल्दी से वह उस जगह पहुंच जाए जहां औरंगजेब कुछ दिन पहले ही आकर उस की प्रतीक्षा कर रहा था।

निदान जब दोनों सेनाएं मिल गईं तो बड़ा उत्सव और आनंद मनाया गया। दोनों भाई एक-दूसरे से मिले और औरंगजेब ने अपना अत्यंत स्नेही और एकदम स्वार्थ-रहित होना नए सिरे से जताया। उसने कहा, "भाई बादशाही और सल्तनत की मुझे जरा भी हवस नहीं है। यह फौज-कशी मैंने सिर्फ इस वास्ते की है कि जिस तरह बन पड़े, दारा शिकोह से जो मेरा और आपका मशहूर जानी दुश्मन है, लड़-भिड़ कर आपको तख्ते सल्तनत पर जो खाली पड़ा है बिठा दूं।" राजधानी की ओर बढ़ते समय रास्ते भर औरंगजेब ऐसा ही कहता गया। इस बीच में क्या अकेले में, क्या सबके सामने वह मुराद को 'हजरत' और 'जहांपनाह' आदि कहकर उसी प्रकार संबोधन करता रहा जैसे प्रजा अपने राजा के प्रति करती हो। आश्चर्य है कि मुराद ने उसके कपट वचनों पर जरा भी संदेह नहीं किया। न यह सोचा कि हाल ही में वह गोलकुंडा शाह के साथ ऐसी ही युक्ति और अविश्वास का बरताव कर चुका है। बात यह है कि मुराद राज्य-लोलुपता के कारण ऐसा अंधा हो रहा था और उसकी बुद्धि पर ऐसा पर्दा पड़ गया था कि उसकी इतनी बेईमानी वह समझ नहीं सका कि जो उसका राज्य छीन लेने के लिए उद्योग कर चुका है, आज यह कैसे संभव है कि उसके विचार ऐसे बदल गए कि फकीरों की भांति जीवन-निर्वाह करने के सिवा उसके मन में किसी और बात की अभिलाषा है ही नहीं।

दोनों सेनाएं मिलकर बहुत बड़ी हो गईं और उनके आने की खबर पहुंचते ही राजधानी में बड़ी हलचल मच गई। दारा की घबराहट का ठिकाना नहीं रहा और शाहजहां परिणाम सोच कर डर गया। इस घटना के भावी परिणाम के विषय में उसने कुछ भी क्यों न सोचा हो परंतु इसमें संदेह नहीं कि वह इस बात को भली भांति जानता था कि औरंगजेब की योग्यता, बुद्धिमत्ता और मुराद की शूरता के एकत्रित हो जाने से ऐसा कोई कार्य नहीं जो असंभव जान पड़े। यद्यपि शाहजहां ने यह संवाद पहुंचाने के लिए आदमी पर आदमी भेजे कि अब हम बहुत अच्छी तरह से हैं और यदि तुम लोग अपने अपने प्रांत को लौट जाओगे तो तुम्हारी इस अनुचित कार्रवाई पर ध्यान नहीं दिया जाएगा; परंतु उसकी सब लिखावट और आज्ञा व्यर्थ हुई। दोनों

सेनाएं बराबर बढ़ती ही चली आईं और इस कारण कि बादशाह की बीमारी वास्तव में असाध्य समझी जाती थी ये लोग निरंतर ऐसे ही बहाने करते और जवाब लिखते रहे कि जो पत्रादिक बादशाही मुहर लगकर आते हैं वे जाली और बिलकुल दारा की बनावट है और शहंशाह या तो मर चुके या मरना ही चाहते हैं और यदि मान लिया जाए कि हमारे सौभाग्य से अभी तक वे जीते जागते हैं तो हम उनके चरणों की रज अपने सिर पर चढ़ाकर कृतार्थ होंगे और दारा ने जो उनको एक बार ही अधीन कर रखा है उससे भी उनका छुटकारा करेंगे।

इन दिनों शाहजहां की दशा सचमुच बहुत दुख से भरी थी। रोगग्रस्त होने के सिवा वह वास्तव में दारा के पंजे में फंस गया था और इधर तो दारा शिकोह के हृदय में क्रोध की आग भड़क रही थी और लड़ाई के अतिरिक्त जिसकी वह बड़े यत्न से तैयारी कर रहा था कोई दूसरी बात उसे सूझती ही नहीं थी उधर उस के दूसरे भाई पिता के आज्ञापत्रों की जो निरंतर आते थे कुछ भी परवाह न करके बराबर आगरे की ओर बढ़े ही चले आते थे। एक ओर बादशाह को इस बात की भी चिंता थी कि यदि उसका एकत्रित धन इन नवयुवक शाहजादों के हाथ लग जाएगा तो वे न जाने किस किस तरह उसको उड़ाकर नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। निदान जब उस वृद्ध बादशाह को कोई दूसरा उपाय न सूझा तब लाचार होकर उसने अपने स्वामिभक्त वीर योद्धाओं तथा बलवान सरदारों को अपने पास बुलवाया। यद्यपि ये सरदार और योद्धा प्रायः दारा के विरुद्ध थे और बादशाह को भी दारा की अपेक्षा अपने तीनों चढ़ाई करने वाले पुत्रों से अधिक प्रीति थी तो भी उसने अपने कामों को ठीक करने के लिए उन्हीं अमीरों को (जो दारा के विपक्षी थे) अपने बाकी तीनों पुत्रों की चढ़ाई रोकने के लिए भेजना उचित और आवश्यक समझा। जिस ओर से सुलतान शुजा बढ़ा चला आता था उस ओर की अधिक चिंता थी, अतएव एक सेना तुरंत उसको रोकने के लिए उस ओर भेजी गई और दूसरी सेना इस मतलब से इकट्ठी की गई कि जिससे वह औरंगजेब और मुरादबख्श की युक्त सेनाओं से युद्ध करने को तैयार रहे।

शुजा और सुलेमान शिकोह—दारा का ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह उस सेना का नायक नियुक्त किया गया जो शुजा के बराबर बढ़ते ही आने वाले सैनिकों को रोकने को भेजी गई। उस नवयुवक की उमर 25 वर्ष की थी और यह अत्यंत रूपवान, शक्तिशाली, उदार और प्रसिद्ध पुरुष था। बादशाह ने इसको बहुत धन दिया था और उसकी ऐसी इच्छा थी कि यदि दारा की अपेक्षा मेरे पश्चात यह देहली के राजासन पर बैठे तो अधिक उत्तम बात हो। शाहजहां का असल मतलब यह था कि इस अस्वाभाविक झगड़े में रक्त के छींटे न उड़ें और अपने पौत्र से उसे बहुत प्रीति थी। अतएव उसने मंत्री और उपदेशक की भांति वृद्धराजा जयसिंह को उसके साथ कर

दिया। राजा जयसिंह इस समय भारतवर्ष के राजाओं में सबसे अधिक धनवान, श्रेष्ठ और योग्य पुरुष समझे जाते थे। शाहजहां ने यह बात भली-भांति उनको समझा दी कि जहां तक बने लड़ाई न होने पाए और शुजा को उसके प्रांत को लौट जाने के लिए बाध्य करने में कोई बात उठा न रखी जाए। इसके अतिरिक्त अलग ले जाकर उसने उनसे कहा, "आप शुजा से कह दीजिएगा कि शाही हुक्म के मुआफिक वापस चले जाना तुम्हारा फर्ज ही नहीं है बल्कि फने हुकूमत और सल्तनत की रू से भी यह निहायत जरूरी है कि वह इस तौर पर अपना जोर और ताकत न दिखलाए। इसलिए जब तक कि एक मुनासिब मौका इस काम के लिए न आ जाए, यानी तावक्ते कि हमारी बीमारी लाइलाज न साबित हो या औरंगजेब और मुरादबख्श की शामिल फौजों का कोई नतीजा न मालूम हो जाए ऐसी जल्दबाजी तुम्हारे लिए मस्लहत नहीं है।"

जयसिंह ने लड़ाई न होने देने के लिए अनेक यत्न किए परंतु सब विफल हुए क्योंकि एक ओर तो सुलेमान शिकोह नाम पाने के लोभ में युद्ध की सामग्रियों से सुसज्जित तैयार था और दूसरी ओर शुजा को यह चिंता थी कि यदि मैं कूच में देर करूंगा तो संभव है कि अवसर पा औरंगजेब दारा को हराकर आगरा और देहली अपने अधिकार में कर ले। अतएव ज्योंही दोनों सेनाओं का एक-दूसरे से सामना हुआ, त्योंही दोनों ओर से दनादन गोली की मार आरंभ हो गई। इस युद्ध का सविस्तार वर्णन लिखकर मैं अपने पाठकों का समय नष्ट नहीं करना चाहता, क्योंकि आगे चलकर इससे भी आवश्यक बातें लिखनी हैं। अतएव इतना ही कहना बहुत होगा कि आरंभ में दोनों ओर बड़ा जोश था किंतु घोर युद्ध होने के पश्चात शुजा को रास्ता खाली कर देना और अंत में मारे घबराहट के भाग जाना पड़ा। इस बात का निश्चय है कि यदि राजा जयसिंह अपने मित्र दिलेरखां के सहित जान बूझकर पीछे न हटे रहते तो दूसरी ओर की सेना एकदम नष्ट हो जाती बल्कि शुजा भी कैद कर लिया जाता। परंतु उन्होंने राजकुटुंब के कुमार और अपने स्वामी के पुत्र पर हाथ डालना उचित नहीं समझा। यह भी है कि उन्होंने बादशाह की सलाह के अनुसार शुजा को भाग जाने का अवसर दे दिया। इस हार में यद्यपि शुजा की कुछ अधिक हानि नहीं हुई तो भी जीत होने के कारण उसकी कई तोपें सुलेमान शिकोह के हाथ आ गईं, और सर्व-साधारण में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि शुजा हार गया। तात्पर्य यह कि इससे सुलेमान शिकोह की प्रशंसा और शुजा की बड़ी बदनामी हुई और दरबार में उन ईरानी सरदारों का उत्साह भी जो शुजा के बड़े पक्षपाती थे धीरे धीरे ठंडा पड़ गया।

सुलेमान शिकोह अभी शुजा के पीछे लगा ही था कि इतने में समाचार मिला कि औरंगजेब और मुरादबख्श बड़ी शीघ्रता और मुस्तैदी से आगरे की ओर बढ़ रहे हैं। सुलेमान शिकोह जानता था कि उसके पिता की बुद्धि कितनी है और उसे यह

भी मालूम था कि वह छिपे शत्रुओं के द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है, अतएव बड़ी समझदारी से उसने आगरे की ओर लौट आने का निश्चय किया, जिसके आसपास दारा के अपने भाइयों के साथ युद्ध करने की संभावना थी। उसकी यही सम्मति है कि सुलेमान शिकोह का यह विचार बुद्धिमानी और समझदारी का था, और यदि वह अपनी सेना समेत समय पर आगरे में पहुंच गया होता तो औरंगजेब इतनी बड़ी सेना पर कभी विजय न प्राप्त कर सकता, वरन सामना करने का भी साहस न करता।

औरंगजेब की सवारी—इधर इलाहाबाद में (जहां गंगा और यमुना परस्पर मिली हैं) सुलेमान शिकोह के सैनिकों ने सफलता प्राप्त की परंतु उधर आगरे का कुछ और ही दृश्य था, अर्थात आगरे में यह संवाद पहुंचते ही कि औरंगजेब बुरहानपुर की पास वाली नदी के पार उतर आया है और उन दुर्गम पर्वतों की घाटियों को भी पार कर चुका है, जिससे बचाव का बहुत कुछ भरोसा था—दरबार में बड़ी घबराहट और हैरानी फैल गई और सेना की तैयारी आरंभ कर दी गई। बिना कुछ विलंब किए सैनिकों का एक दल इस मतलब से उज्जैन की ओर भेजा गया कि जिससे वह तुरंत वहां पहुंच कर नदी का घाट रोक ले और शत्रुओं को पार न उतरने दे। इस छोटी सेना की सरदारी के लिए दो महानुभाव जो बुद्धिमान और श्रेष्ठ पुरुष थे चले गए। एक का नाम कासिमखां था, जो एक प्रसिद्ध वीर तथा साहसी योद्धा होने के सिवाय शाहजहां का सच्चा शुभचिंतक था। परंतु वह दारा से संतुष्ट नहीं था। अतएव सेनापति होना उसने प्रसन्नतापूर्वक नहीं किंतु केवल इस विचार से स्वीकार किया कि जिसमें शाहजहां की आज्ञा का उल्लंघन न हो। दूसरे सरदार राजा यशवंत सिंह थे जो श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा में राजा जयसिंह से किसी प्रकार कम नहीं थे। राजा यशवंत सिंह उदयपुर के उस सुप्रसिद्ध वीर महाराणा के दामाद थे, जो अकबर के समय में सब राजाओं का अधिराज समझा जाता था।

दारा ने इन दोनों सेनापतियों से बड़ी नम्रता और शिष्टता के साथ बातें कीं और जब वे जाने लगे तो उस समय उसने उनको बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएं भी भेंट में दीं। परंतु शाहजहां ने शुजा के विरुद्ध राजा जयसिंह और दिलेरखां को भेजते समय जो शिक्षा उनको दी थी वैसे ही सावधानी से काम करने को इनसे भी कहा। जिसका यह परिणाम हुआ कि जासूस पर जासूस औरंगजेब के पास यह कहकर भेजे गए कि आपको अपने प्रदेश की ओर लौट जाना चाहिए। परंतु जब इधर अभी युद्ध के विषय में संदेह ही संदेह था तब औरंगजेब बड़ी दृढ़ता और फुर्ती के साथ लड़ाई की तैयारियां करने में लिप्त था, जो जासूस यशवंत सिंह आदि की ओर से भेजे जाते थे वे लौटकर नहीं आते थे। यों ही करते करते सहसा औरंगजेब की सेना एक ऊंचे टीले पर जो (क्षिप्रा) नदी से कुछ अंतर पर है दिखाई दी।

गर्मी की ऋतु थी और मारे उत्ताप के नदी का जल इतना सूख गया था कि

वह सहज में पार की जा सकती थी, अतएव कासिमखां और राजा साहब ने यह सोचकर कि औरंगजेब पार उतरना चाहता है लड़ाई की तैयारी आरंभ कर दी। परंतु वास्तव में औरंगजेब की पूरी सेना अभी पीछे थी। इन थोड़े-से सिपाहियों को आगे भेज देना एक बिलकुल धोखा था। कारण यह कि औरंगजेब को इस बात का भय था कि कहीं बादशाही सेना नदी के पार न उतर आए और हमारा मार्ग रोककर हमारे थके मांदे सैनिकों पर आक्रमण न कर दे। औरंगजेब का ऐसा सोचना उचित था, क्योंकि उस समय उसके सैनिक सचमुच लड़ने योग्य नहीं थे। और यदि कासिमखां और राजा साहब इस अवसर पर आक्रमण कर देते तो अवश्य उन्हीं की जीत होती। इस लड़ाई के समय मैं स्वयं उपस्थित नहीं था। परंतु जिन लोगों ने इसका दृश्य अपनी आंखों से देखा है वे विशेषकर औरंगजेब के तोपखाने के फ्रेंच लोग इस युद्ध के विषय में ऐसा ही वर्णन करते हैं। परंतु कासिमखां तथा राजा साहब ऐसा किस तरह करते—क्योंकि उनको तो बादशाह की गुप्त आज्ञा के कारण केवल इतना ही करने का अधिकार था कि नदी के इस पार उपस्थित रहें और यदि औरंगजेब इधर आना चाहे तो उसे रोकें।

यशवंत सिंह की वीरता—जब औरंगजेब के सैनिकों ने दो तीन दिन तक विश्राम कर लिया तब उसने बलपूर्वक उनको नदी पार उतारने का प्रबंध किया। पहले तो उसने अपना तोपखाना एक ऊंचे स्थान में रखा फिर सैनिकों को गोले दागते हुए आगे बढ़ने की आज्ञा दी। इनको रोकने के लिए दूसरी ओर से भी तोपें चलना आरंभ हुईं। प्रारंभ में घोर संग्राम हुआ। राजा यशवंत सिंह ने बड़ी ही वीरता और युक्ति से शत्रुओं को पग पग पर रोका। परंतु कासिमखां ने—यद्यपि उसके एक वीर योद्धा होने में किसी को कुछ संदेह नहीं—तथापि इस अवसर पर न तो कुछ वीरता ही दिखाई न कुछ सामरिक युक्ति ही प्रकट की। वरन उस पर यह संदेह किया जाता है कि इस अवसर पर उसने विश्वासघात किया और लड़ाई से पहले ही रात के समय अपनी ओर का सब गोला बारूद रेत में छिपा दिया। जिसका यह परिणाम हुआ कि लड़ाई के समय कई बाड़ दागने के बाद इधर की सेना के पास इस प्रकार का कोई सामान न रहा। अस्तु कुछ भी हो, परंतु युद्ध घमासान हुआ और घाट के रोकने में सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखाई। उधर औरंगजेब की यह दशा हुई कि बड़े-बड़े पत्थरों के कारण जो नदी के पाट में थे उसको बहुत कष्ट हुआ और किनारों की साधारण ऊंचाई के कारण से ऊपर चढ़ना बहुत मुश्किल जान पड़ा। तथापि मुरादबख्श के साहस ने इन सब कठिनाइयों को दूर कर दिया। अपनी सेना के साथ वह पार उतर आया, और पीछे से बाकी सैनिक भी बहुत शीघ्र आ पहुंचे। इस समय कासिमखां यशवंत सिंह को घोर संकट में छोड़कर बड़ी अप्रतिष्ठा के साथ लड़ाई के मैदान से भाग निकला। अब यद्यपि इस वीर राजा पर चारों ओर से शत्रु सैन्य टूट पड़ा।

परंतु उसके साहसी राजपूत साथियों ने अपने प्राणों का संहार करके उसे बचा लिया। लड़ाई के आरंभ में इनकी संख्या आठ सहस्र थी जिनमें से इस भयंकर खून खराबी के पश्चात केवल 600 वीर जीवित बचे। इस घटना के बाद आगरे जाना उचित न जानकर इन बचे खुचे स्वामिभक्त सैनिकों को अपने साथ लिए हुए राजा यशवंत सिंह सीधे अपने राज्य की ओर चले गए।

राजपूत—राजपूत शब्द का अर्थ है राजा का पुत्र। वंश परस्पर से राजपूतों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी जाती है। जिन राजाओं के राज्य में ये रहते हैं उनकी ओर से इस बात पर इनके भरण पोषण के लिए इनको भूमि दी जाती है कि जिसमें लड़ाई के समय काम पड़ने पर ये उनकी सहायता करें। जब तक वह निष्कर भूमि जो राजा की ओर से मिली रहती है ले लिए जाने के योग्य नहीं होती अथवा उनकी पैतृक रहती है, तब तक बराबर ये राजपूत ठाकुर उस भूमि के मालिक समझे जाते हैं। राजपूत बचपन ही से अफीम खाने के बड़े अभ्यस्त होते हैं। कभी कभी मैंने उनको इतनी अफीम खाते देखा है कि मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। लड़ाई के दिन वे इसकी मात्रा दूनी कर देते हैं। अफीम उनको इतना तेज और मस्त बना देती है कि वे मृत्यु की कुछ भी परवाह न करके भयानक से भयानक मार-काट में लग जाते हैं। यदि कोई राजा स्वयं शूरवीर हो तो उसके मन में कभी यह संदेह नहीं उत्पन्न हो सकता कि मेरे राजपूत कभी किसी अवसर पर मेरा साथ छोड़ देंगे। युद्ध के समय ये लोग केवल इतना ही चाहते हैं कि कोई उनका सरदार वा परिपालक हो। अपने स्वामी को शत्रुओं के हाथों में छोड़ देने की अपेक्षा उसके आगे अपना जीवन दे देने में वे अधिक मान समझते हैं। लड़ाई के मैदान में जाने से पहले जब राजपूत अफीम के नशे में झूमते हुए मरने का मन में निश्चय रख कर एक-दूसरे से गले मिल मिलकर विदा होने लगते हैं तो वह दृश्य बहुत ही मनोहारी और देखने योग्य होता है। फिर ऐसी अवस्था में यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं कि मुगल बादशाह गण जाति के मुसलमान और हिंदुओं के कट्टर विरोधी होने पर भी अपने यहां ऐसे ही राजपूतों के सरदार राजाओं की मंडली रखते हैं। दरबार के दूसरे अमीरों और सरदारों की तरह उनके साथ भी बहुत उत्तम बर्ताव करते हैं और सेना के बड़े ऊंचे पदों का अधिकारी बनाते हैं।

राजपूतनियां—इस अवसर पर यशवंत सिंह की पत्नी ने जो राणा के कुल की थी अपने स्वामी के साथ जो व्यवहार किया वह भी सुनने के योग्य है, अर्थात जिस समय उसने सुना कि उसका पति आठ सहस्र में से पांच सौ योद्धाओं को लिए हुए अप्रतिष्ठा के साथ नहीं वरन बड़ी वीरता से लड़कर युद्ध क्षेत्र से चला आता है उस समय उस शूरवीर योद्धा के निकट बधाई और आश्वासन का संवाद भेजना

तो दूर रहा उसने बड़ी निष्ठुरता से आज्ञा दी कि किले के सब फाटक बंद कर दिए जाएं। इसके बाद उसने कहा, "मैं ऐसे निंदित पुरुष को किले के अंदर नहीं आने दूंगी। ऐसा व्यक्ति और मेरा पति ! राणा का दामाद और ऐसा निर्लज्ज ! मैं कदापि ऐसे पुरुष का मुख नहीं देखना चाहती। ऐसे महान पुरुष का संबंधी होकर इसने उसके गुणों का अनुकरण नहीं किया। यदि यह लड़ाई में शत्रुओं को हरा नहीं सका तो यहां आने की क्या आवश्यकता थी वहीं युद्ध क्षेत्र में वीरता के साथ लड़कर प्राण देना उचित था।" फिर तुरंत ही उसके मन में दूसरा विचार उत्पन्न हुआ और उसने कहा, "अरे कोई है जो मेरे लिए चिता तैयार कर दे ! मैं अपनी देह अग्नि को अर्पण करूंगी। सचमुच मुझे धोखा हुआ, मेरा पति वास्तव में संग्राम में मारा गया, इसके अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं हो सकती।" और फिर क्रोध में आकर बहुत बुरा भला कहने लगी। 8-9 दिन तक उसकी यही दशा रही, इस बीच में यशवंत सिंह से वह एक बार भी नहीं मिली। अंत में जब उसकी मां उसके निकट आई और उसने समझाया कि घबराओ नहीं राजा जरा विश्राम लेकर और नई सेना एकत्रित करके पुनः औरंगजेब पर आक्रमण करेगा और इसकी वीरता और साहस की लोग फिर प्रशंसा करेंगे तब वह कुछ शांत हुई।

इससे यह प्रकट होता है कि इस देश की स्त्रियों को अपने नाम, प्रतिष्ठा और सम्मान का कितना ध्यान है और उनका हृदय कैसा सजीव है। मैं ऐसे और भी दृष्टांत दे सकता हूं क्योंकि मैंने बहुत-सी स्त्रियों को अपने पतियों के साथ चिता में जलकर मरते अपनी आंखों से देखा है। परंतु ये बात मैं किसी दूसरे अवसर पर (आगे चलकर) वर्णन करूंगा जहां मैं दिखाऊंगा कि मनुष्य के चित्त पर आशा, विश्वास, प्राचीन रीतिनीति, साधारण मत और मान सम्मान के ध्यान का कितना दृढ़ प्रभाव पड़ता है।

जिस समय दारा ने उज्जैन में संघटित दुखदायिनी घटनाओं का हाल सुना उस समय यदि शाहजहां उसे उपदेश और युक्तिपूर्ण बातों से ठंडा न करता तो क्रोध के आवेश में वह न जाने क्या क्या कर डालता। यदि उस समय कासिमखां वहां होता तो वह निस्संदेह मारा जाता और मीर जुमला के पुत्र मोहम्मद अमीरखां को भी अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते और उसकी पत्नी तथा कन्या भी वेश्या बनने पर विवश की जाती, क्योंकि दारा को संदेह था कि मीर जुमला ने औरंगजेब की सेना और धन दोनों से सहायता की है और वही इस उपद्रव का प्रधान कारण है—परंतु बादशाह की युक्तियुक्त बातों से उसका क्रोध और जोश शांत हो गया और मीर जुमला के कुटुंब के लोग बच गए। बादशाह ने उसे समझाया कि मीर जुमला का औरंगजेब की इन बातों से संबंध रखना कदापि संभव नहीं है। यह कैसे हो सकता है कि ऐसा दूरदर्शी और बुद्धिमान आदमी एक ऐसे व्यक्ति के लाभ के लिए जिससे उसको कुछ भी स्नेह वा प्रीति नहीं है अपने बाल बच्चों को ऐसे जोखिम के स्थान

में छोड़ देता बल्कि इससे तो यह प्रकट होता है कि वह स्वयं औरंगजेब के दांव-पेच में पड़ गया है।

इधर औरंगजेब और मुरादबख्श की यह दशा थी कि वे मारे हर्ष के फूले नहीं समाते थे। उनको इस बात का अहंकार हो गया था कि हम पर कोई विजय नहीं पा सकता और ऐसा कोई कठिन काम नहीं जिसे हम न कर सकें। औरंगजेब अपने सैनिकों का साहस बढ़ाने के लिए खुले आम कहता फिरता था कि दारा की सेना में 30 हजार ऐसे मुगल हैं जो अभी हमारी सेना में आ जाने को तैयार हैं। औरंगजेब का ऐसा कहना एकदम झूठ भी नहीं था क्योंकि पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा कि कई उमरा ने वास्तव में दारा शिकोह से विश्वासघात किया। अब यद्यपि मुराद बहुत शीघ्रता कर रहा था और उसकी यह इच्छा थी कि बराबर आगे बढ़ते चलें परंतु औरंगजेब ने उसे रोका और कहा कि इस सुंदर नदी (क्षिप्रा) के किनारे ठहर कर जरा दम ले लेना और आराम करना आवश्यक है क्योंकि इस बीच में हमको अपने मित्रों और शुभचिंतकों से पत्र व्यवहार करके राजधानी का हाल जान लेने का भी अवसर मिल जाएगा। अतएव अब ये लोग धीरे धीरे कूच करते थे और आगरे से जो समाचार आते थे उन पर खूब विचार करके आगे बढ़ते थे।

शाहजहां की अवस्था–इस समय शाहजहां निराश और दुखद स्थिति में आ पड़ा था। एक ओर अपने दोनों पुत्रों के राजधानी में प्रवेश करने का दृढ़ विचार और दूसरी ओर दारा को युद्ध की बड़ी बड़ी सामग्रियां एकत्रित करते देखकर उसे बड़ी शंका होती थी। वह पहले से ही जान गया कि जिस भयंकर कालचक्र को वह अनेक उपायों से टालना चाहता था वह उसके कुटुंब पर गिरना चाहता है। दारा की इच्छाओं को रोकना अब उसकी सामर्थ्य के बाहर था, क्योंकि प्रथम तो वह अभी तक रोग से मुक्त नहीं हुआ था, दूसरे अपने ज्येष्ठ पुत्र (दारा) के सामने शासक नहीं किंतु नौकर के समान हो रहा था। दारा की दुष्टता के कारण लाचार होकर उसने राज्यशासन के कामों से हाथ खींच लिया था और दरबारियों तथा अफसरों से कह दिया था कि उसकी आज्ञा और अनुमति के अनुसार काम करना। सारांश यह कि इन दिनों उसकी यह अवस्था थी कि जैसे दारा शिकोह तो बादशाह और शाहजहां प्रजा अथवा शासित। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि दारा ने सहज में इतनी बड़ी सेना एकत्रित कर ली जितनी बड़ी कदाचित हिंदुस्तान की रणभूमि में पहले कभी इकट्ठी नहीं हुई होगी। एक लाख सवार, बीस सहस्र से भी अधिक पैदल, अस्सी तोपें और असंख्य नौकर, बनिये, दुकानदार, मजदूर, इत्यादि। जिनको रसद देने तथा अन्यान्य कामों के लिए चाहे जीत हो चाहे हार, लड़ाई के समय वर्तमान रहना आवश्यक होता है और जिनको प्रायः इतिहास लेखक भूल से लड़ने-भिड़ने वाले सिपाहियों में मिलाकर लिख देते हैं कि अमुक स्थान में चार लाख योद्धा थे, एकत्रित

हो गए। यद्यपि इस बात का निश्चय है कि दारा शिकोह की सेना इतनी अधिक थी कि वह औरंगजेब की दो तीन सेनाओं को हरा सकता था जिसकी अधीनता में चालीस सहस्र से अधिक सैनिक नहीं थे और वे भी कड़ी धूप में बराबर चले आने के कारण थके मांदे थे। परंतु इतने पर भी किसी को उसकी जीत होने की आशा नहीं होती थी। इसका कारण यह था कि जिन सिपाहियों और सरदारों से यह भरोसा किया जा सकता था कि वे ईमानदारी के साथ अंत तक लड़ेंगे, वे केवल वे ही थे जो सुलेमान शिकोह के साथ गए थे, बाकी दरबार में जितने लोग थे उनके रंग-ढंग से साफ प्रकट होता था कि न तो वे दारा से प्रीति रखते हैं न उसका कुछ लाभ ही चाहते हैं। दारा के मित्रों ने यह अवस्था देखकर उसे सलाह दी कि आप इस भयानक लड़ाई में पड़ने का साहस न करें। स्वयं बादशाह (शाहजहां) ने सेनापति बनकर औरंगजेब के विपक्ष में युद्धक्षेत्र में जाने की इच्छा प्रकट की। बादशाह की यह युक्ति बहुत ही योग्य और उचित थी। इससे अवश्य लड़ाई टल जाती और औरंगजेब जो बड़े अहंकार में भरा था, सफलता प्राप्त न कर सकता। प्रथम तो मुरादबख्श और औरंगजेब संभवतः पिता के विरुद्ध लड़ते ही नहीं और यदि आते भी तो अवश्य उनकी दुर्दशा होती क्योंकि औरंगजेब और मुराद के सब सरदार तथा सैनिक बादशाह के हृदय से भक्त थे।

जब दारा ने किसी प्रकार अपने मित्रों की सलाह न मानी तब लाचार होकर उन्होंने समझाया कि सुलेमान शिकोह के आ जाने तक, जो आपकी सहायता के लिए शीघ्रता से बढ़ा चला आ रहा है, आप ठहरे रहिए। यह सलाह भी अच्छी और लाभ पहुंचाने वाली थी, क्योंकि सुलेमान शिकोह से प्रायः सब लोग प्रसन्न और संतुष्ट थे और यह अपने साथ एक ऐसी सेना लिए चला आता था जिसमें बहुत से खास दारा के नियुक्त किए हुए लोग थे और वे शुजा पर विजय प्राप्त कर चुके थे। किंतु दारा ने यह बात भी नहीं मानी। उसने इसी एक बात का दृढ़ संकल्प कर लिया था कि जिस तरह बन पड़े औरंगजेब को नीचा दिखाना चाहिए।

दारा का दुराग्रह—यदि दारा भाग्यवान होता और सुसमय व कुसमय को पहचान कर काम करता तो बहुत संभव था कि वह जीत जाता। परंतु जिन विचारों से उसने किसी की सलाह नहीं मानी और जल्दी से भिड़ जाना पसंद किया उनमें से एक तो यह था कि उसने सोचा कि इस समय बादशाह यहां तक मेरे पंजों में फंसा हुआ है कि उसके ऊपर मेरा पूरा पूरा अधिकार है। दूसरे यह कि राजकोष मेरे हाथ में है। तीसरे यह कि समस्त बादशाही सेना मेरी आज्ञा के अधीन है। चौथे शुजा इस प्रकार हारा है कि मानो एकदम नष्ट हो गया है और औरंगजेब तथा मुराद जो एक थकी मांदी सेना लेकर आते हैं इस अवस्था में वे जब पराजित होंगे तो फिर उनका कहीं ठिकाना नहीं रहेगा। इस प्रकार नित्य का खटका मिट जाएगा और

मैं स्वतंत्र होकर सफलता प्राप्त कर निष्कंटक राज्य भोग करूंगा। उसने यह भी सोचा कि यदि बादशाह को युद्ध क्षेत्र में जाने दूंगा तो संधि हो जाएगी और सब भाई अपने अपने प्रांत को लौट जाएंगे। बादशाह जिसका स्वास्थ्य अब पहले से अच्छा होता जाता है पुनः राज्य शासन का भार अपने ऊपर ले लेगा और राजकार्य जिस भांति पहले चलते थे वैसे ही फिर चलने लग जाएंगे। सुलेमान शिकोह के आ जाने तक रुके रहने के विषय में उसने यह विचार किया कि कहीं ऐसा न हो कि बादशाह उसके आ जाने तक मेरी खराबी का कोई प्रबंध कर डाले या औरंगजेब से ही ऐसा बंदोबस्त करा ले जिससे मेरी हानि होने का भय हो। यह विचार भी उसके मन में उत्पन्न हुआ कि यदि सुलेमान शिकोह के आने तक रुका रह जाए और मान भी लिया जाए कि उसके आने पर उसकी सहायता से जीत होगी, पर ऐसी अवस्था में भी तो इस जीत का कारण लोग उसी को समझेंगे। उसकी वीरता की पहले ही से धूम मच चुकी है फिर यह कौन कह सकता है कि उस तेजस्वी राजकुमार के चित्त पर उस समय कैसा प्रभाव पड़ेगा जब लोग और भी उसकी प्रशंसा करेंगे। सारांश यह है कि जब बादशाह और दरबार के बड़े बड़े सरदार उसकी वाहवाही करेंगे, उसको शाबासी देंगे तो क्या मालूम उसके विचार कितने बढ़ जाएंगे और पिता की प्रीति और प्रतिष्ठा का उसे ध्यान रहेगा या नहीं।

ये ही कारण थे जिससे दारा बहक गया और अपने बुद्धिमान मित्रों की इसने एक न सुनी। सेना को युद्ध के लिए तैयार होकर कूच करने की आज्ञा देकर वह विदा होने के हेतु दुर्ग में पिता के पास गया। वृद्ध शाहजहां पहले तो अपने ज्येष्ठ पुत्र से गले मिलकर रोने लगा परंतु फिर कुछ संभल कर बोला—"खैर बेटा, तुमने अपनी मरजी का काम किया, खुदा तुमको इसमें सुर्खरू और कामयाब करे लेकिन याद रखो कि अगर लड़ाई बिगड़ गई तो मुझे क्या मुंह दिखाओगे ?" पिता की बातों पर अधिक विचार न करके दारा झटपट वहां से चला आया। पश्चात चंबल नदी की ओर जो आगरे से लगभग 60 मील के अंतर पर है उसने यात्रा की और वहां पहुंचते ही यह सोचकर कि शत्रुओं की सेना इसी मार्ग से जाएगी उसने नदी का घाट रोककर पड़ाव डाल दिया। परंतु वह दीर्घ दृष्टि वाला प्रपंची फकीर (औरंगजेब) जिसने प्रत्येक स्थान में अपने जासूस और भेदिये लगा रखे थे यह बात भली भांति जानता था कि इतने शत्रुओं के रहते नदी पार उतरना कितना कठिन काम है। इतने पर भी उसने अपने डेरे खेमे के उस पार आकर लगा दिए और जान बूझ कर इतने पास लगाए जिससे दारा की दृष्टि उन पर पड़ सके। इतना काम करने के उपरांत उसने यह किया कि चंपत नामक एक राजा को कुछ भेंट पारितोषिक देकर इस बात पर प्रसन्न कर लिया कि वह उसकी सेना को अपने राज्य से होकर उस घाट की ओर निकल जाने दे जहां पानी कम हो या जहां से नदी सहज में पार की जा सके। इस राजा ने वे दुर्गम जंगली और पहाड़ी मार्ग जिसके विषय में कदाचित

दारा यह समझे हुए था कि इस ओर से औरंगजेब नहीं आ सकेगा स्वयं जाकर उसकी सेना को दिखा दिए। तात्पर्य यह है कि इधर तो दारा और उसके सहायक को धोखा देने के लिए डेरे खेमे ज्यों के त्यों खड़े रहे उधर औरंगजेब सेना के सहित दूसरे मार्ग से चुपचाप चंबल के पार उतर आया। जब दारा को इस बात की खबर लगी तब लाचार होकर उसे भी वहां से हटना और उसका पीछा करना पड़ा। इस समय औरंगजेब चंबल के पार उतर कर बड़ी शीघ्रता से यमुना के किनारे पहुंच गया था और अपने सैनिकों को विश्राम देने के विचार से युद्ध की सब सामग्रियों से ठीक होकर देख रहा था कि दारा कब आता है (यह स्थान जहां उसने डेरा डाला था आगरे से लगभग 15 मील के अंतर पर है। पहले इसका नाम समूगढ़ था पर अब इस कारण से कि औरंगजेब ने यहां विजय पाई थी फतहाबाद कहा जाता है) दारा भी झटपट वहां आ पहुंचा और औरंगजेब की सेनाओं तथा आगरे के बीच में यमुना के किनारे उसने भी अपने खेमे खड़े किए।

तीन चार दिन तक दोनों सेनाएं आमने-सामने चुपचाप पड़ी रहीं। इस बीच में यद्यपि शाहजहां ने पत्र पर पत्र भेजे और लिखा कि 'सुलेमान शिकोह करीब पहुंच गया है। खबरदार, बेमौके जल्दी न कर बैठना, बल्कि मुनासिब यह है कि आगरे से और करीब हो जाओ और सुलेमान शिकोह के आ जाने तक लश्कर को किसी मुनासिब जगह ठहरा कर इर्द-गिर्द खंदकें खुदवा लो और मोरचे बांध लो', पर उसने केवल इतना ही उत्तर देकर तुरंत लड़ाई की तैयारी कर दी कि "हुजूर कुछ अंदेशा न फरमाएं। इंशा अल्लाह तीन दिन न गुजरने पाएंगे कि औरंगजेब और मुरादबख्श दोनों के हाथ पांव बांधकर हाजिर कर दूंगा। उस वक्त हुजूर को इख्तियार है कि जो मुनासिब हो उनको सजा दें।"

औरंगजेब और दारा—सबसे पहले दारा ने तोपखाना खड़ा किया और लोहे की जंजीरों से इस भांति तोपों को परस्पर जकड़ दिया कि शत्रु पक्ष के सवारों को आक्रमण करके घुस आने का स्थान न रहे। उसके पीछे ऊंटों पर एक विशेष प्रकार की छोटी छोटी तोपें लगाई गईं। ये छोटी तोपें ऐसी थीं कि जिनको ऊंट सवार बिना नीचे उतरे सहज में घूमकर चला सकता था। इनके पश्चात कई पंक्तियां पैदल बंदूक दागने वालों की थीं। शेष सेना सवारों की थी जिनके पास या तो तलवार बर्छियां थीं, जिनको राजपूत व्यवहार में लाते हैं, या तलवार या तीर धनुष। मुगल लोग अधिकतर तलवार और तीर धनुष से काम लेते हैं। यहां पर जैसा कि मैं लिख चुका हूं यह समझ लेना चाहिए कि मुगल के अंतर्गत समस्त गोरे विदेशी, मुसलमान, ईरानी, तूरानी, अरब, रूसी सब आ गए।

दारा शिकोह ने सेना को तीन भागों में बांटा। दाहिनी ओर का सरदार खलील उल्लाहखां बनाया गया जिसके आधीन तीस सहस्र मुगल थे। बाईं ओर की सरदारी

का भार प्रसिद्ध वीर रुस्तमखां, दक्षिणी रावं छत्रसाल और सरदार रामसिंह राठौर को दिया गया (यह खलील उल्लाहखां दानिशमंदखां के स्थान में जिसके यहां कुछ काल तक मैं नौकर था, सवारों की सेना का बख्शी अथवा सेनापति बनाया गया था। इसका यह कारण था कि दानिशमंदखां कदापि नहीं चाहता था कि कोई व्यक्ति शाहजहां के राज्याधिकार में हस्तक्षेप करे, और इस बात से दारा रुष्ट होता था अतएव उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था) अस्तु इधर दारा ने यह प्रबंध किया। औरंगजेब और मुरादबख्श ने भी प्रायः इसी रीति से अपनी सेनाएं मैदान में खड़ी कीं। हां, उसने इतना अधिक किया कि उमरा की सेनाओं को जो दोनों ओर दाएं बाएं थीं कुछ हलकी तोपें छिपे ढंग पर लगा दीं। कहा जाता है कि यह युक्ति मीर जुमला ने बताई थी और इसका कुछ अच्छा ही फल हुआ। मैं नहीं जानता कि इस युद्ध में इसके अतिरिक्त कि एक प्रकार के बाण दोनों ओर के सवारों पर चलाए जाते थे, जिनसे प्रायः घोड़े भड़क जाते और कुछ सिपाही भी गिर पड़ते थे और किसी सामरिक युक्ति से काम लिया था या नहीं, परंतु इतना मैं अवश्य कहूंगा कि यहां के सवारों की चाल अच्छी है। लड़ाई के समय सहज में घोड़ों को घुमाने और चक्कर आदि देने का इनको बड़ा अभ्यास है। ये लोग ऐसी सुंदर रीति से तीर चलाते हैं कि जितने समय में कोई बंदूक वाला दो बार गोली दाग सकता है तो उतने समय में ये छह बार तीर चला सकते हैं। इनमें यह भी गुण है कि ये बड़ी उत्तमता से पंक्तिबद्ध खड़े रहते हैं विशेषकर आक्रमण के समय बहुत इकट्ठे होकर शत्रुओं पर गिरते हैं। इतने पर भी मैं इनको विलायती सैनिक सवारों के समान समर विद्या में चतुर नहीं समझता। ऐसा न समझने का कारण मैं आगे चलकर बताऊंगा।

लड़ाई की लीला—अब लड़ाई का हाल सुनिए कि जब दोनों ओर भली भांति तैयारी हो चुकी तब यहां की रीति के अनुसार पहले गोले चलने आरंभ हुए। फिर तो इस अधिकता से बरसे कि मानो बादल छा गया। इतने में सहसा वृष्टि होने लगी जिससे लड़ाई जो बड़ी प्रबलता से हो रही थी, थोड़ी देर के लिए रुक गई परंतु पानी बरसना बंद होते ही फिर तोपें चलने लगीं। इस तरह दारा शिकोह सिंहल द्वीप के एक सुंदर हाथी पर सवार होकर निकला और सब ओर से धावा करने की आज्ञा देता हुआ स्वयं सवारों की एक सेना के साथ शत्रुओं की तोपें छीन लेने के अभिप्राय से साहसपूर्वक आगे बढ़ा। इधर शत्रुपक्ष ने ऐसी वीरता से सामना किया कि उसके चारों ओर मृतकों के ढेर लग गए और न केवल वही सेना जो पहले से उसके पास थी वरन और भी जो पीछे आ गई थीं एकदम तितर-बितर हो गईं। इतने पर भी दारा साहसपूर्वक मैदान में हाथी पर बैठा बड़ी सावधानी और वीरता से चारों ओर देखता हुआ अपना पक्ष सबल करने का उद्योग करता रहा। उसकी देखा देखी उसके सैनिकों ने भी साहस किया और वे सिपाही जो जगह छोड़कर इधर उधर हट गए थे फिर अपने

स्थान पर आ गए। यद्यपि फिर दारा ने कई आक्रमण किए परंतु औरंगजेब के पास तक वह नहीं पहुंच सका, कारण यह कि दूसरी ओर के तोपखाने ने इतनी हानि पहुंचाई और इतना प्रभाव उत्पन्न किया कि इस ओर के सिपाहियों का साहस जाता रहा वरन कुछ सिपाही भाग भी गए। परंतु दारा का वीरत्व देखकर शेष सैनिकों ने मुंह नहीं मोड़ा। वे अपने सेनापति के साथ बड़ी शीघ्रता से बढ़े, यहां तक कि तोपों के निकट पहुंचकर उन्होंने उनसे बंधी हुई जंजीरों को खोल डाला। इसके पश्चात शत्रुओं के खेमों में घुसकर तोप वाले तथा पैदल सैनिकों को एकदम मार भगाया। इस अवसर पर दोनों ओर के सवारों में घमासान लड़ाई हुई और इतने तीर बरसे कि आकाश का दिखाई देना कठिन हो गया। और तो क्या दारा ने तीरों की बौछार करते करते अपना तरकश बिलकुल खाली कर डाला। परंतु इन तीरों से दोनों में से किसी पक्ष की विशेष हानि नहीं हुई क्योंकि 10 में 9 तीर या तो निशाने तक पहुंचते ही नहीं थे या इधर-उधर जाकर गिरते थे। जब तरकश एकदम खाली हो गए तब तलवारों से काम लिया जाने लगा। दोनों ओर के लोग इस प्रकार लड़ते थे कि जितने अधिक सिपाही मारे जाते थे उतनी ही अधिक उत्तेजना फैलती जाती थी। दारा प्रचंड साहस से बार बार अपने सरदारों को पुकार पुकार कर उत्साहित करता और बढ़ावा देता जाता था जिसका यह परिणाम हुआ कि लड़ते लड़ते अंत में शत्रुओं के सवार भी भाग गए।

औरंगजेब इस समय दूर नहीं था। वह हाथी पर बैठा सिपाहियों को लड़ने के लिए ढाढ़स देकर उत्तेजित करने लगा परंतु जब बहुत चेष्टा करने पर भी उसने देखा कि कुछ लाभ नहीं होता, उसके प्रधान सवार दारा को नहीं रोकते हैं वरन भागे जाते हैं और दारा ऊबड़ खाबड़ भूमि की कुछ भी परवाह न करके उसके बचे हुए सैनिकों का भी (जो एक सहस्र के लगभग बल्कि जैसा कि मेरे सुनने में आया था पांच सौ से अधिक नहीं थे) संहार किया चाहता है तब निर्भीक होकर उसने अपने सरदारों का नाम लेकर पुकारना और कहना आरंभ किया कि "बहादुरों खुदा पर भरोसा रखो ? भागने से क्या होगा ? खुदा सब जगह मौजूद है। क्या तुम नहीं जानते कि मुल्के दकन यहां से किस कदर दूर है।" इतना कहकर अपनी दृढ़ता प्रकट करने के लिए कि चाहे कुछ हो हम लड़ाई के मैदान से कदापि नहीं हटेंगे। उसने यह विचित्र आज्ञा दी कि हमारे हाथी के पांवों में लोहे की जंजीर डाल दो जिससे कि वह आगे पीछे न हो सके। यदि उसके सैनिक फिर लड़ने को तैयार न हो जाते तो निस्संदेह ऐसा कर डालता। परंतु अपने स्वामी का ऐसा दृढ़ निश्चय देखकर उनके मन में धैर्य आया और पुनः साहस ने उनका साथ दिया।

इस समय दारा ने औरंगजेब पर छापा मारने का विचार किया परंतु रणक्षेत्र के ऊबड़ खाबड़ होने तथा शत्रु के सवारों के कारण जो अब तक मैदान में और टीलों पर वर्तमान थे (यद्यपि पंक्तिबद्ध नहीं थे) वह यहां तक नहीं पहुंच सका।

दारा सोचता था कि औरंगजेब को मार डाले अथवा कैद किए बिना विजय पाना किसी काम का नहीं। औरंगजेब जब लड़ने योग्य नहीं रहा था अतएव दारा को वास्तव में तुरंत आक्रमण करके उसे अपने वश में कर लेना उचित था परंतु कई कारणों से जिनका उल्लेख मैं अभी करता हूं, उसका ध्यान एक दूसरी ओर चला गया और औरंगजेब सिर पर शीघ्र ही आने वाली आपत्तियों से बच गया।

औरंगजेब की दृढ़ता–दारा औरंगजेब पर आक्रमण का विचार कर रहा था इतने में उसने देखा कि उसकी सेना के बाईं ओर बड़ी हलचल मची हुई है। इतने ही में उसका एक मुसाहिब यह संवाद लाया कि रुस्तमखां और छत्रसाल मारे गए और रामसिंह जी राठौर बड़ी वीरता से धावा करके शत्रुओं की सेना में जा घुसा था घिर गया है। अतएव औरंगजेब पर छापा मारने का विचार त्यागकर उसे अपनी सेना के बाएं भाग की सहायता के लिए जाना पड़ा। उसके वहां जाने पर भयानक मारकाट के पश्चात लड़ाई का रंग फिर पलट गया। शत्रुओं की सेना चारों ओर से पीछे हटा दी गई। परंतु अभी तक उनकी ऐसी हार नहीं हुई थी कि जिससे दारा पूरी तरह निश्चिंत हो जाता। इधर रामसिंह ने बड़ा पराक्रम प्रकट किया। उसने मुरादबख्श को बड़ी वीरता और तेजस्विता से घायल कर डाला। केवल इतना ही नहीं वरन वह अंबारी का रस्सा काटकर उसे हाथी पर से गिरा देने की भी चेष्टा कर रहा था। मुराद घायल हो गया था और चारों ओर से राजपूतों में घिरा हुआ था, इतने पर भी उसने रामसिंह का मनोरथ सफल नहीं होने दिया। वह बड़ा फुर्तीला और दूरदर्शी योद्धा था। उसे जो कष्ट पहुंच रहा था उसकी चिंता न करके उसने अपने सात-आठ वर्ष की उमर के बच्चे को, जो पास बैठा था ढाल की छाया करके बचाया और फिर निशाना साधकर इस फुर्ती से एक तीर मारा कि वीर राजा रामसिंह सर्वदा के लिए इस संसार से विदा हो गया।

दारा को राजा रामसिंह की मृत्यु का बहुत शोक हुआ, परंतु जब उसने देखा कि अपने सरदार के मारे जाते ही समस्त राजपूत योद्धा क्रोध और जोश के साथ मुरादबख्श को घेरे हुए हैं, तब कई विघ्नों के रहते हुए भी स्वयं बढ़कर उस पर आक्रमण करने का विचार किया यद्यपि ऐसी अवस्था में औरंगजेब बचा जाता था और उसको छोड़ देना उचित नहीं था; तो भी दारा मुराद के हाथ आ जाने को, औरंगजेब के पकड़े जाने से कम नहीं समझता था। परंतु उसका ऐसा सोचना व्यर्थ हुआ, उल्टे उसे ही भयानक रूप में पराजित होना पड़ा।

विश्वासघाती सरदार–दाहिनी ओर के सैन्यदल के सरदार का नाम खलील उल्लाहखां था। उसकी अधीनता में 30 सहस्र मुगल थे जो ऐसे शिक्षित थे कि केवल वही औरंगजेब के समस्त सैनिकों को हरा सकते थे। परंतु जिस समय दारा बड़ी वीरता

और साहस से बाईं ओर लड़ रहा था, उस समय इस सरदार ने तनिक भी उसकी सहायता नहीं की। वरन लोगों से यह बहाना कर दिया कि हमारी सेना के लिए यह आज्ञा है कि जब तक विशेष प्रयोजन न हो और आज्ञा न दी जाए तब तक एक पग भी आगे न बढ़ें और एक तीर भी न छोड़ें। किंतु उसका ऐसा बहाना करना विश्वासघात और बेईमानी से भरा हुआ था।

बात यह थी कि कई वर्ष पूर्व दारा शिकोह ने इस सरदार का कुछ अपमान कर डाला था, वह अपमान रूपी आग अब तक इसके हृदय को जला रही थी। अतएव उसने सोचा कि बदला लेने के लिए यह उपयुक्त समय है। परंतु दारा शिकोह की जो हानि उसने अपने अलग रहने में सोची थी वह नहीं हुई क्योंकि दाहिनी ओर के लोगों की सहायता के बिना ही उसने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली। अब इस विश्वासघाती ने एक और चाल चली, अर्थात जब दारा मुरादबख्श के दबाने के अभिप्राय से अपने सैनिकों की सहायता को जा रहा था, तब शीघ्रता से अपने सहायकों सहित आगे बढ़कर इस दुष्ट ने उसे पुकारा और कहा–"हजरत सलामत, अहम्दुलिल्लाह ! हुजूर को बखैर व सलामती बादशाही और फतह मुबारक हो ! लेकिन हुजूर यह तो फरमाएं कि ऐसे खतरनाक मौके पर जब अंबारी के सायबान से कई गोलियां और तीर पार हो चुके हैं इतने बड़े हाथी पर क्यों सवार हैं। अगर खुदा न ख्वास्ता बेशुमार तीरों और गोलियों से कोई जिस्मे-मुकद्दस को छू जाए तो हम लोगों का कहां ठिकाना रहेगा। खुदा के वास्ते जल्द उतरिए और घोड़े पर हो लीजिए। अब क्या रह गया है। सिर्फ इतनी बात बाकी रह गई है कि इन चंद भगोड़ों का ज्यादातर चुस्ती और मुस्तैदी से पीछा किया जाए।"

दारा की पराजय–यदि दारा हाथी पर से उतरने में अपनी हानि समझता, यदि वह सोचता कि इस हाथी ही की कृपा से आज यह कैसे कैसे काम कर सका है–और सैनिकों को उसके दिखाई देते रहने से कितना साहस हुआ है, तो वही अपने पिता के सुविस्तृत राज्य का अधिकारी होता, परंतु राज्य के लोभ में पड़कर उसने खलील उल्लाहखां की बातों का विश्वास किया। थोड़ी देर के बाद जब उसे कुछ संदेह हुआ तब उसने पूछा कि खलील उल्लाहखां कहां है। परंतु अब वह कहां था और कब उसके हाथ आता था ? यद्यपि उस समय दारा ने अनेक गालियां दीं और यह भी कहा कि मैं उसे जीता नहीं छोडूंगा। परंतु उसका यह धमकी देना और क्रोध प्रकट करना एकदम व्यर्थ हुआ। कारण यह कि सिपाहियों ने जब यह देखा कि उनका मालिक हाथी पर नहीं है तब तुरंत उसके मारे जाने का संवाद चारों ओर फैल गया और सारी सेना में हलचल मच गई। सबको किसी प्रकार प्राण रक्षा करने की चिंता पड़ गई। क्षण मात्र में विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया, अर्थात विजयी विजित हुए और विजित विजयी। यह विलक्षणता देखिए कि औरंगजेब के केवल

पांच घंटे हाथी पर चढ़े रहने का यह परिणाम हुआ कि वह भारतवर्ष का बादशाह हो गया। और कई क्षणों के निमित्त हाथी से उतरने का दारा को यह फल मिला कि वह हाथी से क्या उतरा मानो राजासन से गिर पड़ा और अभागे राजकुमारों की श्रेणी में परिगणित हुआ। देखिए मनुष्य कैसा अदूरदर्शी है। एक छोटी-सी बात से इस संसार में कैसे कैसे बड़े बड़े परिवर्तन हो जाते हैं।

बड़ी बड़ी सेनाएं बहुत बड़े बड़े काम करती हैं, इसमें संदेह नहीं परंतु जब घबराहट में पड़कर वे नियम-विरुद्ध हो जाती हैं तब उनका उनकी पूर्व अवस्था में लाना बहुत कठिन होता है। यदि कोई बड़ी नदी उछलकर किनारों के बाहर हो निकले तो जैसे उसके फैले हुए पानी को बांधना असंभव होगा वैसे ही किसी बड़ी सेना के नियमविरुद्ध होकर तितर-बितर हो जाने पर उसे संभालना और नियमपूर्वक ठीक करना असाध्य होता है। अतएव जब मैं कुनियम से चलने वाले इन सैनिकों को जो भेड़-बकरियों के झुंडों के समान चलते हैं देखता हूं तो सदा मेरे मन में यही विचार उत्पन्न होता है कि हमारे यहां के (अर्थात फ्रांस देश के) केवल 25 सहस्र लड़ने-भिड़ने वाले सुशिक्षित सिपाही प्रिंस कांडी अथवा मारशल टुरीन की अधीनता में रहकर भारतवर्ष के ऐसे सैनिकों पर (चाहे वे संख्या में कितने ही हों) विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब मैं पुस्तकों में पढ़ता हूं कि ग्रीस देश के दस सहस्र सिपाहियों ने कैसी वीरता प्रकट की थी और मकदूनियां के पचास हजार सैनिकों ने जो महान सिकंदर के साथ थे ईरान के बादशाह दारा के छह सात लाख आदमियों को किस भांति हराया था। यदि यह सच हो कि दारा की सेना भीड़ के सिवा वास्तव में इतनी ही थी तो नियम विरुद्ध और सुनियम गठित सेनाओं की दशा का विचार करने के बाद मुझे इन ऐतिहासिक कथाओं पर तनिक भी आश्चर्य नहीं होता। मेरी समझ में फ्रांसिसी सिपाही अपने साहस से शत्रुओं का पहला आक्रमण रोककर प्रत्येक हिंदुस्तानी सेना को घबराहट में डाल सकते हैं अथवा सिकंदर की भांति शत्रुदल की किसी विशेष पंक्ति पर ही अपना संपूर्ण बल डालकर शेष सेना में भय और हलचल उत्पन्न कर सकते हैं।

औरंगजेब जो अपना मतलब निकालने के लिए नीच से नीच काम कर डालने को सदा तैयार रहता था, वह आकस्मिक और ईश्वरी-विजय पाकर तथा यह समझ कर कि अब समय उपयुक्त आया है अपनी चाल के जाल फैलाने में प्रवृत्त हुआ। तुरंत ही विश्वासघाती खलील उल्लाहखां भी उससे आ मिला। उसके आते ही इसने उसकी खूब प्रशंसा की, और अनेक आशाएं दिखाईं, परंतु जो कुछ प्रतिज्ञा की वह अपनी ओर से नहीं, किंतु अपने भाई मुराद की ओर से। और इसके उपरांत वह स्वयं उसे मुराद के निकट ले गया। उसने भी समय के अनुसार बड़ी प्रसन्नता से इसका स्वागत किया। औरंगजेब ने दिखाने के लिए खलील उल्लाहखां से कहा कि "जनाब सिर्फ हजरत ही (अर्थात मुराद) तख्त नशीनी के लायक है और यह फतह इन्हीं की काबलियत और जआदत से हासिल हुई है।"

औरंगजेब की नीति

इधर तो औरंगजेब ऐसी प्रीतियुक्त बातें कहता था, उधर रातदिन राज दरबार के उमरा को पत्र लिख लिखकर धीरे धीरे अपने पक्ष में करता था। इन दिनों इसका मामू शाइस्तखां भी इसके निमित्त बहुत कुछ उद्योग कर रहा था। उसकी सहायता से इसका बहुत लाभ भी हुआ क्योंकि शाइस्तखां एक चतुर, बुद्धिमान और शक्तिशाली पुरुष था। सारे भारतवर्ष में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह बहुत सीधी, मीठी और प्रभावशालिनी भाषा में पत्र लिखकर तथा बातें करके बड़े बड़े काम निकाल सकता है। यह भी कहा जाता है कि दारा ने किसी समय उसके साथ अनुचित बरताव किया था जिसके कारण उससे इसको बहुत घृणा हो गई थी और वह उस अपमान का बदला लेने के लिए अवसर देख रहा था। सो इस अवसर को उसने उपयुक्त समझा। इस ओर राज्य का विकट लोभी होने पर भी औरंगजेब लोगों को दिखावे में ऐसा बना रहता कि मानो इस खटपट में उसका कुछ स्वार्थ ही नहीं है। जो काम होते, मुराद के नाम से होते। लोगों को जो आशाएं दी जातीं अथवा लोगों से प्रतिज्ञाएं की जातीं वे मुरादबख्श के नाम से की जातीं। तात्पर्य यह कि मुराद ही की आज्ञा मानी जाती और वही भविष्य में बादशाह समझा जाता। औरंगजेब अपने बरतावों से अपने को उसका एक सरदार और सामंत प्रकट करता, यह भाव दिखाता कि राज्य के खटपट में पड़ने की उसकी कदापि इच्छा नहीं है वरन संन्यासियों की भांति पवित्रता और शांति से वह अपने जीवन का अंत कर देना चाहता है।

इस समय दारा भय और निराशा के समुद्र में डूब रहा था। आगरे तो वह चला गया परंतु इस कारण से कि बादशाह के ये वाक्य, "खैर बेटा तुमने अपनी मर्जी का काम किया, खुदा तुमको इसमें सुर्खरू और कामयाब करे। लेकिन याद रखो कि अगर लड़ाई बिगड़ गई तो आकर मुझे क्या मुंह दिखाओगे" अभी तक उसे याद थे। वह पिता के सामने नहीं जा सका। पर शाहजहां ने इतना सुनते ही कि दारा यहां आया है एक ख्वाजासरा के द्वारा उसके आश्वासन के लिए यह संदेशा कहला भेजा कि हम तुमको अब भी वैसा ही चाहते हैं और तुम्हारी दुरावस्था का हमको बहुत शोक है। बल्कि उसने यह भी लिख भेजा कि निराश होने का कोई कारण नहीं है क्योंकि सुलेमान शिकोह की सेना अभी तक ज्यों की त्यों सुंदर अवस्था में वर्तमान है। हमारी

राय है कि तुम अभी देहली चले जाओ। वहां के सूबेदार को आज्ञापत्र भेज दिया गया है वह तुमको बादशाही अस्तबल से एक सहस्र घोड़े तथा हाथी देगा और धन से भी तुम्हारी सहायता करेगा। तुमको आगरे से दूर न जाना चाहिए बल्कि ऐसी जगह ठहरना चाहिए जहां हमारे पत्र तुमको शीघ्र मिलते रहें। हमको अब भी आशा है कि हम औरंगजेब को वश में कर सकेंगे वरन दंड दे सकेंगे। शाहजहां ने दारा के निकट ऐसा ही संदेश कहला भेजा, पर वह ऐसा शोकग्रस्त और निराश हो गया था कि इन प्रीति-पूर्ण बातों का उससे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना। कुछ काल पश्चात उसने बहन बेगम साहब के पास कई सूचनाएं भेजीं और फिर आधी रात के समय अपनी स्त्री, पुत्रियों, छोटे पुत्र सिफर शिकोह और तीन चार सौ आदमियों के साथ वह देहली की ओर चल दिया। पाठक महाशय, इसको तो इसी दुखद स्थिति में देहली की ओर बढ़ने दीजिए। आइए इधर हम लोग देखें कि औरंगजेब ने आगरे में पहुंच कर किस नीति, उपाय और जोड़-तोड़ से काम लिया।

औरंगजेब ने आगरे में पहुंचते ही सुलेमान शिकोह की सेना में फूट का बीज बोया और कई सरदारों को अनेक युक्तियों से अपनी ओर मिलाकर दारा की आशाओं का एक ही बार अंत कर दिया। राजा जयसिंह और दिलेरखां को जो उसकी सेना के सबसे बड़े अफसर थे उसने लिखा कि "दारा तो बिलकुल तबाह हो गया और वह बड़ा लश्कर भी जिसका उसे बहुत भरोसा था शिकस्त फास खाकर हमारे कब्जे में आ गया। अब वह ऐसी बेसरो सामानी से भागा जाता है कि सवारों का एक रिसाला तक उसके पास नहीं है। उम्मीद है कि हम बहुत जल्द उसे गिरफ्तार कर लेंगे। और हजरत (शाहजहां) इस कदर अलील हैं कि अब सिर्फ चंद रोज के मेहमान रह गए हैं। इसलिए इस हालत में अगर तुम हमारा मुकाबला करोगे तो नतीजा बजुज खराबी और हलाकत के कुछ न होगा। इसके सिवा इस अबतर हालत में दारा शिकोह की तरफदारी करना निहायत ही नादानी है। तुम्हारे हक में अब यही बेहतर है कि हमारे पास हाजिर हो जाओ और सुलेमान शिकोह को जो ब-आसानी गिरफ्तार हो सकता है पकड़कर अपने साथ लेते आओ।"

जयसिंह का उपदेश

जयसिंह कुछ समय तक चिंता करता रहा कि अब क्या करना चाहिए। शाहजहां और दारा का उसे अभी तक भय था और वह सोचता था कि राजघराने के एक कुमार पर इस प्रकार हाथ उठाने का परिणाम अच्छा नहीं होगा। राजकुमार के कैद होने का अपराध अवश्य दंडनीय है और संभव है वह दंड औरंगजेब की ओर से मिले। सुलेमान शिकोह के भी बल, पराक्रम और साहस से वह परिचित था और

यह बात भी उसे भली भांति मालूम थी कि वह प्राण दे देने को तैयार हो जाएगा परंतु पराधीनता कभी स्वीकार नहीं करेगा।

अंत में अपने मित्र दिलेरखां से सलाह करके और परस्पर किसी विशेष बात के लिए शपथ लेकर जयसिंह ने यह निश्चय किया कि वह सुलेमान शिकोह के खेमे में जाए, औरंगजेब के पत्र दिखाकर उसे सावधान कर दे और अपना विचार उस पर साफ साफ प्रकट कर दे। निदान ऐसा ही किया गया। राजा जयसिंह ने राजकुमार के निकट जाकर कहा कि ''राजकुमार, जिस भयप्रद-अवस्था में आप पड़े हैं मैं उचित नहीं समझता कि उसे आप से छिपा रखूं। जो स्थिति पहले थी उसमें ऐसा परिवर्तन हुआ है कि इस समय आप को न तो दिलेरखां पर भरोसा करना चाहिए न दाऊदखां पर, न सेना ही पर। यदि आप इस समय अपने पिता की सहायता करने की इच्छा से जरा भी आगे बढ़ेंगे तो अवश्य दुर्दशा में पड़ जाएंगे। अतएव उचित है कि श्रीनगर (गढ़वाल) के पहाड़ों की ओर चले जाएं। वहां के राजा के यहां आपको आश्रय भी मिलेगा और दुर्गम होने के कारण औरंगजेब के उस स्थान तक पहुंचने का भय भी नहीं है। वहां जाकर आप यहां की घटनाओं पर सदा दृष्टि रखें और जब सुयोग मिले तब तुरंत चले आएं।

सुलेमान शिकोह की अवस्था

इतना सुनते ही राजकुमार समझ गया कि अब इस जगह कोई हितैषी नहीं दीख पड़ता। जयसिंह व सेना किसी पर अपना अधिकार नहीं रहा। अतएव यह सोचकर कि अब यहां ठहरना अपने को मृत्यु के मुख में डालना है, इससे सैन्यादि को वहीं छोड़ पहाड़ों की यात्रा की। यही सच्चे हितैपियों अधिकांश मनसबदारों, सैयदों और कितने ऐसे लोगों ने जिनकी अवश्य ही जाने की इच्छा थी इस यात्रा में उसका साथ दिया। शेष सेना जयसिंह और दिलेरखां के अधीन रही। इन दोनों ने उसके जाने से पहले बहुत कुछ सामान उससे ले लिया। इतने पर भी उनको संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने उस बेचारे का बाकी माल असबाब लूट ले आने के लिए भी सिपाही भेजे। इस लूट में मुहरों से लदा एक हाथी भी था जिसके निकल जाने से स्वार्थी मनुष्य राजकुमार का साथ छोड़कर भाग आए। आगे बढ़ने पर कुछ देहाती ग्रामीणों ने और भी लूट-खसोट कर दुखित किया और कुछ लोगों को मारा भी। इतना होने पर भी जैसे बन पड़ा वैसे सुलेमान शिकोह अपनी बेगम और बाल बच्चों को साथ में लिए हुए किसी प्रकार श्रीनगर पहुंच गया। वहां के राजा ने इसकी प्रतिष्ठा के अनुसार इसका स्वागत किया और कहा कि जब तक आप इस प्रदेश में हैं मेरी समस्त सेना आपकी सहायता के लिए तैयार है। यहां आपको किसी प्रकार की चिंता या भय न करना चाहिए। राजकुमार को इस बात से बहुत ढाढ़स हुआ। इसे यहां छोड़कर अब हम औरंगजेब की ओर ध्यान देते हैं।

दुर्ग पर अधिकार—समूगढ़ की लड़ाई के तीन चार दिन बाद औरंगजेब और मुरादबख्श आगरे से तीन मील के अंतर पर एक बाग में आ पहुंचे। वहां से औरंगजेब ने एक विश्वस्त चतुर नीति कुशल और धूर्त व्यक्ति को शाहजहां के निकट भेजा। इसने वहां पहुंच कर औरंगजेब की ओर से पितृ भक्ति और प्रीति का वर्णन करने के पश्चात कहा कि "दारा शिकोह की कजराई और बेजा खयालात के बायस ये जो वाकयात पेश आए उनके लिए औरंगजेब को बहुत ही रंज और अफसोस है। हुजूर की तबियत अब अच्छी होती जाती है इसके लिए हुजूर की खिदमत में मुबारकबाद अर्ज करने और महज इस गरज से कि जो कुछ इर्शाद हो उसकी तामील की जाए वह आगरे में आया है।"

शाहजहां इन बातों का अभिप्राय समझता था। यद्यपि औरंगजेब के भेजे हुए आदमी को उसने यह उत्तर देकर लौटा दिया कि "उसकी सआदतमंदी और फरमाबरदारी से हम निहायत राजी और खुश हैं, परंतु उसकी इस इच्छा और दाम्भिकता से वह अनजान नहीं है।" उस आदमी के चले जाने के पश्चात औरंगजेब को अपने बस में करने की इच्छा से उसने राज्य के सरदारों को बुलवाया और अपनी चतुराई तथा बुद्धि के जाल फैलाने का विचार किया। यद्यपि अभी तक इस बात का अवसर था कि वह खुले आम उसे बागी प्रमाणित कर देता, परंतु ऐसा न करके उसने औरंगजेब जैसे धूर्त व्यक्ति को फंसाने के लिए केवल अपनी बुद्धि से काम लिया। ऐसी अवस्था में उस जाल में स्वयं उसका फंस जाना जिसे उसने अपने पुत्र के लिए बिछाया था, कुछ आश्चर्य की बात नहीं। अस्तु शाहजहां ने एक विश्वासी ख्वाजासरा को औरंगजेब के पास एक पत्र के साथ भेजा जिसमें यह लिखा था कि "बेशक दारा शिकोह ने जो कुछ किया वह बेसमझी और नालायकी से पुर था। पर तुम तो हर इब्तदाही से शफक्कत रखते हो। बस तुमको हमारे पास जल्द आना चाहिए ताकि तुम्हारे मशविरे से उन उमूर का इंतजाम किया जाए जो इस गड़बड़ के बायस खराब और अबतर पड़े हैं।" परंतु औरंगजेब ने इस पत्र पर विश्वास करके किले में चले जाने का साहस नहीं किया क्योंकि वह जानता था कि बेगम साहब किसी समय बादशाह से पृथक नहीं होतीं और उनका इतना अधिकार है कि वह जो कुछ चाहती हैं वही होता है और कदाचित यह चाह भी उन्हीं की है। उसे यह भी संदेह हुआ कि बेगम साहब ने अस्त्र शस्त्र से सज्जित कुछ ऐसी बद शालिनी और बड़े आकार वाली तातारी बांदियां (जो महल में पहरा देने के लिए नियुक्त की जाती हैं) नियत कर रखी हैं कि ज्यों ही वह किले में जाए त्यों ही उस पर टूट पड़ें। अतएव यद्यपि उसने अनेक बार बादशाह से मिलने की प्रतिज्ञा की और कहलाया कि मैं अमुक दिन उपस्थित होऊंगा. परंतु किसी न किसी बहाने से वह बराबर टालता ही रहा। इधर निरंतर उद्योग करता रहा यहां तक कि बड़े बड़े प्रतिष्ठित सरदारों के मन का हाल उसने मालूम कर लिया। जब सब बातों का इच्छानुसार प्रबंध हो गया

तब एक दिन सहसा उसके पुत्र मुहम्मद सुलतान ने जाकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया जिससे सब लोग हक्के बक्के रह गए। उस उत्साही और साहसी युवक ने कुछ सिपाही पहले ही से दुर्ग के आस पास लगा रखे थे। निदान इस बहाने से कि बादशाह के पास कुछ संदेशा लेकर जाता हूं वह सहसा उन सिपाहियों पर झपट पड़ा जो फाटक पर नियुक्त थे। इस समय इसके जो सिपाही इधर उधर छिपे थे झटपट आ पहुंचे और दुर्ग वालों को, जिन्हें इस होने वाली आकस्मिक घटना का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था, हराकर उन्होंने वहां अपना अधिकार कर लिया।

जिसके पकड़ने के लिए वह इतने दिनों से घात लगा रहा था अब स्वयं उसका कैदी बन गया। यह देखकर शाहजहां जितना घबराया और भयभीत हुआ होगा वह स्वयं प्रकट है। कहते हैं कि अभागे बादशाह ने कैद होते ही मुहम्मद सुलतान के पास यह संदेश भेजा कि ''मैं तुमसे तख्त की कसम खाकर कहता हूं और कुरान मजीद मेरे तुम्हारे दरम्यान है कि अगर तुम इस वक्त ईमानदारी बरतोगे तो मैं तुम्हीं को बादशाह बना दूंगा। इस मौके को गनीमत जानकर हाथ से न जाने दो, फौरन चले आओ और दादा को कैद से छुड़ा लो। याद रखो कि इससे सबाबे-आखिरत के अलावे दुनिया में भी तुमको एक दायमी नेकनामी हासिल रहेगी।''

लोगों का कथन है कि यदि मुहम्मद सुलतान जरा साहस करके शाहजहां का कहना मान लेता तो कदाचित सब कुछ हो जाता क्योंकि अब तक भी लोगों के हृदय में बादशाह की भक्ति और प्रतिष्ठा बहुत कुछ वाहवा की थी। यदि राजकुमार उसे दुर्ग के बाहर निकाल देता और वृद्ध बादशाह कुछ सेना लेकर स्वयं औरंगजेब पर आक्रमण करता तो संभव था कि सब सैनिक आज्ञा मानकर उसकी सहायता करते, राज्य के बड़े बड़े लोग सच्ची प्रभु भक्ति दिखाते और औरंगजेब भी पिता के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र में जाने का साहस न करता, बल्कि उसे संदेह होता कि कदाचित ऐसा करने से सब लोग मुझसे अलग हो जाएंगे और स्वयं मुरादबख्श साथ छोड़ देगा।

सब लोगों का इस विषय में भी एक मत था कि समूगढ़ की लड़ाई और दारा के भागने के पश्चात जैसी भूल शाहजहां से हुई थी वैसी ही भूल इस समय मुहम्मद सुलतान से हुई। अब इस कारण कि मैंने यह बात उठाई है यह भी कह देना उचित है कि कुछ राजनीतिज्ञों का यह मत भी था कि दारा की पराजय के पश्चात बादशाह ने महल में ही बैठे रहकर छल से औरंगजेब को अपने वश में करना विचार कर बुद्धिमानी की। यह तो एक साधारण बात है कि परिणाम देखकर लोग किसी उपाय की प्रशंसा या निंदा करने लगते हैं। चाहे उपाय कैसा ही कच्चा और निर्बल रहा हो जब उसका परिणाम भला हो जाता है तब लोग कहने लगते हैं कि देखो अमुक ने कैसा अच्छा ढंग सोचा कि जिसका यह शुभ फल मिला। अतः शाहजहां को प्रीति और शुभेच्छा

दिखाकर औरंगजेब को अपने वश में कर लेना कुछ असंभव नहीं था। यदि ऐसा हो जाता तो उसकी बुद्धि और समझ की लोग वैसे ही प्रशंसा करते जैसे इस समय उस पर यह दोष लगाते थे कि यह बुद्धिहीन बुड्ढा एक ऐसी स्त्री (बेगम साहब) के कहने पर चलने से इस दशा को पहुंचा जो केवल ईर्ष्या और डाह के आवेश में अंधी हो रही थी और यह समझे बैठी थी कि वह चतुर काक (औरंगजेब) जब किले में हमसे मिलने आएगा तब उस पक्षी की भांति जो स्वयं पिंजरे में आ जाता है फंस जाएगा। अस्तु अब मुहम्मद सुलतान को देखिए कि उसके विषय में यहां के राजपुरुष कहते थे कि राजगद्दी उसे अनायास मिलती थी पर उससे वह ली नहीं गई। यदि वह शाहजहां का कहना मान लेता तो एक पंथ दो काज के अनुसार उसे राजगद्दी तो मिलती ही ऊपर से दादा को कैद से छुड़ाने की प्रशंसा भी प्राप्त होती। ऐसा न होता (जैसा हुआ) कि ग्वालियर के दुर्ग में कैदी की भांति उसे अपने दिन बिताने पड़ते।

शाहजहां का कैद होना—यद्यपि कुछ लोग यह भी अनुमान करते हैं कि सुलेमान शिकोह ने पितृ धर्म पर दृष्टि रखकर शाहजहां की प्रार्थना स्वीकार नहीं की परंतु संभव ऐसा जान पड़ता है कि उसको बदशाह की प्रतिज्ञा का विश्वास नहीं हुआ। उसने यह भी सोचा कि ऐसे चतुर और प्रवीण मनुष्य से जैसा कि औरंगजेब है लड़ाई मोल लेना एकदम व्यर्थ और सरासर भयंकर है। अस्तु राजकुमार का वास्तविक विचार चाहे कुछ भी रहा हो उसने शाहजहां की बात नहीं मानी और वह बहाना करके उसके निकट जाना भी अस्वीकार कर दिया कि मुझे औरंगजेब की तरफ से हुजूर में हाजिर होने की इजाजत नहीं है बल्कि ताकीदी हुक्म यह है कि किले के कुल दरवाजों की कुंजियां खुद अपनी सुपुर्दगी में लेकर मैं यहां से बहुत जल्द वापस जाऊं क्योंकि वे हुजूर की कदमबोसी के निहायत मुश्ताक हो रहे हैं और सिर्फ इतनी ही देर है कि इस तरफ से इतमीनान हो जाए तो फौरन जाएं। अब दो दिन तक तो शाहजहां कुंजियों के देने में आगा पीछा करता रहा किंतु जब उसने देखा कि सब लोग उसे छोड़कर चले जा रहे हैं बल्कि थोड़े से जो उसके निज के संरक्षक थे वे भी चले गए और बचाव की कुछ आशा न रही तब विवश होकर उसने दुर्ग की तालियां उसे दे दीं और कहा कि अब तो औरंगजेब को जरूर ही आना चाहिए और समझदारी भी इसी में है कि वह आकर जल्द हमसे मिले क्योंकि सल्तनत के बाज जरूरी इसरार हम उसको समझाना चाहते हैं। परंतु वह अब धूर्तता और चतुराई से नहीं चूका। स्वयं न आकर उसने तुरंत एतबारखां नामक अपने एक विश्वासी अनुचर को किलेदार नियुक्त किया। जिसने यहां पहुंचते ही सब बेगमों तथा बड़ी राजकुमारी बेगम साहब और स्वयं बादशाह को कैद कर लिया, बल्कि किले के कई द्वार एकदम बंद करा दिए। शाहजहां और उसके शुभचिंतकों का बाहर आना-जाना तो कहां, उनकी बातचीत और पत्र-व्यवहार तक बंद हो गए।

शाहजहां को किलेदार के पास बिना सूचना भेजे अपने कमरे से बाहर निकलने तक का अधिकार न रहा।

इस अवसर पर औरंगजेब ने पिता को एक पत्र लिखा जो बंद किए जाने से पहले जान-बूझकर सब लोगों को सुनाया गया। उस पत्र में यह बात लिखी थी, "यह बेअदबी मुझसे इसलिए सरजद हुई है कि हुजूर जाहिरा मेरी निस्बत इजहार उल्फत वह मेहरबानी फरमाते थे और यह इर्शाद होता था कि दारा शिकोह के तौर व तरीके से हम सख्त नाराज हैं। मगर मुझे पुख्ता खबर मिली है कि हुजूर ने अशर्फियों से लदे हुए दो हाथी उसके पास भेजे हैं जिनसे वह नई फौज तैयार कर लेगा और इस खूंरेज लड़ाई को तवालत देगा। बस हुजूर ही गौर फरमाएं कि मुझसे इन हरकतों के जो फर्जंदों के मामूली तरीके के खिलाफ और सख्त मालूम होती हैं; सरजद हो जाने का वायस क्या दारा शिकोह की खुदसरी नहीं है ? इन बातों की सबब हुजूर कैद किए गए और मैं फर्जंदाना खिदमत बजा लाने के लिए इतनी देर तक हुजूर की खिदमत में हाजिर नहीं हो सका क्या वही नहीं है ? मैं हुजूर से बकमाल माजरत इल्तिजा करता हूं कि मेरी इस हरकत की ताज्जुब अंगेज जाहिरी सूरत पर ख्याल न फरमा कर सिर्फ चंद रोज के लिए सब्र के साथ इसे बर्दाश्त करें। फिर ज्योंही दारा शिकोह चैन व अमन में खललअंदाज होने और हुजूर को और मुझको तकलीफ पहुंचाने के काबिल न रहेगा त्योंही मैं खुद ब खुद किले की तरफ दौड़ा चला आऊंगा और हुजूर के कैदखाने का दरवाजा अपने हाथों से खोलकर हाथ जोड़कर अर्ज करूंगा कि अब कुछ रोक टोक नहीं है।"

मैंने सुना कि शाहजहां ने वास्तव में अशर्फियों से लदे हुए हाथी उसी रात को दारा शिकोह के पास भेजे थे जबकि उसने देहली की ओर प्रस्थान किया था और इस बात की सूचना रोशनआरा बेगम ने औरंगजेब को दी थी। यह रहस्य उसी ने बतलाया था कि यदि दुर्ग में आओगे तो तातारी बांदियां तुम पर आक्रमण करेंगी। यह भी कहा जाता है कि बादशाह ने दारा को जो पत्र लिखे थे उनमें से कई पत्र किसी प्रकार औरंगजेब के हाथ लग गए थे।

तथापि बहुत से बुद्धिमान और सूक्ष्मदर्शी लोग इन बातों पर विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं कि यह पत्र जिनको (जैसा कि कहा जाता है) औरंगजेब ने किसी प्रकार पा लिया और सर्वसाधारण को सुनाया था बिल्कुल झूठे और बनावटी थे। औरंगजेब ने केवल इसलिए इनको प्रकट किया था कि जिसमें शाहजहां के शुभचिंतक और सहायकगण जो उसके अनुचित व्यवहारों से असंतुष्ट हो रहे थे ठंडे पड़ जाएं। अस्तु सत्य बात चाहे कुछ भी हो इस बात का निश्चय है कि जब बादशाह इस कठोर रीति से कैद हो गया तब प्रायः सभी उमरा औरंगजेब और मुराद के दरबार में सलाम करने के लिए उपस्थित हुए। शोक ! उस बेचारे वृद्ध और अत्याचार पीड़ित बादशाह के पक्ष में किसी अमीर व सरदार ने हाथ पांव नहीं

हिलाए और किसी के भी फूटे मुंह से कोई बात न निकली। यह उमरा उन भयंकर अत्याचारियों के आगे सिर झुकाने जाते थे, जिन्होंने उसके स्वामी और पालक के साथ ऐसा कठोर बरताव किया था। विशेष शोक इस बात का है कि वही लोग ऐसा करते थे जो न केवल बादशाह के यहां पलकर प्रतिष्ठित और धनवान हुए थे वरन जिनको शाहजहां ने एकदम गुलामी से मुक्त कर उच्चपदों पर नियुक्त किया था। हां दानिशमंदखां आदि कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने औरंगजेब वा बादशाह किसी का पक्षपात नहीं किया पर ऐसों की संख्या बहुत ही कम थी। औरंगजेब के ही आगे सिर झुकाने वाले प्रायः सब थे।

इतने पर भी जब मैं इस दशा का विचार करता हूं कि भारतवर्ष के उमरा फ्रांस आदि यूरोपीय देशों की भांति किसी संपत्ति के स्थायी मालिक नहीं समझे जाते वरन जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं कि दरबारियों को जो भूमि दी जाती है वह केवल पेंशन की भांति और उनके निर्वाह के लिए, और जो कुछ उनको दिया जाता है उसका बढ़ाना, घटाना या उसे वापस कर लेना बादशाह की इच्छा पर निर्भर रहता है। तब मैं इन कृतघ्न उमरा की इतनी निंदा नहीं करता क्योंकि जब इनसे इनकी भूमि का अधिकार ले लिया जाता अथवा जो कुछ इनको वार्षिक मिलता है वह बंद कर दिया जाता है तब ये बड़ी दुर्वस्था में आ पड़ते हैं यहां तक कि थोड़ा-सा ऋण भी इनको उस समय कहीं से नहीं मिल सकता।

अस्तु ! पिता की ओर से निश्चिंत होकर दोनों युवराजों ने दरबारियों की भेंट स्वीकार की। अपने मामू शाइस्तखां को आगरे की सूबेदारी का पद सौंपा और राजकोष से व्यय का प्रबंध करके दारा की खोज में आगरे से बाहर प्रस्थान किया।

मुराद का कैद होना–जिस दिन यह लोग सैन्य सहित आगरे से कूच करने को थे उस दिन मुराद के मित्रों और विशेषकर उनके हितैषी ख्वाजाशाह अब्बास ने उसे आगरे और देहली के पड़ोस में रहने की सलाह दी। शाह अब्बास ने उससे कहा कि "आपको मय अपने लश्कर के आगरे या देहली से दूर नहीं जाना चाहिए। औरंगजेब की ये बड़े अदब आदाब की बातें जो बेहद मीठी मालूम होती हैं फरेब और दगाबाजी का निशान हैं। फिर जब कि हर खासो आम बल्कि खुद वह भी इस बात को तसलीम करता है कि अब बादशाह आप हैं तो यह क्योंकर मुनासिब है कि आप आगरे और देहली के नजदीक न रहकर कहीं दूर चले जाएं ? बस मेरी राय में आप उसी को दारा शिकोह का पीछा करने के लिए जाने दें।" यदि मुराद इस बुद्धिमानी से भरे हुए उपदेश पर ध्यान देता तो औरंगजेब के आगे अनेक कठिनाइयां उपस्थित होतीं। परंतु उसे तो उन व्यर्थ प्रतिज्ञाओं और कसमों पर पूरा भरोसा था जो बीच में कुरान रखकर बहुत बार परस्पर की गई थीं। आखिर दोनों ने आगरा परित्याग कर देहली की ओर का रास्ता लिया।

जिस समय वे मथुरा में पहुंचे (जो कि आगरे से तीस मील पर यमुना के किनारे है) तो मुराद के मित्रों ने जो इस बीच में बहुत कुछ देख और सुन चुके थे विवश होकर परस्पर यह सलाह की कि एक बार फिर उसे समझाना चाहिए, आगे मानना या न मानना उसके अधीन है। निदान उसके पास जाकर उन्होंने कहा कि हमको विश्वसनीय ढंग से विदित हुआ है कि औरंगजेब की वास्तव में कुछ बुरी इच्छा है और किसी भयंकर कार्य के कर डालने के लिए वह बहुत कुछ उपाय कर चुका है। अतएव उससे मिलने के लिए खास उसकी मंडली में जाना उचित नहीं है। विशेषकर आज की रात तो कदापि न जाइए। इस आपत्ति के टालने का सबसे सहज उपाय यह है कि शरीर के अस्वस्थ होने का बहाना कर दीजिए। यह सुनकर जैसा कि नियम है वह स्वयं कुछ आदमियों के साथ आपके पास चला आएगा।

मुराद के हितैषियों ने उसे इस प्रकार की बातें समझाईं। पर इन बातों का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ, उनके निवेदन पर उसने जरा भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि उस समय वह एक ऐसी दशा में था कि मानो किसी ने उस पर जादू कर दिया हो। अपने शुभचिंतक मित्रों का उपदेश न मानकर उसने उसी रात को औरंगजेब के कैंप में जाकर भोजन करने का न्यौता स्वीकार कर लिया। इधर औरंगजेब को पक्का विश्वास था कि मुराद अवश्य निमंत्रण के अनुसार आएगा। अतः उसने मीरखां तथा तीन चार अन्य अभिन्न मंत्रियों से सलाह करके निश्चय कर लिया था कि किस प्रकार मुराद को विवश करना चाहिए।

जब सरल हृदय मुराद वहां पहुंचा तब औरंगजेब ने और दिनों की अपेक्षा अधिक आदर सत्कार से उसका स्वागत किया, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और अपने हाथों से उसके मुख पर की गर्द तथा पसीना पोंछा। भोजन के समय वह हंसी मजाक और आनंद की अनेक बातें करता रहा। इससे निश्चिंत होने के पश्चात जब काबुली और सीराजी मदिरा के पात्र उपस्थित किए गए तब धीरे से उठ और मुस्करा कर उसने मुराद से कहा—"हजरत को मालूम है कि मैं अपने मजहबी ख्यालात के वायस इस ऐशो निशात की सुहबत में मौजूद नहीं रह सकता, ताहम वे लोग जो इस पुर लुफ्त जलसे के शरीक हैं और वीर साहब व दीगर मुसाहिब आपकी खिदमत गुजारी के लिए हाजिर रहेंगे।" एक तो मुराद स्वयं मदिरा का प्रेमी था तिस पर ऐसी आनंदनीय मंडली और मद्य के सुंदर पात्र देखकर उसे और भी उत्साह हुआ। उसने यहां तक मदिरा पी, यहां तक पी कि एकदम बेहोश होकर लेट गया। औरंगजेब की भी यही इच्छा थी। उसी समय उसके नौकर इस बहाने से बिदा कर दिए गए कि अब आप जाएं, इनको यहीं आराम से सोने दें। इसके पश्चात मीरखां ने उसके सब अस्त्र शस्त्र (तलवार, खंजर इत्यादि अपने अधिकार में कर लिए। थोड़ी देर के बाद औरंगजेब भी उसे इस अनुचित नींद से जगाने के बहाने आया और सब पिछला आदर सम्मान भूलकर पहले तो उसने कई ठोकरें मारीं और जब उसने कुछ

आंखें खोलकर देखा तब वह तिरस्कारपूर्वक कठोर शब्दों में बोला, ''बड़ी शर्म की बात है कि तुम बादशाह होकर ऐसे गाफिल और बेखबर हो जाओ। भला दुनिया के लोग तुमको बल्कि मुझको भी क्या कहेंगे ?'' इतना उससे कहकर उसने अपने आदमियों से कहा, ''इस बदमस्त के हाथ पांव बांधकर खिलवत खाने में ले जाओ ताकि नशा उतरने तक यह इस बेशर्मी का सोना वहीं सोए।'' इस आज्ञा का तुरंत पालन हुआ, उसी क्षण पांच छह मनुष्यों ने जो अस्त्र शस्त्र से सज्जित थे उसे आ दबाया। उस समय यद्यपि मुराद बहुत चिल्लाया, बहुत बल प्रयोग कर उसने अपना बचाव करना चाहा, पर उसके पांवों में बेड़ियां और हाथों में हथकड़ियां डाल ही दी गई और लोग उसे अंदर ले ही गए। यद्यपि ये बात बहुत ही गुप्त रीति से की गई थी तथापि मुरादबख्श के उन सेवकों पर प्रकट हुए बिना नहीं रह सकती थी जो बहाने से बाहर भेज दिए गए थे। जब उनके कानों तक इसके चिल्लाने का शब्द पहुंचा तब उन्होंने कोलाहल मचाना आरंभ किया और भीतर घुसकर बलपूर्वक उसे छुड़ा ले जाना चाहा। परंतु उन्हीं के दल के मीर आतिशकुलीखां ने जिसको औरंगजेब ने कुछ देकर पहले ही से अपने वश में कर रखा था उनको समझा और धमका कर शांत कर दिया। उधर सेना में यह संवाद पहुंचते ही सब सिपाहियों के मन में संदेह हुआ कि औरंगजेब जब इतना कार्य कर चुका तो कहीं वह सहसा चढ़ाई न कर दे। उनका संदेह मिटाने के लिए कुछ लोग रात ही को भेज दिए गए जिन्होंने यह प्रसिद्ध कर दिया कि औरंगजेब के डेरे में जो यह घटना हुई है वह कुछ बड़ी बात नहीं है, क्योंकि हम लोग भी वहीं वर्तमान थे। बात यह कि मुराद बहुत मदिरा पीकर अचेत हो गया है और नशे में सबके प्रति अनुचित शब्दों का व्यवहार करता है। ऐसा कोई व्यक्ति वहां नहीं था जिसको उसने गालियां न दी हों यहां तक कि औरंगजेब के विषय में भी उसने बहुत तिरस्कार और अपमानसूचक बातें कही हैं। संक्षेप में यह है कि जब वह बहुत बकने-झकने लगा और किसी प्रकार शांत न हुआ तब उसका एक दूसरे स्वतंत्र खेमे में बंद करना आवश्यक हुआ। परंतु कल प्रातकाल होश में आने पर वह पुनः अपने स्थान और पद पर दिखाई देगा। एक ओर जिस समय सिपाही इस प्रकार की बातों से समझाए गए उस समय दूसरी ओर बड़े बड़े अधिकारियों को उच्च आशाएं दी गईं, घूस तक की नौबत आई और सारी सेना का मासिक वेतन बढ़ा दिया गया। निदान सुबह होते होते वह कोलाहल और आंदोलन जो अब तक हो रहा था एकदम शांत हो गया, उसका चिह्न मात्र भी शेष न रहा। कारण यह कि ऐसे लोग बहुत कम थे जो इन बातों का गूढ़ मर्म न समझते हों। अस्तु जब यह बंदोबस्त हो चुका और औरंगजेब ने देखा कि अब कुछ चिंता नहीं है तब उसने मुराद को एक जनानी अंबारी में बंद करके देहली भेजा, जहां पहुंचने पर वह सलीमगढ़ नामक दुर्ग में जो यमुना के मध्य में है (अब टूटी फूटी अवस्था में है) कैद किया गया।

दारा के पीछे धावा—अब शाह अब्बास ख्वाजा के अतिरिक्त (जिसके कारण औरंगजेब को कुछ कठिनाइयों में पड़ना पड़ा) मुराद की ओर का कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसने औरंगजेब की सेवा में आकर उसका पक्ष ग्रहण करना न स्वीकार किया हो। निदान उसकी सेना को भी अपने दल में मिलाकर उसने दारा के पीछे धावा किया जो बड़ी शीघ्रता से लाहौर की ओर भागा जाता था। दारा की इच्छा लाहौर में पहुंचने की और किले बंदी करके अपने मित्रों और शुभचिंतकों को एकत्रित करने की थी, परंतु उसका यह प्रबल शत्रु इस भांति उसके पीछे पड़ा था कि लाहौर में किले बंदी करने का अवकाश न पाकर उसे मुलतान की ओर भागना पड़ा। औरंगजेब ने वहां भी उसको जमने नहीं दिया। इस धावे में औरंगजेब की जिस बुद्धि और कार्यपटुता का परिचय मिला वह निस्संदेह प्रशंसनीय है, अर्थात यद्यपि गर्मी की ऋतु थी और असह्य गर्मी पड़ रही थी तथापि उसकी सेना रात दिन बराबर आगे बढ़ती ही चली जाती थी और वह स्वयं सिपाहियों का साहस तथा उत्साह बढ़ाने के लिए थोड़े से मनुष्यों के साथ प्रायः चार पांच कोस सेना के आगे आगे चलता था। इसके अतिरिक्त एक साधारण सिपाही की भांति बुरे भले पानी और रूखी सूखी रोटी पर संतोष करता और रात को अमीरी ढंग से पलंग पर न सोकर केवल सामान्य बिस्तर बिछाकर उसी पर लेटा रहता था।

इस देश के राज पुरुष कहते हैं कि दारा लाहौर छोड़ने के पश्चात काबुल की ओर नहीं बढ़ा यह उसने बड़ी भूल की। उसके हितैषियों ने काबुल जाने के विषय में उसे बहुत कुछ समझाया था पर सदा के अनुसार इस बार भी न जाने क्यों उसने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। इस समय काबुल का अमीर महावतखां नामक भारतवर्ष का एक बड़ा जबर्दस्त और वृद्ध मनुष्य था। औरंगजेब से उसकी अमित्रता थी। उसके आधीन दश सहस्र से भी अधिक लड़ने भिड़ने वाले ऐसे मनुष्य थे जो अफगानों, उजबकों और ईरानियों के विरुद्ध तुरंत रणक्षेत्र में आ सकते थे। दारा के पास धन रत्न की कमी नहीं थी, अतः यदि वह वहां जाता तो अवश्य महावतखां और वहां के सैनिक पुरुष प्रसन्नतापूर्वक उसका पक्ष ग्रहण करते। इन लाभों के अतिरिक्त ईरान और उजबक देश के भी वहां से निकट होते और इन देशों में उसे आश्रय मिल सकता। दारा को इस समय इस बात का स्मरण करना उचित था कि बादशाह हुमायूं को जब शेरशाह सूरी ने (जो पठान जाति का नरेश था) हराकर भारतवर्ष के बाहर निकाल दिया था तब उसने ईरानियों ही की सहायता से पुनः राज्य लाभ किया था। पर अभागा दारा तो स्वभाव से ही ऐसा था कि विद्वान और समझदार लोगों के उपदेश का मूल्य नहीं समझता था। निदान इस बार भी उसने ऐसा ही किया कि काबुल न जाकर वह सिंधुदेश को चला गया और वहां जाकर उसने ठट्ठ के प्रसिद्ध सुदृढ़ दुर्ग में आश्रय लिया जो सिंधुनद के मध्य में है।

जब औरंगजेब को दारा की इच्छा का पता लग गया तब उसने सोचा कि

अब उसका पीछा करना निष्प्रयोजन है। यह निश्चय कर कि वह काबुल की ओर नहीं जाता है उसके मन का एक विशेष खटका और संदेह मिट गया और मीर बाबा नामक अपने दूधा भाई की अधीनता में केवल सात आठ सहस्र मनुष्यों को उसके पीछे भेज कर वह उसी शीघ्रता से आगरे को लौटा जिस शीघ्रता और तेजी से यहां तक आया था। इस समय वह यह सोच सोच कर बहुत चिंतातुर हो रहा था कि उसकी अनुपस्थिति से राजधानी में न जाने क्या क्या घटनाएं संघटित हो गई होंगी, और रह रह कर उसे इस बात की शंका होती थी कि संभव है मैदान साफ देखकर जयसिंह, यशवंत सिंह या और कोई बलवान राजा बादशाह को कैद से छुड़ा दे, या सुलेमान शिकोह श्री नगर नरेश और सैन्य सहित पहाड़ों से ऊपर आए, या सुलतान शुजा आगरे पर चढ़ाई करने का साहस कर बैठे, इत्यादि। यहां पर एक घटना का हाल दृष्टांत की रीति पर लिखा जाता है जिससे पाठक उसकी कार्यपटुता का परिचय पा सकेंगे।

जब कि औरंगजेब उसी तेजी के साथ मुल्तान से लाहौर को लौट रहा था जिस तेजी से गया था। उसने राजा जयसिंह को चार पांच सहस्र वीर योद्धा राजपूतों के साथ अपनी ओर बढ़ते सुना। इससे वह बहुत ही आश्चर्यान्वित और चकित हुआ। वह इस समय पूर्व के अनुसार थोड़े-से सिपाहियों के साथ अपने सैन्यदल से कई कोस आगे चल रहा था। अतः जयसिंह के आने का संवाद सुनकर उसको ध्यान हुआ कि वह इस समय बहुत बुरी स्थिति में है। बादशाह से जयसिंह की जैसी प्रीति थी वह उससे छिपी नहीं थी, इसलिए ऐसी अवस्था में उसके मन में इस बात की शंका उत्पन्न होना कि राजा जयसिंह इस अवसर को जो कि शाहजहां के कैद से छुड़ाने और उसके दुष्ट अत्याचारी पुत्र को दंड देने के लिए बहुत ही उपयुक्त है हाथ से जाने नहीं देंगे, कुछ आश्चर्य का विषय नहीं है। अनुमान किया जाता है कि वास्तव में राजा साहब औरंगजेब के पकड़ने ही की इच्छा से यहां तक आए थे और इस अनुमान की पुष्टि यह कहकर की जाती है कि अभी थोड़ी देर पहले औरंगजेब को खबर लग चुकी थी कि राजा साहब दिल्ली में थे और वहां से अद्भुत तेजी के साथ कूच करते हुए यहां आए हैं। अस्तु कुछ भी हो, मानसिक धैर्य और निश्चयात्मक बुद्धि से औरंगजेब ने भावी विपत्ति से अपना बचाव कर लिया। उसने तनिक भी भय या घबराहट प्रकट नहीं की, वरन यह दिखाने के लिए कि उनके आने से उसे बहुत ही हर्ष हुआ है वह घोड़ा दौड़ाता और हाथ से संकेत करता हुआ कि शीघ्र आइए, शीघ्र आइए, आनंदपूर्वक आगे बढ़ा। निकट पहुंचने पर उसने पुकार कर कहा, "सलामत बाशद राजा जी, सलामत बाशद बाबा जी ! खुशामदीद, खुशामदीद मैं बयान नहीं कर सकता कि मुझे आपके आने का किस कदर इंतजार था। बहुत ही खूब हुआ कि आप आ गए। अब तो लड़ाई खतम हो चुकी और दारा शिकोह तबाहो बरबाद खाक छानता फिरता है। मैंने मीर बाबा को उसके

पीछे भेज दिया है और अगलब है कि वह जल्द गिरफ्तार हो जाएगा। (इसके पश्चात अत्यंत प्रीति और विनय दिखाते हुए अपनी मोतियों की माला उनके गले में डालकर) हमारी फौज निहायत थकी हुई है इसलिए आपको बहुत जल्द लाहौर पहुंच जाना चाहिए, क्योंकि शायद वहां कुछ बेइंतजामी और गड़बड़ हो जाए। मैं आपको वहां का सूबेदार मुकर्रर करता हूं और तमाम इख्तियार सौंपता हूं। मैं भी बहुत जल्द आ मिलूंगा। हां रुखसत होने से पहले मुझे वाजिब है कि सुलेमान शिकोह के मुआमिले में आपने जो कारगुजारी की उसके लिए आपका शुक्रिया अदा करूं। लेकिन आपने दिलेरखां को कहां छोड़ा ? मैं उसे खूब सजा दूंगा। खैर आप जल्द लाहौर को तशरीफ ले जाइए। अच्छा खुदा हाफिज।"

अहमदाबाद में दारा–जब दारा ठट्ठ के दुर्ग में पहुंचा तब उसने एक ख्वाजासरा को जो अपनी बुद्धिमता और दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध था वहां की सूबेदारी अर्पण की। पठानों तथा सैयदों को सेना में भर्ती किया और पुर्तगीजों, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और जर्मनी-वासियों को तोपखाने में नौकर रखा। इन सभी से उसने प्रतिज्ञा की कि यदि हम बादशाह हो जाएंगे तो तुमको उच्च पदों पर नियुक्त करेंगे। इस प्रकार दुर्ग का प्रबंध करके उसने अपना खजाना वहां छोड़ दिया क्योंकि अभी तक उसके पास अशर्फियां और रुपए बहुत थे। इसके पश्चात लगभग तीन सहस्र मनुष्यों के साथ सिंधुनद के किनारे किनारे बड़ी शीघ्रता से यात्रा करता हुआ राव कच्छ के राज्य से होकर वह गुजरात पहुंच गया और अहमदाबाद के बाहर जाकर उसने डेरा डाल दिया। शाहनेवाजखां नामक एक व्यक्ति जो औरंगजेब का ससुर था और जिसकी पैदाइश मस्कट के प्राचीन राजकुल में हुई थी उस समय अहमदाबाद का सूबेदार था। वह चतुर और सभ्य था, पर कोई प्रसिद्ध योद्धा नहीं। उसने न जाने मन की निर्बलता या दारा के सहसा आ पड़ने या और किसी कारण से यथेष्ट सेना और युद्ध की सामग्री रहते भी नगर के द्वार खोल दिए। केवल इतना ही नहीं वरन वह बड़ी प्रीति और स्नेह से दारा से मिला और बड़े सम्मान सत्कार से उसने इसका स्वागत किया। दारा से लोगों ने कह दिया था कि यह मनुष्य कपटी है। पर उसकी प्रीति, सरलता, नम्रता और विनय पर विश्वास करके इसने अपने मन का सब भेद उस पर साफ साफ प्रकट कर दिया, बल्कि उन पत्रों को भी दिखा दिया जो यशवंत सिंह आदि शुभचिंतकों की ओर से उसके पास आए थे और जिनमें लिखा था कि हम जहां तक बनता है सेना एकत्रित करके शीघ्र सहायता के लिए आते हैं।

इधर यह समाचार मिलते ही कि दारा अहमदाबाद में पहुंच कर वहां का मालिक बन गया है औरंगजेब को बहुत ही आश्चर्य और चिंता हुई। वह जानता था कि अभी दारा के पास बहुत रुपए हैं और ऐसी अवस्था में न केवल उसके मित्र अपितु दूसरे राजा भी जो मेरी ओर से असंतुष्ट है अवश्य उसका साथ देंगे।

वह यह भी खूब समझता था कि अहमदाबाद जैसे सुदृढ़ स्थान से दारा के पांव उखाड़ देने की कितनी अधिक आवश्यकता है। तथापि बंदी शाहजहां को आगरे में छोड़कर इतनी दूर के देश की यात्रा करना उसे उचित नहीं मालूम होता था। इस बात का भी भय था कि अहमदाबाद जाने में जयसिंह और यशवंत सिंह प्रबल पराक्रमी राजाओं के राज्य से होकर जाना पड़ेगा। इधर एक बड़े सैन्यदल के साथ सुलतान शुजा के आने का समाचार भी उसने सुना। यह भी उसे विदित हो चुका था कि वह इलाहाबाद तक आ गया है। दूसरी ओर से उसे संवाद मिला कि श्रीनगरनरेश की सहायता से इस लड़ाई में योग देने की सुलेमान शिकोह ने भी तैयारी की है। इस प्रकार चारों ओर कठिनाइयां देखकर उसने सोचा कि दारा को शाहनेवाजखां के साथ जिस अवस्था में वह है उसी अवस्था में छोड़कर शुजा की चढ़ाई तुरंत रोकनी चाहिए जो इलाहाबाद में गंगा के इस पार तक आ गया है।

औरंगजेब की कठिनाइयां

खजुआ नामक एक छोटे गांव के निकट तालाब के किनारे उत्तम स्थान देखकर शुजा ने वहीं डेरा डाल दिया। वहां डेरा डालकर वह औरंगजेब के आने की बाट जोह रहा था जो चार-साढ़े चार मील के अंतर पर एक नदी के किनारे आकर ठहरा था। दोनों छावनियों के बीच लड़ाई के योग्य एक विशाल मैदान था। औरंगजेब लड़ाई के लिए आतुर हो रहा था अतः इस स्थान में पहुंचने के दूसरे ही दिन सामान इस पार रखकर आक्रमण करने के अभिप्रायः से वह नदी के दूसरे तट पर गया। उसी दिन प्रातःकाल मीर जुमला भी उससे आ मिला, क्योंकि दैव के अभागे दारा के प्रतिकूल होने से उसके कुटुंब के लोग छुटकारा पा गए थे और औरंगजेब के शुभ के लिए उसके अब भी कैद रहने की आवश्यकता नहीं थी। अस्तु, जहां तक बन सका था मीर जुमला अपने साथ बहुत से सैनिक भी इकट्ठे कर लाया था। सवेरे ही लड़ाई आरंभ हुई, पर शुजा की इच्छा अपने पसंद किए हुए और किलेबंदी वाले स्थान से आगे बढ़कर मैदान में जाने की नहीं थी। अतएव जब जब शत्रु आक्रमण करते थे तब तब वह बड़ी चेष्टा से उनको मारकर पीछे हटा देता था। इससे औरंगजेब को कुछ कठिनता पड़ी। शुजा ने सोचा था कि जब गर्मी के मारे घबराकर शत्रुदल नदी की ओर लौटेगा तब सहसा उस पर टूट पड़कर हम लोग सहज में विजय प्राप्त कर लेंगे। औरंगजेब अपने विपक्षी का यह विचार समझता था इस कारण वह पीछे नहीं हटा, वरन लश्कर को बराबर आगे बढ़ाने की चेष्टा करता रहा। परंतु इतने ही में एक घबराहट में डाल देने वाली घटना सहसा घटित हुई।

राजा यशवंत सिंह ने जो कुछ दिन पूर्व बड़े सद्भाव से औरंगजेब से आ

मिले थे सहसा उसकी पिछली सेना पर आक्रमण कर दिया। जिसका यह परिणाम हुआ कि वह तितर-बितर होकर भाग गई और राजा साहब ने खजाना तथा असबाब लूटना आरंभ कर दिया। तुरंत यह संवाद चारों ओर फैल गया जिससे एशिया के सैनिकों के साधारण नियम के अनुसार सिपाहियों को भय और घबराहट ने आ घेरा। ऐसा समय आ गया तथापि औरंगजेब ने धैर्य नहीं छोड़ा, उसने सोचा कि पीछे लौटने से सब आशाएं धूल में मिल जाएंगी। इसलिए जैसे दारा के साथ युद्ध करने में उसने किया था वैसे ही इस बार भी परिणाम तक दृढ़ रहने का निश्चय किया। परंतु प्रतिफल उसके सैनिकों की घबराहट और चिंता बढ़ती ही गई और शुजा ने इस अवसर को बहुत ही उपयुक्त समझकर एक बहुत बड़ा आक्रमण किया। इतने में सहसा एक तीर लगने से औरंगजेब का महावत मारा गया जिससे हाथी का संभालना भी कठिन हो गया। यह देखकर वह उस पर से उतरने ही को था कि मीर जुमला ने जो निकट था उसे पुकार कर कहा, "हजरत, यह दकन नहीं है। क्या गजब करते हैं ? क्या भागकर दकन जाएंगे ?" मीर जुमला ने आज दिन भर रण में ऐसी कुशलता दिखाई थी कि लोग आश्चर्य में आ गए थे। इस समय संध्या हो चली थी और लक्षण बुरे दीखते थे तथापि मीर जुमला ने औरंगजेब को हाथी से उतरने से रोककर एक भयंकर परिणाम से बचा लिया। वास्तव में इस समय चारों ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती थी। स्वयं औरंगजेब प्रतिक्षण सोचता था कि अब मैं शत्रुओं के हाथों में पड़ा चाहता हूं, परंतु भाग्य की प्रबलता कैसी विचित्र है ? मीर जुमला की बातों से उसे धैर्य आया और वह हाथी से नहीं उतरा। थोड़ी ही देर में वह विजयी हुआ और जिस प्रकार समूगढ़ की लड़ाई में एक छोटी बात के कारण दारा को युद्ध क्षेत्र से भागना पड़ा था शुजा को भी वैसे ही एक घटना के कारण अपने प्राण बचाकर रणभूमि से निकल जाना पड़ा।

जहां तक हो सके बहुत शीघ्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के विचार से सुलतान शुजा हाथी से नीचे उतरा, पर हाथी से उतरते ही उसकी भी वही दशा हुई जो दारा की हुई थी। यह नहीं कहा जा सकता कि जिस व्यक्ति ने उसे सलाह दी थी उसने विश्वासघात किया था या सच्चे हृदय से उसे सलाह दी थी। जो हो, उसके प्रधान सरदारों में से अलीवर्दीखां नामक सरदार ने उससे हाथी से नीचे उतरने को कहा और जिस प्रकार दारा को खलील उल्लाहखां ने यह सम्मति दी थी उसी प्रकार वह भी दौड़कर शुजा के पास गया और कुछ दूर ही से हाथ जोड़कर बोला, "हुजूर इस बड़े हाथी पर ऐसी जान-जोखों में क्यों बैठे हैं ! क्या मुलाहिजा नहीं फरमाते कि दुश्मन भागे जाते हैं और अब चुस्ती से उनका तअकुल न करना सरासर गलती है, बस जल्दी घोड़े पर सवार होकर उनका पीछा कीजिए और फिर देख लीजिए कि हिंदुस्तान का तख्त आपके कदमों के नीचे है, और आप हिंदुस्तान के बादशाह हैं।" निदान ऐसा करने से वही दृश्य उपस्थित हुआ जो समूगढ़ की

लड़ाई में दारा के सन्मुख हुआ था। अर्थात ज्योंही शुजा सैनिकों की दृष्टि से ओझल हुआ त्योंही सबके मन में यह संदेह उत्पन्न हुआ कि या तो वह मारा गया या धोखे से शत्रुओं ने उसे पकड़ लिया और उसी समय उसकी सेना ऐसी छिन्न-भिन्न हो गई कि उसे पुनः एकत्रित करना असंभव था।

औरंगजेब की आकस्मिक जीत देखकर राजा यशवंत सिंह लूट के माल से ही संतुष्ट हो अपने राज्य को जाने के लिए आगरे आए। जिस समय वे आगरे पहुंचे उस समय नगर में वह किंवदंती उड़ रही थी कि औरंगजेब हार गया और मीर जुमला के साथ पकड़ा गया है। इसके अतिरिक्त यह खबर भी थी कि शुजा अपने विजयी सैन्यदल के साथ शीघ्रातिशीघ्र आगरे की ओर आ रहा है। औरंगजेब के मामा तथा आगरे के अधिकारी शाइस्ताखां ने इन किंवदंतियों को सच माना और अपार भय के कारण विष पीकर प्राण देने को वह तैयार हो गया। निस्संदेह वह विष पी भी लेता यदि जनानखाने की स्त्रियां उस पर न आ गिरतीं और प्याला छीनकर न फेंक देतीं। अस्तु, दो दिन तक आगरे के लोग लड़ाई के असली वृत्तांत से इतने अनजान थे कि यदि राजा यशवंत सिंह साहस करके इस बीच में लोगों को धमकाते और भविष्य के लिए कुछ अच्छा भरोसा देते तो अवश्य ही शाहजहां को कैद से छुड़ा सकते। पर यह बात वह अच्छी तरह जानते थे कि समय कैसा है, स्थिति किस प्रकार की है और ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए। अतः आगरे में अधिक ठहरना और इन बखेड़ों में पड़ना उचित न समझकर वे पहले किए हुए विचार के अनुसार अपने राज्य को चले गए।

इधर औरंगजेब को यह चिंता हो रही थी कि राजा यशवंत सिंह न जाने क्या कर रहे होंगे और प्रतिफल उसे ऐसा जान पड़ता था कि अब आगरे से विग्रह समाचार शीघ्र आना चाहते हैं। अतएव शुजा का अधिक पीछा न करके उसने सैन्यादि के सहित जल्दी से राजधानी की ओर कूच कर दिया। पर यह कठिनता उपस्थित हुई कि उसको शीघ्र मालूम हो गया कि इस लड़ाई में शत्रुओं की कुछ अधिक हानि नहीं हुई। वरन शुजा की घनाढ्यता और उदारता की बात सुनकर वे सब राजा जिनके राज्य गंगा के दोनों तटों पर हैं उसकी सहायता के लिए अपनी सेनाएं भेज रहे हैं। यह संवाद भी उन्हें मिला कि शुजा इलाहाबाद में अपने पांव जमाना चाहता है ताकि गंगा के इस प्रसिद्ध घाट को जो बंग देश का द्वार समझा जाता है, हाथ से न जाने दे।

ऐसी अवस्था में औरंगजेब ने देखा कि केवल दो व्यक्ति ऐसे हैं जिनसे इन कठिनाइयों में सहायता मिल सकती है। एक उनका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतान और दूसरा मीर जुमला। परंतु इसके साथ ही वह यह भी जानता था जो व्यक्ति कोई प्रशंसनीय काम करता है तो प्रायः ऐसा होता है कि चाहे उसके परिश्रम का कुछ ही बदला क्यों न दिया जाए उसे संतोष नहीं होता। वह देख ही रहा था कि मुहम्मद सुलतान

अभी से स्वतंत्र और निरंकुश रहना चाहता है। और आगरे के दुर्ग पर विजय पाने तथा शाहजहां को कैद कर लेने से उसके विचार बढ़ गए हैं। अब रहा मीर जुमला, सो यद्यपि औरंगजेब उसके साहस, गांभीर्य और सद्गुणों की मन में प्रशंसा करता था तथापि उसके इन्हीं गुणों को देखकर वह डरता भी था। क्योंकि एक तो समस्त भारतवर्ष में यह बात प्रसिद्ध थी कि मीर जुमला के पास बहुत धन है, तिस पर लोग यह भी उसके विषय में खूब जानते थे कि वह समय पड़ने पर अपनी युक्ति, नीति और बुद्धि से कठिन से कठिन काम भी कर सकता है। इन कारणों से औरंगजेब उसको भी किसी बात में मुहम्मद सुलतान से घटकर नहीं समझता था।

इसलिए यद्यपि ये कठिनाइयां ऐसी थीं कि किसी साधारण विचार के आदमी को अवश्य घबराहट में डाल देतीं। परंतु चतुर औरंगजेब ने एक ऐसी चाल चली कि उन दोनों को राजधानी से हटा भी दिया और दोनों में से कोई रुष्ट भी नहीं होने पाया। अर्थात एक बड़ी सेना सुपुर्द कर उसने उन दोनों को शुजा से युद्ध करने के लिए भेजा। विदा करते समय उसने मीर जुमला से कहा, "फतह के बाद बंगाल के जर्खेज सूबे की हुकूमत आप ही के कब्जे में रहेगी बल्कि आपके बाद आपका बेटा भी इस सूबेदारी का मुस्तहक समझा जाएगा और जो कि आपकी खिदमत में बहुत-सी इनायतों के काबिल हैं मगर उनमें से बिलफेल एक यह है कि जब आप शुजा पर फतह पा लेंगे तब अमीरुलउमर का खिताब जो हिंदुस्तान में सबसे बड़ा खिताब है आपको दिया जाएगा।

मीर जुमला से इतना कहकर औरंगजेब मुहम्मद सुलतान की ओर झपटा और उससे उसने केवल इतना कहा कि बेटा खयाल करो कि मेरी औलाद में तुम सबसे बड़े हो और अपने ही काम पर जाते हो। इसमें शक नहीं कि तुमने बड़े बड़े काम किए हैं मगर सच पूछो तो अभी कुछ भी नहीं किया है। जब तक सुलतान शुजा को जो हमारे मुखालिफों में एक बहुत बड़ा शख्स है शिकस्त देकर पकड़ न लाओ तब तक सारे ही काम अधूरे हैं।

इतना कहकर औरंगजेब ने मीर जुमला और मुहम्मद सुलतान को राजसी वस्त्र और अनेक हाथी घोड़े भेंट में दिए। अंत में जिस प्रकार बन पड़ा उसने मुहम्मद सुलतान की बेगम को और मीर जुमला के पुत्र मुहम्मद अमीन को अपने पति तथा पिता के साथ जाने से रोक लिया। मुहम्मद सुलतान की बेगम को तो जो गोलकुंडा-नरेश की पुत्री थी उसने इस बहाने से ठहरा लिया कि ऐसे उच्च कुल की राजकुमारी का लड़ाई के समय सेना के साथ जाना किसी प्रकार उचित और शोभाप्रद नहीं है—और मुहम्मद अमीनखां को इस बहाने से रोक लिया कि अभी उसकी उमर बहुत थोड़ी है और मुझे उसे देखकर बड़ा स्नेह मालूम होता है अतः मैं स्वयं उसकी शिक्षा आदि का प्रबंध करूंगा। पर वास्तव में धूर्त औरंगजेब ने उनको इसलिए आगरे में रोक लिया कि जिससे दोनों शरीर बंधक की रीति पर यहां रहें और उनके

कारण मीर जुमला व मुहम्मद सुलतान किसी प्रकार का कपटाचरण न कर सकें।

अब शुजा का हाल सुनिए। उसे निरंतर चिंता लग रही थी कि कदाचित बंगाल के निचले भाग के राजा जो उसकी छीना झपटी से अप्रसन्न हो रहे थे किसी के बहकाने से पीछे उपद्रव न खड़ा कर बैठें। जब औरंगजेब के इन प्रबंधों की उसे खबर लगी तब इलाहाबाद से डेरा डंडा उठा कर वह बनारस और पटना की ओर चल पड़ा क्योंकि उसे भय था कि संभव है मीर जुमला इलाहाबाद के बदले किसी और घाट से गंगा के पार उतर कर बंग देश को लौट जाने का मार्ग बंद कर दे। इसी संदेह से पहले बनारस और पटना जाकर वह मुंगेर को चला गया जो गंगा के तट पर एक छोटा-सा नगर है और एक ओर पर्वत तथा दूसरी ओर जंगल और नदी होने के कारण उत्तम स्थान है, इसके अतिरिक्त बंगाल का द्वार समझा जाता है। यहां पहुंचकर उसने दृढ़ करने का प्रबंध किया और नगर तथा नदी के किनारे से लेकर पहाड़ तक एक बड़ी गहरी खाई खुदवाई। इस घटना के कई वर्ष बाद इस खाई को मैंने भी देखा था। अस्तु इतना प्रबंध करके शुजा गंगा के घाट को रोके हुए शत्रुओं का मार्ग देख रहा था कि इतने में सहसा उसे यह दुखदायी संवाद मिला कि वह सैन्यदल जो गंगा के किनारे किनारे बढ़ा आता था केवल धोखा देने के लिए था और मीर जुमला उसके साथ नहीं है, वरन वह उन राजाओं को संतुष्ट करके जिनके राज्य नदी के दाहिने तटों पर पर्वतों में हैं पर्वतों को पार करता हुआ मुहम्मद सुलतान और कुछ सिपाहियों के साथ राजमहल की ओर इस इच्छा से जा रहा है कि हमारे पीछे हटने का मार्ग रोक कर हमको बंगाल के भीतर की ओर न जाने दे। अतः वह खाई आदि जो बड़े परिश्रम और प्रबंध से बनी थी ज्यों की त्यों छोड़ देनी पड़ी। मुंगेर और राजमहल के बीच गंगा जी कई चक्कर और फेरा खाकर गई हैं इससे यद्यपि बहुत कष्ट उठाना पड़ा तथापि वहां से चलकर शुजा किसी प्रकार मीर जुमला से कई दिन पहले ही राजमहल पहुंच गया, बल्कि वहां से लड़ाई का सामान ठीक करने को महल पहुंचने से रोकना असंभव है। मीर जुमला और मुहम्मद सुलतान अपने बाएं हाथ अनेक दुर्गम और भयानक मार्गों से होते हुए इस अभिप्राय से गंगा की ओर बढ़े कि अपने भारी तोपखाने और सैनिक आदि को भी जो जल मार्ग से आ रहे थे अपने साथ ले लें। निदान जब उन्होंने इतना काम कर लिया और उनके साथी उनको मिल गए तब राजमहल में जाकर उन्होंने लड़ाई आरंभ कर दी। पांच दिन तक शुजा खूब लड़ा, पर इसके पश्चात जब उसने देखा कि मीर जुमला के तोपखाने की मार से उसके मोर्चे (जो वृक्षों की डालियों और लकड़ियों से बुर्ज की भांति मिट्टी और रेत भर कर बना लिए गए थे) नष्ट हुए जाते हैं और सोचा कि वर्षा ऋतु निकट आ गई है उस समय इनकी और भी दुर्दशा होगी तब अंधेरी रात में वह वहां से निकल गया, पर दो तोपें जो बहुत भारी थीं वहीं छोड़ता गया। इधर एक तो मीर जुमला इस भय से उसका पीछा न कर सका कि छापा मारने की इच्छा से कहीं वह उसकी घात में न लगा हो दूसरे शुजा के सौभाग्यवश सवेरा

होने से पहले ऐसी प्रबल वृष्टि हुई कि उसका पीछा करने के लिए राजमहल की ओर यात्रा करने का विचार करना भी असंभव हो गया। यह वृष्टि बहुत ही प्रबल और बरसात का आरंभ भी जो बंगाल देश में जुलाई से अक्तूबर तक बहुत ही अधिकता से होती है और मार्ग ऐसे खराब हो जाते हैं कि किसी चढ़ाई करने वाली सेना के चलने योग्य नहीं रहते। निदान लाचार होकर मीर जुमला को बरसात के समाप्त होने तक राजमहल में ठहरना पड़ा।

इस अवसर में शुजा को जहां चाहे वहां ठहर कर अपनी इच्छानुसार उपाय करने का अच्छी तरह सुयोग मिल गया। उसने बहुत-सी नई सेना नौकर रख ली जिसमें अधिकांश पुर्तगीज थे जो कुछ तोपों सहित बंगाल के उन प्रांतों में आ गए थे जो नीचे की ओर हैं और बहुत हरे भरे फलवान तथा सुंदर होने के कारण जहां प्रायः पश्चिम देश के निवासी आ बसते हैं। ऐसे समय में वास्तव में वह शुजा की चतुराई और सुनीति थी कि उसने इन अपरिचित लोगों के साथ उत्तम बर्ताव करने के लिए उनको अपनी सेना में भर्ती कर लिया क्योंकि पुर्तगीज असल और दोगले मिलाकर कम से कम 9-10 सहस्र यहां वर्तमान थे और निस्संदेह उनसे शुजा को बहुत सहायता मिल सकती थी। उसने इस अवसर पर कुछ विशेषता के साथ उनके पादरियों को भविष्य के लिए बहुत आशा दिलाई और पारितोषिकादि के अतिरिक्त यह भी कहा कि आपकी जहां इच्छा हो वहां अपने गिरजे बना लें।

अभी बरसात नहीं बीती थी और मीर जुमला तथा मुहम्मद सुलतान राजमहल में ही थे कि इतने में दोनों में कुछ अनबन हो गई। मुहम्मद सुलतान अपने को समस्त सैन्य का अफसर समझने और मीर जुमला को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा। उसके आचार-व्यवहार और बातचीत से प्रगट होने लगा कि वह पिता की भी कुछ अधिक परवाह नहीं करता बल्कि उसने एक दिन बड़े गर्व के साथ स्पष्ट कह भी दिया कि "आगरे के किले की दस्तयाबी मेरी ही कोशिश और मिहनत से हुई, बस अगर हजरत (औरंगजेब) इसके लिए किसी के ममनून हों तो उनको मेरा ही ममनून होना चाहिए।" इन बातों का परिणाम यह हुआ कि उसने पिता को अपने पर बहुत रुष्ट कर लिया और फिर जब उसको उसके रुष्ट होने का समाचार मिला तब इस भय से कि कहीं वह पकड़ कर कैद न कर लिया जाए केवल कुछ थोड़े से गिनती के आदमी साथ लेकर राजमहल से चल दिया। यहां से चलकर उसने अपने को शुजा की सेना में उपस्थित किया। परंतु शुजा को इसकी बातों का जरा भी विश्वास नहीं हुआ, उलटे उसे इस बात का संदेह हुआ कि संभव है औरंगजेब और मीर जुमला ने मुझे मूर्ख बनाने के लिए यह चाल चली हो। अस्तु, मुहम्मद सुलतान की बड़ी बड़ी प्रतिज्ञाओं और कसमों पर विश्वास न करके उसने उसको अपनी सेना का कोई बड़ा अधिपतित्व नहीं सौंपा, वरन वह सदा उसकी चाल की जांच करता रहा। अंत में यह दशा हुई कि सुलतान शुजा से भी उसकी बिगड़ गई और कई महीनों के बाद

निराश होकर वह फिर मीर जुमला के पास गया। मीर जुमला ने थोड़े सत्कार से उसे स्थान दिया और कहा कि "अगर्चे आपने बहुत बड़ा कुसूर किया है, मगर खैर बादशाह से सिफारिश करके माफी की दरख्वास्त करूंगा।"

बहुत लोग कहते हैं कि औरंगजेब के ही कहने से मुहम्मद सुलतान शुजा के पास गया था क्योंकि औरंगजेब चाहता था कि उसके पुत्र को चाहे कैसी ही भयानक दशा में क्यों न पड़ जाना पड़े पर सुलतान शुजा अवश्य नष्ट हो जाए। यह बात चाहे सत्य हो या न हो और वास्तविक बात चाहे कुछ भी हो, पर जब औरंगजेब को मालूम हो गया कि मुहम्मद सुलतान राजमहल को लौट आया तब सुयोग देखकर कि अब इसे भी कारागार में बंद कर देने का अच्छा बहाना मिल गया है सच्चा अथवा झूठा कोप प्रकट करते हुए उसके पास एक ताकीदी आज्ञापत्र भेजा कि तुम तुरंत देहली को चले आओ। अब भाग्यहीन मुहम्मद सुलतान आज्ञा टाल ही नहीं सकता था। लाचार आगे बढ़ा पर ज्योंही गंगा के उस पार उतरा त्योंही हथियारबंद सिपाहियों के एक झुंड ने उसे घेर कर पकड़ लिया और बलपूर्वक एक अलमारी में बंद करके वे उसे ग्वालियर ले गए। मुझे विश्वास है कि उसकी आयु की समाप्ति उसी स्थान में होगी। (सन 1766 ई. को 5वीं दिसंबर को इसी दुर्ग में मुहम्मद सुलतान की मृत्यु हुई)।

इस प्रकार अपने ज्येष्ठ पुत्र की ओर से निश्चिंत होकर औरंगजेब ने द्वितीय पुत्र शाहजादा मुअज्जम से कहा—"ऐसा न हो कि कहीं तुम भी सरकशी और बुलंदपरवाजी के खयालात में भाई की तरह हो जाओ और वही मुआमिला तुमको पेश आए जो उसको पेश आया है। याद रखो कि सल्तनत एक ऐसा नाजुक मुआमिला है कि बादशाहों को अपने साए से भी हसद और बदगुमानी हो जाती है। बस यह खयाल कभी न करना कि औरंगजेब भी अपने बेटों से वही कुछ देख सकता है जो जहांगीर ने शाहजहां के हाथों से देखा था या जिस तरह शाहजहां ने तख्तोताज खो दिया और औरंगजेब भी उसी तरह खो सकता है। तथापि सब बातों पर विचार करके मैं कह सकता हूं कि औरंगजेब को सुलतान मुअज्जम की ओर से ऐसा संदेह करना अकारण था क्योंकि वह तो एक तुच्छ दास से भी अधिक आज्ञाकारी बना रहता है। अस्तु इस विषय में मैं विशेष बातें आगे चलकर लिखूंगा इस समय अन्य आवश्यक बातें लिखता हूं।

जिस समय आगरा और देहली का यह हाल था उस समय बंगाल में लड़ाई पहले की तरह हो रही थी, लेकिन कुछ सुस्ती के साथ। जहां तक बनता था शुजा लड़ता था और उसका चतुर शत्रु मीर जुमला गंगा से उतरने और अगणित नदी नालों के पार करने में जैसा ठीक और समयोचित समझता था वैसा करता था। इस बीच में औरंगजेब आगरे में थे, परंतु अंत में जब मुरादबख्श को वह ग्वालियर के दुर्ग में भेज चुका तब उसने उन धोखे की टट्टियों को जो लोगों को भ्रम में

डाल रखने के लिए खड़ी की गई थीं एकदम उठा दिया और सिंहासन पर बैठकर खुलेआम राज्य शासन करना आरंभ किया। अब उसका सारा चित्त दारा को गुजरात से निकाल बाहर करने के उपायों में लगा था, पर उन कारणों से जो पहले बताए जा चुके हैं वह अपनी इस इच्छा को पूरा करना सहज नहीं समझता था। तो भी पीछे उस की अगाध बुद्धि और सौभाग्य से इस काम के लिए भी एक अच्छा अवसर उसके हाथ लग गया। उसका हाल यों है—

राजा यशवंत सिंह ने घर पहुंचते ही उस धन संपत्ति से जो खजुआ की लूट में मिली थी एक बड़ी सेना एकत्रित करनी आरंभ की और दारा शिकोह को लिख भेजा कि आप शीघ्र आगरे को चले आयें, मैं सैन्य के सहित रास्ते में आपसे आ मिलूंगा। इधर दारा ने भी एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी पर वह कुछ अच्छी नहीं थी। अतः राजा यशवंत सिंह से इस आशय का पत्र पाकर वह इस आशा से अहमदाबाद से चल पड़ा कि जब मैं ऐसे नामी राजा के साथ राजधानी के निकट पहुंचूंगा तब मेरे शुभचिंतकों को मेरे झंडे के नीचे आकर एकत्रित होने का साहस हो जाएगा। अस्तु यह सोचकर वह बहुत शीघ्र अजमेर में आ पहुंचा पर राजा यशवंत सिंह अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सके। कारण यह हुआ कि राजा जयसिंह यह सोचकर कि लड़ाई का रंगढंग देखने से औरंगजेब की ही जीत की आशा होती है। उसको संतुष्ट करने के लिए यशवंत सिंह को दारा शिकोह का पक्ष छोड़ने की सलाह देना उचित समझा और लिखा कि "आपने डूबते हुए को साथी बनाने में क्या लाभ सोचा ? यदि आप इस विचार पर दृढ़ रहेंगे तो मेरी समझ में इससे कुछ लाभ तो होगा नहीं उलटे कदाचित आपको अपनी और अपने कुटुंब की दुरवस्था देखनी पड़ेगी और औरंगजेब आपको कभी क्षमा नहीं करेगा। और इसलिए कि मैं भी एक राजा हूं आपसे सविनय निवेदन करता हूं कि राजपूत वीरों के रक्त की नदी व्यर्थ न बहाइए और ऐसा न समझिए कि और राजा भी आपका साथ देंगे, क्योंकि मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगा। यह एक ऐसी बात है जो प्रत्येक हिंदू से संबंध रखती है, इसलिए आपको ऐसी आग भड़काने की अनुमति किस प्रकार दी जा सकती है जो देश भर में फैल जाए और फिर कोई उसको न बुझा सके। यदि आप दारा को जिस अवस्था में वह है उसी में पड़े रहने देंगे तो औरंगजेब आपके सब पिछले अपराध क्षमा कर देगा और वह धन भी नहीं मांगेगा जो आपने खजुआ की लड़ाई में लूट लिया था, बल्कि तुरंत गुजरात की सूबेदारी आपको मिल जाएगी। आप समझ सकते हैं कि एक ऐसे प्रांत के अधिकार का प्राप्त होना जो आपके राज्य के सन्निकट है कितने लाभ की बात है। वहां निश्चिंत भाव से आप बड़े आनंद से रह सकते हैं। जो प्रतिज्ञा मैं इस पत्र में करता हूं उसके पूरा करने का भार मैं अपने ऊपर लेता हूं।" राजा यशवंत सिंह पर जयसिंह के इस पत्र का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने घर से बाहर न निकलने का निश्चय कर लिया और औरंगजेब

सेना लेकर अजमेर में दारा शिकोह की सेना के सामने जा पहुंचा।

अब ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे इस इतिहास को पढ़कर इस बात का दुख न होगा कि अभागे दारा को लोगों ने कैसे कैसे उलटे उपाय बतलाए और अंत में उसे कैसा धोखा दिया। यद्यपि यशवंत सिंह के विचारों के बदले जाने का हाल उसे मालूम हो गया पर उसके भयंकर परिणाम को कौन रोक सकता था। वह निसंदेह अपनी सेना को अहमदाबाद ले जाता पर प्रचंड गर्मी पड़ रही थी और जल के अभाव के कारण जो इस ऋतु में हो जाता है 30-35 दिन तक उन राजाओं के देशों में जो यशवंत सिंह के मित्र और हितैषी थे यात्रा करना अत्यंत कठिन था। इस पर विशेषता यह थी कि औरंगजेब-सा प्रवीण शत्रु नई और सबल सेना लिए हुए उसके पीछे लगा हुआ था। अतएव अंत में उसने वीरतापूर्वक रणक्षेत्र में प्राण दे देना उचित समझा। यद्यपि वह जानता था कि यह लड़ाई बराबर की नहीं होगी तो भी उसने सोचा कि क्या चिंता है, या तो शत्रु मार लेंगे या स्वयं मर जाएंगे। पर अब तक भी बेचारे दारा के लिए जो प्रपंच रचे जाते थे वे उसको मालूम नहीं थे। जिन पर कुछ भी संदेह नहीं किया जाता था वे ही उसकी दुर्दशा के लिए घात में लगे थे। दुष्ट शाहनेवाजखां जिस पर उसे पूरा भरोसा था बराबर औरंगजेब से पत्र व्यवहार करता और दारा की सब युक्तियां छिपी रीति से उस पर प्रकट कर देता। परंतु इस विश्वासघात का दंड उसे शीघ्र मिल गया अर्थात वह लड़ाई में मारा गया। कुछ लोग कहते हैं कि स्वयं दारा शिकोह के हाथ से उसकी मृत्यु हुई, पर अधिक सच्ची यह बात मालूम होती है कि उसे दारा शिकोह के उन गुप्त हितैषियों ने जो औरंगजेब की सेना में थे इस भय से मार डाला कि यदि यह जीवित रहेगा तो हमारा सब भेद खोल देगा और उन प्रार्थना पत्रों का हाल उससे कहेगा जो हम दारा शिकोह की सेवा में भेजते रहे हैं। परंतु अब इस विश्वासघाती के मारे जाने से क्या लाभ था। दारा को तो उसी समय उसके साथ समझ बूझ कर उचित बरताव करना उचित था जिस समय उसके मित्रों ने समझाया था कि शाहनेवाजखां विश्वास के योग्य नहीं है, इससे सावधान रहना।

अस्तु, पहर दिन चढ़ने पर लड़ाई आरंभ हुई। दारा के तोपखाने से जो कुछ ऊंचे और उचित स्थान पर लगा था पहले गोलों के छूटने के भारी शब्द सुनाई दिए। पर ऐसा कहा जाता है कि उसके शत्रुओं ने यहां तक जाल फैला रखा था कि इन तोपों से शब्द मात्र किए जाते थे, इनकी थैलियां बिना गोलों की भरी हुई थीं। इस लड़ाई का वर्णन करना व्यर्थ है, क्योंकि इसे लड़ाई नहीं किंतु प्रपंच से भरा एक नाशकारक उत्पात कहना चाहिए। पहला गोला चलते ही राजा जयसिंह एक ऐसे स्थान पर आकर खड़े हुए जहां से दारा उनको देख सकता था। वहां जाकर उन्होंने एक सरदार के द्वारा यह संदेशा उसके पास भेजा कि ''यदि तुम पकड़े जाने से बचना चाहते हो तो तुरंत युद्ध-क्षेत्र से अलग हो जाओ।'' संदेशा पाते ही उस बेचारे राजकुमार

के चित्त में ऐसा भय समाया कि वह सामग्री इत्यादि की ओर कुछ भी ध्यान न देकर एकदम रणक्षेत्र छोड़कर भाग गया। उसने अपने बाल बच्चों को सकुशल निकाल ले जाना ही बहुत समझा क्योंकि उस समय वह एकदम जयसिंह के अधिकार में था। राजा जयसिंह की नीति थी कि वे सभी राजकुमारों के साथ सदा प्रतिष्ठा का बरताव करते थे क्योंकि वे सोचते थे कि राजकुल के किसी व्यक्ति के साथ अनुचित बरताव करने का किसी न किसी दिन बहुत बुरा परिणाम हो सकता है।

बेचारा दुखियारा दारा जिसका बचाव केवल अहमदाबाद पर पुनः अधिकार प्राप्त करने पर निर्भर करता था। ऐसे लंबे चौड़े प्रदेश में होकर जाने को विवश था जो प्रायः सब के सब विपक्षी राजाओं के अधीन थे। खेमे तक उसके पास नहीं थे और अधिक से अधिक गर्मी पड़ रही थी और उस पर विशेषता यह थी कि कोली लोग रात दिन पीछा नहीं छोड़ते थे। उसके सिपाहियों को वे इतना लूटते और काटते थे कि केवल कई पग पीछे रह जाना भी महा भयंकर था। ये कोली इस देश के किसान हैं जो बड़े ही लुटेरे और भारतवर्ष में एक ही दुष्ट हैं। अस्तु, इन सब कठिनाइयों और आपदाओं से बचकर यद्यपि दारा एक ऐसे स्थान तक पहुंच गया जहां से अहमदाबाद केवल एक दिन में पहुंचा जा सकता था और उसे आशा भी हुई थी कि कल अपने को मैं अहमदाबाद में पाऊंगा और फिर एक सेना एकत्रित कर लूंगा। पर भाग्यहीन और हारे हुए लोगों की आशालता क्या कभी लहलहाती है ?—उस व्यक्ति ने जिसको वह अहमदाबाद का किलेदार और प्रबंधकर्ता बनाकर पीछे छोड़ आया था यह स्वामिद्रोहिता और दुष्टता की, कि या तो औरंगजेब के धमकाने से या कुछ लालच दिखलाने से वह दारा के विरुद्ध हो गया और इस आशय का एक पत्र उसने इसके पास लिख भेजा कि नगर के निकट न आइएगा, फाटक बंद हैं और लोग अस्त्र शस्त्र से सज्जित खड़े हैं।

इस समय मैं भी तीन दिन से दारा शिकोह के साथ था। मैं उसे अचानक मार्ग में मिल गया था। उसके साथ कोई वैद्य नहीं था इसलिए उसने मुझे जबर्दस्ती अपने साथ ले लिया था। अहमदाबाद के गवर्नर का पत्र पहुंचने से एक दिन पहले की बात है कि दारा ने मुझ से कहा कि कदाचित आपको कोली मार डालें। यह कहकर वह आग्रहपूर्वक मुझे अपने साथ उस कारवां में ले गया जहां वह स्वयं ठहरा था। अब उसकी यह दशा थी कि एक खेमा तक उसके पास नहीं था। उसकी बेगम और स्त्रियां केवल एक कनात की आड़ में थीं। कनात की रस्सियां मेरी सवारी की बहली की पहियों से जिसमें मैं सोया करता था बांधी गई थीं। जो लोग इस बात को जानते हैं कि भारतवर्ष के अमीर लोग अपनी स्त्रियों के पर्दे के विषय में कितनी अत्युक्ति करते हैं वे मेरी इस लिखावट पर विश्वास न करेंगे। परंतु मैंने इस घटना का हाल उस की दुखद अवस्था के प्रमाण में लिखा है जिसमें दारा उस समय पड़ा हुआ था। अस्तु उसी रात को पौ फटने के समय जब अहमदाबाद

के हाकिम का उक्त संदेश आया तब औरतों के रोने चिल्लाने ने हम सबको रुला दिया। उस समय एक विलक्षण प्रकार की हैरानी और निराशा छा रही थी, सभी डर के मारे चुपचाप एक दूसरे का मुख देखते थे, कोई उपाय नहीं सूझता था, कुछ नहीं मालूम था कि क्षण भर में क्या हो जाएगा। जब दारा शिकोह स्त्रियों से मिलकर कनात के बाहर आया तब मैंने देखा कि उसके मुख पर मुर्दनी-सी छा रही है वह कभी इससे कुछ कहता है कभी उससे कुछ बात करता है, एक साधारण सिपाही से भी पूछता है कि अब क्या करना चाहिए। जब उसने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति डरा और घबराया हुआ मालूम होता है तब उसे विश्वास हो गया कि संभवतया अब इनमें से एक भी मेरा साथ न देगा। वह बड़ा ही हैरान था कि अब क्या होगा, किधर जाना चाहिए, यहां ठहरने से तो खराबी ही खराबी दीखती है।

इस तीन दिन की अवधि में जब कि मैं दारा के साथ था हम लोगों को रात दिन बिना कहीं ठहरे हुए जाना पड़ा। गर्मी ऐसी प्रचंड थी और धूल इतनी उड़ती थी कि दम घुटा जाता था। मेरी बहली के तीन बहुत सुंदर और बड़े गुजराती बैलों में से एक मर चुका था, दूसरा मरने की दशा को पहुंच चुका था और तीसरा इतना थक गया था कि चल नहीं सकता था। यद्यपि दारा बहुत चाहता था कि मैं उसके साथ रहूं, विशेषकर इस कारण से कि उसकी एक बेगम के पैर में बहुत बुरा घाव था, पर वह इस दुर्दशा को पहुंच गया था कि धमकाने और अनुनय विनय करने पर भी किसी ने उसको मेरी सवारी के लिए कोई घोड़ा या बैल या ऊंट नहीं दिया। जब कोई सवारी नहीं मिली तब लाचार होकर मैं पीछे रह गया। दारा को चार-पांच सौ सवारों के साथ जाते देखकर (क्योंकि घटते घटते अब उसके साथ इतने ही सवार रह गए थे) मैं एकदम रो पड़ा। परंतु अब तक भी दो हाथी उसके साथ थे जिन पर लोग कहते थे कि रुपए और अशर्फियां लदी हुई हैं। उस समय मैं समझा था कि दारा ठट्ठ की ओर जाएगा और वर्तमान अवस्थाओं को देखते हुए यह उपाय कदाचित कुछ बुरा नहीं था, पर वास्तविक बात तो यह है कि इधर भी विपत्ति का सामना था और उधर भी। मुझे कदापि ऐसी आशा नहीं थी कि वह उस मरुस्थान से जो अहमदाबाद और ठट्ठ के बीच में है कुशलपूर्वक बचकर निकल जाएगा। हुआ भी ऐसा ही। उसके साथियों में से बहुत-सी स्त्रियां मर गईं और पुरुषों पर तो ऐसी आपदा आई कि कुछ तो भूख-प्यास और थकावट से मर गए और अधिकांश को निर्दयी कोलियों ने मार डाला। यदि ऐसी आपदाओं से भरी यात्रा में स्वयं दारा शिकोह मर जाता तो मैं उसे बड़ा ही भाग्यवान समझता, पर सब प्रकार के कष्ट और विपत्ति सहता हुआ अंत में वह कच्छ प्रांत में पहुंच गया।

यहां के राजा ने जैसा कि चाहिए बड़ी उत्तम रीति से उसका स्वागत किया और अपने यहां उसे स्थान दिया, पश्चात उसने दारा से कहा कि यदि आप अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र से कर दें तो मैं अपनी सब सेना आपकी सहायता के

लिए उपस्थित कर दूं। परंतु पीछे जिस प्रकार यशवंत सिंह पर जयसिंह का जादू चल गया था उसी प्रकार यहां भी हुआ। शीघ्र ही उसके भाव बदले हुए दिखाई दिए। जब कई बातों से दारा शिकोह ने देख लिया कि यह दुष्ट तो मेरे प्राण ही लेना चाहता है तब वह तुरंत वहां से ठट्ठ की ओर चल दिया।

अब यदि मैं वह हाल कहने लगूं कि किस प्रकार दुष्ट कोलियों से मेरा सामना हुआ, किस रीति से मैंने उनको अपने ऊपर प्रसन्न किया और किस युक्ति से वह थोड़ा-सा रुपया जो मेरे पास था बच गया, तो कदाचित इस पुस्तक के पढ़ने वाले ऊब जाएंगे अतएव संक्षेप में यह है कि मैंने अपनी डाक्टरी विद्या की बड़ी प्रशंसा की और मेरे दो नौकरों ने भी जो उसी भय से डूबे हुए थे जिसमें मैं था उनको यही जताया कि डाक्टरी विद्या के ज्ञान और अनुभव में इस संसार में हमारे स्वामी की कोई बराबरी नहीं कर सकता। दारा शिकोह के सिपाहियों ने इसको ऐसा सताया है कि जो कुछ बहुमूल्य माल अस्वाब इसके पास था वह सब इससे छीन लिया गया है। निदान हम लोगों के सौभाग्य से इतना कहने सुनने का यह परिणाम हुआ कि दुष्ट कोलियों का मन कुछ पसीज गया। हम तीनों को सात आठ दिनों तक कैद रखने के बाद अंत में एक बैल हमारी गाड़ी में जोतकर उन्होंने हम को वहां तक पहुंचा दिया जहां से अहमदाबाद के गुंबट दिखाई पड़ते थे। इस नगर में एक अमीर से मेरी मुलाकात हो गई जो देहली को जाता था और उसी की शरण में मैं यहां तक चला आया। मार्ग में स्थान स्थान पर आदमियों, हाथियों, घोड़ों, ऊंटों और बैलों की लाशें दिखाई पड़ीं जो दारा शिकोह की दुर्दशाग्रस्त सेना का हाल मानो गला फाड़कर सुनां रही थीं।

जिस समय दारा ठट्ठ की आपदापूर्ण यात्रा में लगा हुआ था उस समय बंगाल में लड़ाई पहले की तरह हो रही थी और शुजा अपने शत्रुओं को आशा से बहुत बढ़ कर साहस और उद्योग दिखा रहा था तथापि औरंगजेब को उसकी ओर से कुछ अधिक चिंता नहीं थी क्योंकि मीर जुमला की युक्ति और बुद्धिमानी से वह भली भांति परिचित था। हां जिस बात का उसे विशेष खटका था वह यह था कि सुलेमान शिकोह निकट था और यह चिंता साधारणतया फैली हुई थी कि श्रीनगर से जहां से आगरा आठ दिन से भी कम का मार्ग है वह वहां के राजा और सेना समेत उतरने वाला है। औरंगज़ेब ऐसा बुद्धिहीन नहीं था कि ऐसे शत्रु को तुच्छ समझता सो अब सबको अधिकतर इसी बात की चिंता थी कि किस तरह सुलेमान शिकोह को वश में लाना चाहिए। इसका सबसे उत्तम उपाय उसकी समझ में यह आया कि राजा जयसिंह के ही द्वारा इस राजा से भी कुछ बंदोबस्त किया जाए। निदान जयसिंह ने श्रीनगरनरेश के पास इस आशय का एक पत्र लिखा कि यदि आप सुलेमान शिकोह को पकड़ कर भेज देंगे तो आपको बड़े बड़े इनाम मिलेंगे नहीं तो बहुत हानि उठाएंगे। इस पत्र का उसने यह उत्तर दिया कि चाहे मेरा संपूर्ण देश मुझ से छीन लिया जाए

पर मैं ऐसी अप्रतिष्ठा और कापुरुषता का काम नहीं करूंगा। जब औरंगजेब ने देख लिया कि धमकी वा लालच देने से कुछ नहीं हो सकता, यह राजा न्याय के विरुद्ध न होगा, तब उसने अपनी सेना को पहाड़ तली की ओर भेजा और अनगिनत बेलदार पहाड़ों को काटकर रास्ता चौड़ा करने के लिए नियुक्त किए पर राजा अपने विपक्षियों के इन व्यर्थ के उद्योगों को जो उसके देश में प्रवेश करने के लिए नाहक किए जाते थे निरा बच्चों का खेल समझता और हंसता था। वास्तव में उसका हंसना ठीक था, क्योंकि यदि औरंगजेब जैसे चार बादशाह भी मिलकर उस पहाड़ी देश पर चढ़ाई करते तो भी उन कुढब्बे पहाड़ी मार्गों में प्रवेश न कर सकते। अंत में हुआ भी यही कि औरंगजेब को क्रोध में आकर अपनी सेना पीछे बुलानी पड़ी।

इस बीच में दारा शिकोह ठट्ठ के निकट पहुंच चुका था और केवल दो तीन दिन का मार्ग ही बाकी था। मुझको उन फ्रांसीसियों और कई दूसरे यूरोपियनों से जो इस दुर्ग की सेना में थे मालूम हुआ कि यहां पहुंचकर दारा को यह समाचार मिला कि मीर बाबा ने जो बहुत दिनों से दुर्ग को घेरे हुए था भीतर वालों को यहां तक तंग कर दिया है कि आध सेर मांस या चावल 2॥) को मिलता है और दूसरी वस्तुएं भी बहुत तेज हैं, तो भी बहादुर किलेदार अब तक उसी प्रकार साहस किए हुए हैं, बल्कि प्रायः वह दुर्ग के बाहर निकल कर शत्रुओं पर ऐसे आक्रमण करता है जैसे चाहिए, हर प्रकार की सचाई, वीरता और स्वामिभक्ति से मीर बाबा के आक्रमणों को रोकता है और औरंगजेब की धमकियों तथा प्रतिज्ञाओं पर हंसता है। उसके इस प्रशंसनीय काम के विषय में वे यूरोपियन भी जो उसकी सेना में थे कहते थे कि सब सच है। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि जब उसको दारा के निकट आने का संवाद मिला तब उसने और भी उत्साह दिखलाया और इस प्रकार सिपाहियों का मन अपने हाथ में कर लिया कि दुर्ग वाले मीर बाबा का घिराव तोड़ कर दारा को दुर्ग में लाने के लिए अपने प्राण दे देने को तैयार दिखाई दिए।

इसके अतिरिक्त उस साहसी सरदार ने और भी कई अच्छे उपायों से युक्ति निपुण जासूसों को मीर बाबा के सैन्य में भेजकर घेरा करने वालों के मन में इस बात का विश्वास उत्पन्न कर दिया कि दारा एक बहुत बड़ी सेना के साथ घेरा तोड़ देने के लिए यहां आ रहा है और अब शीघ्र पहुंचना चाहता है और यहां तक अत्युक्ति करके कहा कि हम दारा और उसकी सेना को अपनी आंखों से देख आए हैं। यह युक्ति ऐसी चलाई कि घेरे वालों के छक्के छूट गए। इसमें संदेह नहीं कि यदि दारा उस समय जा पहुंचता तो मीर बाबा के लोग अवश्य तितर-बितर हो जाते, वरन उनमें से कुछ लोग उसकी ओर हो जाते, पर उसके भाग्य में ऐसा ही लिखा था कि किसी उद्योग में वह सफलता न प्राप्त करे ! अस्तु, यह समझकर कि थोड़े से आदमियों के साथ घेरे का तोड़ना असंभव है पहले तो उसको यह विचार हुआ कि सिंधुनद पार करके ईरान को चला जाए (यद्यपि इस उपाय का काम में आना बहुत

ही कठिन था, क्योंकि पठानों और बहुत से ऐसे छोटे छोटे सरदारों के देशों से होकर जाना पड़ता जो न तो ईरान के ही अधीन थे न हिंदुस्तान के) परंतु सब के सिवा उसकी बेगम ने एक निर्बल और वाहियात-सी बात कहकर उसका यह विचार भंग कर दिया। अर्थात उसने कहा कि "अगर आप ईरान जाने का कस्द करेंगे तो खूब समझ लीजिए कि मुझको और मेरी बेटी दोनों को शाह ईरान की लौंडिया बनना पड़ेगा, जो कि ऐसी बेइज्जती की बात है कि हमारे खानदान में किसी को गवारा न होगी।" इस बात को बेगम और दारा शिकोह दोनों भूल गए कि हुमायूं जब ऐसी ही आपदाओं में पड़कर ईरान गया था और उसकी बेगम भी उसके साथ थी तब उन दोनों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं हुआ था बल्कि बहुत ही सम्मान और शिष्टाचार से वहां उनका स्वागत हुआ था। अस्तु इसी प्रकार विचार करते करते दारा ने सोचा कि जीवनखां पठान के यहां जाना उचित होगा जो एक प्रसिद्ध और बलवान सरदार है और उसका स्थान भी कुछ बहुत दूर नहीं है। दारा के मन में जीवनखां की सहायता का ध्यान आने का कारण यह था उसके विद्रोह मचाने और दुष्टता करने के कारण शाहजहां ने दो बार उसे हाथी के पांवों के नीचे कुचलवा डालने की आज्ञा दी थी पर दोनों ही बार दारा के कहने सुनने से वह छूट गया था। दारा का इस समय उसके पास जाने से यह मतलब था कि उससे कुछ सामरिक सहायता लेकर वह मीर बाबा को ठट्ठ के दुर्ग से हटा सके और वह खजाना जो वहां के किलेदार के पास था लेकर कंधार चला जाए जहां से सहज में काबुल पहुंच सके। उसे विश्वास था कि उसके वहां पहुंच जाने पर काबुल का सूबेदार महताबखां (जो एक बहुत बड़ा भारी अमीर था और काबुल वाले उसे बहुत मानते थे) बिना कुछ आगा पीछा किए वरन बड़े प्रेम से उसकी सहायता करने को तैयार होगा, क्योंकि काबुल की सूबेदारी उसे इसी की मदद से मिली थी। इन कारणों से दारा का ऐसा सोचना कुछ बुरा नहीं था, परंतु उसकी स्त्रियां उसका यह विचार सुनकर बहुत ही घबराईं, चिंतित हुईं और बोलीं कि जीवनखां के यहां जाना उचित नहीं है बल्कि बेगम उसकी पुत्री और पुत्र शिफर शिकोह ने उसके पांवों पर गिर गिर कर प्रार्थना की कि आप उधर का विचार छोड़ दें क्योंकि यह पठान एक प्रसिद्ध डाकू और लुटेरा है, ऐसे आदमी पर भरोसा करना अपनी मृत्यु को आप बुलाना है। उन्होंने यह भी समझाया कि ठट्ठ का घिराव उठा देने की कुछ ऐसी आवश्यकता भी नहीं है, इस लड़ाई झगड़े में हाथ डाले बिना भी आप काबुल का मार्ग अवलंबन कर सकते हैं, क्योंकि मीर बाबा कभी ठट्ठ का घेरा छोड़कर आपका रास्ता नहीं रोकेगा। परंतु यह तो निश्चित बात थी कि दारा की उलटी समझ सदा उसको सीधे मार्ग से भटका देती थी इसी कारण उनकी बात उसको बिलकुल अच्छी नहीं मालूम हुई। उसने कहा कि काबुल की यात्रा बहुत ही कठिन और भयानक है और जिस व्यक्ति के प्राण मैंने बचाए हैं क्या संभव है कि वह इस समय मेरी सहायता न करेगा ? आखिर

बहुत समझाए और प्रार्थना किए जाने पर भी वह काबुल न जाकर (जहां की यात्रा वास्तव में भयंकर थी) जीवनखां पठान के यहां चला गया। सच है दुष्ट लोग अपनी नेकनामी बदनामी का कुछ भी भय न कर अपने सहायकों और शुभचिंतकों के भी प्राण लेने को तैयार हो जाते हैं। जब तक वह पठान अर्थात जीवनखां जिसके यहां दारा गया था यह समझता रहा कि दारा के साथ बहुत बड़ी सेना आती होगी तब तक तो उसने उसके साथ बड़े सम्मान का बरताव किया, उसके साथी सिपाहियों को सादर स्थान दिया और उनके आराम के प्रबंध कर देने की अपने आदमियों को आज्ञा दी, परंतु जब उसे मालूम हो गया कि दारा के साथ दो तीन सौ आदमियों से अधिक नहीं हैं तब तुरंत ही उसके भाव बदल गए यह नहीं पता लगता कि औरंगजेब के कहने से अथवा स्वयं अपनी इच्छा से उसने ऐसा विश्वासघात किया, पर जान पड़ता है कि अशर्फियों से लदे हुए उन कई खच्चरों को देखकर उसे लालच आ गया जो लूट मार से अब तक बचे हुए थे। अस्तु उसने यह दुष्टता की कि रात के समय बहुत से लड़ने भिड़ने वाले आदमी इकट्ठा करके पहले तो दारा के सब रुपये पैसे और स्त्रियों के आभूषण छीनकर अपने अधिकार में कर लिए पीछे दारा शिकोह और सिफर शिकोह पर आक्रमण किया और जिन लोगों ने उनको बचाना चाहा उन्हें मार डाला। इसके बाद दारा को बांधकर उसने एक हाथी पर बैठाया और एक बांधेक को इसलिए पीछे बैठा दिया कि यदि वह अथवा उसका और कोई पक्षपाती कुछ भी हाथ पांव हिलाए तो वधक उसी क्षण उसकी समाप्ति कर दे। इस प्रकार अप्रतिष्ठा के साथ उसने दारा को लाकर टट्ठ में मीर बाबा के सुपुर्द कर दिया। मीर बाबा ने आज्ञा दी कि इसे लाहौर होते हुए देहली ले जाओ।

जब भाग्यहीन दारा देहली के निकट पहुंचा, तब औरंगज़ेब ने अपने दरबारियों से इस बात की राय ली कि ग्वालियर के दुर्ग में कैद करने से पहले उसे आगरे में घुमाना चाहिए या नहीं ? इस पर कुछ लोगों ने तो यह उत्तर दिया कि ऐसा करना उचित नहीं क्योंकि प्रथम तो यह बात राजकुटुंब की प्रतिष्ठा के विपरीत है, दूसरे इसमें बलवा हो जाने का डर है और कुछ आश्चर्य नहीं कि लोग उसे छुड़ा लें ! पर प्रायः लोगों की यह राय हुई कि नहीं, उसे अवश्य नगर में एक बार घुमाना चाहिए ताकि दूसरे लोगों को भय हो, उन पर बादशाह का रौब छा जाए, जिन लोगों को अभी तक उसके पकड़े जाने में संदेह बना हुआ है उनका संदेह मिट जाए और उसके पीछे पक्षपातियों की आशाएं भंग हो जाएं ! अंत में औरंगजेब ने भी इसी राय को उचित समझा और दारा को नगर में घुमाने की आज्ञा दी। अभागा दारा और उसका पुत्र सिफर शिकोह दोनों एक ही हाथी पर बैठाए गए और वधक की जगह बहादुरखां को बैठाकर नगरपर्यटन कराया गया। परंतु वह सिंहलद्वीप वा पेरू का हाथी नहीं था जिस पर दारा बहुत बढ़िया सामग्रियों से सजाकर बैठा करता था और बहुमूल्य झूल तथा सैनिक आभूषणों से ढका रहता था, किंतु यह एक बहुत

ही सड़ियल और गंदा जानवर था। स्वयं उसके गले में भी बड़े बड़े मोतियों की माला, शरीर पर वह जरबख्त का कवा और सिर पर वह पगड़ी नहीं थी जो भारतवर्ष के बादशाह और उनके कुमार पहना करते हैं। इन वस्तुओं के स्थान में पिता पुत्र दोनों बहुत ही मोटे वस्त्र पहने थे। इसी दशा में दोनों शहर भर के बाजारों में फिराए गए। उनकी दशा देखकर मुझे भय होता था कि कहीं खूनखराबा न हो जाए। आश्चर्य है कि एक ऐसे राजकुमार के साथ जो लोगों को प्रिय था ऐसा बर्ताव करने का दरबारियों को कैसे साहस हुआ ? यह और भी आश्चर्य की बात है कि बचाव के लिए कुछ सेना भी साथ में नहीं भेजी गई थी, विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि औरंगजेब के अनुचित काम देखकर सब लोग कुछ दिनों से उससे बहुत ही रुष्ट हो रहे थे, अर्थात पहले पिता (शाहजहां) और पुत्र (मुहम्मद सुलतान) और फिर भाई (मुरादबख्श) को कैद कर लेने से लोग उससे बहुत ही असंतुष्ट थे।

इस अभागे का तमाशा देखने को बड़ी भीड़ जमा थी। स्थान स्थान पर खड़े होकर लोग दारा के दुर्भाग्य पर हाथ मल रहे थे। मैं भी नगर के सबसे बड़े बाजार में एक अच्छे स्थान पर अपने दो मित्रों तथा सेवकों के साथ बढ़िया घोड़े पर चढ़ा खड़ा था। सब ओर से रोने चिल्लाने के शब्द सुन पड़ते थे। स्त्री, पुरुष और बच्चे इस प्रकार चिल्लाते थे मानो उन पर बहुत ही भयानक विपत्ति पड़ी हो। दुष्ट जीवनखां घोड़े पर दारा के साथ था। चारों ओर से उस पर गालियों की बौछार पड़ रही थी; बल्कि कई एक फकीरों और गरीब आदमियों ने तो उस पाजी पठान पर पत्थर भी फेंके परंतु प्यारे राजकुमार को छुड़ाने का साहस किसी को नहीं हुआ।

दारा शिकोह की दुर्दशा—जब यह दुर्दशा की सवारी देहली नगर में सर्वत्र घूम चुकी तब अभागा कैदी अपने ही एक बाग में जिसका नाम दाराबाद है (प्राचीन नाम खिजिराबाद है) कैद किया गया परंतु उसके नगर में घुमाए जाने का सर्वसाधारण पर कैसा बुरा असर पड़ा, लोग जीवनखां पर कैसे क्रुद्ध हुए, किस प्रकार पत्थर मार मार कर कुछ लोगों ने उसे मार डालना चाहा और किस रीति से विद्रोह मच जाने के लक्षण दिखाई दिए, यह सब वृत्तांत औरंगजेब ने शीघ्र सुन लिया। सो फिर एक सभा की गई और राय ली गई कि पहले सोचे हुए उपाय के अनुसार कैदी को ग्वालियर भेज देना चाहिए, या वध कर डालना चाहिए। इस पर किसी किसी की तो यह सम्मति हुई कि वध कर डालने की इस समय कुछ विशेष आवश्यकता नहीं है, यदि पहरे और रक्षा का यथेष्ट प्रबंध हो सके तो उसे ग्वालियर भेज देने में हर्ज नहीं है, और दानिशमंदखां ने भी यद्यपि दारा से उसकी बनती नहीं थी बहुत जोर देकर कहा कि वह ग्वालियर भेजा जाए। परंतु अंत में अधिक लोगों की राय से यही निश्चित हुआ कि उसका वध किया जाए और उसके पुत्र सिफर शिकोह को ग्वालियर भेज दिया जाए। इस अवसर पर रोशनआरा बेगम ने भी अपना वह हार्दिक बैर अच्छी तरह

प्रकट किया जो वह अपने इस विवश भाई के साथ रखती थी। वह बराबर दानिशमंदखां की राय को रोकती और औरंगजेब को यह अमानुषिक कार्य करने के लिए उभारती रही। खलील उल्लाहखां और शाइस्तखां भी जो दारा के पुराने शत्रु थे इसी बात पर विशेष जोर देते थे। और करुंबखां नामक ईरानी ने भी, जिसका नाम पहले हकीम दाऊद था जो किसी कारण विशेष से भारतवर्ष में भागकर चला आया था जो बड़ा खुशामदी था और अभी थोड़े दिनों से साधारण अवस्था से उच्च अवस्था को प्राप्त हुआ था, इन दोनों का विकट पक्षपात किया। उसने इस सबसे बढ़कर कड़ी बातें कहीं और कठोर शब्दों में कड़ककर कहा कि दारा शिकोह को जिंदा छोड़ना हर्गिज मुनासिब नहीं है। सल्तनत की सलामती और हिफाजत इसी में है कि फौरन उसकी गर्दन मारी जाए। मुझे तो उसके कत्ल की सलाह देने में जरा भी ताम्मुल नहीं होता, क्यों कि वह बेदीन और काफिर है, और अगर ऐसे शख्स के कत्ल से कुछ गुनाह आयद होता हो तो वह मेरी गर्दन पर हो। ईश्वरेच्छा देखिए कि जैसा उसके मुंह से निकला था हुआ भी वैसा ही, अर्थात इस अविचार के रक्तपात का फल उसी को मिला, बहुत शीघ्र वह बड़ी दुर्दशा के साथ मारा गया।

निदान इस अन्याय, अविचार और निर्दयतापूर्ण रक्तपात के लिए नजीर नामक एक गुलाम जो शाहजहां के यहां पला था और किसी कारण से दारा से असंतुष्ट था चुना गया। एक दिन विष खिलाए जाने के भय से दारा और सिफर शिकोह बैठे अपने हाथ से दाल बना रहे थे कि सहसा नजीरखां चार दूसरे दुष्टों को लिए हुए उन दोनों के निकट जा पहुंचा। उसे देखते ही दारा ने सिफर शिकोह से कहा कि लो बेटा, हमारे कातिल आ गए। यह कहकर उसने रसोई घर की एक छोटी छुरी उठा ली, क्योंकि वहां और कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं था। परंतु उन वधकों में से एक ने तो सिफर शिकोह को पकड़ लिया और शेष सब उस पर टूट पड़े। उसको भूमि पर उन्होंने पटक दिया और नजीर उसका सिर काट कर तुरंत औरंगजेब के पास ले गया। औरंगजेब ने वह कटा हुआ सिर एक बर्तन में रखकर उसके मुख पर का रक्त धुलवाया। जब उसे निश्चय हो गया कि यह दारा ही का सिर है तब उसके नेत्रों से आंसू निकल पड़े और एक बार "ऐ बदबख्त !" कहकर वह बोला कि अच्छा इस दर्दङ्गेज सूरत को मेरे सामने से ले जाकर हुमायूं के मकबरे में दफन कर दो। अब दारा के कुटुंब का हाल सुनिए कि उसकी पुत्री तो उसी रात महल में भेज दी गई जो कुछ दिन के बाद शाहजहां और बेगम साहब (जहानआरा बेगम) की प्रार्थना से उन के सुपुर्द की गई, और उसकी बेगम ने पहले ही यह सोचकर कि दुखों का पहाड़ उठाना पड़ेगा मार्ग ही में लाहौर में विष खाकर अपने प्राणों का अंत कर दिया। रहा सिफर शिकोह वह ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया जहां कैद किया गया। (दारा शिकोह का सिर 22वीं अक्तूबर 1659 को काटा गया था)।

इस लोमहर्षक घटना के बाद जीवनखां तुरंत दरबार में बुलाया गया और कुछ

इनाम आदि देकर विदा कर दिया गया। परंतु वह दुष्ट भी अपनी क्रूरता का फल पाए बिना न रहा, अर्थात जिस समय वह देहली से लौटकर ऐसे स्थान में पहुंच गया जहां से उसका देश उससे दस बारह कोस ही रह गया था कि कुछ मनुष्यों ने जो पहले से घात लगाए जंगल में बैठे थे उसे घेर कर मार डाला।

शोक ! इस मूर्ख ने यह नहीं सोचा कि अत्याचारी और कठोर हृदय लोगों से यदि कोई कुछ पाप कर्म करने के लिए कहे तो यद्यपि अपना मतलब साधने के लिए वे करने को तैयार हो जाते हैं, परंतु मन में ऐसे काम कराने वालों से घृणा रखते हैं और जब मतलब निकल आता है तब उनको उनकी दुष्टता का दंड देने में भी नहीं चूकते।

वध करने से पहले जबर्दस्ती दारा से उस ख्वाजासरा के नाम जो इसकी ओर से ठट्ठ में लड़ रहा था इस आशय का एक पत्र लिखा लिया गया था कि तुम दुर्ग अपने प्रतिद्वंद्वियों को सौंप दो। परंतु उस वीर ने कुछ शीघ्रता न की, वरन इस बात पर अड़ा रहा कि दुर्ग खाली करने से पहले कुछ बातें तै कर ली जाएं। बेईमान मीर बाबा धोखा देने के लिए बड़ी प्रसन्नता से उसके कहे सब नियम स्वीकार कर दुर्ग के अंदर जा पहुंचा। परंतु जब थोड़े-से मित्रों के साथ वह बेचारा (दारा का नियुक्त किया हुआ किलेदार) लाहौर में आया तब खलील उल्लाहखां ने जो उस समय वहां का सूबेदार था बड़ी निर्दयता से उसका वध कर डाला। इस निर्दयता से वध किए जाने का कारण यह था कि यद्यपि वह प्रकट में यही कहता था कि हम यहां से देहली जाएंगे क्योंकि औरंगजेब उसके साहस और वीरत्व के सबब से उसे देखना चाहता था। परंतु उसकी यह इच्छा थी कि अपने साथियों के समेत श्रीनगर में जाकर वह सुलेमान शिकोह से जा मिले। उसके साथियों में बहुत से अंगरेज भी थे जिनको अपने अन्यान्य शुभचिंतकों के साथ उसने बहुत से इनाम दिए थे।

दारा शिकोह के कुटुंब में अब केवल सुलेमान शिकोह बच गया था। यदि राजा भय न खा जाता तो उसका श्रीनगर से निकलना सहज नहीं था। परंतु जयसिंह के पत्रों, औरंगजेब की प्रतिज्ञाओं और धमकियों, दारा के मारे जाने तथा आसपास के राजाओं की लड़ाई की तैयारियों ने अंत में उस निर्बल हृदय पहाड़ी राजा को अपने विचार से विचलित कर दिया। सो, जब सुलेमान शिकोह ने देखा कि अब यहां भी कुछ भरोसा नहीं है तब ऊबड़-खावड़ पर्वतों और कुढब मार्गों की कुछ भी चिंता न करके वह तिब्बत की ओर चल दिया परंतु इस पर राजा के पुत्र ने उसका पीछा किया। जिससे घायल होकर वह पकड़ा गया और सलीमगढ़ में जहां मुरादबख्श पहले से कैद था कैद किया गया।

औरंगजेब ने पहचान के लिए जिस प्रकार दारा शिकोह का सिर मंगवाया था उसी प्रकार सुलेमान शिकोह के लिए भी आज्ञा दी कि दरबार में सब रईस और उमरा की उपस्थिति के समय वह बुलाया जाए। मैं भी यह अनुचित तमाशा देखने

के लिए दरबार में गया था और जिस कौतुक और आश्चर्य से मैंने उसे देखा उसका वर्णन नहीं हो सकता। दरबार में लाने से पहले कैदी की बेड़ियां निकाल ली गई थीं, परंतु हथकड़ियां जिन पर सोने का मुलम्मा किया हुआ था ज्यों की त्यों बंधी थीं। मैंने देखा कि उस सुडौल शरीर के सुंदर स्वरूपवान युवक को देखकर दरबार के प्रायः लोग आंखों से आंसू बहा रहे थे और वे बेगमें भी जिनको दीवार की जालियों से झांककर देखने की अनुमति दी गई थी बहुत ही उदास हैं बल्कि स्वयं औरंगजेब ने भी भतीजे की दुरवस्था पर दुख प्रकट किया और प्रकाश में कृपा दिखाते हुए कहा कि खुदा पर नजर करो और इतमीनान रखो कि तुमको कुछ जरब न पहुंचाया जाएगा बल्कि तुम्हारे साथ मेहरबानी की जाएगी। तुम्हारा बाप तो सिर्फ इस वजह से कत्ल हुआ है कि वह काफिर और लामजहब हो गया था। इस पर सुलेमान शिकोह भारतवर्ष की रीति के अनुसार झुककर दोनों हाथ सिर तक ले आया अर्थात उसने प्रणाम किया। इसके बाद साहसपूर्वक उसने कहा अगर हुजूर की यह मंशा हो कि मुझे पोस्त पिलाई जाया करे तो बेहतर है कि मैं अभी कत्ल कर दिया जाऊं। इस पर प्रतिज्ञा करता हुआ औरंगजेब बोला कि "तुमको पोस्त हरगिज नहीं पिलाई जाएगी। बिलकुल इत्मीनान रखो।" इस पर दरबारियों के कहने से सुलेमान शिकोह ने पहले की तरह पुनः झुक कर प्रणाम किया। इसके बाद उस हाथी के विषय में कुछ बातें पूछी गईं जिस पर अशर्फियां लदी हुई थीं और जो श्रीनगर जाने के समय उससे छीन लिया गया था। जब यह प्रश्न हो चुका तब लोग उसे दीवाने आम से ले गए और दूसरे दिन वह ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया।

पोस्त से जिसका उल्लेख अभी ऊपर मैंने किया है यह मतलब है कि खसखस के छिलके को भिगो और मलकर निचोड़ लिया जाता है और वही रस प्रतिदिन कैदी राजकुमारों को हाथ मुंह धुलाकर कटोरा भर पिलाया जाता है जो इस कारण ग्वालियर के दुर्ग में कैद किए जाते हैं कि उनका खुलाखुली सिर कटवा डालना बादशाह उचित नहीं समझता। इसका यह नियम है कि जब तक कैदी इसे पी न ले तब तक उसे भोजन नहीं दिया जाता। यह पोस्त का रस इन बेचारे अभागे दुखियारे कैदियों को धीरे धीरे बिलकुल निस्तेज और निर्बल कर डालता है और परिणाम यह होता है कि उनको बुद्धिहीन होकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठना पड़ता है। मुझे विश्वास है कि यह पोस्त का रस ही सिफर शिकोह, मुरादबख्श और सुलेमान शिकोह को पिलाया गया था।

यद्यपि मुराद कैद था तथापि लोगों को उससे अब तक बहुत प्रीति थी और उसके वीरत्व तथा साहस की प्रशंसा में मुसलमान कवि प्रायः कविताएं रचते थे। अतएव औरंगजेब ने उसे भी खुलेआम मरवा डालना उचित समझा ताकि उसके पक्षपातियों के मन में इस बात की आशा बाकी न रहे कि वह अभी तक जीवित है। पोस्त पिला पिला कर चुपचाप प्राण ले लेने से उसका यह मतलब नहीं निकल

सकता था, इसलिए उसने यह उपाय निकाला कि कोई दोष लगाकर उसके दंडस्वरूप वह खुलाखुली मरवा डाला जाए और यह बात कुछ कठिन भी नहीं थी। निदान एक सैयद के कई पुत्र (जिनके पिता का मुराद ने उस समय उसकी धन संपत्ति के लोभ से वध करा डाला था जिस समय वह अहमदाबाद में युद्ध की तैयारियां कर रहा था) दरबार में मुराद के न्याय के लिए प्रार्थना करने और बदले में मुराद का सिर मांगते हुए आए। भला किसी दरबारी को उन वादियों के हटाने का साहस क्योंकर होता ? क्योंकि एक तो वह निर्दोष मनुष्य जो वध किया गया था सैयद अर्थात मुहम्मद की संतान था जो मुसलमानों का पूज्य है दूसरे यह बात सब लोग जानते थे कि न्याय की ओट में औरंगजेब अपने शत्रु भाई के प्राण नाश किया जाता है। सो उस सैयद के पुत्रों का दावा स्वीकृत हुआ और बिना किसी विशेष अदालती कार्रवाई के मुराद का सिर काटने की आज्ञा दे दी गई। वादी यह आज्ञा लेकर ग्वालियर को चलते हुए।

अब इस इतिहास का रोने रुलाने वाला भाग समाप्त होने पर आया क्योंकि राजकुटुंब में अब केवल सुलतान शुजा ही एक ऐसा व्यक्ति रह गया था जिसकी ओर से औरंगजेब को भय और चिंता लगी हुई थी। इस समय तक वह विलक्षण साहस और पुरुषत्व दिखा रहा था, परंतु अब उसने भी देख लिया कि औरंगजेब के बल और तेज का सामना करना असाध्य है क्योंकि मीर जुमला के पास सैनिक सहायता भेजी जा रही थी और अब उसकी सेनाओं ने चारों ओर से शुजा को घेर लिया था इसलिए जान बचाने की इच्छा से वह ढाके की ओर भाग गया जो समुद्र के किनारे बंगाल का सबसे अंतिम नगर है। अब यहां उसके पास समुद्र पार करने के लिए न तो कोई जहाज था और न वह यही जानता था कि प्राण रक्षा किधर जाने से होगी अतएव उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतान बाकी को अराकान के राजा के पास (जिसको मग्गह लोगों का देश भी कहते हैं) इस प्रार्थना के साथ भेजा कि यदि कुछ दिन के लिए आप आश्रय दे सकें तो हम लोग आपके पास आ जाएं और सीधी हवा के चलने की ऋतु आ जाए तब आप मुखा तक पहुंचाने के लिए अपना एक जहाज भी दे दें, जिस पर सवार होकर हम लोग पहले मक्का और फिर वहां से रूम वा ईरान को चले जाएं। राजा ने यह प्रार्थना स्वीकार की और उसके साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया। अंत में सुलतान बाकी बहुत-सी नावें लेकर (जिनके मल्लाह यूरोपियन अर्थात गोवा इत्यादि से भागे हुए पुर्तगीज और आवारे ईसाई थे जिन्होंने उस राजा की नौकरी कर ली थी और जिनका काम बंगाल के उन भागों को लूटते रहना था जो ढाके और अराकान की ओर समुद्र के निकट हैं) लौट गया और शुजा अपनी बेगम और तीनों पुत्रों तथा पुत्रियों के साथ उन पर सवार होकर अराकान पहुंचा। वहां पहुंचने पर यद्यपि राजा ने उसका आगत स्वागत बहुत बढ़कर नहीं किया परंतु आवश्यक चीजें उसने उपस्थित कर दीं।

अब यहां कदापि कई महीने बीत गए और अच्छी हवा की ऋतु भी आ गई, परंतु मुखा जाने के लिए जहाज देने का किसी ने नाम तक नहीं लिया। शुजा केवल इतना ही चाहता था कि उसे एक जहाज भाड़े पर मिल जाए क्योंकि उसके पास धन-संपत्ति बहुत थी और कदाचित उसके मारे जाने का कारण भी यह धन-संपत्ति हुई।

बात यह है कि ये जंगली बादशाह और राजे सच्ची उदारता जानते ही नहीं और अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण करने का इन्हें बहुत कम ध्यान रहता है। जिस काम में इनका लाभ होता है, प्रायः वही करते हैं वे यह नहीं सोचते कि इसका परिणाम जो पीछे उन्हीं को भोगना पड़ेगा क्या होगा ? और उनके हाथों से या तो दरिद्रता बचा सकती है या प्रबल शक्ति।

अस्तु, यद्यपि शुजा की ओर से मुखा जाने के लिए बहुत-सी प्रार्थनाएं हुईं परंतु उस जंगली राजा का मन तनिक भी न पिघला बल्कि उसने यहां तक धृष्टता की कि राजकुमार पर यह दोष लगाया कि अभी तक हमसे मिलने क्यों नहीं आए। मुझे यह बात विदित नहीं कि शुजा ने मान सम्मान के ध्यान से उससे मुलाकात करना उचित नहीं समझा या इस कारण से वह उससे मिलने नहीं गया कि कदाचित वह दुष्ट उसे कैद कर ले और उसका सब माल असबाब लूट ले। इसी समय मीर जुमला ने भी राजा को लिखा था और लोभ दिलाया था कि यदि तुम शुजा को पकड़कर मेरे हवाले कर दो तो तुमको बहुत से इनाम मिलेंगे। अस्तु, राजा के असंतोष का चाहे कुछ भी कारण हो स्वयं शुजा अब भी उससे मिलने के लिए उसके दरबार में नहीं गया किंतु सुलतान बाकी को उसने भेज दिया।

कहा जाता है कि जब यह राजकुमार राजा के महल के निकट पहुंचा तब इसने मार्ग में दीन दुखियों के आगे बहुत से रुपये और अशर्फियां फेंकी और जब यह राजा के पास पहुंचा तो उसको इसने बहुत-से वस्त्र आभूषणादि बहुमूल्य सामग्री भेंट में दी। इसके पश्चात अपने पिता के उपस्थित न होने का कारण बतलाते हुए कहा कि वे बीमार हैं और बहुत विनयपूर्वक कहा कि अब वह जहाज मिल जाना चाहिए जिसके लिए बहुत दिनों से प्रतिज्ञा हो रही है। परंतु इस मुलाकात से भी कुछ लाभ नहीं हुआ और पहली प्रार्थना की भांति यह प्रार्थना भी बिलकुल व्यर्थ गई। इसके 5-6 दिन बाद एक नया गुल खिला। अर्थात राजा ने एक दिन शुजा से स्पष्ट शब्दों में कहलाया कि तुम अपनी कन्या का विवाह मुझ से कर दो और जब शुजा ने इससे नाहीं की तब वह ऐसा क्रुद्ध हुआ कि शुजा आदि को वहां रहने में अपने प्राणों का नाश होने का भय मालूम हुआ। अब हाथ पर हाथ रखे बैठे रहना मानो काल की प्रतीक्षा करना था और यात्रा की ऋतु बीती जाती थी। अतएव उसने एक उपाय सोचा जो ठीक नहीं था। उसने देखा कि इस राजा के यहां बहुत से हमारे सजातीय लोग तथा समुद्र के किनारे पर लूटमार करने वाले वे पुर्तगीज

हैं जो पकड़ कर यहां लाए गए हैं। अतएव उसने निश्चय किया कि उनको किसी प्रकार अपने वश में कर तथा अपने साथ जो दो तीन सौ आदमी बंगाल से आए हैं उनको भी लेकर राजा के महल पर सहसा आक्रमण कर देना और उसके कुटुंब को नष्ट-भ्रष्ट कर डालना चाहिए। मैंने वहां के कुछ पुर्तगीजों और डचों से सुना कि इस उपाय में सफलता मिलना कुछ असाध्य वा असंभव नहीं था, परंतु इस घटना के एक दिन पहले ही सारा भेद खुल गया जिससे न केवल रही सही बात बिगड़ गई बल्कि उलटे शुजा के कुटुंब का नाश हो गया। अस्तु, इस भेद के खुल जाने पर उसने पेगू को भाग जाना चाहा, परंतु ऐसा करना एक प्रकार असाध्य था, क्योंकि रास्ते में ऐसे विकट पर्वत और दुर्गम वन थे कि जिनमें से होकर कोई भी ऐसा मार्ग नहीं गया था जिधर से लोग आते जाते हों। निदान उसका पीछा किया गया और भागने के आठ पहर बाद पकड़ा गया। उस समय यद्यपि वह वीरतापूर्वक लड़ा तथापि शत्रुओं ने उसे घेरकर उसके हाथ पांव बांध ही लिए।

सुलतान बाकी भी जो अपने पिता से कुछ पीछे रह गया था वैसी ही वीरता से लड़ा जैसी वीरता से वीर पुरुष लड़ते हैं परंतु आखिर शत्रुओं ने उसे चारों ओर से घेर कर उस पर इतने पत्थर मारे कि उसका सारा शरीर लहूलुहान हो गया और लड़ाई समाप्त होने पर वे जंगली उसकी मां तथा उसके दोनों छोटे भाइयों और बहनों को पकड़ ले गए।

अब इसके आगे इस विषय में कुछ ठीक विश्वास के योग्य बात नहीं मालूम होती कि शुजा कहां गया। कुछ लोग कहते हैं कि वह कुशल क्षेम से निकलकर एक पर्वत के शिखर पर जा चढ़ा था और उसके साथ एक ख्वाजासरा एक स्त्री तथा दो पुरुष और थे परंतु उसके सिर में पत्थर से एक इतना गहरा घाव हो गया था कि पहाड़ पर पहुंचते ही वह चक्कर खाकर गिर पड़ा और उस समय उसी ख्वाजासरा ने अपनी पगड़ी फाड़कर उसका घाव बांध दिया था जिससे वह पुनः सचेत हो कर जंगल में जा घुसा था। इसके अतिरिक्त और चार तरह की बातें उन्हीं लोगों के मुख से सुन पड़ी थीं जो लड़ाई के समय विद्यमान थे परंतु वे एक दूसरे से मिलती नहीं। बहुत से लोगों ने मुझे इस बात का विश्वास दिलाया कि उसका शव वहीं मैदान में मृत पुरुषों में पड़ा था परंतु चेहरा इतना बिगड़ गया था कि पहचान नहीं पड़ता था और डचों के कार्यालय के एक प्रतिष्ठित अफसर की चिट्ठी मैंने स्वयं देखी जिससे भी यही बात प्रमाणित होती थी। परंतु फिर भी जैसा कि चाहिए एकदम विश्वास उत्पन्न करने वाली कोई बात नहीं थी। इसी कारण देहली में कई बार ऐसी किंवदंतियां उड़ीं जिनसे व्यर्थ लोगों के कान बार बार खड़े हो जाते थे। एक बार तो आंदोलन मचा कि शुजा मछलीपटन पहुंच गया है और गोलकुंडा तथा बीजापुर के नरेशों ने उससे प्रतिज्ञा की है कि हम अपनी सेनाओं से तुम्हारी सहायता करेंगे। फिर बड़ी पक्की रीति से यह खबर उड़ी कि वह दो जहाजों पर जिन पर लाल पताकाएं

उड़ रही थीं सूरत के सामने से हो कर गया है और ये जहाज उसको पेगू किंवा श्याम के बादशाह ने दिए हैं। कुछ दिन बाद यह सुनाई दिया कि शुजा कंदहार पहुंच गया और वहां पहुंच कर काबुल पर आक्रमण करने की तैयारियां कर रहा है। एक बार औरंगजेब ने कहा कि शुजा तो हाजी हो गया अर्थात वह मक्के पहुंच गया, परंतु उसका ऐसा कहना कदाचित आक्षेप से पूर्ण था। एक यह बात भी फैली थी कि शुजा बहुत-सा माल लिए हुए ईरान में पहुंचा है। परंतु मैं इन किंवदंतियों पर विश्वास नहीं करता। मेरी राय में वह चिट्ठी विश्वास के योग्य है जो मैंने डचों के कार्यालय के एक बड़े अफसर के पास देखी थी और जिसमें लिखा था कि शुजा अराकान से भागने के समय पकड़ा जाकर मारा गया। उसके एक ख्वाजासरा ने जिसके साथ मैं बंगाल से मछलीपटन गया था तथा एक दूसरे व्यक्ति ने भी जो उसके तोपखाने का सरदार और पीछे गोलकुंडा नरेश के यहां काम करता था मुझसे यही कहा था कि शुजा वास्तव में मर चुका है परंतु उन दोनों में से किसी ने उसके मरने का पूरा पूरा हाल मुझे बतलाना नहीं चाहा। कुछ फ्रांसीसी व्यापारियों ने जो सीधे इस्फहान से (इस्फहान उस समय ईरान की राजधानी थी) आए थे और जिनसे देहली में मेरी बातें हुई थीं कहा कि ईरान में हमने कभी उसका नाम भी नहीं सुना। इसके अतिरिक्त उसके मारे जाने का एक यह भी प्रमाण है कि उसके पराजय के साथ ही उसकी तलवार तथा उसका खंजर दोनों पड़े हुए मिले। ऐसी अवस्था में यदि वह वास्तव में जंगल में भाग गया होता जैसा कि लोग कहते थे तो भी वह जीवित न बचता क्योंकि वहां या तो चोरों और लुटेरों ने उसे मार डाला होगा या शेर हाथी आदि भयानक जंतुओं ने जो कि वहां के जंगलों में अधिकता से थे।

अस्तु, सुलतान शुजा के मरने वा जीवित रहने के विषय में चाहे कुछ भी संदेह हो परंतु उसके कुटुंब के लोगों पर जो आपदाएं पड़ीं उनके संबंध में जो किंवदंतियां प्रसिद्ध हैं और उन पर अविश्वास का कोई कारण दिखाई नहीं देता। उन बेचारों (शुजा के कुटुंब के लोगों) की आपदाओं का वृत्तांत इस प्रकार है कि जब वे पकड़ कर लाए गए तब क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या बच्चे सब के सब कैद कर दिए गए और उनके साथ बड़ी ही निर्दयता की गई। परंतु कुछ दिनों के बाद वे छोड़ दिए गए और उन पर कुछ कृपा भी हुई। शुजा की बड़ी लड़की से राजा ने विवाह कर लिया और ऐसा कहा जाता है कि स्वयं राजा की मां सुलतान बाकी से अपना संबंध करना चाहती थी ? इतने में सुलतान बाकी कुछ नौकरों, उन्हीं मुसलमानों से मिलकर जिनके विषय में ऊपर कहा जा चुका है फिर वैसा ही आक्रमण करने का प्रबंध करने लगे परंतु उनमें से एक असावधान पुरुष जो कदाचित शराब पीकर और भी बुद्धिहीन हो गया था नशे के आवेश में इस रहस्य को छिपा न सका। ठीक आक्रमण के दिन सब भेद खुल गया। यद्यपि इस विषय में भी बहुत-सी बातें प्रसिद्ध हैं परंतु जो बात विश्वास के योग्य कही जा सकती है वह केवल इतनी ही है कि इससे

राजा इतना असंतुष्ट हुआ कि उसने शुजा के कुटुंब भर के वध किए जाने की आज्ञा दी। यहां तक की शुजा की वह लड़की भी जिसके साथ उसने विवाह कर लिया था और जो गर्भवती थी निर्दयतापूर्वक मारी गई और सुलतान बाकी तथा उसके भाइयों के सिर कुल्हाड़ियों से काटे गए। उसके कुटुंब की दूसरी स्त्रियां ऐसी कड़ाई से कैद की गई कि भूख के मारे वहीं उनके प्राण निकल गए।

निदान युद्ध की वह आग जो एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए भाइयों में भड़क उठी थी, पांच या छह वर्ष के अंदर अर्थात प्रायः सन् 1655 ई. से 1660 या 61 ई. तक समाप्ति को पहुंची और औरंगजेब इस विशाल राज्य का अकेला बादशाह बन बैठा।

भाइयों की लड़ाई समाप्त—लड़ाई समाप्त होते ही उजबक जाति के तातारियों ने बड़ी शीघ्रता से धन्यवाद देने के लिए अपने अपने एलची औरंगजेब के पास भेजे। एक बार समरकंद और बल्ख के खांमें में परस्पर लड़ाई हुई थी। उस समय समरकंद की सहायता के लिए शाहजहां ने औरंगजेब को अपना सेनापति बनाकर भेजा था। औरंगजेब ने उस अवसर पर बड़ी वीरता दिखाई थी परंतु जबकि वह बल्ख की राजगद्दी स्वयं ले लेने को था तब उन्होंने शत्रुता छोड़कर परस्पर मैत्री कर ली थी और इस कारण इसके सिपाहियों को वहां से निकाल देने की चेष्टा की थी कि आपस की फूट के कारण कहीं यह दोनों ही राज्यों को हड़प न कर ले।

अस्तु, भाइयों की लड़ाई समाप्त होने तथा औरंगजेब के निष्कंटक होकर देहली के सिंहासन पर बैठने के बाद उन्होंने या तो यह सोचकर बहुत शीघ्र बधाई देने के लिए अपने एलची उसके पास भेजे कि यद्यपि शाहजहां अभी जीवित है परंतु सब लोगों ने उसके पुत्र को ही बादशाह मान लिया है इसलिए कदाचित वह पिछली बातों का बदला ले या यह सोचकर कि भारतवर्ष की बहुत बढ़िया बढ़िया चीजें भेंट में प्राप्त होंगी। जो हो, औरंगजेब इन बातों को भलीभांति समझता था, तो भी उसने उचित रीति पर उनका स्वागत किया और उनके साथ उत्तम व्यवहार किया।

उस दिन मैं स्वयं दरबार में उपस्थित था इसलिए हर एक बात का ठीक ठीक वर्णन कर सकता हूं। मैंने देखा कि उन एलचियों ने हिंदुस्तानी दरबार की रीति के अनुसार कुछ दूर से बादशाह को सलाम किया—अर्थात झुककर तीन बार अपने दोनों हाथ जमीन की ओर लें जाकर फिर तीनों ही बार हाथ सिर तक लाकर अधीनता प्रगट की। इसके बाद यद्यपि वे इतने निकट पहुंच गए थे कि औरंगजेब स्वयं उनके हाथ से पत्र ले सकता था परंतु यह काम एक अमीर के द्वारा हुआ। अर्थात उसने उसे लेकर खोला और फिर बादशाह को दिया। औरंगजेब ने उस खरीते वा पत्र को पढ़कर आज्ञा दी कि प्रत्येक एलची को सिर से पैर तक के सब वस्त्र दिए जाएं। आज्ञानुसार हर एक को एक एक सुनहरी बहुमूल्य कुर्ता, एक एक पगड़ी और एक

एक रेशमी पटुका दिया गया। इसके उपरांत जो भेंट की वस्तुएं वे अपने खान की ओर से लाए थे वे उपस्थित की गईं। बहुत ही उत्तम लाजवर्द के बने हुए कई संदूक, लंबे लंबे बालों वाले कई ऊंट, कुछ सुंदर तुर्की घोड़े, कई ऊंट के बोझ के ताजे मेवे जैसे सेब, नाशपाती, अंगूर, सर्दे इत्यादि जो देहली में प्रायः उसी देश से आते और जाड़े भर बिका करते हैं और उतने ही सूखे मेवे जैसे आलूबोखारा, खूबानी, किशमिश, तरह तरह के कैले और सफेद बहुत बड़े बड़े अत्यंत स्वादिष्ट अंगूर सामने आए जिनको देखकर औरंगजेब ने एलचियों से कहा कि खान साहबों के इन तोहफों से हम बहुत खुश हुए। इसके पश्चात मेवों, घोड़ों तथा ऊंटों की प्रशंसा कर और उनके देश की उर्वरता की बात कहकर समरकंद के बड़े विद्यालय के विषय में कुछ प्रश्न किए। अंत में कहा कि अच्छा अब आप आराम कीजिए और बीच बीच में दरबार में आते रहिए। हम आपकी मुलाकात से खुश होंगे।

जिस ढंग से एलचियों का आदर सत्कार किया गया उससे वे बहुत प्रसन्न और संतुष्ट होकर लौटे और भारतवर्ष की सलाम करने की रीति से जो वास्तव में अप्रतिष्ठा है कुछ दुखित नहीं दिखाई दिए। वे इसी से कुछ रुष्ट हुए कि स्वयं बादशाह ने उनके हाथ से खरीते क्यों नहीं लिए। मुझे तो इतना विश्वास है कि इनको साष्टांग दंडवत करने को कहा जाता या इससे भी बढ़कर किसी सीधी रीति से सलाम करने की इच्छा प्रगट की जाती तो ये उसके करने में भी कुछ आगा पीछा न करते। परंतु इसके साथ ही यह समझ लेना चाहिए कि यदि अपने देश की प्रथा के अनुसार सलाम करने अथवा बादशाह को अपने हाथ से पत्र देने की प्रार्थना करते तो वह प्रार्थना स्वीकार न होती क्योंकि इतनी अनुमति केवल ईरान के ही एलचियों को दी गई है बल्कि उनके लिए भी बड़ी कठिनाइयों से यह नियम प्रचलित हुआ है।

ये लोग चार महीने से कुछ अधिक देहली में रहे। यद्यपि कई बार इन्होंने चाहा कि चले जाने की अनुमति मिल जाए परंतु ऐसा न हुआ और इतने दिनों तक यहां रहना इनके स्वास्थ्य के लिए ऐसा हानिकारक हुआ कि इनके प्रायः साथी बीमार हो गए और उनमें से कई मर भी गए। परंतु मुझे संदेह है कि इनको भारतवर्ष की गर्मी के कारण यह कष्ट हुआ जिसके ये अभ्यस्त नहीं थे या वस्त्र और भोजन की कमी के कारण से क्योंकि उजबक कदाचित संसार भर के लोगों से बढ़ कर कंजूस, किफायती और सूम होते हैं। औरंगजेब की ओर से उनको खर्च के लिए जो कुछ मिलता था उसको वे बराबर जमा किए जाते थे और ऐसे सूममन से रहते थे जो किसी प्रकार उनके योग्य न था। जिस दिन इनकी बिदाई हुई उस दिन बड़ी धूमधाम थी और कई प्रकार की रीति भांति हुई अर्थात एक ऐसे दरबार में जिसमें सब उमरा उपस्थित थे दोनों एलचियों को बहुमूल्य वस्त्र दिए गए और आज्ञा हुई कि दोनों को आठ आठ हजार रुपये नकद भी दिए जाएं। इन दोनों के मालिकों के लिए भी बहुत ही अधिक मूल्य की वस्तुएं भेंट में मिलीं जैसे बढ़िया बढ़िया कारचोबी के थान

कितने ही तंजेब और मलमल के और कई इंलायचिए जो एक ऐसा कपड़ा होता है जो सुनहरी रुपहली जरी और रेशम मिला कर बुना जाता है, अनेक और जड़ाऊ मूठ के दो खंजर।

जितने दिन ये देहली में रहे उस बीच में तीन बार मेरी उनकी भेंट हुई। मेरे एक मित्र ने जिसका पिता उजबक देश से मुगल साम्राज्य में आकर बहुत धनवान हो गया था मेरे विषय में यह कहकर मेरा उनका परिचय कराया कि ये एक डाक्टर हैं। उनसे मिलने जुलने से मेरा यह अभिप्राय था कि जहां तक हो सके उनके देश का वृत्तांत मैं जान लूं परंतु वे ऐसे अपढ़ उजड्ड निकले जिसका मुझे कभी संदेह भी नहीं हुआ था यहां तक कि अपने देश की सीमा से भी वे परिचित नहीं थे और जिन तातारियों ने कुछ ही वर्ष पूर्व चीन देश पर विजय प्राप्त की थी उनका कुछ वृत्तांत नहीं जानते थे। संक्षेप यह कि इनसे एक भी नई बात मालूम न हो सकी।

एक बार मैंने चाहा कि मैं उनके साथ भोजन करूं। जिस बात को मुसलमान लोग तकल्लुफ कहते हैं वह बात इनमें बिलकुल नहीं थी। इससे इनके साथ भोजन में सम्मिलित हो जाने में कुछ कठिनता नहीं हुई। परंतु इनका भोजन बहुत ही विचित्र था (अर्थात घोड़े के मांस के अतिरिक्त विशेष कुछ भी नहीं जो हो) मैंने अपने खाने को कुछ निकाल लिया क्योंकि एक स्थान में एक ऐसी वस्तु थी जिसको मैंने अपने खाने के योग्य समझा और सभ्यता के विचार से उसकी प्रशंसा भी करता रहा क्योंकि उन दोनों की समझ में वही अत्यंत स्वादिष्ट और उत्तम भोजन था। जब तक भोजन करता रहा तब तक एक शब्द भी किसी के मुख से नहीं निकला और मेरे यह सरल हृदय मित्र जितना समा सकता था उतना घोड़ों का मांस मुंह में ठूंसते चले जाते थे जब पेट खूब भर गया तब इनके मुख से शब्द निकला और ये मुझसे कहने लगे कि उजबक सब लोगों से अधिक बलवान होते हैं और तीर चलाने की विद्या में तो संसार की कोई जाति इनकी बराबरी नहीं कर सकती। यह कह कर उन्होंने अपने तीर और धनुष मंगाए जो वास्तव में यहां के तीर धनुषों की अपेक्षा बहुत लंबे थे। इसके पश्चात वे बोले कि हम बाजी लगाते हैं कि अपना तीर घोड़े या बैल के शरीर के पार कर सकते हैं फिर वे अपनी देहाती स्त्रियों के बल और वीरता की ऐसी प्रशंसा करने लगे कि मानो अमेजनों को भी उनकी स्त्रियों के सामने डरपोक और निर्बल समझना चाहिए। उजबक स्त्रियों के साहस और वीरत्व की उन्होंने कई कहानियां मुझे सुनाईं। उन कहानियों ने मुझे आश्चर्य और विस्मय में डाल दिया। मुझे दुख है कि मैं वैसे ही उत्साह से जैसे उन्होंने कहा था उन कहानियों का वर्णन नहीं कर सकता तथापि एक वृत्तांत कहता हूं।

जिस समय औरंगजेब की उजबकों के साथ लड़ाई हुई थी उस समय अचानक 25-30 सवारों का एक छोटा-सा दल एक गांव में जा घुसा था और घरों को लूटने तथा लोगों को गुलाम बनाने के अभिप्राय से पकड़ कर बांधने लगा था। एक बुढ़िया

ने उनसे कहा कि बेटा मेरी सलाह मानो और ऐसा काम न करो। अगर अपनी भलाई चाहते हो तो जल्द यहां से चले जाओ नहीं तो मेरी लड़की जो बाहर गई है आया ही चाहती है वह अगर तुम पर आ पड़ेगी तो तुम्हारा किया और न किया सब बराबर हो जाएगा। परंतु उन सभी ने उस बेचारी सीधी सादी बुढ़िया की बात यों ही हंसी में उड़ा दी और पहले की भांति वे घरों को लूटते और लोगों को पकड़ते बांधते रहे। बहुत जब लूट के माल से वे अपने घोड़े और टट्टू लाद चुके और बहुत से मनुष्यों को बांधकर ले चले जिनमें वह बुढ़िया भी थी तो कोस डेढ़ कोस भी न गए होंगे कि वह बुढ़िया जो बार बार मुड़ मुड़ कर पीछे की ओर देख लेती थी सहसा हर्ष के मारे चिल्ला उठी—"मेरी बेटी, मेरी बेटी !" यद्यपि वह अभी दृष्टि से बाहर थी परंतु अधिक धूल उड़ते देख और घोड़े की टापों के शब्द सुनकर वह बुढ़िया जो चिंता में डूबी हुई थी निश्चिंत हो गई और उसे इस विषय में तनिक भी संदेह न रहा कि उसकी बहादुर लड़की उसको तथा उसके साथियों को छुड़ा लेगी। अभी वह अपने मुख से ऊपर लिखी बातें निकाल ही चुकी थी कि इतने में एक बढ़िया घोड़े पर सवार गले में धनुष डाले कमर पर तरकस बांधे उसकी युवती कन्या दिखाई दी। वह आते ही दूर से पुकार कर बोली कि—"यदि सब माल रख दो और कैदियों को छोड़कर चुपचाप यहां से चले जाओ तो मैं तुमसे कुछ नहीं कहूंगी और तुम्हारे प्राण छोड़ दूंगी।" परंतु जिस प्रकार उन्होंने बेचारी बुढ़िया के निवेदन पर ध्यान नहीं दिया था उसी प्रकार इसकी बातों पर भी कुछ विचार नहीं किया। यह देखकर उस लड़की ने तीन-चार तीर मार बात की बात में उतने ही सिपाहियों को भूमि पर गिरा दिया। तब तो वे बड़े आश्चर्य में आए। तुरंत ही उन्होंने भी अपने धनुष संभाले, परंतु लड़की उनसे बहुत दूर थी। और हंसती थी कि वाह, ये कापुरुष अब अपने साथियों का बदला लेना चाहते हैं ? वह इस प्रकार तीर मारती थी और उसका निशाना ऐसा ठीक बैठता था कि ये हिंदुस्तानी सिपाही हक्के-बक्के रह जाते थे। आधे सिपाहियों को तो उसने तीर से मार दिया और बाकी सबको तलवार से टुकड़े टुकड़े करके फेंक दिया।

अभी ये तातारी एलची देहली में ही थे कि औरंगजेब को एक कठिन रोग ने आ घेरा। उसको बारंबार ज्वर आता था और उसकी दशा ऐसी हो गई थी कि मुख से शब्द निकलना भी कठिन हो गया था। वैद्य हकीम निराश हो गए थे और साधारणतया किंवदंती फैल गई थी कि "बादशाह मर गया है" परंतु रोशनआरा बेगम किसी उद्देश्य से इस बात को छिपाए हुए हैं। यह बात भी प्रसिद्ध हो गई थी कि गुजरात के अधिकारी राजा यशवंत सिंह शाहजहां को कैद से छुड़ाने के लिए जा रहे हैं और इसी विचार से काबुल का सूबेदार महावतखां भी (जिसने पीछे औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली थी) तीन चार सहस्र सवारों के साथ आगरे की ओर बढ़ा चला आता है—वरन वह लाहौर से भी आगे निकल आया है। एक यह बात

भी प्रसिद्ध थी कि एतबारखां ख्वाजासरा (जिसकी कैद में शाहजहां था) की बड़ी ही इच्छा है कि वृद्ध बादशाह शाहजहां को कैद से छुड़ाने की वाहवाही उसी को मिले।

इधर सुलतान मुअज्जम की यह दशा थी कि अमीरों को प्रतिज्ञाएं, आशाएं और घूस दे देकर वह अपने पक्ष में लाने का उद्योग कर रहा था, यहां तक कि एक दिन रात के समय भेष बदलकर वह राजा जयसिंह के घर गया और वहां जाकर इसने स्पष्ट शब्दों में उनसे बहुत विनयपूर्वक कहा कि आप मेरा पक्ष ग्रहण कीजिए। इधर रोशनआरा बेगम ने कई अमीरों के मेल से जिनमें तोपखाने का प्रधान अधिकारी फिदाअलीखां, मीरआतिश भी था यह बंदोबस्त कर रखा था कि औरंगजेब के तीसरे पुत्र सुलतान अकबर को जिसकी अवस्था सात-आठ वर्ष की ही थी, गद्दी का अधिकारी बनाया जाए। इसके अतिरिक्त दोनों पक्ष वालों ने यह प्रसिद्ध कर रखा था कि वास्तव में हमारा विचार शाहजहां को कैद से छुड़ा देने का है, परंतु सच तो यह है कि यह केवल सर्वसाधारण के संतोष करने के लिए एक बहाना था और यह भी उद्देश्य था कि यदि कदाचित एतबारखां तथा और किसी अमीर के गुप्त उद्योग से बादशाह छूट जाए तो लोगों की दृष्टि में हमारी बात बनी रहेगी, तथापि जितने प्रतिष्ठित माननीय और बड़े बड़े लोग थे उनमें से कोई भी नहीं चाहता था कि शाहजहां पुनः गद्दी का अधिकारी हो, क्योंकि यशवंत सिंह महावतखां तथा और कुछ लोगों को छोड़ जिन्होंने कि प्रकट रूप में शाहजहां से विरोध नहीं किया था, ऐसा कोई नहीं था जो उस बेचारे यथार्थ स्वत्वाधिकारी बादशाह को त्याग कर अकृतज्ञता से खुल्लमखुल्ला औरंगजेब का साथी न बन गया हो। इसलिए ये लोग भली भांति जानते थे कि उसको कैद से निकालना मानो एक क्रोध में भरे हुए शेर को बाहर निकालना है और उसके छूट जाने की चिंता से दरबार के सब लोग घबरा रहे थे। सबसे अधिक एतबारखां डरता था जो उस बेचारे अभागे कैदी बादशाह से अकारण निर्दयता और दुष्टता का बरताव करता था परंतु इतनी बीमारी के होते भी औरंगजेब अपने पिता और राज्य के प्रबंध की ओर से निश्चिंत नहीं था। सुलतान मुअज्जम को तो उसने खूब जता कर यह आज्ञा और उपदेश दे रखा था कि यदि मैं मर जाऊं तो शाहजहां को कैद से छुड़ा लो परंतु एतबारखां को वह बराबर पत्र पर पत्र लिखता उनमें यही सूचना और ताकीद थी कि खबरदार अपने काम में सुस्ती और असावधानी न करना। बीमार होने के पांचवें दिन जब कि उसका स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ा हुआ था उसने कहा कि हमको दरबार में ले चलो, इससे यह अभिप्राय था कि कुछ लोगों को जो उसके मर जाने का संदेह हो गया था वह संदेह मिट जाए और सर्वसाधारण कुछ गड़बड़ न मचाएं जिससे शाहजहां को छूट जाने का अवसर मिले। अस्तु यों ही बीमारी के सातवें, नवें और दसवें दिन भी वह दरबार में गया और बड़े आश्चर्य की बात है कि उसके मर जाने के समाचार चारों ओर फैल गए थे परंतु तो भी ज्यों ही वह

कुछ अच्छा हुआ त्यों ही बाहर आया और राजा यशवंत सिंह तथा दो-तीन बड़े बड़े अमीरों को बुला भेजा जिससे कि लोगों पर प्रकट हो जाए कि अभी औरंगजेब जीता जागता है। नौकरों से उसने कहा कि हमको जरा पलंग पर बिठा दो। फिर एतबारखां के नाम पत्र लिखने के लिए कलम कागज मंगवाया और राज्य की बड़ी मुहर जो रोशनआरा बेगम के पास एक छोटी-सी थैली में थी और जिस पर बादशाही मुहर की हुई थी उसने एक विशेष आदमी के हाथ इस बात की जांच के लिए मंगवाई कि कदाचित बेगम ने अपनी कोई अनुचित इच्छा पूर्ण करने के लिए मुहर से काम न लिया हो। इन समाचारों को जब मेरे आका ने सुना तब मैंने देखा कि सहसा उसके मुंह से ये वाक्य निकल पड़े कि वाह वाह क्या हिम्मत, क्या हौसला है ? औरंगजेब तू सलामत रह अभी तुझे बड़े बड़े काम करने हैं और जरूरी तेरी जिंदगी बाकी है। वास्तव में इसके बाद ही उसका स्वास्थ्य धीरे धीरे संभलने लगा।

अब इस कारण कि औरंगजेब दिन पर दिन निरोग होता जाता था उसकी यह इच्छा हुई कि दारा शिकोह की पुत्री को शाहजहां और बेगम साहब के यहां से मंगाकर सुलतान अकबर के साथ उसका विवाह कर दें। इसी सुलतान अकबर को उत्तराधिकारी बनाने का विचार था क्योंकि यद्यपि यह राजकुमार छोटा था परंतु बहुत-से अमीर उसके संबंधी थे और वह शाहनेवाजखां का नाती होने से ऐसे कुल वालों से संबंध रखता था जो किसी समय में मसकत के बादशाह थे।

यद्यपि हिंदुस्तान के बादशाह मुसलमान हैं तथापि हिंदुओं के यहां विवाह कर लेने में कुछ आगा पीछा नहीं करते, विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि ऐसा संबंध बादशाह तक के लिए लाभकारी हो या रूपवती स्त्री हाथ आती हो। परंतु औरंगजेब का ऊपर लिखा उद्देश्य सफल न हो सका क्योंकि शाहजहां और बेगम साहब ने बड़ी घृणा से उसकी बात अस्वीकार की, वरन स्वयं उस नवोढ़ा राजकुमारी ने इस प्रस्ताव पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और बहुत दिनों तक वह चिंता में थी कि कदाचित वे बलपूर्वक ले जाएं। वह लड़की बराबर साफ साफ यही कहती रही कि जान दे दूंगी, लेकिन इस शख्स के बेटे से शादी न करूंगी जिसने मेरे बाप को मारा है।

इसी प्रकार औरंगजेब शाहजहां से कुछ रत्न आदि प्राप्त करने में भी कृतकार्य न हो सका जिनको लेकर वह अपने दरबारी सिंहासन में लगाना चाहता था। शाहजहां ने बड़े क्रोध से कहला भेजा कि "औरंगजेब जरा होशियारी और ईमानदारी तथा इंसाफ से सल्तनत का काम करता रहे, मगर तख्त के मामले में दखल न दे। और जवाहरात के बारे में अगर वह फिर सताएगा तो खबरदार ! मैं इनको कूट कूट कर चूर कर दूंगा।" अंत में डचों ने भी औरंगजेब को उसकी गद्दी का अधिकार प्राप्त करने की बधाई देने में पीछे रहना न चाहा और दूत भेजने का विचार किया। इस काम के लिए उन्होंने एड्रिकन को चुना जो बड़ा ही योग्य, निपुण, चतुर और समझदार

आदमी था। एड्रिकन ऐसा मनुष्य था कि अनुभवी लोगों की सम्मति के अनुसार कार्य करने में कभी आगा पीछा नहीं करता था, अतएव यह कुछ आश्चर्य नहीं कि उसने इस काम को इस ढंग से पूर्ण किया होगा कि जिससे देशी भाइयों को संतोष हो। यद्यपि औरंगजेब दरबार के नियमों में सदैव बड़प्पन दिखाता है और अपनी धर्मनिष्ठा प्रकट करने का भी उसे बहुत ध्यान है जिससे ईसाइयों को वह घृणा की दृष्टि से देखता है तथापि इस दूत के साथ उसने बड़ी प्रतिष्ठा और आदर का बरताव किया वरन यह भी कहा कि "हमारी यह खुशी है कि मिस्टर एड्रिकन अव्वल हिंदुस्तान के दस्तूर के मुवाफिक आदाब बजा लावें, यानी आदाबगाह पर तसलीमात अदा करें और फिर नजदीक आकर खास अपने मुल्क के रिवाज के मुवाफिक सलाम करें। यद्यपि यह सच है कि जो पत्र मिस्टर एड्रिकन लाए थे उसे औरंगजेब ने (सीधे उनके हाथ से न लेकर) एक अमीर के हाथ से लिया था। परंतु इसे कुछ अप्रतिष्ठा न समझना चाहिए क्योंकि उजबकों के एलचियों के साथ भी ऐसा व्यवहार किया गया था। अस्तु इन रीतियों के हो जाने के पश्चात मिस्टर एड्रिकन को अपनी भेंट की वस्तुएं उपस्थित करने की आज्ञा हुई और उनको तथा उनके कुछ अंग्रेज साथियों को वस्त्रादि दिए गए। मिस्टर एड्रिकन की भेंट की वस्तुओं में कुछ तो लाल और हरे रंग की बढ़िया बनात के थान थे, कुछ बड़े आईने थे और कुछ चीन तथा जापान की बनी हुई चीजें थीं जिनमें एक पालकी तथा एक सिंहासन (जो कंधों पर उठाकर ले जाने योग्य था) बहुत ही उत्तम थे और बहुत पसंद किए गए।

मुगल बादशाहों की यह नीति है कि दूसरे देशों के एलचियों और दूतों को जहां तक संभव होता है इस कारण अपने यहां ठहराए रहते हैं कि उनका दरबार में उपस्थित रहना और नित्य आकर सबके सामने प्रणामादि करना उनके राज्य का गौरव और बड़प्पन प्रकट करता है। इसी से एड्रिकन भी जितनी जल्दी लौटना चाहता था न लौट सका, हां तातारी दूतों की अपेक्षा उसको बहुत शीघ्र छुट्टी मिल गई, अर्थात जब उसके सेक्रेटरी की देहली में मृत्यु हो गई और कई लोग बीमार हो गए तब औरंगजेब ने उसे विदा कर दिया। विदा करने से पहले सिर से पांव तक के वस्त्रों का एक जोड़ा उसको और एक जोड़ा बहुमूल्य वस्त्रों का तथा एक जड़ाऊ खंजर और पत्र उसके स्वामी के लिए दिए।

डचों ने इस मतलब से एड्रिकन को अपना दूत बनाकर भेजा था कि वह दरबार तक पहुंचकर बादशाह को प्रसन्न तथा संतुष्ट कर और उससे अपनी जाति तथा अपने देश का वृत्तांत कहे ताकि उन स्थानों और बंदरगाहों के प्रबंधकर्ताओं और हाकिमों के चित्त पर जहां इनकी कोठियां थीं इस बात का प्रभाव पड़े। डचों को आशा थी कि ये प्रबंधकर्ता जब जान लेंगे कि डच भी एक प्रभावशाली राज्य की प्रजा हैं और हमारे बादशाह तक पहुंच कर उससे इच्छानुसार बात कहकर न्याय करा सकते हैं तब हमारा विरोध और हमारे व्यापार में अटकाव करने का उद्योग न करेंगे।

निदान इन डचों ने दरबार वालों को इस बात का विश्वास दिलाने का कि हमारे व्यापार से भारतवर्ष का बड़ा लाभ हो रहा है बड़ी चेष्टा की और उन वस्तुओं की जो वे यहां से खरीदते थे एक लंबी चौड़ी नामावली दिखलाई जिससे कि मालूम हो कि उन वस्तुओं के खरीदने के लिए वे बहुत-सा सोना चांदी अपने देश से यहां लाते हैं। परंतु यह बात वे प्रकट होने देना नहीं चाहते थे कि वर्ष प्रतिवर्ष तांबा, सीसा, दालचीनी, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, चिकनी लकड़ी और हाथी इत्यादि बेचकर वे यहां का कितना धन अपने देश में खींच ले जाते हैं।

इन्हीं दिनों में एक बड़े अमीर ने औरंगजेब से कहा कि हुजूर काम में इस कदर मसरूफियत फरमाते हैं कि अंदेशा है कि शायद इससे सेहते जिसमानी बल्कि दिमागी कूबत में कुछ फर्क आ जाए और ताकत को कुछ नुकसान पहुंचे। यह सुनकर बादशाह ने उस बुद्धिमान उपदेशक की ओर से तो मुंह फेर लिया मानो उसकी बात सुनी ही नहीं और कुछ ठहर कर एक और बहुत बड़े अमीर की ओर जो बड़ा ही विद्वान और बुद्धिमान था देखकर कहा आप तमाम अहलेइल्म इस बात में मुत्तफिकुलराय हैं कि मुश्किल और खौफ के जमाने में जानजोखों में पड़ जाना और जरूरत के वक्त रियाआ की बेहतरी के लिए जिसे खुदा ने उसे सुपर्द किया है तलवार पकड़कर मैदान-ए-जंग में जान दे देना बादशाह का फर्ज और वाजिब है। मगर इसके बरक्स यह नेक और बातमीज शख्स (?) यह चाहता है कि रिआया के आराम व आसाइश के लिए जरा भी तकलीफ न उठाई जाए और उनकी रिआया की रिफाह की तदबीरों के सोचने में एक रात या एक दिन भी बेआराम रहे बगैर यह मुद्दआ हासिल हो जाए। इसकी राय है कि मैं सिर्फ अपनी तंदुरुस्ती को मुकद्दम जानूं और ज्यादातर ऐशो इशरत और आराम व आशाइशही के उनूर में मसरूफ रहूं जिसका यह नतीजा हो सकता है कि मैं इस वसीह सल्तनत के कामों को किसी वजीर के भरोसे छोड़ बैठूं। मगर मालूम होता है कि इसने इस बात पर गौर नहीं किया कि जिस हालत में मुझे खुदा ने बादशाही खानदान में पैदा कर तख्त पर बिठाया है तो दुनिया में अपने जाति फायदे के लिए नहीं भेजा बल्कि औरों को आराम पहुंचाने और मेहनत करने के लिए भेजा है। मेरा काम यह नहीं है कि अपनी आशाइस की फिक्र करूं अलबत्ता रिआया के फायदे की गरज से जिस कदर आराम लेना जरूरी है उसका मुजायका नहीं बजुज इसके कि इंसाफ और अदालत से वैसा ही करना साबित हो या सल्तनत के कायम रखने और मुल्क की हिफाजत के लिए यह बात जरूरी हो किसी सूरत में भी रिआया के आराम व आशाइस की तरफ से लापरवाह रहना जायज नहीं है। रिआया की आशाइस और तरक्की ही एक ऐसी चीज है जिसकी फिक्र मुझे होनी चाहिए। मगर यह शख्स इस बात की तह को नहीं पहुंचा कि उस आराम से जो यह मेरे लिए तजबीज करता है क्या क्या कहावतें पैदा होंगी और यह भी इसे मालूम नहीं कि दूसरों के हाथ में हुकूमत देना कैसी बुरी बात है। शेखसादी

नै जो यह कहा कि "बादशाहों को चाहिए कि बजात खुद कारोबार सल्तनत का बोझ अपने ऊपर लें, नहीं तो बेहतर है कि बादशाह कहलाना छोड़ दें" तो क्या उस बुजुर्ग का यह कौल गलत है ? बस आप अपने इस दोस्त से कह दीजिए कि अगर वह हमारी खुशी और हम से आफरी हासिल करना चाहता है तो जो काम इसके सुपुर्द है उसे ठीक तौर से करता रहे, और खबरदार यह सलाह जो बादशाह के सुनने लायक नहीं है कभी न दे। अफसोस इंसान आराम तलब है और ऐसे खयालात से बचना चाहता है जो दूसरों की तरक्की की फिक्र में आदमी को घुला डालते हैं। मगर हमको ऐसे फजूल सलाहकारों की हाजत नहीं है। ऐशो आराम की सलाह तो हमारी बेगमें भी दे सकती हैं।

इसी अवसर पर एक ऐसी शोकजनक घटना देहली में हो गई जिसकी चर्चा नगर भर में और विशेषकर राजमहल में बहुत ही अधिक फैल रही थी। इस घटना से मेरे तथा मेरे और लोगों के इस विचार की भूल प्रमाणित हो गई कि जो व्यक्ति अपनी जनेन्द्रियों से रहित कर दिया जाता है उसे प्रेम नहीं हो सकता ! बात यह हुई कि दीदारखां नामक एक प्रतिष्ठित ख्वाजासरा ने एक मकान बनाया था जहां जी बहलाने के लिए वह प्रायः जाता और कभी कभी रात को वहीं सो भी रहता था। उसके पड़ोस में एक हिंदू का घर था जिसकी बहन बहुत ही रूपवती थी। दीदारखां का उससे प्रेम हो गया था और कुछ दिनों तक इन दोनों का अनुचित संबंध स्थिर रहा। परंतु किसी को कुछ संदेह नहीं हुआ, क्योंकि यह खोजा था और औरतों में आने जाने की खोजों को मनाही नहीं होती, तथापि अंत में यह संबंध इतना बढ़ गया कि उस व्यक्ति के कानों तक भी यह बात पहुंच गई कि लोग उसकी बहन की पवित्रता के विषय में संदेह करते हैं। उसने क्रोध में आकर अपने मन में इसका दृढ़ निश्चय कर लिया कि यदि यह बात सच है तो मैं दोनों को मार डालूंगा। कुछ समय बीतने पर एक दिन दोनों इकट्ठे सोते देख लिए गए। अतएव दीदारखां को तो इसने उसकी छाती में खंजर मारकर मार डाला और बहन को इतना घायल किया कि वह भी प्रायः मृत हो गई। इस घटना से बादशाही महल में बड़ी हलचल मच गई। महल के खोजों और स्त्रियों ने परस्पर एका कर लिया कि जैसे बने वैसे इस व्यक्ति का नाश करना चाहिए। यदि औरंगजेब की इच्छा उसे छोड़ देने की न होती तो उसका मारा जाना कुछ कठिन नहीं था। औरंगजेब उसे मुसलमान करना चाहता था। परंतु इतने पर भी लोग कहते हैं कि सब खोजे उससे नाराज हैं इसलिए वह अधिक दिन न बच सकेगा।

हिंदुस्तानी समझते हैं कि बधिया कर देने से यद्यपि जानवर सीधे और सभ्य हो जाते हैं, परंतु मनुष्य पर इसका उल्टा असर पड़ता है। वे कहते हैं कि क्या कोई ख्वाजासरा ऐसा भी है जो दुष्ट, कठोर हृदय और अहंकारी न हो ? हां यह अवश्य है कि बहुत से खोजे अच्छे स्वभाव के सीधे, भले और वीर होते हैं।

इस घटना के ही समय लगभग औरंगजेब दो अपरिचित व्यक्तियों को महल में बुला लेने के संदेह पर रोशनआरा बेगम से रुष्ट हो गया। परंतु इस बात के केवल संदेह ही संदेह होने के कारण भाई बहन में बहुत शीघ्र सफाई हो गई। औरंगजेब ने इन दोनों व्यक्तियों के साथ उस कठोरता का बर्ताव नहीं किया जो शाहजहां ने उस अभागे प्रेमी के साथ किया था जिसने अपने को स्नानालय की देग के अंदर छिपाया था। मैं इस वृत्तांत को ठीक उसी तरह पर यहां वर्णन करता हूं जिस तरह एक दोगली पुर्तगीज बुढ़िया ने जो बहुत दिनों तक बांदियों की भांति महल में रहती थी मुझे सुनाया था।

अर्थात रोशनआरा बेगम ने पहले तो एक युवा पुरुष को कई दिन तक अपने पास छिपाए रखकर उसके साथ अनुचित रीति पर आनंद उठाया और फिर अपनी बांदियों के सुपुर्द कर दिया जिन्होंने उसे रात के अंधेरे में महल के बाहर कर देने की प्रतिज्ञा की। परंतु या तो इन औरतों को किसी ने ऐसा करते देख लिया, या वे भेद खुल जाने की चिंता से स्वयं डर गईं, या कुछ और कारण हुआ। परंतु बात यह हुई कि वे तो इसे छोड़कर भाग गईं और वह युवक महल के बागों में डरा और घबराया हुआ हैरान घूमता पकड़ा गया। महल के रक्षक धीरे धीरे उसे औरंगजेब के पास ले गए। वहां बहुत पूछने और धमकाने पर भी उसने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया, किंतु इतना ही कहा कि मैं दीवार पर से कूदकर अंदर गया था। अतएव औरंगजेब ने आज्ञा दी कि जिस प्रकार वह व्यक्ति यहां तक आया है इसे उचित है कि उसी प्रकार बाहर निकल जाए। परंतु कदाचित ख्वाजासराओं ने बादशाह की आज्ञा टाल कर उसे दीवार से नीचे गिरा दिया। दूसरा व्यक्ति भी इसी प्रकार बाग में इधर-उधर घूमता हुआ पकड़ा गया था और उसने कहा था कि मैं फाटक के रास्ते से आया हूं। इस पर बादशाह ने उसको तो उसी रास्ते से बाहर निकलवा दिया। परंतु ख्वाजासराओं को सावधान करने के लिए दंडित करने का निश्चय किया, क्योंकि न केवल बदनामी से बचने के लिए वरन अपनी रक्षा के लिए भी महल के द्वारों का खूब अच्छा प्रबंध रखना आवश्यक था।

इस घटना के कई महीने बाद प्रायः एक ही समय पांच एलची देहली में आए। इनमें से जो सबसे पहले आया वह मक्के का था। वह भेंट की जो वस्तुएं लाया था उनमें कई अरबी घोड़े और एक झाडू थी जो उस स्थान के झाड़ने बुहारने के काम में आ चुकी थी जो उस प्रसिद्ध मस्जिद के बीच में बना हुआ है जो मक्के में है और जिसको बहुत सम्मानित करके मुसलमान ईश्वर का घर कहते हैं। मुसलमानों को विश्वास है कि यह पहला मकान है जो ईश्वर के पूजने के लिए बनाया गया था और इसको इब्राहिम ने बनाया था।

दूसरा एलची बादशाह यमन ने भेजा था और तीसरा बसोरा के अधिकारी ने। ये दोनों भेंट में अरबी घोड़े लाए थे। शेष दो एलची एथिओपिया (खल्श) के

बादशाह के थे। इनमें से पहले तीन एलचियों का आदर सम्मान इतना कम हुआ कि वह नहीं के बराबर था, क्योंकि उनकी सामग्री इतनी सामान्य थी कि हरेक व्यक्ति उनको देखकर यही सोचता था कि इनका आना केवल इस निमित्त हुआ है कि भेंट की जो वस्तुएं ये लाए हैं उनके तथा उन बहुत-से घोड़ों और व्यापार की वस्तुओं के बदले में जिनको वे खास अपनी बतला कर बिना महसूल लाए थे यहां से बहुत-सा रुपया कमा ले जाएं। वास्तव में जो रुपये उनको भेंट की वस्तुओं के बदले तथा सौदागरी माल असबाब के बेचने में मिले उनसे यहां की व्यापार की वस्तुएं खरीद कर वे बिना महसूल अपने देश को ले गए।

परंतु खल्श के बादशाह की ओर से जो एलची आए थे उनका वृत्तांत कुछ ध्यान देने के योग्य है। उनका आना इस कारण से हुआ कि उनके बादशाह को यह बात भली भांति विदित हो चुकी थी कि हिंदुस्तान के राज्य में इधर कैसे कैसे परिवर्तन हुए हैं, अतएव अपने एलचियों को भेजकर उसने इस विशाल राज्य में अपनी बड़ाई, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि फैलानी चाही। परंतु कुछ संदेह करने वाले लोग यह कहते थे और वास्तव में यह बात सच भी थी कि उस हब्शी बादशाह ने अपने एलची इस निमित्त भेजे हैं कि उसको वे भेंट की वस्तुएं प्राप्त हों जिनके उदार हृदय औरंगजेब की ओर से मिलने की उसे पूर्ण आशा थी और जो एलची उसने भेजे थे वे वास्तव में इस योग्य थे कि अपने बादशाह के इच्छानुरूप काम कर सकें। उनमें एक तो एक मुसलमान व्यापारी था जो कई वर्ष हुए मुझे उस समय मिल चुका था जिस समय मैं लालसमुद्र से होकर मुखा बंदर में पहुंचा था। उस अवसर पर इसके स्वामी ने इसको इस अभिप्राय से बहुत-से गुलाम देकर वहां भेजा था कि यह उनको बेचकर इस उत्तम व्यापार में जो धन पाए उससे हिंदुस्तानी माल असबाव खरीद लाए। आहा, ईसाई होकर यह बादशाह व्यापार करने में कैसा चतुर और निपुण है ? दूसरा एलची एक ईसाई जर्मनी व्यापारी था। उसका जन्म हलय में हुआ था और वहीं उसने विवाह भी कर लिया था। मुखा में यह भी मुझे मिला था और उस समय इसने न केवल अपना आधा मकान मेरे लिए खाली कर दिया था बल्कि वह सलाह भी मुझको इसी ने दी थी जिससे मैंने अपना हब्श देश का जाना रोक दिया था और जिसका वृत्तांत मैं इस पुस्तक के आरंभ में लिख चुका हूं। यह भी मुखा में उसी ऊपर लिखे उद्देश्य से भेजा गया था। यह प्रतिवर्ष भारतवर्ष में व्यापार करने वाली अंग्रेजों और डचों की कंपनियों के लिए अपने बादशाह की ओर से भेंट की वस्तुएं ले जाता और बदले में वहां की चीजें लाता है।

एथिओपिआ (हब्श) का बादशाह चाहता था कि उसके एलची भारतवर्ष में मुगल बादशाह के दरबार में ऐसी तड़क-भड़क से बधाई देने जाएं जो इस अवसर के योग्य हो, अतः उसने उनके खर्च के विषय में बड़ी उदारता दिखाई, अर्थात दोनों को 20-22 युवती लौंडियां और युवा गुलाम दिए कि वे उनको मुखा में बेचकर जो

रुपये मिलें उनको यात्रा में खर्च करें। यह उदारता सामान्य नहीं थी, क्योंकि मुखा में युवती लौंडियां और युवा गुलाम औसत 20 या 25 क्राउन (एक क्राउन पांच शिलिंग का होता है) को बिकते हैं। इनके अतिरिक्त उस उदार हृदय बादशाह ने बहुत ही छांट कर 25 गुलाम खास औरंगजेब के लिए भेजे थे जिनमें नौ या दस एकदम नवयुवक और खोजे बनाने के योग्य थे। वाह वाह ? एक ईसाई बादशाह ने एक मुसलमान बादशाह के लिए क्या ही उचित भेंट की वस्तुएं भेजीं जिनसे प्रकट होता है कि एथिओपिया में ईसाई धर्म की उस समय क्या अवस्था थी। इन गुलामों के अतिरिक्त उसने औरंगजेब को निम्नलिखित वस्तुएं भी भेंट में भेजी थीं—(1) पंद्रह हब्शी घोड़े जो अरबी घोड़ों के समान समझे जाते हैं। (2) छोटी जात का एक खच्चर जिसका चमड़ा (जिसे मैंने भी देखा था) ऐसा सुंदर था कि किसी शेर का वैसा न होगा और न भारतवर्ष के किसी इलायचिये में जो एक तरह का रेशमी कपड़ा होता है वैसी अनूठीं धारियां, (3) हाथी के दांत जो साधारण दांतों की अपेक्षा इतने बड़े और भारी थे कि एक बलिष्ठ मनुष्य भी उनमें से एक को कठिनता से जमीन से उठा सकता था और (4) बैल का एक बहुत बड़ा सींग जिसमें सिवेट (एक प्रकार का अत्यंत सुगंधयुक्त पदार्थ) भरा था और जिसके मुंह का घेरा फ्रांसीसी आध फुट अधिक मेरे नाप में आया था।

ये दोनों एलची जब ऐसी तड़क-भड़क के साथ सजधज कर एथिओपिया की राजधानी गौंडर से जो कि डंबिया प्रांत में है चले तब इनको एक उजाड़ देश से होकर निकलना पड़ा और वहलौल तक पहुंचने में जो कि बाबुलमंदव के निकट मुखा के बराबर एक छोटा बंदरगाह है इनको दो महीने लगे। इनके कारवां के मामूली मार्ग से जिससे पहुंचने में 40 दिन लगते हैं आर्किको को जाने का साहस न करने का यह कारण था कि आर्किको से मसौआ द्वीप को जाना पड़ता है, जहां तुर्क राज्य की कुछ सेना रहती है। जब ये लोग समुद्र के मार्ग से मुखा जाने वाले जहाज की बाट वहलौल में ठहरे जोह रहे थे तब उसी अवसर में भोजनादि की पूरी सामग्री न होने के कष्ट में इनके कई गुलाम मर गए। इसके अतिरिक्त मुखा में पहुंचने पर मालूम हुआ कि अब की बार गुलाम और लौंडियां अधिकता से बिकने के लिए आई हैं। अतएव इनके पास जो लौंडियां और गुलाम बाकी रह गए थे उनको इन्हें आशा से कम मूल्य पर बेचना पड़ा। अस्तु, जब लौंडी, गुलाम बिक चुके तब इन्होंने अपनी यात्रा पुनः आरंभ की और एक हिंदुस्तानी जहाज पर सवार होकर जो सूरत को आता था ये 26 दिन में यहां पहुंच गए और यह इतनी दूर की यात्रा के लिए ठीक समय था परंतु बहुत-से घोड़े और कई गुलाम संभवतया पूरा भोजन न मिलने के कारण मर गए, क्योंकि यह तो स्वयं प्रकट है कि इन तड़क-भड़क वाले एलचियों के पास इतना रुपया कहां था जो इनके खर्च के लिए पूरा होता। वह बेचारा खच्चर भी जिसका हाल आगे कहा जा चुका है जहाज ही में मर गया, परंतु उन्होंने उसका

सुंदर धारीदार चमड़ा सावधानी से रख छोड़ा था जिसे मैंने भी देहली में देखा था।

इनको सूरत में आए कुछ ही घंटे हुए होंगे कि बीजापुर से इतिहास प्रसिद्ध मराठा वीर शिवाजी ने आकर नगर को लूट लिया और आग लगा दी। इस आग की लपट में यद्यपि वह मकान भी जिसमें ये ठहरे थे भस्म हो गया, तथापि आग और शत्रुओं से किसी प्रकार यात्रा की सनदें, पत्र और कुछ गुलाम भी जिनको कदाचित शिवाजी ने बीमार या उनके हब्शी कपड़े आदि देखकर स्वयं छोड़ दिया था, बच गए। उस खच्चर के चमड़े और बैल के सींग को भी जिसका सुगंधित पदार्थ पहले ही निकाल लिया गया था शिवाजी ने नहीं लिया।

इन एलचियों ने अपने लुट जाने के विषय में बड़ी बड़ी बातें बना कर कहीं, परंतु उनको संदेह की दृष्टि से देखने वाले वे हिंदुस्तानी जिन्होंने उनको जहाज से उतरने के समय ही देख लिया था कि न तो उनके शरीर पर अच्छा वस्त्र ही है, न किसी महाजन के नाम वे हुंडी ही लाए हैं, वरन पूरे भोजन के अभाव से अधमरे हो रहे हैं, कहते थे कि यह तो वास्तव में इनका सौभाग्य था कि सूरत में लुटने और माल असबाब के जल जाने से उस अप्रतिष्ठा से बच गए जो अपनी गंदी और तुच्छ भेंट की वस्तुओं के देहली में लाने के कारण इनकी होती और शिवाजी की कृपा से इनको सूरत के सूबेदार के सामने दरिद्रों के भेष में जाने और राजधानी तक पहुंचने के लिए खर्च मांगने का अच्छा बहाना मिल गया। इसी से गुलाम और सिवेट (और बैल के सींग का सुगंधित पदार्थ) बेचकर खा जाने की बदनामी से भी यह बच गए।

हमारे माननीय मित्र डचों के कार्यालय के मैनेजर मिस्टर एड्रिकन ने एथिओपिया के ईसाई एलची मुराद को मेरे नाम का एक परिचय पत्र दिया था जिसे उसने देहली में आकर मुझे दिखाया। अकस्मात यह अवसर उपस्थित हुआ कि पांच-छह वर्ष के बाद हम और वह एक-दूसरे से फिर मिले। वह इस बात को बिलकुल भूल गया था कि मुखा में मैं उसी के घर ठहरा था। अतएव मैं उस पुराने मित्र से गले मिला और उससे प्रतिज्ञा की कि जहां तक हो सके तुम्हारी सहायता करूंगा। यद्यपि दरबार में मेरी पहुंच थी और सबसे मेरा परिचय था परंतु इन दरिद्री एलचियों की सहायता के लिए किसी से कुछ कहना कठिन काम था, क्योंकि उस खच्चर के चमड़े और बैल के उस सींग को छोड़ जिसमें उन्होंने अपने पीने के लिए अपनी प्रिय चीज मीठी मदिरा भर रखी थी और कुछ उनके पास शेष न बचा था। भेंट की बहुमूल्य वस्तुओं के पास में न होने के कारण लोग उनको तुच्छ समझते थे और उनकी विशेष तुच्छता इस बात से प्रकट होती थी कि वे बहुत-साधारण कपड़े पहने बिना पालकी के पैदल नगर में घूमा करते थे और सात-आठ गुलाम नंगे सिर, नंगे पांव उनके पीछे पीछे रहते थे जिनके पास कमर में लपेटने की एक छोटी धोती और फटी पुरानी चादर के सिवा जिसे वे बाएं कंधे पर डालकर दाहिनी ओर निकाले रहते थे, और कुछ

न होता था। और एक टूटी-फूटी भाड़े की बहली तथा एक घोड़े के, जो हमारे पादरी साहब का था, और कोई घोड़ा भी उनके पास नहीं था, या कभी कभी वे मेरा घोड़ा मांग लेते थे जिसे सवारी में ला लाकर उन्होंने अधमुआ कर डाला था। अतएव यद्यपि मैंने उन घृणित और गंदे एलचियों के लिए बहुत कुछ यत्न किया परंतु कुछ लाभ न हुआ, कारण यह है कि लोग उनको भिखमंगा समझकर उनकी ओर कुछ ध्यान नहीं देते थे। परंतु एक दिन जब कि मैं अपने स्वामी दानिशमंदखां के पास जो कि परराष्ट्र विभाग का मंत्री है एकांत में बैठा, तब मैंने एथिओपिया के बादशाह की इतनी बनावट और ढंग के साथ प्रशंसा की, ऐसी ऐसी बातें कहीं कि औरंगजेब इन एलचियों को अपने सामने बुलाने और उनके लाए हुए पत्रों को लेने पर प्रस्तुत हो गया और जब ये उसके सामने उपस्थित हुए तब इनको सिर से पांव तक के बढ़िया बहुमूल्य वस्त्र दिए गए और मेहमानदारी की आज्ञा हुई। कुछ दिन के बाद जब वे विदा होने लगे तब पुनः इनको वैसे ही वस्त्र और सहस्र रुपये नकद मिले, परंतु ये रुपये बराबर न दिए जाकर इस प्रकार दिए गए कि मुसलमान एलची को तो चार सहस्र मिले, मुराद को ईसाई होने के कारण केवल दो सहस्र। और उनके बादशाहों के लिए भेंट की रीति पर निम्नलिखित वस्तुएं दी गई–

(1) सिर से पांव तक के बहुमूल्य वस्त्र, (2) चांदी के मुलम्मे की दो शहनाइयां, (3) चांदी के दो नगाड़े, (4) जड़ाऊ मूंठ का एक खंजर और (5) बीस सहस्र रुपये नकद। हब्श (एथिओपिया) देश में सिक्के नहीं चलते, इसलिए औरंगजेब ने कहा कि आशा है कि ये नकद रुपये विशेष आदर के साथ स्वीकार किए और विचित्र वस्तु समझे जाएंगे परंतु इस बात को वह भली भांति जानता था कि इनमें से एक रुपया भी भारतवर्ष से बचकर बाहर न जाएगा, क्योंकि ये लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार इन रुपयों से यहां की चीज खरीद लेंगे। हुआ भी ऐसा ही, उन एलचियों ने इन रुपयों से कुछ तो गर्म मसाले लिए, कुछ महीन सूती कपड़े बादशाह और उनकी बेगम तथा एकमात्र बच्चे के लिए खरीदे, कुछ रेशमी और सुनहरी धारी के अंगरखे और जामे बनाने योग्य इलायचिये मोल लिए। बादशाह के दो अंगरखों के लिए लाल और हरे रंग की अंग्रेजी बानात खरीदी और इनके अतिरिक्त बहुत तरह के दूसरे कपड़े परंतु जरा कम मूल्य के महल की प्रतिष्ठित स्त्रियों तथा उनके बाल बच्चों के लिए क्रय किए। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि एलची के कारण इन वस्तुओं का कुछ महसूल इनसे न लिया गया होगा।

यद्यपि मुराद से मेरी बड़ी मैत्री थी परंतु तीन बातों से उसके लिए कुछ उद्योग करने में मुझे कुछ आगा पीछा हुआ। एक यह कि यद्यपि उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपना पुत्र तुम्हारे हाथ पचास रुपये पर बेच डालूंगा, परंतु पीछे कहा कि मैं तीन सौ से कम पर न दूंगा। मुझे इतना देना भी स्वीकार था क्योंकि मैं चाहता था कि मुझे इस बात के कहने का अवसर मिले कि एक व्यक्ति ने अपने निज के पुत्र को

मेरे हाथ बेच डाला था। वह लड़का बहुत मोटा ताजा सुडौल शरीर का और एकदम साफ आबनूस की तरह काला था। इसकी नाक हब्शियों की तरह चपटी नहीं थी होंठ भी मोटे नहीं थे, परंतु इसके पिता ने प्रतिज्ञा के विरुद्ध इसे मुझे न दिया, इस कारण मैं उससे बहुत ही अप्रसन्न हुआ।

दूसरी यह कि उसने और उसके मुसलमान साथी ने औरंगजेब से दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि हम अपने बादशाह से उस मस्जिद की मरम्मत के लिए अवश्य अनुमति ले देंगे जो पुर्तगीजों के समय से उजाड़ और खंडहर के रूप में पड़ी है। उनकी इस प्रतिज्ञा पर औरंगजेब ने इस काम के लिए भी दो सहस्र रुपये उनको दिए। यह मस्जिद एक शेख या फकीर की कब्र के ढंग की बनाई गई थी जो मक्के से हब्श देश को केवल मुसलमानी धर्म का प्रचार करने चला गया था। इस मस्जिद को उन पुर्तगीजों ने तोड़ फोड़ डाला था जो गोवा से सेना लेकर उस बादशाह की सहायता को गए थे जो ईसाई हो गया था और जिसको राज्यच्युत करके एक मुसलमान राजकुमार उसके आसन का अधिकारी बन बैठा था।

तीसरी बात यह है कि अपने बादशाह की ओर से औरंगजेब से यह प्रार्थना की थी कि कुरान तथा आठ और पुस्तकें जिनके नाम मैं जानता हूं और जो इन पुस्तकों में प्रथम श्रेणी की समझी जाती हैं जो मुसलमानी धर्म के पक्ष में रची गई हैं दी जाएं। मेरी राय में एक ईसाई बादशाह के ईसाई एलची का ऐसा करना एक बहुत ही तुच्छ और छोटी बात है। इस समय मेरे उस अनुमान की पुष्टि हो गई जो मुखा में यह सुनकर मुझे हुआ था कि हब्श देश में ख्रीष्ट धर्म की बहुत बुरी अवस्था है। निस्संदेह इस बादशाह की शासन प्रणाली रीति नीति और इसकी प्रजा के आचार व्यवहार से मुसलमानीपन का आभास दीख पड़ता था। वास्तव में जब से वह बादशाह जिसको पुर्तगीजों ने सहायता देकर राजपद पर बैठाया था मर गया है तब से जो लोग नाम मात्र के लिए ईसाई हैं उनकी संख्या भी कम होती जाती है। बात यह है कि उस बादशाह के मरते ही उसकी मां की कूटनीति से कुछ पुर्तगीज तो मारे गए और कुछ निकाल दिए गए और जेस्विट श्रेणी के पैट्रियार्क अर्थात बड़े पादरी को जिसे उसके देशी पुर्तगीज गोवा से लाए थे प्राण बचाकर भागना पड़ा।

जितने दिन ये एलची देहली में रहे दानिशमंदखां जो सदैव नई नई बातों के जानने की इच्छा रखता है उनको कई बार अपने यहां बुलाकर उनके देश और उनकी शासन प्रणाली के विषय में बहुत-सी बातें पूछता रहा परंतु उसका असल मतलब यह था कि वह नील नदी की उत्पत्ति मालूम करे। ये लोग नील नदी को अबाबील (The Father of Waters) कहते हैं। वे कहते थे कि हमको उसकी उत्पत्ति का हाल भली भांति मालूम है। मुराद और एक मुगल जिन्होंने एक साथ यात्रा की थी एक राय होकर कहते थे कि हमने इस स्थान को देखा है। उन्होंने अपनी जानकारी से इस विषय में जो कुछ वर्णन किया वह उतना ही था जितना मैंने मुखा में सुना था।

अर्थात उसके निकलने का स्थान अगवस देश में है। दो तेज सोते हैं जो एक-दूसरे से मिलकर 30 वा 40 पद की लंबाई की एक छोटी-सी झील बन जाते हैं और जो पानी इस झील से निकलता है यद्यपि वह स्वयं एक नदी के समान है तथापि आगे बढ़कर स्थान स्थान पर बहुत-सी नदियां और नाले उसमें मिलते जाते हैं, जिससे उसका आकार बढ़ता जाता है। इन्होंने यह भी कहा कि यह नदी इस प्रकार चक्कर देकर बही है कि बीच में मानो एक बड़ा टापू बन गया है। और कई एक सीधी चट्टानों से उतरकर एक बहुत ही बड़ी झील में जाकर गिरा है जिसमें बहुत-से हरे भरे द्वीप हैं और घड़ियाल भी अधिकता से हैं। उन्होंने एक और भी बात कही जो यदि सच हो तो वास्तव में विशेष ध्यान देने के योग्य है। वह बात यह है कि झील में एक प्रकार के समुद्री बछड़े हैं जिनके मुंह के अतिरिक्त मलमूत्रादि गिराने के लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है। अस्तु उन्होंने कहा कि यह झील डंबिया प्रांत में गोडर से तीन और नील के उत्पत्ति स्थान से चार-पांच दिन के मार्ग पर है। जब वह नदी झील से निकलकर आगे बढ़ती है तब बहुत-सी नदियों और बरसाती नालों के कारण जो इस झील में आकर गिरते हैं इसका पाट बहुत बढ़ जाता है, विशेषकर वर्षा ऋतु में जो भारतवर्ष की तरह यहां भी एक नियत ऋतु है और प्रायः जुलाई के अंत से आरंभ होती है। मेरी समझ में यह अंतिम बात ध्यान देने के योग्य है, क्योंकि इससे इस नदी के खूब फैल कर बहने का कारण मालूम होता है। अस्तु अंत में यह कहा गया कि यह नदी इस झील से निकलकर सोना नगर की ओर जाती है जो कि एथिओपिया के अधीन राज्य फञ्जी की राजधानी है और इसी तरह बढ़ती हुई मिश्र के मैदानों तक पहुंच जाती है।

इन एलचियों ने अपने बादशाह की उदारता, शोभा, सैनिक बल आदि का वर्णन इतना बढ़ाकर किया कि मुझे और दानिशमंदखां को अनुचित जान पड़ा, परंतु इनका वह मुगल साथी इस बढ़ बढ़कर बातें करने में सम्मिलित नहीं था और इनके पीछे उसने हम लोगों से स्पष्ट कहा कि मैंने दो बार वहां की सैना ऐन मैदान और ऐसे समय में देखी है जब कि स्वयं बादशाह उससे काम ले रहा था। मेरी जान में किसी सेना का उससे अधिक बुरी और कुप्रबंध की अवस्था में होना संभव नहीं है। उसने ऐसी ही और कई बातें कहीं जो सब मेरी डायरी में लिखी हैं और जिन्हें किसी अवसर पर मैं पुस्तकाकार छपवाऊंगा। यहां मैं केवल यही बातें लिखता हूं जिनको मुराद ने मुझसे कहा था। ये बातें ऐसे देश से संबंध रखती हैं जो ईसाइयों का समझा जाता है, अतएव वे बड़ी आश्चर्यप्रद हैं। मुराद ने बताया कि हब्श देश में ऐसे पुरुष बहुत ही कम होंगे कि जिनके कई स्त्रियां नहीं—और बिना किसी प्रकार की लज्जा वा विचार के अपने विषय में भी कह दिया कि विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त दो स्त्रियां और हैं। फिर कहा कि "जिस तरह हिंदुस्तान की मुसलमान और हिंदू औरतें पर्दे के अंदर रहती हैं, हब्श देश में नहीं रहतीं। गरीब घरों की स्त्रियां चाहे

ब्याही हों या क्वांरी या लौंडी वे स्वतंत्र रात दिन एक ही घर में रहती हैं। ईर्ष्या, द्वेष, ढाह इत्यादि अवगुण जो प्रायः और जातियों की स्त्रियों में होते हैं वे जानती भी नहीं। बड़े बड़े अमीरों के घरों की स्त्रियां और उनकी पत्नियां यदि किसी सुंदर मनुष्य पर जी आ जाए तो उसके छिपाने की परवाह नहीं करतीं किंतु जब चाहती हैं निर्भय और निशंकभाव से उसके घर चली जाती हैं। इसके बाद कहा यदि आप वहां होते तो अवश्य आपको ब्याह करना पड़ता। कई वर्ष हुए एक यूरोपियन संन्यासी जिसने अपने को ईजिप्ट के बादशाह का चिकित्सक बतलाया था जबर्दस्ती ब्याह दिया गया था—और दिल्लगी तो यह है कि जिस स्त्री को उसने अपने लड़के के विवाह के लिए चुना था उसी के साथ वह ब्याहा गया। इसके पश्चात एक वृत्तांत कहा कि एक 80 वर्ष के वृद्ध ने अपने चौबीस पुत्रों को जो नवयुवक और शस्त्र बांधने के योग्य थे बादशाह के सामने उपस्थित किया। बादशाह ने पूछा कि क्या तेरे केवल इतने ही पुत्र हैं ? जब उसने उत्तर दिया कि हां लड़के तो इतने ही हैं परंतु कई लड़कियां भी हैं। तब बादशाह झुंझला कर बोला कि ओ बुड्ढे बैल मेरे सामने से दूर हो। मुझे आश्चर्य होता है कि लज्जित होने के बदले तू अभिमान कर रहा है क्या हमारे देश में स्त्रियों का काल पड़ गया है कि तेरी जैसी अवस्था के लोग केवल दो दर्जन लड़कों के पिता होने पर इतराएं ? इसके उपरांत मुराद ने बतलाया कि हमारे बादशाह के कम से कम 80 लड़के हैं जो महल में जिधर देखो उधर ही दौड़ते फिरते दिखाई देते हैं। उनकी यह पहचान है कि हर एक के पास बादशाह की दी हुई एक गोल रंगीन छड़ी होती है जिसे पहचाने जाने का द्वार समझ कर और लड़कों की अपेक्षा से सेप्टर (seeptre असा) की रीति पर हाथ में लिए हुए प्रसन्नतापूर्वक घूमा करते हैं।

दानिशमंदखां की भांति औरंगजेब ने भी दो बार इस आशा से इन एलचियों को अपने पास बुलाया कि इनसे इनके देश का कुछ वृत्तांत विदित होगा परंतु उसका मुख्य अभिप्राय यह जानने का था कि मुसलमानी धर्म की वहां क्या अवस्था है। उसने खच्चर की वह खाल भी मंगवा कर देखी जो न जाने किस तरह दुर्ग के प्रबंधकर्ताओं के ही पास रह गई थी और जिसके प्राप्त करने के लिए मैं तरसता ही रह गया, क्योंकि उन्होंने मेरे कार्यों के बदले में उसे मुझे देने की प्रतिज्ञा की थी और मैं यह सोचकर कि कभी अपने देश में पहुंच कर अद्‍भुत वस्तुओं के किसी प्रेमी मित्र को उसे भेंट कर दूंगा मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। मैंने इन एलचियों को बहुत प्रकार से इस विषय में भी कह दिया था कि इस चमड़े के साथ बादशाह को वह सींग भी अवश्य दिखा देना। परंतु उन्होंने इस भय से उसे औरंगजेब के सामने उपस्थित नहीं किया कि कदाचित पूछा जाए कि सूरत की लूट से तब यह बच रहा तो इसके अंदर का सुगंधित पदार्थ कहां गया ? ऐसी अवस्था में कुछ उत्तर देते न बन पड़ता।

एथिओपिया के बादशाह के एलची अभी देहली ही में थे कि औरंगजेब ने अपने दरबार के मुख्य मुख्य विद्वानों और बुद्धिमानों को इस बात का विचार करने के लिए एकत्रित किया कि उसके तीसरे पुत्र सुलतान अकबर की शिक्षा दीक्षा के लिए जिसको कि वह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था एक दीक्षक चुना जाए। उसने कहा कि "मेरी आरजू है कि इसकी तालीम व तरबियत ऐसी की जाए जिससे काबिल तबक्कः इस अम्र की हो सके कि हर तरह की लियाकत के लिहाज से यह लड़का मशहूरे आफाक हो।" मेरी राय में कोई व्यक्ति औरंगजेब से अधिक इस विषय का जानकार नहीं है कि राजकुमारों में हर प्रकार की योग्यताओं और विद्या तथा कलाकौशल का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि उनसे आशा होती है कि भविष्य में कभी वे राज्याधिकारी और शासक होंगे। औरंगजेब का कथन है कि "जिस तरह से बाएतबार अपने मर्तबे और इख्तियार के उनको और लोगों पर फजीलत है उसी तरह लाजिम है कि दानाई और सिफाते हमीद में भी वे सबसे अफजल हों।" वह भली भांति जानता है कि जो कष्ट और दुख एशिया देश के राज्यों पर पड़ते हैं, और वे अनुचित बातें तथा कुप्रबंध जिनसे अंत में राज्य चौपट हो जाते हैं उनका कारण यदि ढूंढ़ा जाए तो यही निकलेगा कि राजकुमारों की शिक्षा आदि अपूर्ण और बुरी रीति पर होती है, क्योंकि बाल्यावस्था से ही वे स्त्रियों, ख्वाजासराओं तथा उन गुलामों के सुपुर्द रहते हैं जो रूस, सरकेसिया, मिगरेलिया, गुर्जिस्तान वा हब्श देश से आते हैं। और गुलामों की तो सदैव यह दशा होती ही है कि अपने से बलवानों के आगे हाथ पैर जोड़ना, गिड़गिड़ाना, दबना, निर्बलों और अधीनों पर बेमतलब जोर जबरदस्ती जताना। गुलाम होते ही मनुष्य की बुद्धि और विवेक दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतएव ये राजकुमार जब महलों से निकलकर राजगद्दी पर आरूढ़ होते हैं तब वे ही अनुचित अत्याचार की बातें अपने साथ लाते हैं और उन कर्तव्यों के विषय में कुछ नहीं जानते जिनका पालन करना ऐसी अवस्था में उनको उचित है। अपनी जीवनावस्था के इस रंगमंच पर वे इस भांति आते हैं मानो किसी और ही संसार से आए हों। प्रत्येक वस्तु को वे ऐसे भोलेपन और हैरानी से देखते हैं कि जैसे आज ही पहले-पहल किसी अंधेरी कोठरी वा तहखाने से चले आते हों। या तो वे बच्चों की तरह हर बात पर विश्वास कर लेते हैं, या प्रत्येक वस्तु से डरते और घबराते हैं, या ऐसे हठीले बेपरवाह और निर्बुद्धि हो जाते हैं कि उचित सलाह और समझ की बात भी नहीं सुनते और कैसा ही बुरा काम क्यों न हो उसके कर डालने में कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते। राज आसन पर बैठते ही या तो अपने स्वाभाविक दुर्गण से या उन विचारों के कारण से जो पहले ही से उनके हृदय में बैठाए रहते हैं वे एक बनावटी गंभीरता दिखाते हैं परंतु प्रत्येक व्यक्ति को यह सहज में मालूम हो जाता है कि उनमें गंभीरता नाम को भी नहीं है और यह केवल किसी बुरी सिखावट का असर है। जिसको गंभीरता नहीं किंतु एक प्रकार का पशवाचरण और भद्दा दिखावा

कहना चाहिए। अथवा ये अपने को इस ढंग का प्रसन्नचित्त बना लेते हैं जो कदापि बादशाहों के योग्य नहीं होता और बनावटी होने के कारण धोखा मालूम होता है। अतएव एशिया के इतिहास से जानकारी रखने वाले व्यक्तियों में ऐसा कौन है जो मेरे इस कथन की सत्यता को जो कि एशिया के राजकुमारों की दशा का एक ठीक चित्र है अस्वीकार कर सके ? मैं पूछता हूं कि एशिया के बादशाह आंखें बंद करके क्या जानवरों की तरह अत्याचार नहीं करते थे और उनके अत्याचार क्या कभी उचित रीति पर होते थे ? क्या वे बेहिसाब मद्यपान करने की नीचता नहीं करते और निर्लज्ज-भाव से ऐयाशी में डूबे हुए नहीं हैं ? क्या महल की निवासिनियों के साथ रहकर वे अपनी युवावस्था बिलकुल नष्टभ्रष्ट नहीं करते ? और क्या उन्होंने राज्यकार्य देखने के बदले अपना समय व्यर्थ शिकार आदि में नहीं खोया ? यद्यपि इन हृदय शून्य बादशाहों को इनके शिकारी कुत्ते बहुत प्रिय हैं परंतु उन बेचारे गरीब दुखी लोगों के कष्टों की ओर ये तनिक भी ध्यान नहीं देते जो शिकार में जाने के लिए बेगार में पकड़े जाते हैं और गर्मी, सर्दी सहते सहते भूख और थकावट के मारे मर जाते हैं।

संक्षेप में यह है कि ये एशियाई बादशाह बड़े बड़े दुर्गुणों में अपना समय गंवाते रहते हैं। जैसी शिक्षा की छाप आरंभ से इनके हृदय पट पर अंकित रहती है वैसे ही ये हो जाते हैं। जैसे व्यभिचार की शिक्षा पाने वाले व्यभिचारी, शौकीन की शिक्षा पाने वाले शौकीन इत्यादि। ऐसा बादशाह कदाचित ही होता है जिसे अपने देश की भीतरी दशा और राजनीतिक बातों का ज्ञान हो। वह अपने राज्य की लगाम किसी मंत्री या वजीर के हाथ में दे देता है जो सदा इस विचार से कि मैं स्वतंत्र और बिना रोक-टोक शासन करनेवाला हो जाऊं, बुरे कामों में उसको फंसाये रखता और राज्य कार्य में उसका चित्त लगने नहीं देता है। इसके अतिरिक्त यदि मंत्री राज्य के कार्यो को दृढ़ता के साथ अपने हाथ में नहीं रखता तो बादशाह की मां, जो वास्तव में कोई लौंडी बांदी होती है, और कुछ खोजे देश का शासन करते हैं जो लंबे चौड़े और उच्च विचार वाले नहीं होते किंतु सदा ऐसी ही निर्दयता की बातें सोचा करते हैं जैसे अपने साथियों में से किसी को फांसी दे देना, किसी को कैद करना, किसी को देश से निकलवा देना, इत्यादि। केवल अपने साथियों के साथ वे ऐसे बर्ताव नहीं करते वरन कभी कभी बड़े बड़े अमीरों यहां तक कि स्वयं राजमंत्री के साथ भी करते हैं। उनके समय में कोई भला आदमी अपने माल, धन, मान, प्रतिष्ठा और जीवन की ओर से एक क्षण भी निश्चिंत नहीं हो सकता, उनका शासन राज्य के लिए कलंककर होता है। अस्तु।

औरंगजेब के दरबार में जब ऊपर लिखे एलची उपस्थित हो चुके तब समाचार आया कि एक एलची ईरान के दरबार की ओर से सरहद पर आया है। इस पर औरंगजेब के दरबारियों में जो ईरानी थे उन्होंने यह बात चलाई कि वास्तव में किसी

विशेष बड़े काम के लिए यह एलची आया है, परंतु बुद्धिमान मनुष्यों ने यह बात स्वीकार नहीं की। यह स्पष्ट था कि बड़ी घटनाओं का समय अब नहीं था और इन ईरानी दरबारियों का ऐसी बात प्रसिद्ध कर देने का कारण अपने देश का बड़प्पन प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस तरह उन्होंने एक यह खबर भी उड़ाई थी कि ईरानी एलची को लेने और उसका स्वागत सत्कार तथा उसको देहली में लाने का उत्तम प्रबंध करने का क्या कारण है मालूम किया जाए कि वह किस मतलब से भारतवर्ष में आया है। यह ईरानी यह भी कहते थे कि जो लोग इस एलची को लेने गए हैं उनको चेता दिया गया है कि वे धीरे धीरे उसको इस बात पर प्रस्तुत करें कि दरबार में वह भारतवर्ष की रीति के अनुसार सलाम करे और उसको यह भी समझा दिया जाए कि ईरान के बादशाह का पत्र किसी तीसरे आदमी के हाथ से मुगल बादशाह को देने का सदा से नियम है। परंतु एलची के आने पर जो कुछ मैंने देखा उससे प्रकट हो गया कि वे सब केवल झूठी बातें थीं और औरंगजेब ऐसी बातों की परवाह नहीं करता।

जब यह एलची राजधानी देहली में पहुंचा तो उसका यथोचित रीति से स्वागत सत्कार किया गया, अर्थात जिन जिन बाजारों से होकर वह गया उन पर सफेदी कराई गई थी, रास्ते के दोनों ओर 30 मील तक पंक्तिबद्ध सवार खड़े हुए और बहुत-से उमराओं ने बाजे गाजे से उसका साथ दिया और तोपखाने से सलामी हुई। औरंगजेब ने उसके साथ बहुत उत्तम बर्ताव किया और उस एलची के ईरानी रीति के अनुसार सलाम करने पर वह अप्रसन्न नहीं हुआ वरन सीधे उसके हाथ से ईरान के शाह का खरीता बिना किसी प्रकार का आगा पीछा किए ले लिया, इससे भी बढ़कर सत्कार की रीति पर उसे वह अपने ताज के निकट तक ले गया। इसके पश्चात एक खोजे से उसकी मुहर खुलवा कर बड़ी गंभीरता के साथ पढ़ने लगा फिर आज्ञा दी कि एलची को सिर से पांव तक के वस्त्र दिए जाएं। सो ऐसा ही हुआ। उसे बहुमूल्य वस्त्र दिए गए। इस रस्म के बाद आज्ञा हुई कि एलची अपनी भेंट की वस्तुएं उपस्थित करे। उसकी भेंट की वस्तुओं का विवरण यों है—25 ऐसे सुंदर घोड़े जैसे मैंने कभी नहीं देखे थे, 20 ऐसे मजबूत और बड़े ऊंट जिनको हाथी के पट्ठे कहना चाहिए, बहुत-से संदूक मय बढ़िया गुलाब और एक प्रकार के जल के जिसको वे दमुश्क कहते हैं और जो उपयोगी होता तथा कम मिलता है, पांच-छह बड़े बड़े और सुंदर कालीन, कई बहुत ही बढ़िया थान कारचोबी के जो ऐसे थे कि मुझे संदेह है कि कदाचित ही कभी यूरोप में वैसे दिखाई दिए हों, जड़ाऊ मूठ के दमिश्क के बने हुए चार खंजर, चार जड़ाऊ तलवारें और पांच-छह घोड़ों के बहुत ही सुंदर और बहुमूल्य साज जिनको लोगों ने विशेषता के साथ पसंद किया, इन साजों पर छोटे छोटे मोती और पुरानी खान के बढ़िया फीरोजे जड़े हुए थे। औरंगजेब ने इन वस्तुओं को बड़े ध्यान से देखा और दरबार में उपस्थित लोगों को इस समय

ऐसा जान पड़ा कि वह इन उत्तम भेंट की वस्तुओं को देखकर बहुत अधिक प्रसन्न है। अंत में उसने इन पदार्थों की तथा इनके भेजने वाले ईरान के बादशाह की उदारता और कृपा की बारंबार प्रशंसा की। एलची को उमरा में एक प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया और उसकी लंबी यात्रा के विषय में कहकर कहा कि इस समय आप आराम करें, हम आपको प्रतिदिन मुलाकात के लिए बुलाया करेंगे।

यह एलची चार या पांच महीने तक देहली में रहा। यह बड़ी शान से रहता और इसके खर्च का सब रुपया बादशाही खजाने से दिया जाता। दरबार के अमीरों ने भी समय समय पर इसे निमंत्रित करके इसकी दावत की और विदाई के समय बादशाह ने एक और बहुमूल्य वस्त्रों का जोड़ा इसे भेंट स्वरूप दिया। ईरान के बादशाह को भेंट की वस्तुएं भेजने के विषय में औरंगजेब ने यह निश्चय किया कि जो कुछ भेजना हो अपने एलची के हाथ भेजें। निदान एक अमीर इस काम के लिए चुना गया।

यद्यपि दूसरे एलचियों की अपेक्षा जो पहले आ चुके थे इस एलची का बहुत मान-सम्मान किया गया परंतु इस पर भी उन ईरानियों ने जो देहली में थे यह बात प्रसिद्ध कर दी कि ईरान के बादशाह ने अपने पत्र में औरंगजेब को दारा के मारने और शाहजहां को कैद करने के विषय में बहुत ही अपमान सूचक शब्द लिखे हैं और लिखा है कि जो बर्ताव तुमने उनसे किया है कोई भाई, भाई के साथ और बेटा बाप के साथ नहीं कर सकता और किसी ईमानदार आदमी से यह बात नहीं हो सकती। देहली में बसने वाले ईरानियों ने यह भी प्रसिद्ध किया कि ईरान को बादशाह के पत्र में यह बात भी लिखी हुई है कि तुमने अपना उपनाम 'आलमगीर' (संसार विजयी) क्यों रखा ? और उसे अपने यहां के सिक्कों पर क्यों खुदवाया ? इस बात को उन्होंने यहां तक बढ़ाया कि पत्र में यह बात स्पष्ट लिखी है कि यदि आप आलमगीर हैं तो यह तलवार और ये घोड़े तैयार हैं। बस, चले आइए, इधर से हम भी आते हैं। मेरी राय में यदि यह बात सच होती तो ईरान के बादशाह का मानो लड़ाई का संदेशा था। परंतु मैंने जो सुना है वैसा लिख दिया है और यद्यपि इस दरबार का हाल प्रत्येक व्यक्ति को जो यहां की भाषा से जानकारी और कुछ लोगों से परिचय रखने वाला तथा मेरी तरह नई बातों के जानने में जी खोल कर रुपये खर्च करने वाला हो मालूम हो सकता है, परंतु मैं ऊपर लिखी बात को असत्य प्रमाणित नहीं कर सकता। तो भी मैं एकाएक ऐसी बात पर विश्वास कर लेने का कोई कारण नहीं देखता। हां संभव है कि ईरान के बादशाह ने अपने पत्र में ऐसे बुरे शब्दों का प्रयोग किया हो क्योंकि यद्यपि यह बात अवश्य है कि ईरानी जब कभी किसी को अपने बल और शक्ति का परिचय देना चाहते हैं तब ऐसी ही बातें लिखते हैं, परंतु ऐसे शब्दों में तो एक झूठी शेखी के अतिरिक्त धमकी की झलक दिखाई देती है।

बात यह है कि कुछ विचारवान लोगों की यह राय है, और मेरी भी यही रायं है कि ईरान में इतनी शक्ति नहीं है कि वह हिंदुस्तान देश पर आक्रमण कर सके। इसके लिए यही बहुत है कि कंदहार जो इसकी आलमदारी में भारतवर्ष की ओर सरहद पर है उसके अधिकार में रहे या यह कि अपने देश को वह रूम की सीमा की ओर से सुरक्षित रख सके। ईरान की सेना का धन, बल और शक्ति का हाल हिंदुस्तान के बादशाही दरबार के लोगों को भली-भांति मालूम है। हिंदुस्तानी भली-भांति जानते हैं कि ईरान के राज्यासन पर सदैव शाहअब्बास नहीं है कि जो बात हो उसे अपनी इच्छा के अनुकूल बना ले और बड़ी बड़ी बातों का प्रबंध थोड़ी सामग्री से कर सके। यदि ईरान की इच्छा हिंदुस्तान पर आक्रमण करने की होती तो उस समय वह चुपचाप सुस्त क्यों बैठा रहता जब थोड़े ही दिन पहले औरंगजेब अपने भाइयों से लड़ रहा था, न कि इस समय औरंगजेब से रुष्ट होता। उस समय तो दारा शिकोह, शाहजहां, सुलतान शुजा और कदाचित काबुल के सूबेदार भी उसकी सहायता के लिए तैयार हुए थे परंतु उस पर कुछ असर नहीं हुआ था। उस अवसर पर यदि वह चाहता तो थोड़ी-सी सेना से भारतवर्ष के एक बहुत अच्छे भाग पर अर्थात काबुल से लेकर सिंधु नदी के किनारे बल्कि उससे भी आगे तक अधिकार पा सकता था और इस प्रकार यहां के हर एक झगड़े में अपने को मध्यस्थ बना सकता था।

अस्तु, या तो बादशाह ईरान के पत्र में ही कोई ऐसी बात थी अथवा औरंगजेब उस एलची की ही किसी बात या कार्रवाई से रुष्ट हो गया। इसका यह परिणाम हुआ कि एलची के देहली से विदा होने के दो तीन दिन बाद ही उसने यह कहा कि जो घोड़े ईरान के बादशाह की ओर से आए हैं उनके पांवों की नसें एलची ने कटवा दी थीं और इसलिए उसने आज्ञा दी कि वह सीमा पर रोक दिया जाए और सब हिंदुस्तानी लौंडी और गुलाम जो यहां से वह ले गया है उससे छीन लिए जाएं। इन लौंडी गुलामों की संख्या बहुत अधिक थी और अकाल के कारण उनको उसने बहुत ही सस्ते दामों में खरीदा था। यह भी कहा जा सकता है कि उसके नौकर चाकर यहां के बहुत-से बच्चों को चुरा ले गए थे।

जब तक यह ऐलची देहली में रहा तब तक औरंगजेब अपने आचार व्यवहार में बहुत ही सावधान रहा, उसने वैसा नहीं किया जैसा शाहजहां ने प्रसिद्ध शाहअब्बास के एलची के आने के समय में किया था। अर्थात उस समय शाहजहां या तो अपना बहुत बड़प्पन प्रकट करता या ऐसी हीनता दिखाता जो बादशाहों के कभी योग्य नहीं। इन बातों से शाहअब्बास का एलची उससे बहुत रुष्ट हो गया था।

जब कोई ईरानी हिंदुस्तानियों की हंसी उड़ाना चाहता है, तब नीचे लिखी कहानियां कहता है। प्रथम तो यह कि जब शाहजहां की कोई युक्ति न चल सकी कि ईरानी एलची हिंदुस्तानी दरबार के अनुसार सलाम करे, तब उसने यह उपाय निकाला कि दरबार आम और दरबार खास के द्वारों के फाटक तो बंद करा दिए

केवल खिड़कियां खुली रहने दीं ताकि बिना सिर झुकाए कोई अंदर आ ही न सके। शाहजहां को आशा थी कि इस उपाय से उस को इस बात के कहने का अवसर न मिलेगा कि ईरान के एलची को दरबार में उपस्थित होने के समय हिंदुस्तान की रीति से भी अधिक सिर झुकाना पड़ा था परंतु वह चतुर ईरानी एलची तुरंत मतलब समझ गया और शाहजहां की ओर पीठ करके खिड़की में घुसा। शाहजहां यह देखकर कि इस चाल में भी वही विजयी हुआ बहुत झुंझलाया और घृणापूर्वक एलची से बोला "ऐ बदबख़्त क्या तू अपने गधों का तबेला समझ कर इसमें दाखिल हुआ है ?" एलची ने उत्तर दिया—"बेशक मैं यही समझता था क्योंकि ऐसे दरवाजों में से गुजरते हुए कौन शख़्स यह ख्याल कर सकता है कि गधों से मिलने के सिवा वह किसी और जगह जाता है।"

दूसरी कहानी यों है कि शाहजहां ने ईरान के एलची की उद्दंडता से रुष्ट होकर उससे कहा—ऐ बदबख़्त शाहअब्बास के दरबार में क्या कोई शरीफ आदमी न था कि उसने तुझसे बेवकूफ को मेरे पास भेजा ? एलची ने उत्तर दिया—क्यों नहीं ? बहुत से मुहज्जिब जईफ लोग मौजूद हैं मगर वह जिस बादशाह के पास भेजना होता है उसी की लियाकत के मुआफिक एलची भेजा करता है।

तीसरी कथा इस प्रकार है कि एक दिन शाहजहां ने ईरान के एलची को अपने साथ भोजन करने के लिए बुलाया और स्वभावानुसार वह उसके छेड़ने के लिए अवसर देखता रहा। निदान जब एलची ने मांस में से हड्डियां निकाल कर चिंचोड़नी आरंभ कीं तब शाहजहां ने चुपके से उससे कहा—"एलची जी, कुत्ते क्या खाएंगे ?" उसने जवाब दिया—"खिचड़ी" जिसे बादशाह बड़े चाव से खा रहा था। खिचड़ी वह भोजन है जो चावल और मूंग व उड़द को एक साथ उबालने से बनता है और जिसको हिंदुस्तान के प्रायः साधारण लोग खाते हैं। फिर बादशाह ने पूछा—हमारे शहर देहली को (जो उस समय नया तैयार हो रहा था) तुम इस्फहान के मुकाबले में कैसा ख्याल करते हो ? एलची ने उच्च स्वर से उत्तर में कहा—"वल्लाह, बिल्लहा ! इस्फहान तो आपके शहर की गर्द को भी नहीं पहुंचता।" इस बात को बादशाह ने प्रशंसा समझा। परंतु एलची ने उसकी हंसी उड़ाई थी, क्योंकि शाहजहांनाबाद की गर्द बहुत ही कष्ट पहुंचाने वाली होती है।

एक यह कहानी भी भारत के बसने वाले ईरानी कहा करते थे कि जब शाहजहां ने एलची को इस बात पर विवश किया कि वह ठीक ठीक बतलाए कि ईरान और भारतवर्ष के राज्यों की शक्ति में परस्पर कितना अंतर है, तब उसने निवेदन किया कि हिंदुस्तान 14वीं रात के चांद के मुवाफ़िक है और ईरान महज दूसरी या तीसरी रात के चांद के मुताबिक। इससे शाहजहां अपना बड़प्पन समझकर बहुत प्रसन्न हुआ। परंतु जब उसने इस द्वयर्थक उत्तर का मतलब समझा, जो यह था कि हिंदुस्तानी राज्य का अंत अब निकट है और ईरान दिन प्रतिदिन उन्नति कर रहा है, तब वह

मन में बहुत कुढ़ा।

तात्पर्य यह कि हिंदुस्तान में जो ईरानी रहते हैं वे अपनी बुद्धिमानी और वाकचातुरी के विषय में इसी प्रकार बढ़ बढ़ कर बातें किया करते हैं और ऐसी कहानियां कहने में कभी नहीं थकते परंतु मेरी राय में ऐसे लोगों का एलची होना बहुत अच्छा है जो हंसी करने या आक्षेपयुक्त बोलियां बोलने वाले होने की अपेक्षा अदब का ध्यान रखने वाले और गंभीर हों।

शाहअब्बास का यह एलची यद्यपि इन गुणों से तो रहित था ही परंतु आश्चर्य इस बात का है कि वह इतना भी नहीं जानता था कि अपने प्राण और मन को बचाए रखना उचित है न कि एक स्वाधीन चेता बादशाह को अपने ऊपर व्यर्थ रुष्ट कर लेना। एक घटना से जिसमें उसके प्राण जाने से कोई बात बाकी नहीं रह गई थी, प्रकट होता है कि ऐसी ही नासमझी के कारण उसने शाहजहां को अपने से नाराज कर लिया। बादशाह को उससे इतना रंज हो गया था कि साधारण बातचीत में भी वह उसका तिरस्कार कर बैठता। बल्कि यह भी कहा जाता है कि गुप्त रीति से उसने यह आज्ञा दे रखी थी कि जब यह एलची दरबार में आए तब आम और खास के रास्ते में (जो एक लंबी और तंग गली के समान है) एक खूनी हाथी उस पर छोड़ दिया जाए। निदान ऐसा ही हुआ। यदि वह व्यक्ति कुछ चतुर और साहसी न होता तो अवश्य मारा जाता। परंतु अपनी पालकी से वह ऐसी फुर्ती के साथ कूद गया और उसके साथियों ने तथा उसने स्वयं इस प्रकार तीर पर तीर मारे कि हाथी भाग गया और उसके प्राण बच गए।

जिस महीने ईरान का एलची अपने देश को वापस गया दरबार में मुल्लासालह का बड़ा स्वागत सत्कार हुआ। यह बुड्ढा औरंगजेब का गुरु था और बहुत दिनों से अपनी जागीर में जो शाहजहां ने उसे दे रखी थी, रहता था। जब उसने सुना कि भाइयों की परस्पर लड़ाई समाप्त हो चुकी और उसके चेले औरंगजेब ने अपने उद्योग में सफलता प्राप्त की है, तब वह तुरंत देहली में आया। उसे पूर्ण आशा थी कि वह अमीरों की श्रेणी में हो जाएगा। सो उसने दरबार के सभी प्रतिष्ठित और माननीय व्यक्तियों को अपना पक्षपाती बना लिया यहां तक कि सभी लोग बल्कि रोशनआरा बेगम ने भी औरंगजेब को याद दिलाया कि आपका माननीय और आदरणीय विद्वान उस्ताद आपकी ओर से मान और प्रतिष्ठा दिए जाने का अवश्य अधिकारी है। परंतु तीन महीने तक तो औरंगजेब ने यह भी नहीं जानना चाहा कि वह दरबार में आता भी है या नहीं। परंतु अंत में जब उसको देखते देखते वह तंग आ गया तब उसने आज्ञा दी कि मुल्ला जी एकांत समय के दरबार में उपस्थित हों। ऐसा ही हुआ। वहां केवल दानिशमंदखां और तीन चार दूसरे प्रसिद्ध विद्वान उपस्थित थे। यद्यपि मैं इस अवसर पर नहीं था, परंतु यदि होता भी तो उस लंबी चौड़ी बातचीत को याद रखना असंभव था जो औरंगजेब ने मुल्लासालह से की थी पर इस विषय में

जो कुछ मैंने सुना दानिशमंदखां के मुख से सुना है उसका मतलब नीचे वर्णन करता हूं।

औरंगजेब ने कहा—"मुल्ला जी, बराहे मेहरबानी यह तो फरमाइए कि आप हम से चाहते क्या हैं ? क्या आपका यह दावा है कि हम आपको दरबार के अव्वल दर्जे के उमरा में दाखिल कर लें ? अगर आपकी ख्वाहिश है तो पहले इस बात का साबित करना जरूरी है कि आप किसी निशाने-इज्जत के मस्तहक भी हैं या नहीं। हम इससे इंकार नहीं करते कि अगर आप हमारी तालीम व तरबियत शाइस्त तौर पर करते तो जरूर ऐसी ही इज्जत के मुस्तहक होते। आप हमको किसी तरबियतयाफ्ता नौजवान शख्स का नाम बताइए ताकि हम आपको बतलाएं कि उसकी तालीम व तरबियत की बाबत शुक्रगुजारी का ज्यादा मुस्तहक उसका उस्ताद है या उसका बाप। फरमाइए तो सही कि आपकी तालीम से कौन-सी वाकफीयत मुझे हासिल हुई ? क्योंकि आपने तो मुझको यह बतलाया था कि तमाम फिरंगिस्तान (यूरोप) एक छोटे जजीरे से ज्यादा नहीं है जिसमें सबसे बड़ा बादशाह अव्वल शाह पुर्तगाल था, फिर बादशाह हालैंड हुआ और उसके बाद शाह इंगलिस्तान। फिरंगिस्तान के और बादशाहों मसलन फ्रांस और अंडलस की बाबत आप यह बताया करते थे कि ये लोग हमारे यहां के छोटे छोटे राजाओं के मुवाफिक हैं, और यह कि हिंदुस्तान के बादशाहों में सिर्फ हुमायूं, अकबर, जहांगीर और शाहजहां ही ऐसे शहंशाह हुए हैं जिनके आगे तमाम दुनिया के बादशाहों की शान व शौकत मद्धिम है और यह कि ईरान, उजबक, काशगर, तातार, श्याम, चीन और मार्चीन के बादशाह सलातीन हिंद के नाम से कांपते हैं सुबहान अल्ला ? आपकी इस जुगराफिया दानी और कमाल इल्म तारीख का क्या कहना है ? क्या मुझ जैसे शख्स के उस्ताद को लाजिम न था कि दुनिया की हरेक कौम के हालात से मुझे मुत्तिला करता ? मसलन उनकी कूबत जंगी से, उनके वसायल आमदनी और तर्ज जंग से, उनके रस्मोरिवाज, मजाहिब और तर्ज हुक्मरानी और उन खास खास उमूर से बतफसील और जुदा जुदा मुझको भी आगाह करता जिनको वे अपने हक में ज्यादा मुफीद समझते हैं। मेरे जैसे शख्स के उस्ताद को लाजिम था कि वह मुझको इल्म तारीख ऐसी सिलसिलेवार पढ़ाता कि मैं हर एक सल्तनत की जड़ बुनियाद, असबाब, तरक्की व तनज्जुली और उनके साथ उन वाकयात और गलतियों से वाकिफ हो जाता जिनके बायस से उनमें ऐसे ऐसे इनकलाबात होते रहे हैं। बनिस्बत इसके कि आप मुझको दुनिया की कामिल तवारीख से आगाह करते, आपने तो हमारे उन मशहूर व मारूफ बुजुर्गों के नाम भी अच्छी तरह नहीं बतलाए जो हमारी सल्तनत के बानी थे। उनकी सवाने उम्री खास तौर की लियाकत जिनके बायस वे बड़ी फतूहात करने के काबिल हुए और उन फतूहात से पहले जो वाकयात जहूर में आए उन से भी आपने मुझे नावाकिफ रखा। बावजूद कि बादशाह को अपनी हमसाया कौमों की जबानों से वाकिफ होना जरूरी है। मगर बजाय उनके सामने

आपने मुझको अरबी पढ़ना लिखना सिखाया। इस जबान को सीखने में मेरी उम्र का एक बड़ा हिस्सा जाया हुआ, मगर आपने तो यह समझा कि एक ऐसी जबान सिखाकर जो बगैर दस बारह बरस मेहनत किए हासिल नहीं हो सकती गोया मुझ पर बड़ा भारी एहसान किया। आपको यह सोचना था कि एक शाहजादे को ज्यादातर किन किन इल्मों के पढ़ाने की जरूरत है, मगर आपने मुझे ऐसे फनों की तालीम दी जो काजियों के लिए मुफीद हैं और मेरी जवानी के दिन बेफायदा बच्चों की-सी पढ़ाई में बरबाद किए।"

ऐसे ही कठोर वाक्यों से औरंगजेब ने मुल्ला जी पर अपना क्रोध प्रकट किया। परंतु कोई कोई पढ़े लिखे लोग या तो बादशाह की बड़ाई करने और उसको वाकशक्ति दिखाने या मुल्लासालह के साथ द्वेष होने के कारण कहते थे कि औरंगजेब का मुल्ला को तिरस्कृत करना इतने ही में नहीं समाप्त हुआ, वरन थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद पुनः उसने कहा—क्या आपको मालूम न था कि छुटपन में जबकि कूबतहाफिजा मजबूत होती है, हजारों माकूल बातें जहननशीन हो सकती हैं और आसानी के साथ इंसान ऐसी मुफील तालीम हासिल कर सकता है जिससे दिल में निहायत आला खयालात पैदा हो जाते हैं और बड़े बड़े नुमायां कामों के करने के काबिल हो जाता है ? क्या नमाज सिर्फ अरबी ही के जरिए अदा हो सकती है और बड़ी बड़ी इल्मोहुनर की बातों का जानना क्या अरबी ही के जरिए हो सकता है ? आपने हमारे वालिद माजिद को तो यह समझा दिया था कि हम ऐसे फिलॉसफी पढ़ाते हैं, मगर मुझे खूब याद है कि वर्षों तक ऐसी बेहूदा बातों से आप मेरा दिमाग परेशान करते रहे जो पहले तो जल्दी समझ ही में नहीं आती थीं और समझ में आ जाने पर जल्द भूल जाती थीं और ऐसी थीं जिनकी दुनियावी मुआमिलात में कुछ जरूरत नहीं। आपने मेरी उमर के कई साल ऐसी ही तालीम में खराब कराए जो आपको पसंद थी। मगर जब मैं आपकी तालीम से एलहिदा हुआ तब किसी बड़े इल्म के जानने का दावा नहीं कर सकता था, बजुज़ इसके कि ऐसी चंद अजीब व गरीब बातों से वाकिफ था जो एक अच्छी समझ के नौजवान शख्स की हिम्मत को, पस्त दिमाग को खराब और तबीयत को हैरान कर देती हैं। ...अगर आप मुझे वे बातें सिखाते जिनसे जेहन इस काबिल हो जाता है कि बगैर सही दलील के किसी बात को तसलीम नहीं करता, या आप मुझको वह सबक पढ़ाते जिससे इंसान की तबीयत ऐसी हो जाती है कि दुनिया के इंकलाबात का उस पर कुछ भी असर नहीं होता और तरक्की या तनज्जुली की हालत में वह एक ही-सा रहता है। या मुझे क़ुदरती बातों से आगाह करते तो मैं उससे भी ज्यादा आपका एहसान मानता जितना सिकंदर ने अरस्तू का माना था और अरस्तू से भी ज्यादा आपको इनाम अदा करता। मुल्लाजी ! नाकदरदानी का झूठा इल्जाम ख्वाहमखा मुझ पर न लगाइए, क्या आप यह नहीं जानते थे कि शाहजादों को इतनी बात जरूर ही सिखानी चाहिए कि उनको

रिआया से और रिआया को उनके साथ किस तरह का बर्ताव करना लाजिम है ? और क्या आपको अव्वल ही यह ख्याल कर लेना लाजिम न था कि मैं किसी वक्त तख्तो-ताज की खातिर बल्कि अपनी जान बचाने के लिए तलवार पकड़ कर अपने भाइयों से लड़ने को मजबूर होऊंगा। क्योंकि आप खूब जानते हैं कि सलातीन हिंद की औलाद को हमेशा ऐसे ही मुआमलात पेश आते रहे हैं। पर, क्या आपने कभी लड़ाई का फन या किसी शहर का मुहासरा करना या फौज की शफआराई का तरीका मुझे सिखाया था ? यह मेरी खुशकिस्मती थी कि मैंने इन मुआमिलात में ऐसे लोगों से कुछ सीख लिया था जो आपसे ज्यादा अक्लमंद थे। बस अपने गांव को चले जाइए और अब से कोई न जाने कि आप कौन हैं और आपका क्या हाल है।''

इन्हीं दिनों में एक ऐसी घटना हो गई जो ज्योतिषियों के लिए हानिकारक थी। बात यह है कि एशिया के अधिकांश लोग ज्योतिष के ऐसे विश्वासी हैं कि उनकी समझ में संसार की ऐसी कोई बात नहीं है जो नक्षत्रों की चाल पर निर्भर न करती हो और इसी कारण वे प्रत्येक काम में ज्योतिषियों से सलाह लिया करते हैं। यहां तक कि ठीक लड़ाई के समय भी जब कि दोनों ओर के सिपाही पंक्तिबद्ध खड़े हो चुके हों, कोई सेनापति अपने ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाए बिना युद्ध नहीं आरंभ करता, ताकि कहीं ऐसा न हो कि किसी अशुभ लग्न में लड़ाई आरंभ कर दी जाए। बल्कि ज्योतिषियों से पूछे बिना कोई व्यक्ति सेनापति के पद पर भी नियुक्त नहीं किया जाता। बिना उनकी आज्ञा के न तो विवाह हो सकता है, न कहीं की यात्रा की जा सकती है, बल्कि छोटे छोटे काम भी उनसे पूछ कर किए जाते हैं, जैसे लौंडी गुलाम खरीदना या नए कपड़े पहनना इत्यादि। इस विश्वास ने लोगों को ऐसे कष्ट में डाल रखा है और इसके ऐसे ऐसे बुरे परिणाम हो जाते हैं कि मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि अब तक लोग कैसे पहले ही की तरह इस विषय में विश्वासी बने हुए हैं क्योंकि सरकारी वा बेसरकारी, प्रकट वा अप्रकट, कैसा ही प्रस्ताव हो उससे ज्योतिषी को सूचित करना आवश्यक होता है।

यह घटना जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं यह है कि खास बादशाही मुसलमान ज्योतिषी (नजूमी) अकस्मात जल में गिर पड़ा और डूब कर मर गया। इस शोकजनक घटना से दरबार में बड़ा विस्मय फैला और इन नजूमियों की प्रसिद्धि में जो कि भविष्य की बातें जानने वाले माने जाते हैं बहुत धक्का लगा। यह व्यक्ति सदैव बादशाह और उसके दरबारियों के लिए मुहूर्त निकाला करता था। अतएव उसके इस प्रकार प्राण दे देने से लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि एक ऐसा अभ्यस्त विद्वान जो वर्षों तक दूसरे के लिए भविष्य में होने वाली अच्छी अच्छी बातें बतलाता हो उसी आपत्ति से जो स्वयं उस पर आने वाली थी परिचित न हो सका ? इस पर लोग यह कहने लगे की यूरोप में जहां विद्या की बहुत चर्चा है ज्योतिषियों और भविष्यवादियों को लोग धोखेबाज और झूठा समझते हैं और इस विद्या पर विश्वास

नहीं करते, वरन यह जानते हैं कि धूर्त लोगों ने बड़े आदमियों के दरबार तक पहुंचने और उनको अपना ग्राहक बनाने के लिए यह ढंग रच रखा है।

लोगों की ऐसी समझ विशेषकर निम्नलिखित बात से जिसकी बहुत चर्चा थी नजूमी अधिक अप्रसन्न हुए। वह बात यह है कि ईरान के प्रसिद्ध बादशाह शाह अब्बास ने कहीं अपने महल में बगीचा लगाने की आज्ञा दी थी और इस काम के लिए वह दिन भी नियत कर चुका था। बादशाही बागवान भी मेवे के कुछ वृक्षों के लिए एक उचित स्थान चुन चुका था परंतु बादशाही ज्योतिषी ने नाक-भौं चढ़ाकर कह दिया कि यदि सायत निकाले बिना वृक्ष लगा दिए जाएंगे तो कदापि नहीं फूले-फलेंगे। अतएव शाहअब्बास ने जो उसकी बात मान कर सायत निकालने को कहा तो उसने कुछ पांसा इत्यादि डाल और अपनी पुस्तक के पृष्ठ उलट-पुलट कर हिसाब लगाया और कहा कि नक्षत्रों के अमुक अमुक स्थानों में होने के कारण उचित जान पड़ता है कि दूसरी घड़ी के बीतने के पहले ही वृक्ष लगा दिए जाएं। बादशाही बागवान जो नजूमियों तथा ज्योतिषियों से कुछ पूछना व्यर्थ समझता था इस समय उपस्थित न था। अतः इसके बिना कि उसके आने की प्रतीक्षा की जाए गड्ढे खुदवाए गए और बादशाह ने अपने हाथों से वृक्षों को स्थान स्थान में लगा दिया ताकि भविष्य में पूर्व स्मृति की रीति पर कहा जाए कि ये वृक्ष स्वयं शाहअब्बास के लगाए हुए हैं। इधर बागवान ने जो अपने समय पर तीसरे पहर आकर वृक्षों को लगा हुआ देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और यह विचार कर कि वे उस क्रम से नहीं लगाए जो उसने विचारा था। जैसे सेब की जगह पीले आड़ू और बादाम के स्थान में नाशपाती के पौधे लगाए हुए थे, तो उसने उनको उखाड़ और उनकी जगह पर मिट्टी डाल कर रख दिया। रातभर वृक्ष इसी प्रकार रखे रहे। ज्योतिषी से भी जाकर किसी ने यह बात तुरंत कह दी। इसका यह परिणाम हुआ कि बादशाह के पास जाकर बागवान की इस कार्रवाई के लिए बहुत बुरा-भला कहने लगा। अपराधी बागवान उसी समय बुलाया गया। बादशाह ने अत्यंत क्रोध के साथ उससे कहा "तूने यह क्या हरकत की कि जिन दरख़्तों को हमने नेक सायत निकलवाकर अपने हाथ से लगाया था उनको उखाड़ डाला। अब क्या उम्मीद है कि इस बाग का कोई दरख़्त फल लाएगा, क्योंकि जो सायत नेक थी वह गुजर गई और फिर नहीं आ सकती।" बागवान एक स्पष्टवादी गंवार मुसलमान था। नजूमी की ओर तिरछी दृष्टि से देखकर बोला "वाह क्या अच्छी सायत निकाली ? अरे कमबख़्त बदशकुनी, जरा ख्याल तो कर कि यही तेरा नजूम है कि जो दरख़्त तेरे कहने से दोपहर को लगाए गए वे शाम से पहले उखड़ गए ?" शाहअब्बास यह आकस्मिक मजेदार बात सुनकर एकदम हंस पड़ा और ज्योतिषी की ओर पीठ करके वहां से चला गया।

अब दो कहानियां मैं और कहता हूं यद्यपि शाहजहां के समय की हैं तथापि यह प्रकट करती हैं कि जब कोई बादशाही कर्मचारी मरता है तब सरकार उसका

माल असबाब जब्त कर लेती है। उनमें से एक कहानी तो यह है कि दरबारियों में नेकनामखां नामक एक प्रसिद्ध अमीर था। चालीस पचास वर्ष के समय में बड़े बड़े पदों पर नियुक्त होकर उसने बहुत संपत्ति इकट्ठी कर ली थी। ऊपर लिखी अत्याचारपूर्ण प्रथा को वह सदा घृणा की दृष्टि से देखता था, क्योंकि इस प्रथा के कारण बड़े बड़े अमीर घरों की स्त्रियां सहसा ऐसी दरिद्रा और दया की पात्री हो जाती हैं कि अपना पेट पालन करने के लिए उनको बादशाह से थोड़ी थोड़ी बातों के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है और उनके पुत्र किसी अमीर की अधीनता में साधारण सिपाहियों में नौकरी करने के लिए विवश होते हैं। अतएव जब नेकनामखां का अंतिम समय निकट आया तब चुपचाप उसने अपने सब रुपये पैसे तो निस्सहाय विधवा स्त्रियों और अमीरों के ऐसे लड़कों को जो बेचारे सवारों में नौकरी करके पेट पालन करते थे बांट दिए और खाली बक्सों को लोहे के टुकड़ों, हड्डियों, पुरानी जूतियों और फटे पुराने कपड़ों से भरकर मुहरों से भली-भांति बंद करा दिया। दानपत्र में लिखा कि इनमें जो माल असबाब बंद है वह बादशाह सलामत का है, मेरी मृत्यु के पश्चात सावधानी से उनकी सेवा में भेज दिया जाए।

नेकनामखां की मृत्यु के बाद जब ये बक्स सरकार में पहुंचे तब बादशाह दरबार में ही उपस्थित था, इनको देखकर उसका जी ललचा आया और भरे दरबार में उसने इनके खोले जाने की आज्ञा दी। जब ये बक्स खुले तब उसे ऐसा दुख और ऐसी निराशा हुई कि जिसका वर्णन करना अनावश्यक है। अत्यंत लज्जित होकर वह तुरंत दरबार से उठकर चला गया।

दूसरी घटना यों है कि नेकनामखां के मरने के कई वर्ष बाद एक धनाढ्य बनिया जो सदा से बादशाह का कर्मचारी था और अपने देश की रीति के अनुसार बहुत सूद खाने वाला था मर गया। उसके पुत्र ने अपनी मां से कुछ रुपयों के वास्ते लड़ना-झगड़ना आरंभ किया परंतु माता ने उसका अपव्यय और वेश्या प्रेम देखकर उसे रुपये देने से इंकार किया, तब उस मूर्ख ने शाहजहां के पास जाकर कहा कि उसका पिता दो लाख क्राउन (अर्थात पांच लाख रुपये) छोड़कर मरा है। इस पर बादशाह ने तुरंत उस विधवा महाजनी को दरबार में बुलाकर आज्ञा दी कि एक लाख रुपये तो सरकारी खजाने में भेज दे और बाकी में से पचास हजार अपने पुत्र को दे दे और यह कहकर उसने अपने चोबदारों को आज्ञा दी कि इस बुढ़िया को दरबार से निकाल दो। यद्यपि यह सुनकर वह बेचारी विस्मित हुई और उसको इस बात का बहुत दुख हुआ कि बिना उसकी कुछ सुने दरबार से निकालने की आज्ञा हुई, तथापि वह साहस वाली थी घबराई नहीं, चोबदारों से झिड़क कर बोली कि हटो मैं अभी बादशाह से कुछ निवेदन करना चाहती हूं। इस पर बादशाह बोला कि अच्छा, जो यह कहना चाहती है कहने दो। बुढ़िया बोली, "सरकार मेरा पुत्र जो अपने पिता के माल का दावा करता है सो कुछ अनुचित नहीं है क्योंकि वह पुत्र और उत्तराधिकारी

है परंतु मैं हाथ जोड़कर निवेदन करती हूं कि सरकार का मेरे पति के साथ क्या संबंध है जो सरकार एक लाख रुपया मांगते हैं ?" शाहजहां यह छोटा प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और यह सोचकर कि हिंदुस्तान का बादशाह होकर वह एक बनिए का संबंधी कहा जाएगा उसे बड़ी हंसी आई। कई बार अट्टहास करने के बाद उसने आज्ञा दी कि अच्छा इसे जाने दो और इसका माल असबाब कोई न ले।

औरंगजेब और उसके भाइयों की पारस्परिक लड़ाई जब सन् 1660 ई. में समाप्त हो चुकी उस समय से लेकर कोई छह वर्षों तक जब कि मैं भारतवर्ष से विदा हुआ, जो जो घटनाएं ध्यान देने योग्य हुई उन सबको मैं यहां लिखना नहीं चाहता। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि उनमें से कुछ के लिखने से मेरा यह अभिप्राय: सिद्ध हो जाएगा कि मुगलों और भारतवासियों की रीति-नीति और विचार की बातें इस पुस्तक के पाठकों को विदित हो जाएं। तथापि उन वृत्तांतों को कहीं मैं पूर्ण रीति से कभी फिर लिखूंगा।

शाहजहां

इस जगह केवल उन्हीं लोगों का हाल लिखकर संतोष करता हूं जिनके नाम इस पुस्तक में आ चुके हैं। पहले शाहजहां के वृतांत से यह विषय आरंभ करता हूं।

यद्यपि औरंगजेब ने शाहजहां को आगरे के किले में बड़ी सावधानी से कैद कर रखा था और किसी ऐसे प्रबंध में कभी नहीं चूकता था जिसके बिना उसके कैद से निकल जाने की कुछ शंका हो, परंतु और सब प्रकार से इससे सम्मान और अदब का बर्ताव किया जाता था। शाहजहां को उन बादशाही महलों में रहने की अनुमति दी गई थी जिनमें वह पहले रहा करता था और उसकी पुत्री बेगम साहब भी उससे मिलने पाती थी। महल की इतर स्त्रियां भी जैसे रसोई की और नाचने गाने वाली स्त्रियां आदि सब उपस्थित रहती थीं और ऐसे विषयों में उसकी कोई इच्छा नहीं रोकी जाती थी। अब शाहजहां बड़ा पवित्र और ईश्वर भक्त बन गया था, अतएव कई मुल्लाओं को भी उसके पास जाकर धर्म की पुस्तकें पढ़कर सुनाने की आज्ञा थी। घोड़ा, बाज आदि कई प्रकार के शिकारी जानवरों के मंगाने और हरिनों तथा मेंढों आदि की लड़ाई का तमाशा देखने की भी अनुमति थी। तात्पर्य यह कि औरगंजेब का बर्ताव शाहजहां के साथ कृपा और श्रद्धा से खाली नहीं था और जहां तक बनता था वह अपने वृद्ध पिता का हर प्रकार से सत्कार करता था। वह उसके पास अधिकता से भेंट की वस्तुएं भेजता और राजनीति के विषयों में उसकी सलाह बहुत उत्तम और उपकारी समझ कर ग्रहण करता। उसके पत्रों से जो वह समय समय पर लिखा करता, श्रद्धा और आज्ञाकारिता झलकती। इन बातों से शाहजहां का क्रोध और जोश यहां तक ठंडा पड़ गया कि वह राज्य के विषय में औरंगजेब को लिखने-पढ़ने लगा, दारा शिकोह की पुत्री को भी उसने उसके पास भेज दिया, और उन बहुमूल्य रत्नों को भी स्वयं उसके पास पहुंचवा दिया जिनके विषय में पहले उसने कहा था कि यदि मांगोगे तो इनको कूट कूट कर चूर कर दूंगा। विद्रोही पुत्र के सब अपराधों को क्षमा करके उसकी भलाई के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। अस्तु, यद्यपि औरंगजेब कई बातों में अनेक बार क्षमा मांग चुका था और शाहजहां उस बात को स्वीकार नहीं करता था, परंतु मेरे इस कथन से यह न समझना चाहिए कि शाहजहां की हर एक बात वह बिना कुछ उजर किए मान

लेता था, क्योंकि मुझे औरगंजेब के एक पत्र-लिखावट के ढंग से विदित हुआ कि जब कभी वृद्ध बादशाह आज्ञा की रीति पर उसको कुछ लिखता तब वह उसके उत्तर में साहस के साथ अपनी ही बात पर दृढ़ रहने का ढंग दिखाता। मैंने उस पत्र का कुछ अंश पढ़ा है जो यह है–

"क्या हुजूर यह चाहते हैं कि मैं सख्ती के साथ पुरानी रस्मों का पाबंद रहूं और जो कोई नौकर चाकर मर जाए उसकी जायदाद जब्त कर लूं ? शाहाने मुगलिया का यह दस्तूर रहा है कि अपने किसी अमीर या दौलतमंद महाजन के मरने के बाद बल्कि बाज औकात तो दम निकल जाने से भी पहले उसके तमाम मालो-असबाब का पता लगा लेते थे और जब तक उसके नौकर चाकर कुल मालो-दौलत बल्कि अदना-अदना जेवन भी न बतला दें तब तक उन पर मार पीट होती और वे कैद किए जाते। गो कि यह दस्तूर बेशक फायदेमंद है मगर जो नाइंसाफी और बेरहमी इसमें है उससे कौन इंकार कर सकता है ? अगर हर एक अमीर नेकनामखां जैसा मामला करे या कोई औरत उस बेवा महाजनी की तरह अपने माल को पोशीदा कर ले तो उसके हक बजानिब हैं या नहीं ? मैं हुजूर की खफगी से बहुत डरता हूं और यह नहीं चाहता कि हुजूर मेरे तौरोतरीक की निस्बत गलतफहमी फरमावें। हुजूर फरमाते हैं, तख्तनशीनी ने मुझे खुदराय और मगरूर बना दिया लेकिन यह ख्याल गलत है। 40 बरस से ज्यादा के तजरबे से हुजूर खुद ही ख्याल फरमा सकते हैं कि ताजशाही किस कदर गिरांवार चीज है और बादशाह जब दरबार से उठता है तब किस कदर फिक्रें उसके दिल को गमगीन और दर्दमंद बनाए रहती हैं। हमारे जद्द अमजद जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर ने इसी गरज से कि उनकी औलाद दानाई नर्मी और तमीज के साथ सल्तनत करे अपने अहले सल्तनत की तारीख में अमीर तैमूर का एक जिक्रे बतौर नमूना लिख कर अपनी औलाद को उसकी तरफ तवज्जह दिलाई थी। यह तजकिरा यों हैं–जब तुकी सुलतान बैजद गिरफ्तार होकर अमीर तैमूर के हुजूर में लाया गया और अमीर बहुत गौर के साथ उस मगरूर कैदी की तरफ देखकर हंस दिया तब बैजद ने इस हरकत से नाराज होकर अमीर से कहा कि तुमको अपनी फतहमंदी पर इस कदर इतराना न चाहिए। दौलत और इज्जत बख्शना या ले लेना खुदा के हाथ में है। मुमकिन है कि जिस तरह तुम आज यह बात करते हो कल मेरी तरह पकड़े जाओ। अमीर ने जवाब दिया कि दुनिया और उसके जाहो दौलत की बेसबाती से मैं खूब वाकिफ हूं और खुदा न करे कि मैं किसी मगलूब दुश्मन की हंसी उड़ाऊं। मेरी हंसी का सबब यह न था कि तुम्हारा दिल दुखाऊं, बल्कि तुम्हें देखकर मुझे अपनी और तुम्हारी बदसूरती के ख्याल ने बेइख्त्यार हंसा दिया, क्योंकि तुम तो काने हो और मैं लंगड़ा, मेरे दिल में यह बात गुजरी कि ताज सल्तनत ऐसी चीज है जिसको पाकर बादशाह अपनी हस्ती को भूल जाते हैं, हालांकि खुदाएताला उसको अपने ऐसे बंदों को अता करता है जो काने और लंगड़े हों।

"मालूम होता है कि हुजूर यह ख्याल फरमाते हैं कि मेरी मसरूफियत बनिस्बत उन उमूर के जिनको मैं मुल्कदारी और सल्तनत के अंदरूनी इंतजाम के लिए निहायत जरूरी जानता हूं नई फतूहात और मुल्कगीरी की जानिब निहायत होना चाहिए। इस अम्र से मैं हरगिज इंकार नहीं कर सकता कि एक बड़े शहंशाह का अहदे दौलत नई नई फतूहात की वजह से मुमताज होता और तरक्की करता है और अगर मैं ऐसा न करूं तो गोया अपने बुजुर्ग अमीर तैमूर की नस्ल को धब्बा लगाऊंगा, मगर बहरहाल यह बात करीने इंसाफ नहीं कि मुझे काहिली और खामोश बैठे रहने का इलजाम दिया जाए। क्योंकि बंगाल और दक्षिण में मेरी फौजों की मसरूफियत को तो हुजूर अबस ख्याल फरमा ही नहीं सकते और मैं हुजूर को यह भी याद दिलाता हूं कि बड़े से बड़ा मुल्कगीर भी हमेशा सबसे बड़ा बादशाह नहीं हुआ। देखा जाता है कि कभी कभी दुनिया के अक्सर हिस्से बिलकुल वहशी नातर-बियतयाफ्ता कौमों ने फतह कर लिए हैं और निहायत वसीय सल्तनतें थोड़े ही अर्से में बिलकुल टुकड़े टुकड़े हो गई हैं। परंतु, हकीकत में सबसे बड़ा बादशाह वही है जो रिआया परवरी और अदल व इंसान ही को अपना हासिल अम्र जाने।"

इस पत्र के शेष भाग के पढ़ने का मुझे अवसर नहीं दिया गया। अब मैं कुछ बातें उस प्रसिद्ध व्यक्ति के विषय में लिखना चाहता हूं जिसको मीर जुमला कहते हैं और उन बातों का वर्णन करना चाहता हूं जिनसे औरंगजेब और उसके भाइयों की पारस्परिक लड़ाई के बाद उसका संबंध रहा—और यह भी कि इस प्रसिद्ध व्यक्ति का अंत किस प्रकार हुआ।

मीर जुमला—बंग देश पर अधिकार प्राप्त करने में मीर जुमला ने शुजा के साथ वैसी निर्दयता और बेईमानी नहीं की जैसी जीवनखां ने दारा शिकोह के साथ की थी, वरन एक चतुर सेनापति की भांति उसने उस प्रांत को अपने अधीन किया और इसके बिना किसी धोखे या कपट व्यवहार से शुजा को कैद कर केवल उसके राज्य को छोड़कर समुद्र की ओर भाग जाने के लिए विवश होकर संतोष किया। सुल्तान शुजा की लड़ाई का अंत होने के बाद मीर जुमला ने एक खोजे को पत्र देकर औरंगजेब के पास भेजा जिसमें लिखा था कि उसके बाल-बच्चों को उसके पास चले जाने की अनुमति दी जाए। उक्त पत्र का एक अंश यों है—

"लड़ाई बखैरो खूबी खत्म हो चुकी और चूंकि मैं जईफ और बुड्ढा हो गया हूं हुजूर की नवाजिश से मुझे उम्मीद है कि इससे ज्यादा अहलो अबाल से मेरी जुदाई को पसंद न फरमाइएगा।"

परंतु औरंगजेब इस चतुर व्यक्ति का मतलब तुरंत समझ गया, क्योंकि वह जानता था कि यदि उसके पुत्र मुहम्मद अमीनखां को बंगाल में भेज दिया जाएगा तो मीर जुमला अवश्य ही उस प्रांत का अधिकारी बन बैठेगा और संभव है कि इस विचित्र व्यक्ति का इतने से भी संतोष न हो। मीर जुमला चतुर, सावधान, प्रतिष्ठित,

साहसी, वीर और धैर्यवान होने के अतिरिक्त इस समय एक विजय पाई हुई सेना का अफसर था। भारतवर्ष का सब से बड़ा प्रांत उसके अधीन था और गोलकुंडे में जो घटना हुई थी उससे प्रमाणित हो चुका था कि वह कैसी तबियत का आदमी है अतएव ऐसे व्यक्ति की प्रार्थना निस्संदेह भयानक परिणाम लाने वाली होती। परंतु औरंगजेब इस अवसर पर भी अपनी अभ्यस्त बुद्धिमानी और चतुराई को काम में लाया, अर्थात उसकी स्त्री, पुत्र और पुत्रियों को तो भेज दिया और उसे 'अमीरुल' की पदवी दी जो एक ऐसी पदवी थी जिससे बढ़कर हिंदुस्तान का बादशाह दूसरी कोई पदवी नहीं दे सकता। परंतु उसके पुत्र मुहम्मद अमीनखां के लिए ऐसा प्रबंध किया कि उसे दूसरे या तीसरे दर्जे के मीरबख्शी की पदवी मिली और उसे सदैव दरबार में उपस्थित रहना पड़ता। बादशाह से उसका पृथक होना असंभव नहीं तथापि कठिन अवश्य था। इसके अतिरिक्त मीर जुमला को उसने बंगाल का स्थायी सूबेदार बना दिया।

मीर जुमला का जब मनोरथ सफल नहीं हुआ तब उसने सोचा कि यदि अब पुत्र के बुलाने के लिए अलग प्रार्थना की जाएगी तो बादशाह अवश्य नाराज हो जाएगा, अतएव उसने भी यही उचित जाना कि इन सरकारी इनामों के लिए धन्यवाद देकर चुप हो रहा जाए। इन घटनाओं को जब एक वर्ष हो चुका तब औरंगजेब ने इस बात का मन में ठीक निश्चय करके कि एक वीर सिपाही अधिक समय तक चुपचाप बैठा नहीं रह सकता और यदि उसे किसी अच्छे के साथ लड़ाई-भिड़ाई में लगाए न रखा जाएगा तो वह स्वयं अपने राज्य के भीतर कोई न कोई बखेड़ा खड़ा कर देगा, मीर जुमला को आसाम के राजा पर (जो एक बड़ा जबर्दस्त और धनी राजा था और जिसका राज्य ढाके के उत्तर की ओर बंगाल की खाड़ी के किनारे पर था) चढ़ाई की तैयारी करने की आज्ञा दी।

आसाम पर चढ़ाई—मीर जुमला स्वयं इस लड़ाई की चिंता में था क्योंकि उसको आशा थी कि इस प्रकार चीन की सीमा तक देश जीतने से बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त होगी। सो जब औरंगजेब का पत्रवाहक वहां पहुंचा तब उसने मीर जुमला को इस लड़ाई पर जाने के लिए पहले से ही प्रस्तुत पाया। तुरंत वीर सिपाहियों के एक दल ने नावों में उस नदी के मार्ग से कूच किया जो आसाम से निकली है और उत्तर तथा पूर्व की ओर से होकर एक दुर्ग पर जिसको आरजू कहते हैं और जो ढाके से लगभग 300 मील के अंतर पर है तथा जिसको आसाम के राजा ने बंगाल के एक सूबेदार से पहले छीन लिया था वह जा पहुंचा। वहां पहुंचने पर दस बारह दिन के अंदर दुर्ग जीत लिया गया। तब मीर जुमला चमदारा की ओर से जो कि आसाम का द्वार समझा जाता है बढ़ा और अट्ठाईस दिन की लंबी यात्रा करके वहां जा पहुंचा। वहां लड़ाई हुई और राजा हार कर गांव की ओर जो कि आसाम की राजधानी और चमदारा

से 120 मील के अंतर पर है भाग गया, परंतु मीर जुमला ने उसका पीछा किया और यहां भी उसे दम लेने नहीं दिया। बिना इसके कि जमकर लड़े अंत में लाचार होकर राजा पीछे को हटता हटता लासा की पहाड़ियों में जा घुसा। करगांव की जीत में सेना को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ (करगांव एक बड़ा और सुंदर नगर है और व्यापार की बड़ी मंडी है यहां की स्त्रियां सुंदरता के लिए प्रसिद्ध हैं)।

अब यहां से सिपाही आगे न बढ़ सके क्योंकि वृष्टि समय से कुछ पहले ही आरंभ हो गई थी। उस देश में वर्षा इस जोरों की होती है कि गांवों को छोड़ जो कि छांट कर ऊंचे स्थानों में बनाए जाते हैं सब जगह पानी ही पानी हो जाता है। इधर राजा ने अवसर पाकर सेना के आस-पास के स्थानों को गाय, भैंस, बकरी तथा अन्न आदि से खाली कर डाला था। इस कारण यद्यपि सेना ने बहुत-सा धन इकट्ठा कर लिया था परंतु रसद की कमी होने के कारण से बरसात समाप्त होने तक वह बड़े कष्ट में रही। अब मीर जुमला न आगे बढ़ सकता था न पीछे हट सकता था क्योंकि सामने जो पहाड़ थे वह बहुत ही दुर्गम थे और पीछे हटना इस कारण कठिन था कि पानी और दलदल की अधिकता के अतिरिक्त राजा ने चतुराई करके वह स्थान भी तुड़वा डाला था जिस पर से चमदारा का रास्ता था। अतएव बरसात भर लाचार होकर उसे वहीं रहना पड़ा। यदि यह सेना किसी दूसरे छोटी बुद्धि के सरदार के अधीन होती तो बंगाल को वापस लौटना कठिन था क्योंकि खाने-पीने की चीजें बहुत ही तंगी से मिलती थीं और रास्तों में इतना अधिक पानी एकत्र था कि सैनिक जल्दी जल्दी रास्ता तै नहीं कर सकते थे। वे इतने सुस्त हो गए थे कि मीर जुमला को आसाम पर विजय प्राप्त करने का विचार लाचार होकर छोड़ना पड़ा। राजा चुपचाप पीछे लगा चला आता था परंतु मीर जुमला अपने दल को इस ढंग से पीछे हटा लाया कि उसके कौशल की और भी धूम मच गई और धन संपत्ति भी वह अपने साथ बहुत लाया। लौटने के समय आजू दुर्ग को खूब दृढ़ करके योग्य सैनिकों का एक दल वहां वह इसलिए छोड़ता आया कि आगामी वर्ष के प्रारंभ में बरसात से पहले पहले फिर चढ़ाई की जाए। ज्यों ही वह बंगाल में पहुंचा त्यों ही उसके दल में बदहजमी फैली जिससे वह भी मर गया। जैसा कि होना संभव था उसके मरने से चारों ओर एक विचित्र धूमधाम फैल गई। बहुत से लोगों का कथन है वास्तव में औरंगजेब बंगाल का बादशाह अब हुआ। अस्तु, यद्यपि औरंगजेब के साथ मीर जुमला ने जो उपकार किए थे उसके लिए वह कृतज्ञ था। परंतु उसके मरने से वह कदाचित इस कारण दुखित नहीं हुआ कि उसकी ओर से उसे सदैव सशंक रहना पड़ता था। इसलिए इस मृत व्यक्ति के पुत्र मुहम्मद अमीनखां को दरबार में बुलाकर उसने उससे कहा—"अफसोस है कि तुम्हारा शरीफ बाप और हमारा निहायत मजबूत और खौफनाक दोस्त चल बसा।" परंतु फिर भी अमीनखां के साथ उसने अत्यंत कृपा और उदारता का बर्ताव किया और उसको विश्वास दिलाया

कि अपने बाप की जगह अब हमको समझो। मीर जुमला की संपत्ति भी उसके मरने के बाद अपने अधिकार में न करके उसने उसके पुत्र के ही पास रहने दी और उसकी तनख्वाह भी बंद नहीं कराई, बल्कि स्थायी रूप में उसे मीरबख्शी के पद पर नियुक्त कर दिया। इतना ही नहीं यह और भी विशेषता की कि उसे एक सहस्र रुपया अधिक मासिक वेतन देना आरंभ किया।

शाइस्तखां—अब मैं थोड़ा-सा हाल औरंगजेब के मामा शाइस्तखां का लिखता हूं जिसका कुछ वृतांत पहले भी लिखा जा चुका है। इसी व्यक्ति की चतुराई और कार्यकुशलता ने इसके भांजे औरंगजेब को बड़े ऊंचे पद पर पहुंचाया। आप पढ़ चुके हैं कि खजुआ की लड़ाई से पहले जबकि औरगंजेब राजधानी से शुजा के विरुद्ध लड़ने गया शाइस्तखां आगरे का सूबेदार नियुक्त हो चुका था। इसके बाद वह दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ और अब मीर जुमला की मृत्यु के बाद बंगाल का प्रबंधकर्ता और अमीरुलउमरा की पदवी के साथ वहां की सेनाओं की अध्यक्षता भी इसी को मिली।

शाइस्तखां ने बंगाल पहुंचते ही जिस काम का भार अपने ऊपर लिया उसका वर्णन करना आवश्यक है। विशेषकर इसलिए कि मीर जुमला जैसा चतुर आदमी उसे पूरा नहीं कर सका था। इससे बंगाल और अराकान की प्राचीन और वर्तमान अवस्थाएं भी जो अब तक प्रायः लोगों को मालूम नहीं हैं प्रकट हो जाएंगी और ध्यान देने योग्य कुछ और बातें भी विदित हो जाएंगी। परंतु इस लड़ाई का हाल मालूम होने और इन घटनाओं की बात अच्छी तरह समझने के लिए जो बंगाल की खाड़ी में हुई यह कह देना आवश्यक है कि अराकान में (इस जगह को लौंगों का देश भी कहते हैं) बरसों से बहुत-से नए पुर्तगीज दोगले और असल ईसाई गुलाम तथा ईसाई फिरंगी इधर-उधर के देशों से आकर बस गए थे और यह उन कुचरित्र लोगों का आश्रयस्थल था जो गोवा, सीलोन, कोचीन, मलाया और भारतवर्ष के उन स्थानों में से जो इससे पहले पुर्तगीजों के अधिकार में थे यहां चले आए थे। यहां आने पर सबसे अधिक उनका आदर होता था जो अपने पूजन स्थान को छोड़कर आते थे या जो तीन स्त्रियों से विवाह या कोई बड़ा अपराध करके भाग आते थे। ये केवल नाम के ईसाई थे और अराकान में इनका रहन-सहन बहुत ही घृणाप्रद था। बेधड़क होकर ये एक-दूसरे को मार डालते या विष दे देते थे और कभी कभी अपने पादरियों पर ही हाथ साफ कर देते थे। अराकान के राजा ने, जो सदा से मुगल अधिकारियों का विरोधी था इनकी स्थिति से अपने देश की शोभा को दृढ़ होना समझ कर चटगांव का बंदरगाह और बहुत-सी भूमि बस्ती के लिए इनको दे रखी थी। वह इनके कामों में कुछ छेड़छाड़ या बाधा नहीं करता था, अतएव ये बड़े बदमाश और स्वेच्छाचारी होकर लुटेरे और डाकू हो गए थे। ये छोटी छोटी नावों में चढ़कर इधर-उधर समुद्र में जाकर गंगा की अनगिनत शाखाओं तथा घाटियों में

जा घुसते, बंगाल के निचले भाग के टापुओं को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते। प्रायः सौ डेढ़ सौ मील तक के भीतर चले जाते और जहां कहीं भी बाजार लगा होता या शादी-ब्याह की धूम होती या कोई आनंद महोत्सव होता वहां सहसा जा पहुंचते और लोगों को पकड़ ले जाते। अभागे कैदियों को गुलाम बनाते और जो चीज उठाई न जाती उसको जला डालते यह इन्हीं की सदैव होने वाली लूटमार का कारण है कि हम गंगा जी के मुख पर ऐसे अच्छे टापुओं को जो किसी समय खूब बसे बसाए और समृद्ध थे सुनसान और उजड़ा हुआ देखते हैं। शेरों और जंगली जानवरों के अतिरिक्त अब वहां कोई नहीं रहता। इन कैदियों के साथ वे बड़ी निर्दयता का व्यवहार करते थे और उनका यहां तक साहस हो गया था कि बुड्ढे आदमियों को निकम्मा तथा व्यर्थ समझ कर उन्हीं स्थानों में बेचने के लिए ले जाते थे जहां से उनको पकड़ कर लाते थे। प्रायः देखा जाता था कि ये युवा पुरुष जो कल भाग्यवश भागकर उनके हाथ से बच गए थे आज अपने बुड्ढे बाप को खरीद कर उनके पंजे से छुड़ाने का यत्न कर रहे हैं। युवा कैदियों की यह दशा होती थी कि या तो उनको लूट मार का काम सिखाया जाता था (यहां तक कि वे खून खराबा करने के इच्छुक हो जाते थे) या गोवा, सिलोन सेंट टामस के पुर्तगीजों के हाथ वे बेच डाले जाते थे। वरन खास बंग देश के रहने वाले पुर्तगीज भी इन बेचारों के खरीद लेने में कुछ आगा पीछा नहीं करते थे। यह भयानक व्यापार गालिस तक होता था जो केपडास पालमस के निकट एक टापू है। इन लुटेरों ने यह नियम कर रखा था कि बेचने योग्य गुलामों की नावें की नावें भर कर भिन्न भिन्न स्थानों में ले जाकर प्रतिज्ञानुसार पुर्तगीजों के आने की बाट देखा करते थे जो उन सभी को बहुत ही थोड़े मूल्य पर खरीद ले जाते थे। बड़े दुख की बात है कि पुर्तगीजों की अवनति के बाद यूरोप की दूसरी जातियों ने भी चटगांव के इन लुटेरों के साथ, जिनको घमंड है कि वे एक वर्ष में इतने हिंदुओं को ईसाई बना लेते हैं जितनों को पादरी सारे भारतवर्ष में 10 वर्ष में भी नहीं बना सकते, यह अनुचित व्यापार जारी रखा। ख़ीष्ट धर्म के नियमों को इस प्रकार बराबर तोड़ते रहना और खुल्लम-खुल्ला धार्मिक पुस्तकों की आज्ञा के विरुद्ध काम करना। वाह ! क्या ही अच्छा ढंग हमारे धर्म के प्रचारित करने का इन दुष्टों ने निकाला है ?

ये लोग हुगली में जहांगीर की कृपा से बसे थे। जो ईसाइयों से बिलकुल बुरा नहीं मानता था और उनके वाणिज्य व्यवसाय से बहुत लाभ उठाने की आशा रखता था। इसके अतिरिक्त इन लोगों ने उससे यह भी प्रतिज्ञा की थी कि हम बंगाल की खाड़ी को समुद्री डाकुओं से सुरक्षित रखेंगे। परंतु शाहजहां ने, जो अपने पिता की अपेक्षा मुसलमानी धर्म पर अधिक श्रद्धा रखता था इस कारण उनको अधिक दंड दिया कि वे न केवल अराकान के डाकुओं को साहस दिलाते थे वरन स्वयं बहुत-से गुलाम जो बादशाही प्रजा थे अपने पास रखकर उनके छोड़ने से इंकार करते थे।

अतएव उसने प्रथम तो धमका-फुसला कर बहुत-सा रुपया वसूल किया इसके अतिरिक्त बादशाह की अंतिम आज्ञा के अनुसार जो जो कार्य उनसे कराने थे जब उन्होंने उनको करना स्वीकार किया तब अंत में घेरा करके नगर पर अधिकार कर लिया और प्रायः सबको गुलाम बनाकर आगरा भेज दिया। निकट समय के इतिहासों में इन लोगों के कष्ट की जोड़ कहीं नहीं पाई जाती। हां बेबीलोन की घटना से यह घटना बहुत कुछ मिलती जुलती है क्योंकि शाहजहां की आज्ञा से पूजक, फकीर, बच्चे कोई आफत से नहीं बचे। सुंदर रूपवती स्त्रियां तो, क्या ब्याही, क्या क्वांरी, दासियां बनाकर राजमहल में भेज दी गईं और जो कुछ अधिक उमर की थीं या सरूपा नहीं थीं वे अमीरों को बांट दी गईं। छोटी उमर के लड़के गुलाम बनाए गए और नवयुवक कुछ तो बड़ी बड़ी पदवियां पाने के लाभ से और कुछ हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवाए जाने की धमकियों से मुसलमान हो गए। अवश्य ही कुछ महंत अपने धर्म पर दृढ़ रहे और जे स्विट संप्रदाय के ईसाइयों तथा पादरियों की कृपा से, जिन्होंने इस आपदा के समय में भी आगरा नहीं छोड़ा और बहुत धन व्यय करके तथा मित्रों से कह सुन कर जो अपने उदार विचार में कृत कार्य हुए, गोवा तथा पुर्तगीजों के अधिकार के दूसरे स्थानों को भेज दिए गए। परंतु हुगली की घटना से पहले ये पादरी भी शाहजहां की कोप दृष्टि से नहीं बचे थे। उसने आगरे का विशाल और सुंदर गिर्जा जो जहांगीर के समय में बना था एक और गिरजे के सहित जो लाहौर में बन गया था गिरवा दिया। इस गिरजे के मीनार पर एक घंटा लगा था, उसका शब्द नगर भर में सुनाई पड़ता था।

हुगली के छिन जाने से पहले जबकि बैस्टियन कानसल्व अराकान के समुद्री डाकुओं का सरदार था और ऐसा नामी तथा शक्तिशाली व्यक्ति था कि अराकान नरेश की कन्या से उसने विवाह कर लिया था। इन डाकुओं ने गोवा के गवर्नर की सेवा में नियमबद्ध रीति पर एक प्रार्थना पत्र भेजा कि यदि आप चाहें तो सारे अराकान देश पर हम आपका अधिकार करा सकते हैं। यद्यपि पुर्तगीजों की उस नीति के विचार से जिस पर वे जापान, पेगू, एथिओपिया तथा अन्यान्य देशों में चले थे इस प्रार्थना के स्वीकार करने में कोई नई आश्चर्यप्रद बात नहीं थी, परंतु कहा जाता है कि गोवा के अधिकारी ने डाह और घमंड के मारे इसे अस्वीकार कर दिया। उसको यह बात अनुचित मालूम हुई कि पुर्तगाल का बादशाह ऐसे बड़े मामले में एक ऐसे छोटे मनुष्य का कृतज्ञ बने। वास्तविक बात यह है कि हिंदुस्तान में पुर्तगीजों की अवनति होने का कारण उन्हीं की बुरी कार्यवाहियां थीं और जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं इसको ईश्वर के कोप का एक लक्षण समझना चाहिए। प्राचीन समय के पुर्तगीजों का भारतवर्ष में बड़ा नाम था। इस देश के बड़े बड़े लोग उनसे मित्रता करने की इच्छा करते थे। उस समय वे अपने साहस, अपनी धार्मिकता, अपनी धनाढ्यता और बड़े बड़े कार्य करने में प्रसिद्ध थे। वे ऐसे नहीं थे जैसे आजकल

के पुर्तगीज हैं जो प्रत्येक कुकर्म के अभ्यस्त हो रहे हैं और जिनका हर एक नीच तथा दुष्ट काम में जी लगता है।

इसी समय के लगभग जिसकी बात मैं कह रहा हूं 'सोनदीप' नामक टापू इन समुद्री डाकुओं ने अपने अधिकार में कर लिया था जो कि गंगा जी के मुख पर था और शत्रुओं को रोक रखने के लिए बहुत उपयोगी था। फरा जोआन नामक वह प्रसिद्ध बदमाश जो अगष्टीन संप्रदाय के महंतों में से था न मालूम किस प्रकार की चतुराई से वहां के अधिकारी को निकाल कर बहुत समय तक इस टापू का एक छोटा-सा राजा बना हुआ था। ये ही वे डाकू थे जिनका हाल मैंने पहले लिखा है कि वे अपनी 'गलीस' नामक नावों में बैठकर शुजा के पास ढाका में इसलिए गए थे कि उसको अराकान ले जाएं। इस अवसर पर भी इन दुष्टों ने चतुराई करके उसके असबाब के संदूकों में से बहुत-से जवाहरात निकाल लिए थे और अराकान पहुंच कर सस्ते मूल्य पर उनको चुपचाप बेचते फिरते थे जिनमें से डचों और यूरोपियनों ने बहुत-से हीरे यह धोखा देकर कि ये कच्चे हैं उन मूर्खों से बहुत थोड़े मूल्य में ले लिए थे।

मैं समझता हूं कि जो कुछ मैंने वर्णन किया वह इस बात का अनुमान कराने के लिए यथेष्ट होगा कि मुगल बादशाह को इन निर्दयी लुटेरों के कारण कितना कष्ट, चिंता और व्यय उठाना पड़ता था और उनके बंगाल में घुस आने के डर से सेनाएं तथा गलीस नावें नाकों के रोकने के निमित्त रखनी पड़ती थीं। इतने पर भी उन दुष्टों के कारण देश को बराबर कष्ट पहुंचता रहता था। ये डाकू इतने साहसी और अपने काम में ऐसे चतुर थे कि केवल चार पांच गलीस नावों में बैठकर चढ़ आते थे और बादशाही नावों को खींच ले जाकर नष्ट कर डालते थे। अतएव बंगाल की सूबेदारी पाकर शाइस्तखां ने उन्हें दंड देने का विचार किया। इसमें उसके दो मतलब थे। एक तो यह कि अपने प्रांत को उन निर्दयी लुटेरों के बारंबार के आक्रमण से बचाना और दूसरा अराकान के राजा पर चढ़ाई करना तथा उसको इस निर्दयता का फल चखाना जो उसने सुलतान शुजा और उसके बाल-बच्चों के साथ की थी, क्योंकि औरंगजेब की दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि उसके मारे जाने का बदला ले और इस उदाहरण से आसपास के सब रईसों को शिक्षा दे कि बादशाही कुल के लोग चाहे कैसी ही दशा में हों मनुष्यत्व और सम्मान के साथ बर्ताव किए जाने के अधिकारी हैं।

अस्तु, शाइस्तखां ने अपने विचार की पहली बात तो बड़ी सावधानी और चतुराई के साथ पूरी की। नदी-नालों के कारण जो कि रास्ते में पड़ते थे सूखे मार्ग से अराकान को सेना ले जाना बहुत कठिन था और उन डाकुओं के कारण जो समुद्री लड़ाई में विशेष निपुण थे जलमार्ग से भी जाना नहीं हो सकता था। अतएव उसने डचों से सहायता लेना उचित समझा। जिस प्रकार ईरान के अधिकारी शाह अब्बास ने

अंगरेजों से मित्रता करके हुरमुज टापू पर अधिकार कर लिया था उसी प्रकार इसने डचों की सहायता से अराकान पर अधिकार कर लेना चाहा। बटेविया के गवर्नर के पास कुछ शर्तों के साथ ऊपर लिखी बात का प्रबंध करने के लिए अपने एलची को भेजा और यह संदेशा कहला दिया कि आईए हम आप मिलकर अराकान पर अधिकार कर लें। बटेविया के अधिकारी ने इस कारण यह बात सहज में स्वीकार कर ली कि इस उद्योग में सफलता होने से भारतवर्ष से पुर्तगीजों का अधिकार कम करने का (जिससे डच कंपनी का बहुत लाभ था) अवसर हाथ आता था। निदान उसने अपनी ओर से लड़ाई के दो जहाज बंगाल को भेज दिए ताकि वे शाइस्तखां की सेना को सुगमता से चटगांव में पहुंचा दें। इस बीच में शाइस्तखां ने भी गलीस आदि बड़ी बड़ी नावें बनवा ली थीं। अतएव उसने उन डाकुओं को इस प्रकार धमकाया कि यदि अधीनता स्वीकार नहीं करोगे तो नष्ट-भ्रष्ट कर दिए जाओगे। क्योंकि औरंगजेब ने अराकान के राजा को दंड देने का पक्का निश्चय कर लिया है और डचों के युद्ध के जहाजों का एक बड़ा बेड़ा भी जिसका तुम सामना न कर सकोगे बहुत शीघ्र आने वाला है। सो यदि तुम बुद्धिमान हो और अपने बाल-बच्चों की भलाई चाहते हो तो राजा की नौकरी छोड़कर बादशाही सेवा में आ जाओ। तुमको जितनी आवश्यकता होगी बंगाल में जमीन दे दी जाएगी और राजा के यहां जितना वेतन मिलता है उसका दूना मिलेगा।

इसी समय के लगभग इन डाकुओं ने अराकान के राजा के एक बड़े पदाधिकारी को मार डाला था। अब यद्यपि यह बात तो ठीक मालूम नहीं कि राजा के दंड देने की चिंता ने इन्हें डराया या शाइस्तखां की धमकियों और आशाप्रद प्रतिज्ञाओं ने असर किया। परंतु यह निश्चय है कि एक दिन इन दुष्ट पुर्तगीजों पर ऐसा डर छाया कि एकदम चालीस पचास गलीसों में बैठकर ये बंगाल को चल पड़े और ऐसी जल्दी से भागे कि स्त्री-बच्चे और माल-असबाब भी कठिनता से अपने साथ ले सके। शाइस्तखां इन नए मुलाकातियों से बड़ी शिष्टता के साथ मिला। बहुत-सा धन भी उसने इनको दिया और ढाके में इनके बाल-बच्चों के रहने के लिए अच्छा बंदोबस्त कर दिया। इस भांति उसके उत्तम बर्तावों का इनको ऐसा भरोसा हो गया कि बादशाही सेना के साथ लड़ाई पर जाने की इन्होंने स्वयं इच्छा प्रकट की। सोनदीप नामक टापू पर चढ़ाई करने और उसे जीत लेने में जो कुछ दिनों से अराकान के राजा के अधिकार में चला गया था वे सम्मिलित हुए और फिर वहां से बादशाही सेना के साथ चटगांव को गए। अब यद्यपि डचों के वे दोनों लड़ाई के जहाज भी जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है आ पहुंचे, परंतु शाइस्तखां ने उसकी कृपा का धन्यवाद करके कहला भेजा कि अब आपके कष्ट करने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

बंगाल में इन जहाजों को मैंने भी देखा था और इनके अफसरों से मेरी मुलाकात भी हुई थी जो यह कहते थे कि इस हिंदुस्तानी सरदार ने केवल जबानी जमा खर्च

और सूखा धन्यवाद देकर टाल दिया—अपनी प्रतिज्ञा पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

शाइस्तखां का बर्ताव इन पुर्तगीजों के साथ यद्यपि वैसा नहीं है जैसा इनके काम के विचार से होना उचित था, परंतु हां वह इनके साथ उसी ढंग का व्यवहार कर रहा है जिसके योग्य हैं। उसने चटगांव से तो इनको उखाड़ ही दिया है और अब यह अपने बाल-बच्चों समेत उसी के अधिकार में हैं जिस पर अब इनकी सहायता की भी अपेक्षा नहीं रही। अतएव शाइस्तखां ने समझ लिया है कि इन से जो प्रतिज्ञाएं की गई थीं उनमें से एक के भी पूर्ण करने का अब प्रयोजन नहीं है सो कई कई महीने बीत जाते हैं और वेतन के नाम से एक फूटी कौड़ी भी इनको नहीं दी जाती है, बल्कि शाइस्तखां इनके विषय में खुले आम यह कहता फिरता है कि ये ऐसे विश्वासघाती और दुष्ट हैं कि इन पर भरोसा करना मूर्खता है। इस भांति शाइस्तखां ने उन पुर्तगीजों की शक्ति का प्रदीप बुझा दिया जिन्होंने बंगाल के निचले भाग में महाअंधेर मचाकर सारे देश को सुनसान तथा उजाड़ कर दिया था। यह बात पीछे मालूम होगी कि शाइस्तखां को ऐसी सफलता अराकान की चढ़ाई में भी होती है या नहीं।

औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद सुलतान और मुहम्मद मुअज्जम का वृत्तांत—मुहम्मद सुलतान अब तक ग्वालियर के किले में कैद है परंतु कहा जाता है कि अब उसे अफीम नहीं पिलाई जाती और मुहम्मद मुअज्जम पूर्ववत अपनी बुद्धिमानी और चतुराई की चाल पर चला जाता है, परंतु एक घटना से ऐसा जान पड़ता है कि कदाचित बादशाह उससे कुछ रुष्ट था और इस रोष का कारण या तो यह होगा कि अपने पिता की बीमारी के समय उसने कोई अनुचित कार्य किया होगा या कोई और अज्ञात कारण होगा। यह भी हो सकता है कि बिना किसी रोष के केवल साहस और आज्ञाकारिता की परीक्षा लेना इष्ट रहा हो। अस्तु, एक दिन भरे दरबार में औरंगजेब ने उसको यह आज्ञा दी कि एक शेर जो पहाड़ से उतर आया है आसपास के लोगों को तकलीफ देता है उसको जाकर मार आओ। उस समय यद्यपि बादशाह के प्रधान शिकारी ने साहस करके कहा भी कि श्रीमान जी वे बड़े बड़े जाल भी तो साथ जाने चाहिए जो इसी भयंकर शिकार के लिए बने हैं। परंतु औरंगजेब ने बड़े रूखेपन से उत्तर दिया कि नहीं, उनकी कोई जरूरत नहीं क्योंकि शहजादगी की उमर में तो हमने इस किस्म के एहतेयातों का कभी ख्याल भी नहीं किया। यह बात उसने इस ढंग से कही कि सुलतान मुअज्जम को बिना कुछ आपत्ति किए उसकी आज्ञा माननी पड़ी। यद्यपि इस उद्योग में दो तीन आदमी मारे गए और शेर चोट खाकर राजकुमार के हाथी पर झपटा परंतु मार दिया गया। जब से सुलतान मुअज्जम का यह साहस प्रकट हुआ तब से औरंगजेब उसके साथ बड़ी प्रीति का बर्ताव करने लगा बल्कि दक्षिण की सूबेदारी भी उस को दे दी परंतु इसमें संदेह नहीं कि उसने उसको इतना धन या अधिकार नहीं दिया कि उसकी ओर से कुछ शंका करने का डर होता।

महावतखां (सूबेदार काबुल)–अब मैं काबुल के सूबेदार महावतखां का जिक्र करता हूं। इसने भी अंत में काबुल के अधिनेतृत्व से हाथ खींचकर औरंगजेब के सम्मुख उपस्थित हो जाना ही उचित समझा और औरंगजेब ने भी इसके साहस का विचार करके इसे क्षमा कर दिया और कहा–"ऐसे सिपाही की जान बहुत कीमती है। अपने मालिक (शाहजहां) के साथ इसकी वफादारी तारीफ के लायक है।" अपराध क्षमा करने के अतिरिक्त औरंगजेब ने राजा यशवंत सिंह के स्थान में जो कि शिवाजी के विरुद्ध शाइस्तखां की सहायता के लिए भेजे गए थे इसे दक्षिण का सूबेदार भी नियुक्त कर दिया। परंतु हां, इस जगह यह बात भी बतला देने के योग्य है कि भेंट की उन वस्तुओं के अतिरिक्त जो महावतखां ने रोशनआरा बेगम को दी थीं, 15-16 सहस्र अशर्फियां और बहुत-से ईरानी ऊंट तथा घोड़े उसने स्वयं बादशाह को दिए। अतएव आश्चर्य नहीं कि इन भेंटों ने ही औरंगजेब को नम्र कर दिया हो।

महावतखां के साथ काबुल का वृत्तांत आ गया है इस कारण इसके पड़ोसी कंधार प्रांत का ध्यान भी आप से आप मेरे जी में आ जाता है, अतएव उचित है कि उसका वर्णन भी दो एक पृष्ठों में कर डालूं। यह प्रांत वर्तमान समय में ईरान राज्य को कर देता है। इसके विशेष वृत्तांत इसकी उन राजनीतिक द्वेष और झगड़ों की बातों को जो इस देश के कारण होते रहते हैं, बहुत कम लोग जानते हैं।

अतएव विदित हो कि यह देश और इसकी राजधानी जो इस हरे-भरे सुंदर प्रांत में एक मजबूत दुर्ग है दोनों को 'कंदहार' कहते हैं और इस पर अधिकार करने के लिए ईरानियों तथा मुगल बादशाहों में परस्पर बहुत दिनों तक भयानक लड़ाई होती रही है अकबर बादशाह ने ईरानियों से इसे छीन लिया था और उसके समय तक यहां मुगलों का ही अधिकार था, परंतु उसके बाद ईरानी शाह अब्बास ने उसके पुत्र जहांगीर से उसे फिर ले लिया। शाहजहां के समय में अलीमुरादखां के विश्वासघात से, जो यहां का प्रबंधकर्ता था और शाहजहां से मिलकर उनकी शरण में चला गया था, यह देश पुनः मुगल राज्य के अंतर्गत हो गया। अलीमुराद के ऐसा करने का यह कारण था कि ईरान के दरबार में उसके बहुत-से शत्रु थे और वह भली-भांति जानता था कि यदि उस आज्ञा का पालन करने में जो कंधार का हिसाब समझाने के विषय में मिली है त्रुटि करूंगा तो बुरा परिणाम होगा। अस्तु, इसके बाद शाह अब्बास के पुत्र ने घिराव डालकर उसको फिर जीत लिया। यद्यपि शाहजहां ने दो बार सेना भेजी पर दोनों ही बार उसे सफलता नहीं मिली। पहली बार तो उन विश्वासघाती ईरानी अमीरों के कारण सफलता नहीं हुई जो शाहजहां के दरबार में उच्चतम पदों पर आरूढ़ थे और प्रकट में उसके हितैषी थे परंतु वास्तव में वे अपने देश ईरान की भलाई चाहते थे। इन्होंने घेरे के समय बिलकुल जी चुराया और राजा रूपसिंह को जिन्होंने अपना झंडा उस दीवार जाकर गाड़ा था जो पहाड़ से सबसे

अधिक निकट था, जरा भी सहायता न पहुंचाई और दूसरी बार औरंगजेब की डाह के कारण सफलता न हुई जिसने उस मार्ग से जो अंगरेजों, पुर्तगीजों, जर्मन और फ्रांसीसियों की तोपों से दीवार के एक भाग के टूट जाने से बना था प्रवेश करना ही स्वीकार नहीं किया। बात यह थी कि इस चढ़ाई का आरंभ दारा ने किया था जो उस समय अपने पिता के साथ काबुल में था और औरंगजेब को यह बात पसंद नहीं थी कि इस उद्योग में सफलता होने की प्रशंसा उसको (अर्थात दारा को) मिले। यद्यपि शाहजहां ने पुत्रों की पारस्परिक लड़ाई से कई वर्ष पहले तीसरी बार भी कंधार का घेरा करना चाहा था, परंतु मीर जुमला ने रोक दिया था और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं वहां के बदले दक्षिण पर चढ़ाई की सलाह दी थी। अलीमुरादखां ने मीर जुमला की राय का बड़े गंभीर भाव से अनुमोदन किया बल्कि यह विचित्र बात कही कि "जब तक कोई मुझ-सा ही नमकहराम उसका फाटक न खोल दे या हुजूर तमाम ईरानियों को जो हुजूर की फौज में हैं खरिज न कर दें और इस मजमून का इश्तहार जारी न फरमा दें कि बाजारी लोगों से जो फौज के लिए रसद लावेंगे किसी तरह का महसूल न लिया जाएगा तब तक कंधार का किला कभी हुजूर के कब्जे में नहीं आ सकता।"

कई वर्ष हुए औरंगजेब ने भी या तो उस पत्र से जिसको ईरान के बादशाहों ने भेजा था या उन अनुचित बर्तावों के कारण से जो उसके दूत के प्रति ईरान के दरबार में हुए थे उसने कंधार पर चढ़ाई करने की तैयारी की थी, परंतु ईरान के अधिपति की मृत्यु का संवाद सुनकर उसने चढ़ाई रोक दी और यह बात बनाई कि हमारा हृदय इस बात को स्वीकार नहीं करता कि एक लड़के पर जो अभी गद्दी पर बैठा है हम चढ़ाई करें। पर जहां तक मैं अनुमान करता हूं पिता की गद्दी पर बैठने के समय शाह सुलेमान की उम्र 25 वर्ष से कम नहीं होगी।

औरंगजेब के हितैषी–अब मैं औरंगजेब के प्रधान प्रधान स्नेहियों का जिनमें से प्रायः सभी को बड़े बड़े पद दिए गए थे वर्णन करना आरंभ करता हूं।

विदित हो कि उसके मामा शाइस्तखां को जैसा मैं पहले कह चुका हूं दक्षिण का सूबेदार बनाया गया और जो सेना वहां काम देख रही थी उसकी अफसरी भी उसी को दी गई। अंत में बंगाल की सूबेदारी भी उसने प्राप्त की। इसके अतिरिक्त अमीरखां को काबुल की, खलील उल्लाहखां को लाहौर की, जुलफिकारखां को पटना की और लीवर्दीखां के पुत्र को जिसके पिता की सलाह से खजुआ स्थान में सुलतान शुजा हारा था, सिंध की सूबेदारी दी गई। फाजिलखां जिसकी योग्यता और सलाहों से औरंगजेब को बहुत कुछ सहायता मिली थी, खानसामा नियत हुआ। देहली की सूबेदारी दानिशमंदखां को मिली और इस प्राचीन रीति के अनुसार कार्य करने से कि हर एक अमीर को प्रातः और संध्या के समय सलाम करने के लिए दरबार में

जाना पड़ता है और यदि कोई इस नियम के विरुद्ध कार्य करे तो इसे जुर्माना देना पड़ता है वह इसलिए क्षमा कर दिया गया है कि उसको पुस्तकावलोकन से बहुत प्रेम है और इसके अतिरिक्त एक और बादशाही काम में भी उसे बहुत समय लगाना पड़ता है। दियानतखां को कश्मीर की सूबेदारी मिली जो यद्यपि दुर्गम और छोटा देश है पर ऐसा सुंदर और हरा-भरा है कि हिंदुस्तान का स्वर्ग कहलाता है।

कश्मीर देश अकबर ने कपटी उपाय से जीता था। इस देश का वहीं की भाषा में एक बहुत सुंदर इतिहास है। उसमें वहां के प्राचीन राजाओं का बड़ा मनोहर वृत्तांत है। वहां ऐसे बलवान राजा हो गए हैं जिनके ताबे में हिंदुस्तान तो क्या लंका टापू तक था। जहांगीर बादशाह ने फारसी भाषा में इस इतिहास का संक्षिप्त अनुवाद कराया है। उसकी एक प्रति मेरे पास भी है। यह बात भी छोड़ने के योग्य नहीं है कि निजाबतखां को अंत में राजा की सेवा में रह जाने के कारण औरंगजेब ने पद से गिरा दिया। अब उन दो दुष्ट मनुष्यों अर्थात जीवनखां के विषय में तो मैं आगे ही लिख चुका हूं कि उसको उसके कर्मों का फल मिल गया, पर नजीर की क्या दशा हुई यह नहीं मालूम।

शिवाजी, यशवंत सिंह और जयसिंह का वृत्तांत यद्यपि कुछ गड़बड़ है पर मैं उसके स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा। विदित हो कि बीजापुर में एक मनुष्य ने विद्रोह करके कई दुर्गों और बंदरगाहों पर जो बीजापुर में बादशाह के अधीन थे अधिकार कर लिया था उसका नाम शिवाजी है। शिवाजी चतुर और साहसी पुरुष है जो अपने मरने जीने की तनिक भी परवाह नहीं करता है। जिस समय शाइस्तखां दक्खिन में था तो वह शिवाजी को बीजापुर के शाह से भी बढ़कर जबरदस्त पाता था। यद्यपि शाह के पास बहुत बड़ी सेना थी और वे राजे भी उसकी सहायता करते थे जो अपने बचाव के लिए उससे मिल जाते थे। शिवाजी का साहस और उद्यम इससे ही समझ लेना चाहिए कि यद्यपि शाइस्तखां के सिपाही चारों ओर उतरे हुए थे और औरंगाबाद नगर दीवारों से घिरा हुआ था परंतु तिस पर भी यह वीर और साहसी पुरुष कुछ थोड़े-से आदमी लेकर एक रात शाइस्तखां के मकान में जा ही घुसा और यदि सावधान होने में कुछ और विलंब हो जाता तो शाइस्तखां के सब माल-असबाब पर अधिकार कर लेता क्योंकि इसी विचार से वह वहां गया था। उस समय शाइस्तखां बहुत घायल हुआ और उसका पुत्र तो म्यान से तलवार निकालते समय ही मारा गया।

इसके थोड़े ही दिन बाद शिवाजी ने एक और चढ़ाई की जिसमें अधिक सफलता हुई अर्थात दो-तीन हजार चुने हुए सिपाहियों को लेकर उन्होंने अपने स्थान से प्रस्थान किया और यह प्रसिद्ध किया कि एक राजा बादशाह से मिलने के लिए जाता है। जब सूरत का अधिकारी उनको मिला तो उससे इन्होंने कहा कि मेरा विचार नगर के भीतर जाने का नहीं है, मैं बाहर जाऊंगा परंतु पीछे ये नगर में गए और लड़ तथा लूटमार कर कई मीलियन (एक मिलियन दस लाख का होता है) रुपयों का

सोना, चांदी, रेशमी कपड़े, व्यापार की वस्तुएं इत्यादि ले गए। जो न जा सके उनमें आग लगा दी। इस अवसर पर किसी ने उनकी रोक-टोक नहीं की इससे संदेह किया गया कि राजा यशवंत सिंह उनसे मिल गए थे और शाइस्तखां पर आक्रमण तथा सूरत पर चढ़ाई होना ये सब बातें उनकी सलाह से हुई थीं। अतएव वे दक्षिण से वापस बुलाए गए, परंतु देहली न जाकर वे अपने राज्य को चले गए।

एक बात कहना मैं भूल गया। वह यह कि शिवाजी ने सूरत को लूटते समय रेवरेंड फादर एंब्रोज के मकान को जो केपोशीन संप्रदाय के एक पादरी थे यह कहकर छोड़ दिया था कि अंगरेजों के पादरी सीधे-सादे स्वभाव के हैं इनको दुख देना उचित नहीं है। इस प्रकार एक हिंदू को जो डच व्यापारियों की दलाली करता था इस कारण छोड़ दिया कि वह बड़ा दानी और पुण्यवान प्रसिद्ध था। इस चढ़ाई में अंगरेजों ने अपने जहाजों के मल्लाहों की सहायता से अपने और अपने पड़ोसियों को बचाने का यत्न किया। एक यहूदी ने ऐसा हठ दिखाया कि लोग देखकर हैरान रह गए। शिवाजी ने यह सुनकर कि उसके पास बड़े मूल्य के जवाहरात हैं और उनको वह औरंगजेब के पास ले जा रहा है उसको तीन बार नंगी तलवार मारने के लिए उठाकर बहुत डराया धमकाया, परंतु उसने जवाहरात का पता नहीं बताया और यहूदियों की इस बात का कि वे रुपये को प्राणों से अधिक प्रिय समझते हैं भली भांति निर्वाह किया।

सूरत की घटना के बाद औरंगजेब ने राजा जयसिंह को दक्षिण का सेनापति नियत किया और मुहम्मद मुअज्जम को भी उनके साथ भेजा। परंतु इस राजकुमार (मुअज्जम) को किसी प्रकार का अधिकार नहीं दिया। सबसे प्रथम राजा जयसिंह ने शिवाजी के सबसे बड़े दुर्ग पर आक्रमण करना आरंभ किया। परंतु वे बीच बीच में प्रतिज्ञाएं भी करते जाते थे, जिनका यह परिणाम हुआ कि शिवाजी ने स्वयं दुर्ग छोड़ दिया और यह शर्त स्वीकार कर ली कि बीजापुर की चढ़ाई में औरंगजेब को सहायता पहुंचाऊंगा। उस समय औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की पदवी दी और उसके पुत्र को दरबारियों में प्रविष्ट करके पुरस्कार नियत कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद फारस पर चढ़ाई करने का विचार हुआ। उस समय औरंगजेब ने शिवाजी को बड़े आदर और सम्मान का पत्र लिखा जिसमें उनकी वीरता, उदारचित्तता, साहस आदि की बड़ी प्रशंसा थी। राजा जयसिंह ने भी उस समय लिखा कि हम आपके सम्मान और जीवन के जिम्मेदार हैं। अतएव शिवाजी निश्चिंत होकर देहली गए। परंतु शाइस्तखां की स्त्री उन दिनों देहली में थी। वह शिवाजी से बहुत द्वेष रखती थी और बराबर कहती थी कि इसने मेरे पुत्र को मारा और पति को घायल किया है अतएव इसको कैद करना चाहिए। सो लक्षण-कुलक्षण और यह देखकर कि तीन-चार अमीर चुपचाप ताक में लगे रहते हैं, एक रात शिवाजी भेष बदल कर वहां से चले गए। उनके चले जाने पर बादशाही बेगमों को दुख हुआ और जयसिंह

के बड़े पुत्र पर उनको निकल जाने में सहायता पहुंचाने का संदेह किया गया, अंत में उसे दरबार में आने से मनाही कर दी गई।

औरंगजेब जयसिंह और उनके पुत्र अर्थात दोनों ही से या तो वास्वत में या केवल दिखाने के लिए प्रकाश में रुष्ट जान पड़ता था। इस कारण राजा जयसिंह को यह संदेह हुआ कि कहीं वह इसी बहाने से उनका राज्य ही जब्त न कर ले ? अतएव बड़ी शीघ्रता से देश को बचाने के लिए वे दक्षिण से लौटे परंतु रास्ते ही में बुरहानपुर में उनका देहांत हो गया। यह खबर सुनकर औरंगजेब ने ऐसा शोक प्रकट किया और उनके पुत्र के साथ ऐसी सहानुभूति दिखलाई और उसके पिता के राज्य पर भी उसको बहाल कर दिया कि इस पर बहुत से लोग यह कहने लगे कि शिवाजी का चला जाना भी औरंगजेब का उस ओर विशेष ध्यान देने से हुआ। ऐसा कहने वाले लोग कहते थे कि औरंगजेब ने इसी कारण शिवाजी के चले जाने से हरज नहीं समझा कि वह ऐसा चाहता ही था क्योंकि बेगमें शिवाजी से नाराज थीं।

दक्षिण के राज्य—अब मैं दक्षिण की घटनाओं पर भी एक दृष्टि डालना चाहता हूं जो एक ऐसा देश है कि चालीस वर्षों से लड़ाई-झगड़ों की भूमि बना रहा है और जिसके निमित्त मुगल बादशाह गोलकुंडा और बीजापुर के राजाओं तथा उनकी अपेक्षा छोटी श्रेणी के अधिकारियों से उलझे ही रहते हैं। जब तक दक्षिण के राज्यों के नरेशों के वृत्तांत और उन बड़ी बड़ी घटनाओं से जो इस देश में होती रहती हैं भली भांति जानकारी न हो जाए तब तक इन लड़ाई-झगड़ों की बातें अच्छी तरह समझ में नहीं आ सकतीं।

विदित हो कि प्रायः दो सौ वर्षों से भारतवर्ष के उस भाग की जो पश्चिम की ओर खंभात की खाड़ी से आरंभ होकर पूर्वदिशा में जगन्नाथ के निकट बंगाल की खाड़ी तक और दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैला हुआ है और जो यूरोप के नक्शे में 'ग्रेट इंडियन पेनिनसुला' के नाम से लिखा हुआ है यह दशा थी कि कदाचित कुछ पहाड़ी स्थानों को छोड़ वह सारी भूमि एक स्वतंत्र राजा के अधिकार में थी। परंतु इसी वंश के अंतिम राजा रामराज की अयोग्यता के कारण वह विशाल भूमिखंड विखंडित हो गया और यही कारण है कि अब भिन्न भिन्न जातियों के कई अधिकारियों के अधीन है।

बात यह थी कि रामराज के पास गुर्जिस्तान के तीन गुलाम थे जिनको वह हर प्रकार सुखी, प्रसन्न और संतुष्ट रखता था, यहां तक कि उसने उनको तीन बड़े बड़े प्रांतों का अधिकारी भी बना दिया था। एक उन सब जिलों का अधिकारी नियुक्त हुआ जो इस समय मुगलों के अधीन हैं। यह प्रांत बीजापुर पुरंधर और सूरत से लेकर नर्मदा तक फैला हुआ था और इसकी राजधानी दौलताबाद में थी। दूसरा गुलाम उस प्रदेश का गवर्नर बनाया गया जो इस समय बीजापुर राज्य के नाम से प्रसिद्ध

है। और तीसरे को वह प्रदेश सुपुर्द हुआ जो गोलकुंडा कहा जाता है। संक्षेप यह कि ये तीनों गुलाम बड़े ही धनवान और बलवान हो गए और इस कारण कि ये तीनों शिया हो गए थे जो ईरानवासियों का साधारण धर्म था। इस राज्य के ईरानी दरबारियों से इनको बड़ी सहायता मिलती थी। कोई न कहता कि ये हिंदू क्यों न हो गए क्योंकि हिंदू नहीं चाहते कि कोई दूसरा उनके धार्मिक भेद से लाभ उठाए, अतएव यदि वे चाहते तो भी हिंदू नहीं बन सकते थे।

अस्तु, पीछे यह हुआ कि तीनों ने एक राय होकर विद्रोह किया। जिसका यह फल हुआ कि रामराज मारा गया और ये अपने प्रांतों में आकर स्वाधीन राजा बन गए। रामराज की संतान संतति में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो इनका सामना कर सकता। अतएव जो थे वे उस प्रदेश में चुपचाप पड़े हुए थे जिसका नाम कर्णाटिक है और जिसका नाम हमारे छोटे जहाजी नक्शों में विजय नगर लिखा है। उसके वंशधर वहां अब तक राज्य करते हैं और उस प्रायःदीप के भाग उसी समय में उन छोटे छोटे राज्यों में बंट गए जो अब तक हैं और जिनके अधिकारी राजा या नायक कहे जाते हैं। इन तीनों गुलामों के वंशजों में जब तक एकता रही तब तक उन पर कोई हाथ न डाल सका और तब तक वे मुगल अधिकारियों से खूब लड़ते-भिड़ते रहे। परंतु जब से परस्पर का द्वेष प्रारंभ हुआ और उन्होंने चाहा कि एक-दूसरे की सहायता के बिना स्वतंत्र होकर रहें तब से वे अनैक्य के बुरे फल चख रहे हैं और तीस-चालीस वर्ष हुए मुगल बादशाह ने यह देखकर कि अब इनमें परस्पर एकता नहीं है, निजामखां के राज्य पर जो बची हुई रियासत पर पांचवीं या छठी पीढ़ी में था, चढ़ाई करके उसको जीत लिया और कुछ काल हुआ वह (अर्थात निजामतशाह) अपनी पूर्व राजधानी दौलताबाद में कैद रहकर मर भी चुका है।

गोलकुंडा के बादशाह अब तक चढ़ाइयों से बचे हुए हैं, परंतु उनका बचा रहना कुछ उनकी दृढ़ता और उनके बल के कारण से नहीं है बल्कि इस कारण से है कि मुगल बादशाह को गोलकुंडा के दोनों पड़ोसी राज्यों पर चढ़ाई करने और उनके अंबार पुरंधर बीदर आदि सुदृढ़ स्थानों के लेने की अधिक आवश्यकता थी जिसमें कि पीछे गोलकुंडा पर चढ़ाई करना और भी सहज हो जाए। गोलकुंडा वालों का बचा रहना कुछ उनकी इस बुद्धिमत्ता और कार्यकौशल के सबब से भी था कि अपने अपार धन में से वे छिपी रीति से सदैव बीजापुर नरेश के पास सहायता भेजते रहते थे और जब कभी बीजापुर पर आक्रमण होने की आशंका होती थी तब अपनी सेना भी सीमा पर भेज दिया करते थे जिससे मुगल बादशाह पर यह बात प्रकट हो कि गोलकुंडा न केवल अपने बचाव के लिए प्रस्तुत है वरन यदि बीजापुर के लिए कठिन समय आए तो वह उसकी सहायता करने के लिए भी तैयार है। इसके अतिरिक्त यह भी जान पड़ता है कि मुगल सेनापतियों को बहुत कुछ घूस भी दिया जाया करता है और इसी कारण से वे गोलकुंडा के बदले बीजापुर पर चढ़ाई करने की बात सदा

यह कह कह कर उठाया करते हैं कि वह दौलताबाद से अधिक निकट है। और जब से औरंगजेब और गोलकुंडा के वर्तमान बादशाह से परस्पर कुछ बात तै हुई है तब से असल में तो औरंगजेब ही का चढ़ाई करने का कुछ विचार नहीं जान पड़ता। कदाचित संधि के दिन से औरंगजेब उस प्रांत को अपना ही समझता है और इसलिए कि गोलकुंडा वाले बहुत समय से कर देते हैं और बहुत-सा धन, वहां की बनी उत्तमोत्तम वस्तुएं, पेगू स्वर्ण द्वीप और स्याम के हाथी वर्ष-प्रतिवर्ष कर की रीति पर भेजते रहते हैं और अब गोलकुंडा और दौलताबाद के बीच कोई ऐसा दुर्ग भी नहीं रह गया है जो किसी शत्रु के अधिकार में हो। औरंगजेब समझता है कि एक ही बार की चढ़ाई उस राज्य पर विजय प्राप्त कर लेने के लिए यथेष्ट होगी। परंतु मेरी समझ में औरंगजेब गोलकुंडा ले लेने से इसके अतिरिक्त और किसी कारण से नहीं रुका कि कदाचित बीजापुर का बादशाह इस आशंका से कि कल को यही दिन उसके आगे भी न आए, कहीं स्वयं दक्षिण देश में मारकाट मचाना आरंभ न कर दे। आशा है कि ऊपर लिखे विवरण से पाठक अनुमान कर सकेंगे कि मुगल राज्य और गोलकुंडा में परस्पर किस प्रकार के संबंध हैं और इसमें तो कुछ संदेह ही नहीं कि गोलकुंडा की अवस्था अनिश्चित है।

मीर जुमला की बताई युक्ति से औरंगजेब ने जब से काम किया है तब से गोलकुंडा के अधिकारी का साहस जाता रहा है और तभी से राज्य की लगाम भी उसने ढीली छोड़ दी है। देश के प्रचलित नियम के अनुसार वह न तो कभी दरबार में जाकर बैठता है और न न्याय और शासन के काम करता है। यहां तक कि उसमें दुर्ग की दीवार के बाहर निकलने का भी साहस नहीं रह गया है। जिसका यह स्वभावसिद्ध परिणाम हुआ है कि देश में कुप्रबंध और कुदशा फैल रही है और दरबारी तथा अफसर न तो अब बादशाह का कहा मानते हैं और न उससे कुछ प्रीति ही रखते हैं बल्कि घोर अत्याचार करते हैं। इससे प्रजा जो अत्याचारों से बहुत दुखित हो रही है बहुत शीघ्र औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर लेगी क्योंकि उसका शासन गोलकुंडा की अपेक्षा उत्तम और न्यायपूर्ण है।

अंत में मैं थोड़ा-सा वर्णन उन बातों का करता हूं कि जिनसे इस राज्य की दुर्दशा का प्रमाण प्रकट होता है। उन बातों में एक तो यह है कि 1668 ई. में जबकि मैं गोलकुंडा में था औरंगजेब की ओर से एक दूत यह संदेश लेकर पहुंचा कि या तो 18 हजार सवार बीजापुर की लड़ाई के लिए उपस्थित करें या आप भी सामना करने के लिए तैयार हो जाए। इस पर यद्यपि राजा ने सेना नहीं भेजी परंतु इतने रुपये जो दस हजार सवारों के खर्च के लिए यथेष्ट हो सकते थे उसने भेज दिए। इससे औरंगजेब और भी अधिक प्रसन्न हुआ। इसके अतिरिक्त दूत को उसने बहुत आदर दिया, और बहुत-से तोहफे स्वयं उसे दिए तथा औरंगजेब के लिए अनेक बहुमूल्य चीजें भेजीं।

दूसरी बात यह है कि औरंगजेब का जो दूत गोलकुंडा में रहता है वह आज्ञा जारी करता है, परवाना देता है और लोगों पर इच्छानुसार राज करता है—संक्षेप यह कि वह स्वयं बादशाह के तुल्य है।

तीसरी बात यह कि मीर जुमला का पुत्र मुहम्मद अमीनखां का जो केवल औरंगजेब के दरबार का अमीर है, गोलकुंडा में इतना अधिक रौब है कि उसका 'तापता' अर्थात उसका दलाल या गुमाश्ता जो मछलीपाटन में रहता है, बंदरगाह के हाकिम का-सा अधिकार रखता है, व्यापार की समस्त वस्तुएं खरीदता है, बेचता है, जहाजों पर माल चढ़ाता है, उतारता है। परंतु महसूल के नाम पर एक कौड़ी भी नहीं देता और न उसके कामों में कोई हस्तक्षेप कर सकता है। विचित्र बात है कि इस देश में मीर जुमला का इतना रौब था कि उसके मरने के बाद उसकी संपत्ति के साथ यह रोब भी उसके पुत्र को प्राप्त हुआ।

चौथी बात यह है कि कभी कभी डच लोग गोलकुंडा के व्यापारियों के समस्त जहाजों को मछलीपाटन की बंदरगाह में रोके रखते हैं और जब तक यह बादशाह उनकी बात नहीं मान लेता तब तक उनको बाहर नहीं जाने देते हैं। मैंने स्वयं उनको इस बादशाह के प्रति ऐसी अनुचित बात कहते सुना है—मछलीपाटन के शासनकर्ता ने हमको अंगरेजों के एक जहाज पर जबर्दस्ती अधिकार करने से क्यों रोका ? लोगों ने हमारे विरुद्ध अस्त्रशस्त्र सहित भेजकर हमारे इस इरादे में बाधा क्यों डाली ? हमको यह धमकी क्यों दी कि तुम्हारी कोठी को जला दूंगा और तुम परदेसी बदमाशों को मरवा डालूंगा ?

पांचवां लक्षण इस साम्राज्य की अवनति का यह है कि यहां की मुद्रा अच्छी अवस्था में नहीं है और इस कारण इस देश के व्यापार को हानि पहुंचाने वाली है।

छठी बात यह है कि यहां तक तो नौबत पहुंच गई है कि पुर्तगीज भी जो यद्यपि अत्यंत हीन और दरिद्र दशा में होने पर भी लड़ाई की धमकी देने में नहीं हिचकते हैं और कहते हैं कि यदि सेंट टामस नामक स्थान (जो कई वर्ष हुए इन्होंने स्वयं गोलकुंडा के बादशाह को इस विचार से दे दिया था कि डच, जो इनसे बल में अधिक हैं, उसको उन्हें दे देने की दुर्दशा इनको न भोगनी पड़े) हम को न देंगे तो हम मछलीपाटन तथा दूसरे स्थानों पर अधिकार कर लेंगे और लूट लेंगे। परंतु इन बातों पर भी गोलकुंडा में ही कुछ बुद्धिमान लोग मुझसे यह कहते थे कि बादशाह की बुद्धिमानी में कुछ भी अंतर नहीं आया है। अपने चित्त की यह अवस्था—यह बुद्धिहीन दशा और राज्य के मामले से ऐसी बेपरवाही उसने केवल शत्रुओं को धोखे में डालने के लिए बना रखी है और उसका एक ऐसा पुत्र है जो बड़ा ही तेज मिजाज, चलता पुर्जा और ऊंचे ख्याल का है जिसको जानबूझ कर उसने दूसरों की दृष्टि से छिपा रखा है। इस पुत्र को वह समय पर राजगद्दी पर बैठा देगा और जो प्रतिज्ञाएं उसने औरंगजेब से कर रखी हैं उन सबको भूल-सा जाएगा।

अब मैं इन बातों के सत्य और असत्य होने का निर्णय दूसरे समय के लिए छोड़कर कुछ बातें बीजापुर के विषय में लिखना चाहता हूं। यद्यपि इस राज्य के साथ मुगल बादशाह की प्रायः लड़ाई-भिड़ाई रहा करती है तथापि अब तक यह स्वतंत्र और स्वाधीन कहा जाता है। परंतु असल बात यह है कि जो सेनापति बीजापुर की लड़ाई पर भेजे जाते हैं वे उन दूसरे सेनापतियों की तरह जो ऐसी ही लड़ाइयों पर भेजे जाते हैं सेनापति बने रहने के शौक में इस बात को अपने पक्ष में शुभ समझते हैं और दरबार से दूर रहकर सेना पर राजसी ढंग से हुकूमत जताते हैं और इसी कारण अपने काम में टालमटोल करते रहते हैं, तथा तरह तरह के बहानों से लड़ाई को जो उनके मतलब के सिद्ध होने का कारण होने के अतिरिक्त उनकी आमदनी का भी द्वार होती है, बेमतलब बढ़ाते रहते हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष में यह बात प्रसिद्ध-सी हो गई कि दक्षिण देश तो हिंदुस्तानी सिपाहियों की रोटी और गुजारा है।

इसके अतिरिक्त बीजापुर राज्य में पहाड़ों के भीतर दुर्गम स्थानों में इतने दुर्ग और गढ़ियां हैं कि जिन पर विजय प्राप्त करना बहुत ही दुस्साध्य है, और जो देश मुगल साम्राज्य से मिलता हुआ है उसमें यह विशेषता है कि जल और भोजन की सामग्री वहां मिलती ही नहीं, विशेषकर उसकी राजधानी के एक जलहीन और अन्नहीन भूमि पर अवस्थित होने के कारण बहुत ही सुदृढ़ स्थान है, यहां तक कि पीने के योग्य जल वहां केवल शहर के भीतर ही मिलता है। परंतु इतनी बात होने पर भी समझना चाहिए कि शीघ्र ही इस राज्य का पतन होगा क्योंकि मुगल बादशाह ने पुरंधर के दुर्ग पर जो इस प्रदेश के द्वार के समान है और बीदर पर जो एक सुदृढ़ और सुंदर शहर है तथा अन्य कई बड़े बड़े स्थानों पर अधिकार कर लिया है। इन सबसे बढ़कर यह बात है कि बादशाह बिना पुत्र के मर गया है और उसकी बेगम ने जो गोलकुंडा के बादशाह की बहन है एक लड़के को अपना दत्तक बनाकर उसका पालन-पोषण किया था। उस दत्तक पुत्र ने इस बेगम के साथ यह व्यवहार किया कि थोड़े दिन हुए जब यह राजकुमारी हज करके लौटी तो उसने उसके साथ बहुत अपमान का बर्ताव किया और यह बहाना बनाया कि डचों के जहाज में (जिस पर सवार होकर वह मुखा को गई थी) उसका जाना इसके पद और अवस्था के योग्य न था, वरन् यहां तक कहा कि दो तीन जहाजी खलासियों से (जो अपने जहाज़ से अलग होकर मक्के तक उसके साथ गए थे) वह अनुचित और घृणित संबंध रखती थी।

शिवाजी ने जिनका हाल पहले लिखा जा चुका है इस राज्य की यह अवस्था देखकर बहुत-से दुर्गों पर जो प्रायः पहाड़ों के अंदर थे अधिकार कर लिया है और उनकी जो इच्छा होती है सो वे स्वतंत्र बादशाह की तरह कर डालते हैं और, मुगल बादशाह या बीजापुर के शाह जो कभी इनको धमकी देते हैं तो यह इनकी बातों

पर हंस देते हैं। ये सूरत से लेकर गोवा के द्वार तक देश में लूटपाट मचाते रहते हैं। यद्यपि समय समय पर बीजापुर राज्य की इनसे बहुत हानि होती रहती है, तथापि इसमें भी संदेह नहीं कि समय पर ये उसकी सहायता भी करते हैं। क्योंकि औरंगजेब को इसकी ओर से चिंता लगी रहती है और उसकी सेना सदैव इनके पीछे पीछे लगी रहती है। इस प्रकार बीजापुर का पीछा छूटा रहता है। इससे मुख्य बात यह समझी जाती है कि शिवाजी की जड़ किसी प्रकार उखाड़नी चाहिए। शिवाजी को सूरत में जो सफलता हुई थी उसका वृत्तांत पाठकगण पढ़ ही चुके हैं। उसके पश्चात इन्होंने बार्डिस द्वीप पर जो गोवा के निकट पुर्तगीजों की एक बस्ती है अधिकार कर लिया है।

शाहजहां की मृत्यु—मैं अभी गोलकुंडा ही में था कि शाहजहां के मरने का संवाद सुन पड़ा और यह भी सुनने में आया कि औरंगजेब ने पिता के मरने का बहुत शोक किया और वे सब चिह्न प्रकट किए जो पुत्र को माता-पिता के मरने पर करने चाहिए। वह तुरंत आगरा गया। वहां पहुंचने पर बेगम साहब ने बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत किया। कमख्वाब के थान लटकाकर बादशाही मस्जिद सजाई गई और इसी प्रकार वह मकान भी सजाया गया जहां दुर्ग में पहुंचने से पहले ठहरने का विचार था और जब औरंगजेब महल में पहुंचा तब राजकुमारी ने एक बड़ा-सा सोने का थाल जवाहरात से भरकर उसकी भेंट किया। इन रत्नों में से कुछ तो शाहजहां से प्राप्त थे और कुछ उसने अपने पास से निकाले थे। बहन की ओर से इस प्रकार का उत्साह और स्नेह का व्यवहार देखकर औरंगजेब का भी मन पसीज गया। वह उसकी बीती बातें एक प्रकार से भूल गया और उस समय से उसके साथ कृपा और उदारता का बर्ताव करने लगा।

अब मैं अपने इतिहास को समाप्त करता हूं। जिन जिन उपायों से औरंगजेब ने उन्नति पाई और यह उच्चतम पद प्राप्त किया है निश्चय है कि पाठकगण उनको बहुत नापसंद करेंगे, क्योंकि वे उपाय अत्याचारपूर्ण अन्यायपूर्ण और अनुचित थे। परंतु यदि उन उपायों को उसी दृष्टि से जांचा जाए जिससे यूरोप के राजकुमारों के चरित्र जांचे जाते हैं, तो ऐसा करना अनुचित होगा—क्योंकि यूरोप देश में उत्तराधिकार के नियम बंधे रहते हैं और बड़े पुत्र के सिवा दूसरा कोई पिता की गद्दी पर बैठने नहीं पाता। किंतु भारतवर्ष में पिता के बाद राज्य प्राप्ति के लिए राजकुमारों में सदैव झगड़ा होता है और इन दो कठोर बातों में से कोई एक बात होती है कि या तो राज्य के लिए स्वयं प्राण दे दें या भाइयों के प्राण ले लें। तो भी उन लोगों को जो देश के नियम, कुटुंब के नियम और शिक्षापद्धति के असर को स्वीकार करते हैं, यह तो मानना ही पड़ेगा कि औरंगजेब को परमेश्वर ने बड़ी बुद्धि, चिंतनशक्ति और समझदारी दी है और वह एक बड़ा ही उच्च तथा आलीशान बादशाह है।

लेखक के कुछ पत्र

एक पत्र फ्रांस के वजीर मान्शियर कोलबर्ट के नाम

हिंदुस्तान का विस्तार, सोने चांदी का इस देश में पहुंचकर यहीं खप जाना, देश की धनशालिता, महसूल, सैन्य, राज्यव्यवस्था और एशिया राज्यों की अवनति के वास्तविक कारण।

मान्नीय महाशय !

एशिया देश में अमीरों और हाकिमों की सेवा में कोई व्यक्ति खाली हाथ नहीं जाता। इसी नियम के अनुसार जब मैं महान मुगल बादशाह के चरणों की वंदना करने गया तो मैंने भी सम्मानित करने की रीति पर आठ रुपये उसकी नजर किए और एक नाइफकेस (चाकू रखने का केस), एक कांटा और अंबर की-सी सुगंधियुक्त लकड़ी की मूठ का एक चाकू ये तीन चीजें फाजिलखां को भेंट में दीं। क्योंकि यह प्रसिद्ध व्यक्ति राज्य के वजीरों में से था, बड़े बड़े कार्य इससे संबंध रखते थे और चिकित्सकों की मंडली में मेरी तनख्वाह नियत करना भी इसी की राय पर निर्भर था। यद्यपि मेरी यह मजाल नहीं है कि फ्रांस में कोई नई प्रथा मैं प्रचलित करूं। परंतु जब कि मैं भारतवर्ष से बहुत मुद्दत के बाद आया हूं तो यह बात बुद्धि के विरुद्ध है कि मैं उस प्रथा को जिसका उल्लेख अभी कर चुका हूं ऐसी जल्दी से भूल जाऊं। अतएव यदि मैं अपने बादशाह (लुई 14वें) की सेवा में जिसका सम्मान मेरे हृदय में औरंगजेब के सम्मान की अपेक्षा किसी और ही प्रकार है—या उसके वजीर की सेवा में जो फाजिलखां की अपेक्षा बहुत अधिक मान पाने का अधिकारी है बिना एक तुच्छ भेंट के उपस्थित होऊं तो आशा है कि क्षमा किया जाऊंगा।

भारतवर्ष का पिछला परिवर्तन जिसकी बातें विचित्र विचित्र घटनाओं से भरी हैं हमारे महान बादशाह के ध्यान देने के योग्य हैं, और इस पत्र को देखना, जिसमें ऐसी बड़ी बड़ी बातें भरी हैं उस पद के अयोग्य नहीं कहा जाएगा जो श्रीमान को बादशाही दरबार से प्राप्त है। वास्तव में इसका ऐसे ही व्यक्ति की सेवा में उपस्थित किया जाना उचित था जिसने राज्य की बहुत-सी त्रुटियों को जो मेरे जाने के समय में ऐसी मालूम होती थीं कि दूर नहीं होंगी, अपने सुंदर उपायों से दूर कर दिया।

जिसने अपने उद्योग और श्रम से हमारे बादशाह की शान को सारे संसार में फैलाया और यह प्रमाणित कर दिया कि फ्रेंच जाति उन साधनों को किस योग्यता से काम में लाती है जो उसके लाभ और उसकी प्रसिद्धि के योग्य हैं।

माननीय महोदय ! मैं भारतवर्ष से 12 वर्षों के उपरांत अपने देश में आया हूं। वहीं रहकर मैंने फ्रांस की उन्नतावस्था और उस सुयश का हाल सुन लिया था जिनकी प्राप्ति श्रीमान की असीम योग्यता और श्रम से हुई है। यद्यपि फ्रांस की अच्छी अवस्था और आपके सद्गुणों का वर्णन मैं उत्साह और चाव से करता परंतु सारा संसार जिन बातों का पहले ही से प्रशंसक और मानने वाला हो उन पर पुनः मेरे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। अतएव उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं वे ही अप्रकट और नई बातें लिखकर भेंट करूं जिनसे भारतवर्ष की असली अवस्था का चित्र किसी अंश में आपके हृदय पर अंकित हो सके। मुझे विश्वास है कि आप भी अधिकतर इसी बात को पसंद करेंगे।

भारतवर्ष का विस्तार—एशिया महादेश के नक्शों से प्रकट है कि मुगल साम्राज्य जो भारत साम्राज्य के नाम से प्रसिद्ध है कैसा लंबा चौड़ा देश है यद्यपि मैंने माप के नियमों के अनुसार पूरी तरह नापा नहीं, तथापि एक साधारण यात्रा का अंदाजा करके तथा यह देखकर कि गोलकुंडा की सीमा से गजनी बल्कि उसके भी बाद कंदहार के निकट तक जो ईरान राज्य का प्रथम शहर है तीन महीने का मार्ग है। यह हिसाब लगाया गया है कि इन दोनों में डेढ़ हजार मील से कम का अंतर नहीं है। अर्थात जितना अंतर पेरिस और लायंस में है उसका पचगुना समझना चाहिए।

भारतवर्ष की प्राकृतिक और अप्राकृतिक चीजें—यह बात ध्यान देने के योग्य है कि इस देश का एक बड़ा भाग अत्यंत हरा भरा और फलप्रद है। जैसे एक बंगाल ही ऐसा है जो न केवल वहां पैदा होने वाले गेहूं और चावल आदि के विचार से मिसर देश से बढ़कर है बल्कि रेशम, रूई और नील प्रभृति व्यापारिक वस्तुओं की बेहिसाब उत्पत्ति के भी विचार से जिनकी उत्पत्ति मिसर में नहीं होती उससे कहीं बढ़कर है। इसके अतिरिक्त हिंदुस्तान के अन्यान्य खंड भी अच्छी तरह बसे हैं और खेती भी खासी होती है। यद्यपि यहां के कारीगर स्वभावतया सुस्त हैं तो भी कुछ न कुछ करते रहते हैं जैसे कालीन, कमखाब, चिकन, कारचौबी और जरदोजी आदि के काम और हर प्रकार की सूती और रेशमी चीजें जो देश के अंदर बस्ती या बाहर को भेजी जाती हैं बनाते रहते हैं।

दूसरे देशों से सोने चांदी का भारतवर्ष में आकर यहीं खप जाने का कारण—यह बात भी कम ध्यान देने के योग्य नहीं है कि संसार में घूम घाम कर चांदी सोना जब भारतवर्ष में पहुंचता है तो यहीं खप जाता है। अमेरिका से जो रुपया आकर यूरोप के देशों में फैलता है उसमें कुछ तो उन वस्तुओं के बदले में जो टर्की (रूम) से

आती हैं अनेक द्वारों से टर्की में चला जाता है और कुछ समरना की बंदरगाह के मार्ग से ईरान में पहुंच जाता है जहां से रेशम यूरोप में आता है। टर्की क़ी वह दशा है कि वहां के लोग कहुए के बिना जो यमन से आता है रह ही नहीं सकते, और टर्की, यमन तथा ईरान को भारतवर्ष की वस्तुओं की आवश्यकता बनी रहती है। सो इस प्रकार मुखा बंदर में जो लाल समुद्र के किनारे बाबुलमंदव के निकट है और बसरे में जो फारस की खाड़ी के सिर पर है तथा अब्बास बंदर में जो हुरमुज टापू के पास है इन देशों से रुपया जाता है और यहां से उन जहाजों पर लदकर जो अच्छी ऋतुओं में भारतवर्ष का माल लेकर इन प्रसिद्ध बंदरगाहों में आते हैं भारतवर्ष में पहुंच जाता है। यह भी विदित हो कि हिंदुस्तानियों, डचों, अंगरेजों और पुर्तगीजों के सब जहाज जो हर साल हिंदुस्तान का माल पेगू, तेनासरीम, सिलोन, अचीन, मगासर, मलयद्वीप, मोजाम्बिक आदि स्थानों को ले जाते हैं वे भी उसके बदले में चांदी सोना ही लाते हैं और यह भी उस रुपये की तरह जो मुखा बंदर, बसरा और अब्बास बंदर से आता है यहीं रह जाता है। जो सोना चांदी डच लोग जापान की खानियों से निकालते हैं उसमें से भी थोड़ा बहुत किसी न किसी समय यहां आता रहता है और जो रुपया सीधे मार्ग से फ्रांस और पुर्तगाल से आता है वह भी कदाचित ही यहां से लौटकर बाहर जाता है।

यद्यपि मैं जानता हूं कि लोग यह कहेंगे कि भारतवर्ष को तांबा, लौंग, जायफल, दारचीनी इत्यादि चीजों और हाथियों की आवश्यकता रहती है जिनको डच, इंग्लैंड, जापान, मलाया और सिलोन से लाते हैं और सीसा भी (शीशा नहीं) बाहर ही से आता है, जिसमें से थोड़ा-सा इंग्लैंड से अंग्रेज भेजते हैं, इसके अतिरिक्त यद्यपि फ्रांस से बानात और अन्यान्य चीजें आती हैं और दूसरे देशों से घोड़ों की भी आवश्यकता भारत में रहा करती है—जो प्रतिवर्ष 25 सहस्र से अधिक उजबक देश (तुर्किस्तान) से और बहुत से कंधार होकर ईरान से—और मुखा बंदर बसरा और अब्बास बंदर होकर एथिओपिया (हब्श) अरब और फारस से आते हैं उसी प्रकार यद्यपि बहुत से तर और सूखे मेवे समरकंद, बलख, बुखारा और ईरान से आते हैं—जैसे सर्द, सेब, नाशपाती, अंगूर जो अधिकता से देहली में खर्च होते हैं और जाड़े भर बिकते रहते हैं—तथा बादाम, पिस्ते, पीले आलू, ख़ूबानी, किशमिश इत्यादि जो बारह महीने बिकते रहते हैं, उसी तरह यद्यपि कौड़ियां मलयद्वीप से आती हैं जो बंगाल तथा दूसरे भागों में पैसे धेले आदि के बदले में कम मूल्य पर चलती हैं और यद्यपि अंबर ईरान मलयद्वीप और मोजाम्बिक से आता है गैंडे के सींग, हाथी दांत, गुलाम एथिओपिया से आते हैं, मुश्क और चीनी के बर्तन चीन से आते हैं, मोती समुद्रों और टूटीकोरिन से जो लंका टापू के निकट है आता है, तो भी इन चीजों के बदले में भारतवर्ष से चांदी सोना बाहर नहीं जाता। क्योंकि जो व्यापारी ये चीजें लाते हैं वे इसमें अधिक लाभ समझते हैं कि उनके बदले में यहां की वस्तुएं ही अपने देशों को यहां से ले

जाएं। सो यद्यपि हिंदुस्तान में बाहरी देशों से प्राकृतिक या बनावटी चीजें आती हैं तथापि वे संसार भर के सोने या चांदी एक बड़े भाग के यहीं रह जाने में (जिनका अनेक द्वारों से यहां आगमन होता है) रुकावट नहीं डालतीं। और जो चांदी सोना एक बार यहां आता है वह कठिनता से यहां से कहीं जाता है।

मुगल बादशाह की धनशालिता–यह भी याद रखना चाहिए कि जब कोई दरबारी या पदाधिकारी चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो मरता है तो उसकी संपत्ति बादशाही खजाने में चली जाती है। उससे बढ़कर यह बात है कि हिंदुस्तान की सब जमीन, बागों और मकानों को छोड़कर जिनके बेचने इत्यादि की अनुमति प्रायः सर्वसाधारण को दे दी जाती है, बादशाह की संपत्ति है। मैं अनुमान करता हूं कि इन बातों से मैंने यह प्रमाणित कर दिया कि यद्यपि सोने चांदी की खानें यहां नहीं हैं तो भी चांदी सोना यहां अधिकता से है, और यहां का मुगल बादशाह जो इस देश के एक बड़े भाग का स्वामी है उसकी आमदनी बहुत ही अधिक है और वह बड़ा ही धनाढ्य है। परंतु इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे कारण हैं जिनसे उसकी धनशालिता में बाधा पहुंचती हैं। जैसे—देश के बहुत-से लंबे-चौड़े भाग, जिनको लेकर भारतीय साम्राज्य संगठित है; सूखे पर्वतों तथा रेतीले मैदानों से कुछ ही अच्छे हैं, खेती की रीति भी खराब है। आबादी भी बहुत ही कम है, और खेती के योग्य भूमि का एक बड़ा भाग कृषकों के दुखों के कारण से जो हुक्मरानों के अत्याचारों से प्रायः तबाह और बर्बाद हो जाते हैं खाली पड़ा रहता है। ये बेचारे गरीब आदमी जब अपने कठोर और लालची हाकिमों की इच्छाओं को पूरा नहीं कर सकते तब न केवल इनके गुजारे की वस्तु ही छीन ली जाती है बल्कि इनके बाल-बच्चे भी पकड़ कर लौंडी गुलाम बना लिए जाते हैं। ये बेचारे अपना घरबार छोड़कर किसी प्रकार शांति से दिन काटने के लिए नगरों या सेनाओं में चले जाते और ऊंट वाले भिश्ती या साईस बनकर अपना पेट पालन करते हैं और कुछ किसी राजा के प्रांत में जहां ऐसे अत्याचार कुछ कम दिखाई देते हैं और यहां की अपेक्षा जहां उनको अधिक आराम मिलता है भाग जाते हैं।

इस साम्राज्य में बहुत-सी जातियां ऐसी भी हैं, जिन पर बादशाह का पूरा दबाव नहीं है बहुत-सी ऐसी हैं, जिनका शासक स्वयं उन्हीं में से एक है और केवल उस समय बादशाह को कर देता है जब उस पर दबाव डाला जाता है, अनेक जातियां बहुत थोड़ा कर देती हैं और अनेक कुछ भी नहीं देतीं। कोई कोई ऐसी हैं कि देना तो क्या, उलटा लेती रहती हैं, जैसे कि वे छोटी छोटी रियासतें जो ईरान की सीमा पर हैं ऐसे ही कभी ईरान या हिंदुस्तान को कर देती हैं। यही हाल बिलोचिस्तान तथा दूसरी पहाड़ी जातियों का है जो मुगल बादशाह को घोड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं देतीं और अपने को प्रायः स्वाधीन और स्वतंत्र समझती हैं। उनकी स्वाधीनता,

स्वतंत्रता और उनका स्वेच्छाचार इससे प्रमाणित होता है कि जब मुगल बादशाह ने कंधार का घेरा करने की इच्छा से काबुल जाने के लिए अटक नामक स्थान से जो सिंधु नदी के किनारे है प्रस्थान किया तो इन जातियों ने पहाड़ों से पानी का उन मैदानों में पहुंचना बंद कर दिया जो मार्ग के निकट थे और जब तक इनाम प्राप्त नहीं कर लिया जो खैरात के नाम से दिया गया तब तक सेना को आगे बढ़ने से इस प्रकार बिलकुल रोक रखा। पठान लोग भी बड़े उपद्रवी और मार काट मचाने वाले हैं ! यह वह मुसलमान जाति है जो पहले बंगाल की ओर गंगाजी के किनारे बसती थी। मुगलों के भारत पर आक्रमण करने के पहले अनेक स्थानों में इसका बड़ा जोर था, खासकर देहली में तो इसका बहुत ही जोर था और उसके आस पास के राजे इनको कर देते थे। इस जाति के छोटे छोटे लोग यहां तक कि ऐसे लोग जो भिश्ती का काम करके अपना पेट पालन करते हैं वीर पुरुष और सिपाही हैं। जब किसी बात की सत्यता पर वे जोर देना चाहते हैं तब तब साधारणतया कहा करते हैं कि यदि मैं झूठ कहता होऊं तो देहली का राज्य मुझको न मिले। ये हिंदू और मुगल दोनों को अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अपनी पहली प्रतिष्ठा और पद को स्मरण करके मुगलों से (जिन्होंने इनके पूर्वजों को उनके बड़े बड़े राज्यों से बेदखल कर दिया और देहली तथा आगरे से दूर पहाड़ों की ओर निकाल दिया था) बहुत ही घृणा करते हैं और यद्यपि इनमें से कोई कोई पर्वतों में छोटे छोटे रईस बन बैठे हैं परंतु कुछ अधिक शक्तिशाली नहीं हैं।

बीजापुर का शाह भी कुछ कर नहीं देता वरन अपने राज्य को बचाने के लिए हिंदुस्तान के बादशाह से सदैव लड़ता रहता है। परंतु उसके देश की रक्षा का कारण केवल उसकी सेना ही नहीं है किंतु और भी बहुत-सी बातें हैं, जैसे उसका देश आगरा और देहली से जो कि मुगल बादशाह की राजधानियां हैं बहुत दूरी पर है, बीजापुर शहर स्वयं एक दृढ़ स्थान है, आसपास के देशों में घास और पानी की कमी तथा खराबी के कारण आक्रमण करने वाली सेना का वहां तक पहुंचना दुस्तर है, और अपने बचाव के विचार से शत्रु के आक्रमण करने पर बहुत से राजे स्वयं अपनी सेनाएं ले जाकर उसकी सहायता करते हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए सुप्रसिद्ध शिवाजी ने बादशाही अमलदारी में जाकर सूरत बंदर को जो धन के लिए प्रसिद्ध है खूब लूटा था और इस प्रकार आवश्यकता के समय पर बादशाही सेनाओं के दबाव और जबरदस्ती से बीजापुर को बचा लिया था। इन बातों के अतिरिक्त गोलकुंडा का अधिकारी भी जो एक धनवान और शक्तिशाली बादशाह है छिपी रीति से उसको रुपये पैसे की सहायता पहुंचाया करता है। वह सीमा पर सदैव इस विचार से सेना तैनात रखता है कि एक तो अपने देश की रक्षा करे और दूसरे यदि बीजापुर पर अधिक जोर पड़े तो उसकी सहायता भी कर सके।

अस्तु तात्पर्य यह कि जो लोग मुगल बादशाह को कुछ कर नहीं देते उनमें

सबसे अधिक अच्छे बलशाली *हिंदू राजा* भी है जिनके राज्य देहली और आगरे से कोई दूर निकट सारे साम्राज्य में स्थान-स्थान में फैले हुए हैं। इनमें से 15 या 16 बहुत ही *धनाढ्य और जबरदस्त हैं, खासकर राणा उदयपुर* जो किसी समय राजाओं के राजा थे और राजा पुरु के वंश में हैं तथा जयसिंह और यशवंत सिंह ऐसे हैं कि *यदि तीनों एकता कर लें तो निस्संदेह भयंकर और अजेय हो जाएं,* क्योंकि उनमें से प्रत्येक 20 हजार सवार लड़ाई के लिए हर समय प्रस्तुत कर सकते हैं और वे भी ऐसे उत्तम कि भारतवर्ष में कोई उनके मुकाबले का नहीं है। ये सवार राजपूत कहे जाते हैं जिनका अर्थ हुआ राजाओं की संतान। युद्ध विद्या ही इनकी विद्या है, रणनीति ही इनकी नीति है और समर व्यापार ही इनका व्यापार है। इस प्रतिज्ञा पर इनको जागीरें दी जाती हैं कि ये सदैव घोड़ों पर चढ़कर राजा के साथ रहें। ये लोग बड़े साहसी और वीर हैं और थोड़ी-सी ही शिक्षा में बड़े शिक्षा योग्य सिपाही बन सकते हैं।

यह बात भी बतला देना आवश्यक है कि मुगल बादशाह मुसलमानों के 'सुन्नी' संप्रदाय में से हैं जैसे कि तुर्क लोग हैं जो मुसलमानी पैगंबर मुहम्मद का सच्चा खलीफा या वारिस उसमान को जानते और उसमानी कहलाते हैं। बादशाह तो जैसा ऊपर कहा गया सुन्नी है परंतु उसके दरबार के अधिकांश उमरा ईरानी हैं जो 'शीया' हैं और इस बात के विश्वासी हैं कि वास्तविक खलीफा 'अली' था। इन बातों के अतिरिक्त मुगल बादशाह इस देश में अपरिचित है, क्योंकि वह तैमूर का वंशज है जो उन मुगलों का सरदार था जो तातार देश से आए थे और जिसने सन् 1401 ई. में भारतवर्ष में महा लूट पाट मार काट मचाई थी। इस विचार से मुगल बादशाह शत्रुओं के देश में या कम से कम ऐसे देश में जहां एक मुगल के मुकाबले में सैकड़ों हिंदू मुसलमान वर्तमान हैं राज्य करता है। अतएव ऐसे देश में अपनी शक्ति दृढ़ रखने तथा सीमा पर उजबकों और ईरानियों के आक्रमणों के रोकने को प्रस्तुत रहने के निमित्त उसको शांति के समय में भी एक बड़ी सेना तैयार रखनी पड़ती है। इस सेना में या तो इस देश के निवासी भरती हैं जैसे राजपूत और पठान या असल मुगल और वे लोग जो यद्यपि मुगल नहीं हैं और इसी कारण से इनका वैसा आदर भी नहीं है तथापि परदेशी और मुसलमान तथा गोरे रंग के होने के कारण मुगल ही कहलाते हैं, परंतु पूर्व समय की तरह अब दरबार के उमरा प्रायः असल मुगल नहीं हैं, या तो उजबक (तुर्किस्तानी) ईरानी, अरब, तुर्क (रूमी) इत्यादि लोगों का जमघट है या इन सब लोगों की हिंदुस्तान में उत्पन्न हुई संतानें हैं। इन सब भिन्न प्रकार के लोगों को साधारणतया मुगल ही कहा जाता है। परंतु हां मुझे इस बात की सूचना देना आवश्यक जान पड़ता है कि ऊपर लिखे विभिन्न प्रकार के नवागंतुक मुसलमानों के वंशधर जो तीसरी चौथी पीढ़ी में गेहुंए रंग के और हिंदुस्तानियों की तरह आलसी बन जाते हैं उनका आदर नए आए हुओं की भांति नहीं किया जाता और उनको बहुत ही कम कोई

पद दिया जाता है। इसी को वे अपना अहोभाग्य समझते हैं कि सवारों या पैदलों में उनको कोई नौकरी मिल जाए।

मुगल बादशाह की सामरिक शक्ति–माननीय महोदय ! अब इस बात का अवसर है कि मैं मुगल बादशाह की सेना का कुछ वर्णन करूं जिसमें कि उस अपार व्यय पर विचार करके जो उसको अपनी सेवा के संबंध में करना पड़ता है आप अपनी राय प्रकट कर सकें कि वास्तव में उसकी सेना कितनी है और वह किन लोगों से बनी है। अतएव पहले मैं उस देशी सेना का वर्णन करता हूं जिसका वेतन चुकाते रहना बादशाह के लिए आवश्यक है।

विदित हो कि जयसिंह, यशवंत सिंह तथा अन्यान्य राजाओं की सेनाएं, जिनको बहुत बहुत द्रव्य इसलिए दिया जाता है कि वे सजातीय लोगों (राजपूतों) का दल बादशाह की सेना के लिए सदा तैयार रखें इसी 'देशी सेना' के अंतर्गत हैं। उनसे चाहे उस सेना का काम लिया जाए जो सदा बादशाह के साथ रहती है, चाहे वे किसी प्रांत में भेजी जाएं परंतु उनका पद मुसलमान अमीरों के बराबर है। जो नियम उनके लिए हैं वे ही इनके लिए भी हैं, हां इतना अंतर अवश्य है कि जब बादशाह दुर्ग में रहता है तब इस देशी सेना के लोग बाहर खेमों में रहते हैं और चौबीसों घंटे दुर्ग के भीतर पड़े रहना अच्छा नहीं समझते। इसके अतिरिक्त जब तक इनके साहसी राजपूत सरदार इनके साथ न हों तब तक किसी दुर्ग में जाना ये स्वीकार नहीं करते। राजपूत सैनिकों की स्वजाति भक्ति प्राणाहुति और साहस का ऐसे अवसरों पर जब कि उनके किसी राजा अथवा सरदार को धोखा देकर कैद करने का विचार किया गया हो पूरी तरह परिचय मिल चुका है।

बादशाह जो इन राजाओं को अपनी सेवा में रखता है इसके कई कारण हैं। प्रथम यह कि राजपूत न केवल अच्छे सिपाही हैं वरन जैसा कि आगे लिखा है कोई कोई राजे एक ही दिन में 20 सहस्र से अधिक सिपाही लड़ाई के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरे यह कि जो राजे बादशाह की सेवा में नहीं हैं और कर देने अथवा सामरिक विषय में सहायता करने के बदले स्वयं लड़ने को तैयार हो जाते हैं उनको शिक्षा देने और दबाने का काम इनसे लिया जाता है। तीसरे यह कि मुगल बादशाह की यह पालिसी (नीति) है कि इन राजाओं में परस्पर अनैक्य, फूट और ईर्ष्या डाले रहे, अतएव जब वह चाहता है तब इनमें से किसी एक पर अधिक कृपा दिखला या किसी एक को अधिक सम्मानित कर इनमें लड़ाई लगा देता और अपना काम सिद्ध कर लेता है। चौथे यह कि राजपूत पठानों या किसी विद्रोही अमीर या प्रांतीय झगड़े के दबाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं और इस कार्य के लिए सदैव मुस्तैद और तैयार मिलते हैं। पांचवें यह कि जब कभी गोलकुंडे का बादशाह कर नहीं देता अथवा अपने और किसी और पड़ोसी राजा की सहायता करने को तैयार हो जाता है जिसको

मुगल बादशाह अपने वश में करना चाहता है तो उनसे लड़ने के लिए ये राजे अन्य अमीरों की अपेक्षा जो प्रायः ईरानी और गोलकुंडा के बादशाह के सजातीय होते हैं अधिक प्रसन्न किए जाते हैं। परंतु सबसे अधिक ये राजे उस समय काम आते हैं जब ईरान के बादशाह के पास युद्ध करने का अवसर आ पड़ता है। अन्यान्य दरबारी अमीर जो ईरान के रहने वाले हैं इस विचार से कांपते हैं कि अपने जाती बादशाह से लड़ें। विशेषकर वे उसको अली की संतान और अपना इमाम तथा खलीफा समझते हैं और इस कारण से उसके विरुद्ध शस्त्र उठाना बहुत बड़ा पाप समझते हैं।

जिन विचारों से राजपूतों की सेना रखनी पड़ती है उन्हीं विचारों और कारणों से मुगल बादशाह को पठानों की भी एक सेना प्रस्तुत रखनी पड़ती है।

मुगल सिपाहियों को भी जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं तैयार रखना वैसा ही आवश्यक है जैसा औरों का और इसलिए कि साम्राज्य की मुख्य सेना इन्हीं सिपाहियों की है इनके लिए बहुत रुपया व्यय किया जाता है। अतएव मैं आशा करता हूं कि आपके निकट इनका हाल जरा विस्तारपूर्वक लिखना अनुचित न होगा। इस सेना में सवार भी हैं और पैदल भी और इसके दो भाग माने जा सकते हैं जिनमें से एक भाग तो सदैव बादशाह के साथ रहता है और दूसरा भिन्न भिन्न प्रांतों में नियत रहता है। साथ में रहने वाली सेना में से मैं पहले उमरा, फिर मनसबदार, फिर रोजीनेदार और सब के अंत में साधारण सवारों का हाल लिखकर उसके बाद पैदल सेना और उसके उपरांत बंदूक वालों और सब पैदल सिपाहियों का जो दोनों प्रकार के तोपखाने में काम करते हैं, वर्णन करता हूं।

दरबारी अमीरों का हाल—यह न समझना चाहिए कि मुगल दरबार के अमीर भी फ्रांस के अमीरों की तरह परंपरागत अमीर हैं क्योंकि राज्य की सब भूमि बादशाह की समझी जाती है। इसी कारण से यहां कोई खानदानी रियासत नहीं है जैसे कि हमारे ड्यूक या मारक्विस की होती है और जो स्वयं अपने अधिकार की भूमि और संपत्ति भोगकर अमीर कहा जाता हो और उसकी आमदनी से उसके खर्च चलते हों। वरना इसके विपरीत यहां के दरबारी तो प्रायः ऐसे हैं कि जिनके पिता भी अमीर नहीं थे। अमीरों की सब संपत्ति उनके मरते ही बादशाह अपने अधिकार में कर लेता है इसलिए प्रकट ही है कि किसी कुटुंब की प्रतिष्ठा और उन्नतावस्था किस तरह बनी रह सकती है ! प्रायः तो ऐसा होता है कि किसी अमीर के मरते ही उसका सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और उसके पुत्रों की नहीं तो पौत्रों की दशा तो अवश्य ही भिखमंगों की-सी जाती है, उनको साधारण लोगों की तरह किसी अमीर की सेना के सवारों में नौकरी करने को विवश होना पड़ता है। हां इतनी कृपा अवश्य होती है कि जो अमीर मर जाता है उसकी संपत्ति पर अधिकार कर लेने के बाद बादशाह उसकी विधवा पत्नी के लिए साधारणतया और उसके कुटुंब और लोगों के लिए प्रायः कुछ वार्षिक नियत कर देता है। परंतु यदि कोई अमीर बड़ी उमर

का हो जाता है तो अपने जीते जी अपनी संतान के लिए—बशर्ते कि बादशाह की कृपा हो—कोई पद भी प्राप्त कर सकता है, विशेषकर उस अवस्था में जब कि उसकी संतानें (पुत्र) डील डौल, चेहरे-मुहरे अथवा आकार-प्रकार के अच्छे और रंग के भी गोरे हों जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे मुगल हैं। परंतु इस बादशाही कृपा के रूप में भी पुत्र पिता के पद का अधिकारी नहीं हो सकता, क्योंकि यह साधारण बात है कि छोटे और कम वेतन के पद से बड़े उत्तरदायित्व और बहुत अधिक वेतन के ओहदे तक क्रम क्रम से उन्नति हो जाती है। इसी से दरबारी अमीर भिन्न भिन्न जातियों के हैं, जो एक दूसरे की देखा देखी अपना भाग्य आजमाने के लिए दूसरे देशों से यहां आ घुसते हैं और प्रायः नीच, गुलाम और अपढ़ हैं जिनको उच्चतम पदों पर पहुंचा देना या बिलकुल निकृष्ट बना देना बादशाह की इच्छा पर निर्भर करता है।

किसी अमीर का पद एक हजारी, अर्थात एक सहस्र सवारों का सरदार, किसी का दो हजारी, किसी का पंच हजारी, किसी का सप्त हजारी, किसी का दस हजारी और किसी का दो आजदह (बारह) हजारी भी हो जाता है। परंतु बारह हजारी बहुत करके बादशाह का शाहजादा होता है। अमीरों का वेतन उनके सवारों की संख्या के अनुसार नहीं किंतु घोड़ों की संख्या के अनुसार होता है और हर एक सवार को साधारणतया दो घोड़े रखने की अनुमति होती है। भारतवर्ष जैसे गर्म देश में एक घोड़े वाला सिपाही लंगड़ा समझा जाता है क्योंकि एक घोड़ा यदि बीमार हो जाए या मर जाए तो क्यों कर काम चले ? इससे यह न समझना चाहिए कि बारह हजारी या सात हजारी पदवाले अमीर उतने ही घोड़े रखते हैं या बादशाह उनको इसी हिसाब से खर्च देता है। ये पदवियां प्रायः दिखाने और नाम मात्र के लिए हैं। बादशाह स्वयं आदेश करता है कि कौन अमीर कितने घोड़े रखे और उतने ही घोड़ों की संख्या के अनुसार उसको वेतन दिया जाता है। सो अमीरों के वेतन का आधार घोड़ों की संख्या पर है। इस प्रकार वेतन में से थोड़े घोड़े रखकर या अपने अधीन रखे हुए सिपाहियों को किफायत से वेतन देकर अमीर धन बचाते हैं। इस रीति पर नकद वेतन में से बचाने वालों की अपेक्षा जिन अमीरों को जागीरें मिली हैं वे अधिक बचा लेते हैं।

मैं एक पंच हजारी अमीर के यहां नौकर था। जिसके पास जागीरें नहीं थीं, केवल नकद वेतन खजाने से मिलता था। परंतु तिस पर भी पांच सौ घोड़ों इत्यादि का खर्च देने के बाद—जो इसको रखने आवश्यक थे—पांच हजार क्राउन अर्थात 12 सहस्र रुपये उसकी मासिक आमदनी थी। इतनी अधिक आमदनी होने पर भी मैंने इन अमीरों को धनवान बहुत ही कम देखा है, वरन बहुत से निर्धन और ऋणग्रस्त हैं। इनका ऋणी होना इस कारण से नहीं है कि दूसरे देशों के अमीरों (यूरोप के लार्डों इत्यादि से मतलब है) की तरह खाने खिलाने में बहुत कुछ व्यय कर देते हैं।

किंतु इनकी निर्धनता और इनके ऋणी होने का कारण यह है कि बादशाह को समय समय पर बड़ी बड़ी नजरें गुजारते हैं। अपनी अमीरी की शान में कई कई स्त्रियों से विवाह करते हैं, उनके नौकर-चाकरों का बड़ा खर्च होता है। और ऊंट घोड़ों के रखने में उनको बहुत द्रव्य व्यय करना पड़ता है।

बादशाह के दरबार में उपस्थित रहने वाले अमीरों के अतिरिक्त प्रांतीय तथा सैनिक अमीर भी होते हैं जो भिन्न भिन्न स्थानों में रहते हैं। उनकी संख्या कितनी है यह मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता। बादशाह के दरबार में उपस्थित रहने वाले अमीरों की संख्या 25 से 30 तक है और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है घोड़ों की संख्या के अनुसार उनका वेतन है, जो एक हजार से बारह हजार तक होते हैं।

ये अमीर राज्य के स्तंभ हैं। इनको राजधानी अथवा दूसरे नगरों अथवा सेना में बड़े बड़े उच्च पद और अत्यंत माननीय खिताब दिए जाते हैं। इनसे राजदरबार की शान बनी रहती है। जो राजधानी में रहते हैं वे बहुत उत्तम वस्त्र पहने बिना कभी घर के बाहर नहीं निकलते और कभी हाथी पर, कभी घोड़े पर और कभी पालकी पर सवार होते हैं, इनके साथ में सवारों के अतिरिक्त पैदल खिदमतगार आदि भी होते हैं जो सवारी के आगे आगे दोनों ओर पैदल चलते हैं और न केवल रास्तों में से लोगों को हटाते और गर्द झाड़ते हैं बल्कि पीकदान, जल की सुराही, हुक्का और कभी कभी कोई किस्से कहानी की पुस्तक अथवा कागज लेकर साथ साथ रहते हैं।

प्रत्येक अमीर के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रतिदिन प्रातकाल 11 बजे जब कि बादशाह दरबार में अदालत करने को बैठता है और फिर संध्या के समय छह बजे सलाम करने के लिए उपस्थित हों, और प्रत्येक को अपनी अपनी बारी पर दुर्ग में उपस्थित होकर सप्ताह में एक दिन रात पहरा देना पड़ता है। उस समय ये लोग बिछाने के वस्त्र और कालीन तथा अन्य सामान अपने साथ ले जाते हैं परंतु भोजन बादशाही भोजनालय से दिया जाता है जिसके लेने के समय एक विशेष प्रकार की प्रथा के अनुसार कार्य किया जाता है—अर्थात खड़े हो और बादशाह के महल की ओर मुख करके अमीर तीन बार झुक कर सलाम करते हैं, अपना हाथ प्रथम भूमि तक ले जाकर फिर मस्तक तक उठाते हैं।

जब कभी बादशाह पालकी या हाथी या तख्त पर सवार हो कर निकलता है तो उनको छोड़ जो बीमार या वृद्ध होते हैं अथवा जो किसी विशेष कारण से मुक्त रहते हैं सब अमीरों को उसके साथ अवश्य ही रहना पड़ता है। हां जब वह नगर के निकट शिकार खेलने या किसी बाग में या किसी मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए जाता है तब कभी कभी केवल वही अमीर उसके साथ जाते हैं जिनकी उस दिन चौकी होती है। नियम तो यह है कि बादशाह चाहे शिकार में हो, चाहे

सेना को साथ लेकर किसी लड़ाई पर जाए, चाहे एक नगर से दूसरे नगर को जाता हो, छत्र चमर आदि उसके साथ रहते हैं और अमीरों को चाहे कैसी ही कड़ी धूप पड़ती हो, चाहे वर्षा हो और चाहे गर्मी के कारण दम ही क्यों न घुटा जाता हो, प्रायः घोड़ों पर चढ़कर बिना किसी प्रकार की छाया के साथ रहना पड़ता है।

मनसबदारों का वेतन—मनसबदार एक प्रकार के सवार हैं जो मनसब का वेतन पाते हैं उनका वेतन एक विशेष प्रकार का और अच्छा तथा उनकी प्रतिष्ठा के योग्य है। यद्यपि वह अमीरों के वेतन के समान नहीं है, परंतु साधारण सवारों से बहुत अधिक है। इसी कारण छोटी श्रेणी के अमीरों में इनकी गण्ना की जाती है। बादशाह के अतिरिक्त ये किसी के अधीन नहीं हैं और जो काम अमीरों से लिए जाते हैं वे ही इनसे भी लिए जाते हैं। यदि इनके पास भी कुछ सवार हों जैसा कि पहले नियम था तो ये भी अमीरों के बराबर हो जाएं, परंतु आजकल इनके पास केवल दो चार घोड़े रहते हैं जिन पर बादशाही दाग लगे होते हैं। इनका वेतन कभी कभी डेढ़ सौ रुपया महीना होता है, परंतु 700 रुपया मासिक से अधिक कभी नहीं होता। इनकी संख्या नियत नहीं है, परंतु दरबारी अमीरों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इनके अतिरिक्त जो प्रांतों में या सेना में नियुक्त हैं उनकी संख्या मैंने दो तीन सौ से कम कभी नहीं देखी।

रोजीनेदार भी एक प्रकार के सवार ही हैं जिनका वेतन प्रतिदिन मिल जाया करता है जैसा कि स्वयं रोजीनेदार शब्द से प्रकट है। परंतु इनकी आमदनी बहुत है और कभी कभी तो ये मनसबदारों से भी अधिक वेतन पा जाते हैं। तथापि विशेष प्रकार का वेतन होने के कारण अधिक वेतन से इनकी अधिक प्रतिष्ठा नहीं है और मनसबदारों की भांति ये लोग ऐसे कालीन और फर्श आदि मोल लेनें को विवश नहीं हैं जो बादशाही मकानों में काम में आने के बाद मनसबदारों को लेने पड़ते हैं तथा प्रायः जिनके लिए मनसबदारों को बहुत मूल्य देना पड़ता है। इन लोगों की संख्या बहुत अधिक है और छोटे छोटे कार्य इनके सुपुर्द हैं। इनमें बहुत-से मुत्सद्दी और नायब मुत्सद्दी हैं और बहुत-से इस काम पर नियुक्त हैं कि उन आज्ञा पत्रों पर जो रुपया देने के लिए लिखे जाते हैं सरकारी मुहरें लगाएं। ये ऐसे हैं कि उन आज्ञा पत्रों का कार्य शीघ्र समाप्त कर देने के बदले बेधड़क घूस लिया करते हैं।

अब साधारण सवारों का वृत्तांत सुनिए। ये उन अमीरों के अधीन जिनका हाल ऊपर लिखा जा चुका है, काम करते हैं और दो प्रकार के होते हैं। एक तो दो घोड़े वाले जिनको बादशाही सेवा के लिए तैयार रखना अमीरों के लिए आवश्यक है और जिनके घोड़ों की रानों पर उन अमीरों के दाग लगे रहते हैं। दूसरे एक घोड़े वाले। दो घोड़े वालों का वेतन और सम्मान एक घोड़े वालों की अपेक्षा अधिक है और यद्यपि सरकार से एक घोड़े वाले सवार के निमित्त पच्चीस रुपया मासिक के

हिसाब से मिलता है, परंतु सवारों को कम या अधिक देना बहुत कुछ उनके सरदारों अर्थात अमीरों की उदारता पर निर्भर रहता है।

पैदल सिपाहियों का वेतन सब प्रकार के ऊपर लिखे कर्मचारियों से कम है। इनकी श्रेणी में जो लोग बंदूकची हैं उनको आराम और शांति के समय में भी बहुत बखेड़ों में रहना पड़ता है, अर्थात बंदूक चलाने के समय जब वे घुटना टेककर बैठते हैं और अपनी बंदूक को लकड़ी की तिपाइयों पर रखकर जो बंदूक के साथ लटकती हैं चलाते हैं तो उनकी यह बैठक देखने ही योग्य होती है और इतनी सावधानी पर भी यह डर लगा रहता है कि कहीं बंदूक दागने वाले की लंबी लंबी दाढ़ी और आंखें न जल जाएं, अथवा किसी भूत प्रेत के विघ्न डालने से बंदूक न फट जाए।

पैदल सैनिकों में किसी का वेतन 20 रुपये मासिक है, किसी का 5 रुपये और किसी का 10 रुपये, परंतु गोलंदाजों का वेतन बहुत है। विशेषकर विदेशी गोलंदाज अर्थात पुर्तगीजों, अंगरेजों, डचों, जर्मनों और फ्रांसीसियों का जो गोवा और डचों तथा अंगरेजों की कंपनियों के कार्यालयों से भाग आते हैं। प्रारंभ में जब मुगल लोग तोप चलाना अच्छी तरह नहीं जानते थे तब इन विदेशी गोलंदाजों को अधिक वेतन मिलता था और उनमें से अब भी कुछ लोग हैं जो 200 रुपये मासिक पाते हैं, परंतु अब बादशाह इन लोगों को बहुत कम नौकर रखता है और 20 रुपये से अधिक वेतन नहीं देता।

तोपखाना दो प्रकार का है—एक भारी दूसरा हलका। भारी तोपखाने के विषय में मुझे स्मरण है कि जब बादशाह बीमारी के बाद सेना सहित लाहौर के मार्ग से कश्मीर गया था जिसको भारतवर्ष में द्वितीय स्वर्ग कहते हैं तो उस यात्रा में जंबूर (अर्थात ऊंटों पर एक प्रकार की बहुत छोटी छोटी तोपें रखने वालों) के अतिरिक्त जो दो-तीन सौ तेज ऊंटों पर थे (और ये छोटी तोपें दो दो बंदूकों के बराबर थीं) सत्तर भारी तोपें जिनमें प्रायः बिरंजी तोपें थीं साथ थीं।

बादशाह की कश्मीर यात्रा का वर्णन मैं आगे चलकर किसी अवसर पर करूंगा और यह भी लिखूंगा कि इस लंबी यात्रा में बादशाह बहुधा शिकार में अपना जी किस किस प्रकार बहलाता रहा। अर्थात कभी शिकारी पक्षियों को कुलंग आदि जानवरों पर छोड़ा, कभी नीलगाय का आखेट किया जो एलक के प्रकार का जानवर है, किसी दिन चीतों से हिरनों को पकड़वाया और कभी शेर का शिकार खेला जो वास्तव में बादशाह के योग्य है।

हलका तोपखाना जो लाहौर और कश्मीर की यात्रा में साथ गया था उसका क्रम मुझको बहुत अच्छा जान पड़ता था। उसमें पचास या साठ छोटी छोटी बिरंजी तोपें थीं जो सब मजबूत और सुंदर रंगदार तख्तों पर चढ़ी हुई थीं जिनके साथ गोले बारूद के लिए एक आगे और एक पीछे दो दो बक्स थे और उन पर सजावट के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की लाल झंडियां लगी हुई थीं। इनमें दो दो उत्तम घोड़े जुते

थे जिनको एक एक सवार हांकता था और एक तीसरा घोड़ा तथा एक और सिपाही सहायता के लिए साथ रहता था।

भारी तोपखाना बादशाह के साथ नहीं रहता था क्योंकि आखेट करने या पानी के निकट रहने के अभिप्राय से बादशाह सीधे मार्ग से अलग होकर चलता था और ये तोपें ऐसी भारी थीं कि दुर्गम मार्गों या नावों के पुलों पर से जो बादशाही सेना के उतरने के लिए बनाए गए थे जा नहीं सकती थीं। परंतु हलका तोपखाना सदैव बादशाह के साथ रहता है। आखेट के स्थानों में जो बादशाह के लिए ठीक किए हुए रहते हैं और जानवरों को रोक रखने के लिए जिनकी नाकेबंदी भी आखेट के समय की जाती है। जब बादशाह बंदूक से अथवा और किसी प्रकार आखेट करना चाहता है तो यह तोपखाना जितना शीघ्र संभव होता है आगे पड़ाव पर जहां बादशाह और बड़े बड़े अमीरों के खेमे पहले से लगे होते हैं जा रहता है। बादशाही खेमों के सामने इन तोपों की लाइन लगा दी जाती है और जब बादशाह पड़ाव में पहुंचता है तो सबकी सूचना के लिए सलामी की जाती है।

जो सेना प्रांतों में नियत रहती है उसकी और बादशाह के साथ रहने वाली सेना की अवस्था में इसके अतिरिक्त और कुछ अंतर नहीं है कि प्रांतों में रहने वाले सैनिकों की संख्या अधिक है। प्रत्येक प्रांत में अमीर, मनसबदार, साधारण सवार, प्यादे और तोपखाने उपस्थित रहते हैं। एक दक्षिण प्रांत में ही पच्चीस-तीस सहस्र सवार रहते हैं जो गोलकुंडा के शक्ति संपन्न बादशाह के धमकाने और बादशाह बीजापुर तथा उन राजाओं से लड़ने के लिए आवश्यक हैं जो आपस के बचाव के विचार से अपनी अपनी सेना लेकर बीजापुर के बादशाह से मिल जाते हैं। काबुल प्रांत में जो सेना है और जिसका ईरान, बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान तथा अन्यान्य पहाड़ी देशों के विरोध और उपद्रवों की रोकथाम करने के लिए रहना प्रयोजनीय है। यह बारह अथवा पंद्रह सहस्र से कम नहीं हो सकती। कश्मीर में चार सहस्र से अधिक सैनिक हैं और बंगाल में जहां सदैव लड़ाई भिड़ाई रहा करती है बहुत अधिक सेना रहती है। कोई प्रांत ऐसा नहीं है जहां उसकी लंबाई-चौड़ाई और अवस्था के विचार से कम या अधिक सेना रखना आवश्यक न हो, इसलिए समग्र सेना की संख्या इतनी अधिक है कि जिस पर सहसा विश्वास नहीं हो सकता। पैदल सेना को जिसकी संख्या कम है अलग रखकर और घोड़ों की उस संख्या को जो नाममात्र के लिए है और जिसको सुनकर अनजान आदमी धोखा खा सकता है छोड़कर मैं तथा दूसरे जानकार लोग अनुमान करते हैं कि जो सवार बादशाह के साथ रहते हैं राजपूतों और पठानों समेत पैंतीस या चालीस हजार होंगे—जो प्रांतों के सैनिकों के साथ मिलकर दो लाख से अधिक हो जाते हैं।

मैंने लिखा है कि पैदल थोड़े हैं। सो मेरी समझ में पैदल सेना जो बादशाह के साथ रहती है बंदूकचियों और तोपखाने के पैदल सिपाहियों तथा अन्यान्य लोगों

से जो तोपखाने से संबंध रखते हैं मिल-जुलकर पंद्रह हजार से अधिक नहीं है। इसी से प्रांतों की सेना का अंदाजा लगाया जा सकता है। परंतु मैं नहीं जानता कि कुछ लोग पैदल सेना की संख्या क्यों अधिक बताते हैं ? कदाचित मजदूरों, खिदमतगारों, भटियारों और बाजार वालों को जो साथ रहते हैं सैनिकों में ही गिन लेते होंगे। सचमुच यदि इस सब भीड़-भाड़ को मिला लिया जाए तब तो केवल उसी दल की संख्या जो बादशाह के साथ रहता है विशेषकर जब लोगों को यह मालूम हो जाए कि बादशाह का विचार कुछ समय के लिए राजधानी के बाहर रहने का है दो-तीन लाख प्यादों से कम नहीं रहती। जब इस बात पर विचार किया जाए कि कितने डेरे, खेमे, बावर्चीखाने के असबाब, सामान और औरतें प्रायः दल के साथ रहती हैं और इन सबके ले जाने के लिए कितने हाथी, ऊंट, बैल, घोड़े आदि आवश्यक हैं, तो उस संख्या में जो मैंने अनुमान की है अत्युक्ति नहीं जान पड़ेगी।

माननीय महोदय ! यह बात स्मरण रखने के योग्य है कि इस देश की अवस्था और शासन प्रणाली के विचार से (जहां राज्य की भूमि का केवल बादशाह ही मालिक है) इस देश की राजधानियों (आगरा और देहली) के निवासियों के पेट पालन का मुख्य आधार केवल सेना का उपस्थित रहना ही है, अतएव वे विवश हैं कि जब कभी बादशाह कोई लंबी यात्रा करे तो वे भी साथ जाएं। ये नगर फ्रांस की राजधानी पेरिस के समान नहीं है बल्कि इनको कैंप कहा जा सकता है। कैंपों और इन नगरों में केवल इतना अंतर है कि खेमों के बदले इनमें मकान हैं और रहने सहने के अन्यान्य सामान भी कैंपों की अपेक्षा कुछ अच्छे हैं।

इस बात का वर्णन करना भी आवश्यक है कि अमीरों से लेकर सिपाहियों तक के वेतन का हर दूसरे महीने बांट दिया जाना प्रयोजनीय होता है, क्योंकि वेतन के सिवा जो कि बादशाही खजाने से मिलता है कोई और द्वार उनके पेट पालन का नहीं है।

फ्रांस में यदि किसी कारण से वेतन के देने में गवर्नमेंट की ओर से कुछ विलंब हो जाता है तो सरदार तो क्या सिपाही भी अपनी किसी विशेष आमदनी से निर्वाह कर लेते हैं, परंतु भारतवर्ष में यदि सैनिकों को वेतन के मिलने में कभी नियत समय से अधिक विलंब हो जाता है तो निश्चय ही बहुत बुरा परिणाम होता है। अर्थात सिपाही तुरंत अपना सामान जो उनके पास होता है। बेच बाच कर चल देते हैं और भूखों मरने लगते हैं। जिस समय राजकुमारों का पारस्परिक झगड़ा और युद्ध प्रायः समाप्त होने को था उस समय मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि सवारों की रुचि इस ओर बढ़ती जा रही थी कि अपने घोड़े बेच डालें और कुछ संदेह नहीं कि यदि लड़ाई अधिक दिन चलती तो वे अवश्य ही ऐसा कर डालते। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि मुगल बादशाह की सेना में कोई सिपाही कठिनता से ऐसा मिल सकता है जो जोरू, बच्चे, नौकर-चाकर लौंडी गुलाम न रखता हो।

इसी कारण मैंने ऐसे बहुत-से लोगों को देखा है जो इस अवस्था को देखकर बड़ा आश्चर्य करते हैं कि सेना के लिए इतना अगणित धन कहां से आता है कि जिससे लाखों मनुष्यों की जीविका चलती है जिसका आधार केवल बादशाह की ओर से मिलने वाला वेतन ही है।

परंतु ये लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि मुगल बादशाह इस देश में किस रीति और किस नीति से शासन करता है। मैंने तो उसके खर्चों के विषय में अभी एक प्रकार कुछ लिखा भी नहीं है। जरा विचारिए कि आगरे और देहली के अस्तबलों में दो या तीन सहस्र तो केवल अच्छे घोड़े ही हैं जो आवश्यकता के समय के लिए सदा तैयार रहते हैं और आठ या नौ सौ हाथी तथा बहुत-से टट्टू और खच्चरें तथा मजदूर जो उन असंख्य और बड़े लंबे-चौड़े खेमों और उनके साथ के छोटे खेमों तथा बेगमों एवं महल की अन्यान्य स्त्रियों और सामान तथा बावर्चीखाने के असबाब और गंगाजल आदि बहुत-सी वस्तुओं के उठाने के लिए जिनका यात्रा के समय बादशाह के साथ रहना आवश्यक रहता है और जो यूरोप में किसी के ध्यान में नहीं आते रखने पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त महल के अगणित प्रकार के खर्च हैं। अच्छी मलमलें, जरबफ्त, रेशमी और जरीदार कपड़े, मोती, कस्तूरी, अंबर और इत्र आदि इतनी अधिकता से खर्च में आता है कि ध्यान में नहीं आ सकता। अतएव यद्यपि मुगल बादशाह की आमदनी बहुत है पर उसका खर्च भी उतना ही है और इसी कारण से (जैसा कि बहुत से लोग भूल से समझते हैं) उसे बहुत अधिक रुपये की बचत नहीं होती।

मैं मानता हूं कि सुल्तान रूम और ईरान के शाह दोनों की आमदनी यदि मिला ली जाए तो मुगल बादशाह की आमदनी कदाचित उनसे भी अधिक होगी। परंतु यदि मैं उसको धनवान कहूं तो यह मतलब होगा कि मानो वह एक ऐसा खजानची है जो एक हाथ से असंख्य रुपया लेता और दूसरे हाथ से दे देता है। मेरी समझ में वास्तविक धनी उस बादशाह को कहना चाहिए जिसकी आमदनी इतनी हो कि अत्याचार और जबर्दस्ती करके प्रजा को कंगाल किए बिना अमीरों और दरबारियों का एक शानदार समूह रखने, उपयोगी और बड़ी बड़ी इमारतें बनवाने, उदारता और दानशीलता दिखाने तथा देश की रक्षा के लिए बहुत बड़ी सेना रखने पर भी वह इतना रुपया बचा सकता हो कि अपने पड़ोसियों के साथ किसी आकस्मिक लड़ाई-भिड़ाई के समय जो चाहे कई वर्षों तक जारी रहे, काम में ला सके। यद्यपि मुगल बादशाह को इनमें से कई बातें प्राप्त हैं, परंतु उतनी नहीं जितनी लोग अनुमान करते हैं।

बादशाही व्यय–मुगल बादशाह के अपार और आवश्यक व्यय के विषय में मैंने जो कुछ लिखा है उसे तथा उन दो बातों से जिनका मुझको अच्छी तरह निश्चय हो

चुका है। कदाचित आपकी राय भी यही होगी कि मुगल बादशाह की धनशालिता की प्रसिद्धि अत्युक्ति से खाली नहीं है। उन दो बातों में से एक तो यह है कि पिछली लड़ाई के समाप्त होने के लगभग औरंगजेब को बड़ी ही चिंता थी कि सैनिकों का वेतन किस तरह चुकाया जाए—ऐसी अवस्था में भी जब कि लड़ाई केवल पांच वर्ष रही थी और सैनिकों का वेतन भी कम था तथा बंगाल के अतिरिक्त जहां सुल्तान शुजा अब तक लड़ता था दूसरे सब प्रांतों में बिल्कुल शांति थी और पिता के प्रायः खजाने भी उसके अधिकार में आ चुके थे।

दूसरी बात यह कि शाहजहां जो बहुत कम खर्च करने वाला था और किसी बड़ी लड़ाई में फंसे तथा उलझे बिना चालीस वर्ष से अधिक समय तक राज्य करता था कभी छह करोड़ से अधिक रुपये इकट्ठे न कर सका। परंतु इस धन में मैंने उन अनगिनत सोने चांदी की तरह तरह की चीजों को जिन पर बहुत अच्छे अच्छे काम बने हुए हैं तथा बड़े बड़े बहुमूल्य मोतियों और भांति भांति के असंख्य रत्नों को सम्मिलित नहीं किया और मुझको संदेह है कि इससे अधिक रत्न कदाचित ही संसार के किसी और बादशाह के पास हों। इसका एक तख्त ही (यदि मैं भूलता न होऊं तो) तीन करोड़ के मूल्य का है। ये सब जवाहरात और बहुमूल्य वस्तुएं राजपूतों के प्राचीन राजवंशों, पठान बादशाहों और अमीरों से लूटी तथा एक लंबी मुद्दत में इकट्ठी की हुई हैं और प्रत्येक बादशाह के समय में राज्य के अमीरों की मामूली वार्षिक नजरों के रुपये जो उनको अवश्य ही देने पड़ते हैं इनकी संख्या बढ़ती गई है। यह सब खजाना तख्त का माल समझा जाता है और इसको छेड़ना अनुचित है, यहां तक कि स्वयं बादशाह भी चाहे कैसी ही आवश्यकता क्यों न हो इसका थोड़ा-सा रुपया भी बड़ी कठिनता से प्राप्त कर सकता है।

अपने इस पत्र को समाप्त करने से पहले मैं यह बात लिख देना चाहता हूं कि यद्यपि चांदी सोना और देशों से घूमघाम कर अंत में भारतवर्ष में आता है, तो भी और देशों की अपेक्षा यहां अधिक दिखाई नहीं देता और भारतवासी दूसरे देशों के निवासियों की तरह संतुष्ट मालूम नहीं होते। इसका कारण यह है कि प्रथम तो बहुत-सा माल बार बार गलाए जाने और औरतों के हाथों की चूड़ियों, पांवों के कड़ों, तोड़ों, कानों की बालियों, नाकों की नथों और हाथों की अंगूठियों आदि के बनाने में छीज जाता है और इससे भी अधिक अंश जरदोजी और कारचोबी के काम के कपड़ों, इलायचों, पगड़ी के तुर्रों, सुनहरे रुपहले कपड़ों, ओढ़नियों, पटुकों, मंदीलों और कमखाबों के बनाने में खर्च हो जाता है कि सुनने वाले को विश्वास नहीं हो सकता। सब सेनाओं में अमीरों से लेकर सिपाहियों तक कुछ न कुछ मुलम्मेदार और सुनहरी रुपहली चीजें तड़क-भड़क के लिए पहनते हैं और एक अदना सिपाही भी (चाहे कुटुंब भूखों क्यों न मर जाए जैसा होना एक साधारण बात है) अपनी पत्नी और बच्चों को कुछ न कुछ गहने अवश्य पहनाता है।

बादशाह जो कि भूमि का मालिक है सैनिकों को कुछ भूमि वेतन में दे देता है। जिसको यहां जागीर और टर्की देश में तेमार कहते हैं और जिसका यह अर्थ है कि वह स्थान जहां से कुछ लिया जाए अथवा वेतन वसूल करने का स्थान। इसी प्रकार की जागीरें उनके और उनकी सेना के वेतन में इस प्रतिज्ञा पर दी जाती हैं कि जो आमदनी बचे उसका एक विशेष अंश प्रतिवर्ष बादशाही खजाने में देते रहें। जो भूमि जागीर में नहीं दी जाती और स्वयं बादशाह तथा उसके कुटुंबियों के लिए हैं और कदाचित ही कभी किसी को जागीर में दी जाती है, वह इजारदारों को दी जाती है जो प्रतिवर्ष नियत रुपया देते रहते हैं। इस प्रकार जो लोग भूमि पर अधिकार प्राप्त करते हैं, चाहे वे सूबेदार हों चाहे इजारदार, चाहे तहसीलदार उनका खेतिहारों पर बड़ा अधिकार रहता है और खेतिहारों तक ही बात नहीं है वरन अपने प्रांत के गांवों और कस्बों के व्यापारियों और कारीगरों पर भी उनको वैसा ही विलक्षण अधिकार प्राप्त है पर जिस ढंग से वे अपने अधिकार का व्यवहार करते हैं उससे अधिक कोई कष्टदायक अत्याचार विचार में नहीं आ सकता। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके पास ये बेचारे अत्याचार के मारे किसान, कारीगर और व्यापारी जाकर अपना दुखड़ा रोएं। अर्थात न तो फ्रांस की तरह यहां कोई 'ग्रेटलार्ड' है, न पार्लियामेंट और न अदालत के जज जो इन निर्दयी अत्याचारियों के अत्याचारों को रोकें। जो विचार के लिए यहां नियुक्त हैं उनको इन अभागे लोगों का दुख मोचन करने का काफी अधिकार नहीं है परंतु इन अबाध्य अधिकारों का कुव्यवहार बड़े बड़े नगरों अर्थात देहली और आगरा बंदरगाहों तथा बड़े बड़े कस्बों के आसपास इतना अधिक नहीं दीख पड़ता क्योंकि ऐसे स्थानों में कोई बड़े अन्याय का काम बादशाही दरबार से छिपा रहना सहज नहीं है।

प्रजा के साथ इस प्रकार का गुलामों जैसा बर्ताव व्यापार के लिए हानिकारक है तथा लोगों की रीति नीति सुधरने नहीं पाती, और व्यापार करने का किसी को इसलिए उत्साह नहीं होता कि इसके बदले जो कुछ लाभ उठाएं उसे वह अपने सुख के लिए खर्च करें। उसको देखकर किसी अत्याचारी और शक्तिशाली पड़ोसी के मुंह में पानी भर आता है जो सदा यह चाहता है कि किसी व्यक्ति को उसके परिश्रम के फल का स्वाद न लेने दे। यदि किसी को धन प्राप्त भी हो जाता है, जैसा कि कभी कभी होना स्वाभाविक बात है तो इसके विपरीत कि वह पहले की अपेक्षा संतुष्ट रहे और स्वाधीनता के साथ जीवन व्यतीत करे, दरिद्रों का-सा रूप बनाए रहता है, अपना मकान और असबाब बहुत ही बुरा रखता है और सबसे विशेष बात यह कि खाने-पीने में कंजूसी दिखाता है, ऐसी अवस्था में अपना रुपया, अशर्फी वह जमीन में किसी गहरे गढ़े में गाढ़ रखता है। सब लोगों से चाहे वे खेतिहर हों, चाहे कारीगर या बाजारी व्यापारी, हिंदू या मुसलमान प्रायः यही प्रथा है। विशेषकर हिंदुओं में जिनके हाथ में देश का व्यापार और धन है और जिनको यह विश्वास है कि

जिस धन को हम अपनी जीवित अवस्था में छिपाकर रखेंगे मरने के बाद वह काम आएगा। हां कुछ लोग जो बादशाह या उमरा के यहां नौकर हैं या जिनकी आमदनी का कोई बड़ा द्वार है उनको अपनी गरीबी दिखाने की कुछ आवश्यकता नहीं होती, वे सुख और आनंद से रहते हैं और इसमें कुछ संदेह नहीं कि सोने चांदी को जमीन में गाड़ रखने और इस प्रकार उसके एक के हाथ में से दूसरे के हाथ में जाने देने से रोकने की यह प्रथा ही इस देश में सोने चांदी के प्रकट रूप में कम दिखाई देने का बड़ा कारण है। अब जो कुछ मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूं उस से स्वभावतया यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि बादशाह जमीन का बिलकुल अधिकार छोड़ दे और यह अधिकार प्रजा को प्राप्त हो जाए तो ऐसा होना प्रजा और बादशाह दोनों को लाभकारी होगा या नहीं ? इसके उत्तर में मैं यह कहता हूं कि मैंने यूरोप की अवस्था की जहां भूमि का अधिकार प्रजा को प्राप्त है और उन देशों की अवस्था की भी जहां यह अधिकार प्रजा को प्राप्त नहीं है विचारपूर्वक भली भांति जांच की है और विचार के पश्चात मेरी यह राय है कि यह बात न केवल प्रजा वरन बादशाह के लिए भी बहुत ही लाभदायक है।

मैं यह लिख चुका हूं कि हिंदुस्तान में सोने चांदी के कम दिखाई देने का क्या कारण है अर्थात जागीरदारों, प्रांतीय अधिकारियों और तहसीलदारों का घोर अत्याचार जिसको यदि बादशाह भी रोकना चाहे तो नहीं रोक सकता, विशेषकर उन प्रांतों में जो राजधानी के निकट नहीं हैं। यह अत्याचार इतना बढ़ा हुआ है कि खेतिहरों और कारीगरों के पास उनके जीवन निर्वाह के लिए कुछ भी रहने नहीं देता और वे दरिद्रता तथा गरीबी में पड़े मरते हैं। इसके अतिरिक्त इसी अत्याचार के कारण प्रथम तो उन बेचारों के कोई संतान ही नहीं होती और यदि होती भी है तो उपवासों के मारे बाल्यावस्था ही में इस संसार से दूसरे संसार को सिधार जाती है। संक्षेप यह कि इन उपद्रवों और अत्याचारों के कारण कृषक अपनी जन्मभूमि छोड़कर कुछ सुख मिलने की आशा से किसी पड़ोसी राज्य में चले जाते हैं या सेना में जाकर किसी सवार के पास नौकरी कर लेते हैं और इससे भूमि संबंधी कार्य बड़ी ही कठिनता से होते हैं और कोई व्यक्ति इस योग्य पाया नहीं जाता जो अपनी इच्छा से उन नहरों और नालियों की मरम्मत करे जो सिंचाई के लिए बनी हुई हैं, भूमि का एक बड़ा भाग सूखा और खाली पड़ा रहता है। बात भूमि ही तक नहीं है, मकान भी प्रायः उजाड़ और बुरी अवस्था में पड़े रहते हैं। बहुत ही कम ऐसे लोग हैं जो नए मकान बनाते या उनकी मरम्मत कराते हैं। एक ओर तो कृषक अपने मन में यह सोचा करता है कि क्या हम इस वास्ते परिश्रम करें कि कोई अत्याचारी आए और सब कुछ छीन ले जाए और चाहे तो हमारे जीवन निर्वाह के लिए भी कुछ न छोड़े। दूसरी ओर जागीरदार, सूबेदार और तहसीलदार यह सोचते हैं कि हम क्यों सूखी और उजाड़ भूमि की चिंता करें और अपना रुपया तथा समय उसे उपयोगी बनाने

में लगाएं। क्योंकि नहीं मालूम किस समय वह हमारे हाथ से निकल जाए और हमारे उद्योग तथा श्रम का फल न हमको मिले न हमारे वंशजों को, अतएव भूमि से जो कुछ मिल सके वह हम ले लें और न मिले न सही ? खेतिहर भूखे मरें या उजड़ जाएं हमको क्या ? जब हमको इस भूमि के छोड़ देने की आज्ञा मिलेगी तब हम इसे उजाड़ अवस्था में छोड़कर चले जाएंगे।

जो वृत्तांत मैंने ऊपर वर्णन किया उससे इस बात का पूरा प्रमाण मिलता है कि एशिया के राज्य किस प्रकार शीघ्र शीघ्र अधःपतित होते हैं। इस प्रकार की बुरी शासन प्रणाली का यह फल है कि भारतवर्ष के बहुत-से शहरों के मकान कच्चे या घास फूस आदि के बने हुए हैं और यहां के नगर तथा कस्बे चाहे बिलकुल ही गिरी अवस्था में और उजाड़ न हों परंतु ऐसा कोई भी नगर या कस्बा नहीं है जिसके शीघ्र दुर्दशाग्रस्त हो जाने के लक्षण न दीख पड़ते हों। और भारतवर्ष ही पर कोई बात नहीं है—यह राज्य तो हमसे बहुत दूर है, किंतु हम लोग अपने निकट ही के किसी किसी एशियाई राज्य की अवस्था का विचार करके जान सकते हैं कि एक व्यक्ति के राजा होने से कितना अत्याचार होता है और उसका कैसा बुरा फल होता है। जैसे मेसोपोटामिया, अंटोलिया, पैलेसटाइन आदि बड़े और अच्छे राज्य जहां की भूमि पहले बहुत उपजाऊ थी, अब अत्याचारी राजाओं के कारण बुरी अवस्था को पहुंचे हुए हैं। उनके बहुत-से भाग दलदल हो गए हैं और वहां की जलवायु खराब हो गई है जिससे अब वे मनुष्य के रहने के योग्य भी नहीं है। यही दुरवस्था इजिप्ट देश की भी दिखाई देती है जहां की जनता गुलामों की दशा भोग रही है। पिछले अस्सी वर्षों की अवधि में यह अद्वितीय देश दसवें हिस्से से अधिक उजाड़ हो गया है क्योंकि इस बीच में किसी ने वहां नील नदी की नहरों की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। जिसका यह फल हुआ कि नद अपने मामूली पाट के अंदर नहीं बहता, नीची भूमि बिलकुल डूब गई है और रेत से इतनी भर गई है कि बिना बहुत द्रव्य और परिश्रम के साफ नहीं हो सकती।

ऐसी अवस्था में क्या यह कुछ आश्चर्य की बात है कि इन देशों में कारीगरी की वैसी उन्नति नहीं है जैसी हमारे सौभाग्य से फ्रांस तथा उन देशों में है जहां की शासन प्रणाली अच्छी है ? क्योंकि कैसे ही हों ऐसे लोगों में रहकर अपने व्यापार में जी लगाने की आशा नहीं की जाती जो निर्धन और दरिद्र हों या अपने को दरिद्र प्रकट करते तथा चीज की सुंदरता और उत्तमता के बदले केवल उसके कम मूल्य का ध्यान रखते हों, और बड़े आदमियों की यह दशा हो कि अपनी इच्छा के अनुसार चीज की हैसियत से बहुत कम मूल्य जो चाहते हों दे देते हों, तथा कोई कारीगर या व्यापारी अनुनय विनय या प्रार्थना करे तो उसको कोड़ों से पिटवाने में भी उनको दया न आती हो। ('कोड़ा' एक लंबे और भयानक चाबुक को कहते हैं जो प्रत्येक अमीर के द्वार पर लटका रहता है !) क्या किसी कारीगर का उत्साह भंग कर देने

के लिए यह बात कुछ कम है कि उसको किसी प्रकार की प्रतिष्ठा पाने या अपने बाल बच्चों के लिए किसी सरकारी पद के प्राप्त करने अथवा भूमि खरीदने की अनुमति मिलने की आशा नहीं है और इस डर से कोई धनी होने का संदेह न करे न कभी अच्छे वस्त्र पहन सकता है न अच्छा भोजन कर सकता है और न यह प्रकट कर सकता है कि उसके पास कुछ थोड़ा-सा भी रुपया है।

हिंदुस्तान के कला कौशल या यहां की अत्यंत सुंदर कारीगरियां कभी की नष्ट हो गई होतीं यदि बादशाह और बड़े बड़े अमीरों के यहां बहुत-से कारीगर नौकर न होते जो स्वयं उन्हीं के घरों पर और बादशाही कार्यालयों में बैठ कर काम करते और अपने शिष्यों तथा लड़कों को सिखाया करते हैं। इनाम की आशा और कोड़ों का डर उनको परिश्रम के साथ अपने अपने कामों में लगाए रहता है। कुछ यह भी कारण है कि कोई कोई धनी व्यापारी ऐसे भी हैं जिनका बड़े बड़े उमरा से संबंध और व्यवहार है तथा जो कारीगरों को मामूली से कुछ अधिक मजदूरी देकर काम बनवाया करते हैं। मैंने कुछ अधिक मजदूरी इसलिए कहा है कि यह तो समझना ही नहीं चाहिए कि अच्छी चीजें बनाने में कारीगर का कुछ आदर किया जाता है या उसको कुछ स्वतंत्रता दी जाती है, क्योंकि वह तो जो कुछ करता है केवल आवश्यकता अथवा कोड़ों के डर से करता है। उसको संतोष और सुख मिलने की कभी आशा नहीं होती, इसलिए यदि रूखा सूखा टुकड़ा खाने को और मोटा झोटा कपड़ा पहनने को मिल जाए तो उसी को वह बहुत समझता है। और रुपया मिल भी जाए तो उसको क्या ? क्योंकि वह तो उस व्यापारी का माल है जो स्वयं सदैव इसी घबराहट और चिंता में रहा करता है कि यदि कोई बलवान अत्याचार और जबदरस्ती करना चाहेगा तो उससे मैं कैसे बचूंगा।

शिक्षा का अभाव–लोगों की इस अवस्था का यह परिणाम है कि सारे देश में शिक्षा का बिल्कुल अभाव है, लोग मूर्ख अपढ़ हैं और यह यहां संभव ही नहीं है कि ऐसे शिक्षणालय और कालेज खुल सकें जिनके खर्च के लिए यथेष्ट रुपया बादशाही खजाने में वर्तमान हो, तथा ऐसे लोग कहां जो सहायता करके कालेज खुलवाएं। मान लिया जाए कि ऐसे लोग मिल भी जाएं तो पढ़ने वाले कहां और लोगों में इतनी शक्ति कहां कि अपने अपने बच्चों को कालेज में भेजकर उनके खर्च का प्रबंध कर सकें ? यदि ऐसे योग्य धनवान लोग हों भी तो यह साहस कौन कर सकता है कि इस प्रकार खुले आम अपनी धनशालिता प्रकट करे और कदाचित यदि कोई व्यक्ति यह भूल कर भी बैठे तो अच्छी शिक्षा से जो सांसारिक लाभ होते हैं वे कहां और ऐसे प्रतिष्ठित पद कहां जो नवयुवक छात्रों की आशाओं और एक-दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा को उभारते हैं तथा जिनके लिए विद्या और योग्यता की आवश्यकता है।

व्यापार की गिरी अवस्था–जिस देश में इस प्रकार का शासन हो वहां उस उन्नति और सफलता के साथ व्यापार भी नहीं हो सकता जैसे यूरोप में होता है क्योंकि ऐसे लोग बहुत कम हैं जो अपनी इच्छा से परिश्रम करना और किसी दूसरे के लाभ के लिए कष्ट उठाना अथवा अपनी जान को जोखिम में डालना पसंद करें। (किसी दूसरे व्यक्ति से मेरा मतलब ऐसे शासनकर्ता से है जो लोगों की कमाई छीन लेने में नहीं हिचकता) चाहे कितना ही लाभ क्यों न हो कमाने वाले को दरिद्री का-सा वस्त्र पहनना और अपने निर्धन पड़ोसियों से बढ़कर खाने पीने में कंजूसी करना आवश्यक है, परंतु हां जब किसी सैनिक सरदार से किसी व्यापारी का संबंध हो जाता है तब अवश्य ही वह बड़े बड़े व्यापारिक कार्य करने लगता है, तो भी इस अवस्था में उसको अपने संरक्षक की गुलामी में रहना आवश्यक है जो उसकी रक्षा के बदले जिस प्रकार की प्रतिज्ञा उससे चाहता है करा लेता है।

बादशाह के भाग्य में यह नहीं है कि राज्य का कर्मचारी बनाने के लिए अपनी प्रजा में से वह ऐसे लोगों को चुन सके जो पुराने रईसों के पुत्र, खानदानी अमीरों और माननीय लोगों की संतानें और बड़े बड़े कारखानेदारों तथा धनाढ्य व्यापारियों के पुत्र पौत्रादिक हों और जिन्होंने भली-भांति शिक्षा पाई हो तथा अपने आचार-विचार और गांभीर्य से उनमें अच्छे भाव हों, तथा जिनको अपने बादशाह से स्नेह हो और जो वीरता और योग्यता के कामों से अपने कुल की प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि बढ़ाने के लिए प्रस्तुत हों और इस योग्य हों कि आवश्यकता पड़ने पर सेना में प्रसन्नतापूर्वक काम दे सकें, तथा किसी अच्छे समय की आशा पर केवल बादशाह के हंसकर बोलने और शाबास कह देने पर संतुष्ट हों। ऐसे अच्छे लोगों के बदले बादशाह के चारों ओर ऐसे अपढ़ और मूर्ख लोगों का जमाव रहता है जो गुलाम या खुशामदी लोग होते हैं जिन्होंने बहुत ही तुच्छ और हेय अवस्था से अत्यंत उन्नत पद प्राप्त किया है और जो शिष्टता, सभ्यता, स्वदेश प्रेम, गंभीरता और वीरत्व के गुणों से बिलकुल खाली हैं तथा जिनके मस्तिष्क असहनीय घमंड से भरे हुए हैं।

देश की यह अवस्था है कि उस अपार व्यय के कारण जो दरबार की शान बनाए रखने और उस बड़ी सेना का वेतन चुकाने में लगता है जिसका होना प्रजा को वश में रखने के लिए आवश्यक है तबाह हो रहा है। लोग ऐसे कष्ट और दुख में हैं जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता और केवल बेंत तथा कोड़ों के डर से दूसरों के लाभ के लिए काम में लगे रहते हैं। यदि सेना का डर उनको न हो तो वे ऐसे अत्याचारों और दुर्व्यवहारों से निराश और तंग होकर कहीं को भाग जाएं या गदर मचा दें।

इस अभागे देश के कष्ट उस समय और भी बढ़ जाते हैं जब किसी प्रांत के शासन कार्य का बहुत-सा रुपया लेकर किसी को दे दिया जाता है और जब लड़ाई भिड़ाई लगती है। संक्षेप से यह है कि इस अभागे देश को सदैव बड़े दुख में रहना

पड़ता है। जो व्यक्ति रुपया देकर शासनकार्य प्राप्त करता है उसका मुख्य कार्य यह होता है कि जो रुपया उसने बहुत भारी सूद पर ऋण लेकर अपनी इच्छा के पूर्ण करने के लिए व्यय किया था उसको वसूल करे। असल बात तो यह है कि किसी प्रांत का शासनकार्य चाहे नजराना देकर प्राप्त किया गया हो या यों ही मिल गया हो प्रत्येक सूबेदार, जागीरदार और व्यापारी को किसी न किसी प्रकार हर साल बड़े बड़े नजराने किसी वजीर या सेवा किसी खोजे या महल के किसी प्रतिष्ठित और ऐसे व्यक्ति की, में पहुंचाते रहना आवश्यक है जिसका दरबार में कुछ सम्मान समझा जाता हो।

यद्यपि ये लोग अर्थात सूबेदार आदि वास्तव में नीच और ऋणी गुलाम होते हैं तथा कुछ भी संपत्ति उनके पास नहीं होती परंतु शासनकार्य मिलते ही वे बड़े बुद्धिमान और संतुष्ट अमीर बन जाते हैं ? इस प्रकार समग्र देश में दुर्दशा और तबाही फैली हुई है और जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं ये सब सूबेदार अपने अपने स्थान में छोटे छोटे बादशाह बने हुए हैं और इनके अधिकार असीम हैं। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके पास पीड़ित प्रजा जाकर पुकार मचा सके। चाहे कोई कैसा ही अत्याचार बारंबार क्यों न मचाये परंतु किसी प्रकार की सुनवाई की आशा नहीं है। यद्यपि यह बात सच है कि बादशाह ने सब प्रांतों में ऐसे लोग नियुक्त कर रखे हैं जिनका यह काम है कि जो घटनाएं हों उनकी खबर भेजते रहें परंतु उन अयोग्य संवाददाताओं में ही मेल हो जाता है, अतएव यह अत्याचार जो प्रजा पर होता है उनके रहने से कदाचित ही कभी रुकता है।

भारतवर्ष में सूबेदारों की ओर से जो बहुमूल्य नजराने समय समय पर दिए जाते हैं वे यद्यपि प्रायः उनके पदों के मूल्य का काम देते हैं पर तो भी प्रांतों का अधिकार जिस प्रकार खुलेआम और बारंबार तुर्किस्तान में बिकता रहता है उस प्रकार खुलेआम और शीघ्रातिशीघ्र भारतवर्ष में नहीं बिकता। इसके अतिरिक्त इस कारण से कि भारतवर्ष के सूबेदार तुर्किस्तान की अपेक्षा अपने पदों पर अधिक दिनों तक नियुक्त रहते हैं उस समय से जब कि गरीबी और लोभ में सूबेदारी पाते ही प्रजा पर खूब अत्याचार करने लगते हैं। पीछे उनका अत्याचार धीरे धीरे बहुत कम भी हो जाता है। इनके कम अत्याचार करने का एक यह भी कारण है कि यह खटका रहता है कि कहीं लोग देश छोड़कर किसी राजा के राज्य में न चले जाएं जैसा कि वास्तव में प्रायः होता रहता है। तुर्किस्तान की भांति ईरान में भी खुल्लमखुल्ला और शीघ्रातिशीघ्र अधिकारियों की बदली नहीं होगी, क्योंकि वहां प्रायः पिता की जगह पुत्र ही अधिकारी नियुक्त किया जाता है यह वंश परंपरा का नियम तुर्किस्तान से अच्छा है। इसका यह भी फल देखने में आया है कि ईरान के लोग तुर्किस्तान की अपेक्षा अधिक खुश हैं और शिष्टता तथा सभ्यता में भी तुर्किस्तान वालों से बढ़कर हैं, बल्कि कुछ समय ये लोग पढ़ने लिखने और उपयोगी पुस्तकों के देखने में भी

लगाते हैं। परंतु इन तीनों देशों अर्थात तुर्किस्तान, ईरान और हिंदुस्तान में 'म्याम एंड ट्वाम' अर्थात जागीरी तथा निज हक की चीजों के विषय में कोई नहीं जानता। इन बातों का जानना ही उन्नति की जड़ है। यह तीनों देश नीति में प्रायः एक ही समान हैं और एक ही प्रकार की भूलों में पड़े हुए हैं। इन भूलों का परिणाम अत्याचार, बर्बादी और कष्ट है जो अवश्य ही इनको भोगना पड़ेगा।

मान्यवर ! हमको ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिए कि हमारे यूरोपीय देशों में बादशाह जमीन के मालिक नहीं होते। यदि ऐसा होता तो इतनी बस्ती और खेती कैसे होती, ऐसे अच्छे और संतुष्ट लोगों से बसे नगर कहां होते और ऐसी सभ्य तथा फूली फली प्रजा किस प्रकार देखने में आती। यदि यह नष्टकारी अधिकार हमारे बादशाहों को भी प्राप्त होता तो उसके धन और उनकी प्रजा भक्ति तथा विश्वास की कुछ और ही अवस्था होती और वे केवल उजाड़ सुनसान देशों तथा असभ्यों और टुकड़गदाइयों के बादशाह होते।

बात यह है कि एशिया महादेश के बादशाह ईश्वरीय और प्राकृतिक नियमों से बढ़कर अनुचित अधिकार प्राप्त करने की लालसा में अंधे हो जाते हैं कि हर वस्तु को अपने ही हाथ में लेना चाहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि अंत में हर एक वस्तु उनके हाथ से निकल जाती है या यदि सदा ही ऐसा न होता हो कि सब वस्तुएं उनके हाथ से निकल जाएं परंतु तो भी इतना तो अवश्य होता है कि जितने माल और धन के एकत्र करने का उनको लोभ रहा करता है वह लोभ पूरा नहीं होता और उससे सदा वंचित रहकर वे सदैव आशा और निराशा में रहा करते हैं।

मैं फिर कहता हूं कि यदि हमारे देश की भी शासन प्रणाली ऐसी ही होती तो ऐसे रईस अमीर विद्वान, संतुष्ट नगर निवासी, उन्नत व्यापारी, बुद्धिमान कारीगर और कार्यपटु तथा उत्साही कारखानेदार कहां होते और ऐसे नगर जैसे फ्रांस में पेरिस, लायंस, टूलूज और रुयेन तथा इंग्लैंड में लंदन और अन्यान्य बड़े बड़े नगर कहां पाए जाते ? इतने कस्बे और गांव, 'कंट्री हाउस' सुंदर पर्वत और घाटियां जिनमें बड़ी सावधानी, परिश्रमशीलता और बुद्धिमानी से खेती की जाती है किस प्रकार दीख पड़ते ? और हमारी ढेर की ढेर आमदनी की जो इस परिश्रम का फल है और जो राजा और प्रजा दोनों के लिए लाभकारी है, क्या दशा होती ? बल्कि सब कुछ इस सुंदर दृश्य से उलटा होता। हमारे बड़े बड़े नगर खराब वायु के कारण रहने के योग्य न रहते और ढहकर खंडहर हो जाते, किसी को उनकी मरम्मत कराने और नष्ट होने से उनको बचाने की चिंता न होती, हरे भरे पहाड़ों को लोग छोड़कर चले जाते, मैदान इस सिरे से उस सिरे तक झाड़ झंखाड़ और घास फूंस से भर जाते, स्वास्थ्य को नष्ट और अनेक दुष्ट रोगों को उत्पन्न करनेवाली दलदलें जमीन को ढक लेतीं, यात्रियों को आराम पहुंचाने वाली विशाल सराएं जो पेरिस और लायंस के रास्ते में

बनी हुई हैं, अपनी अवस्था से गिरकर तुच्छ सराय मात्र रह जातीं और यात्रियों को गृहहीनों की तरह हर एक चीज को अपने साथ लिए क्यों फिरना पड़ता ?

एशिया महादेश की कारवा सराय बड़े भारी 'बार्न' (अनाजवर) के सदृश्य होती हैं जिसके चारों ओर हमारे 'पांटनियोफ' की तरह पक्की दीवारें बनी रहती हैं और भूमि पर पक्का फर्श होता है जिनमें सैकड़ों मनुष्य अपने घोड़ों, खच्चरों और ऊंटों के सहित दीख पड़ते हैं। गर्मी के दिनों में मकान ऐसे गर्म हो जाते हैं कि दम घुट जाता है और जाड़े के दिनों में सर्दी के मारे बहुत-से पशुओं के सांस लेने के अतिरिक्त मरने से बचने का कोई उपाय नहीं होता। कदाचित इस अवसर पर लोग यह कहते हैं कि ऐसे कई देश हैं जैसे तुर्किस्तान जहां 'म्याम और ट्वाम' के विषय में कोई नहीं जानता, परंतु फिर भी वहां के मुसलमान गद्दी पर बैठे शासन कर रहे हैं बल्कि उनका मान और प्रभाव दिन पर दिन और अधिक बढ़ता ही जाता है। इसका जवाब यह है कि यद्यपि तुर्किस्तान जैसा देश जो बहुत बड़ा है और जिसमें बहुत-से प्रदेशों की भूमि ऐसी उत्तम और उपजाऊ है कि पूरे उद्योग के बिना भी उसकी उपजाऊ शक्ति बनी रहती है अवश्य ही धनवान और शक्तिवान होना चाहिए। परंतु विचार करना चाहिए कि इतनी लंबाई, चौड़ाई और प्राकृतिक उत्तमता होने पर भी उसका धन और बल कितना कम है। यही मान लिया जाए कि वह देश ऐसा ही बसा हुआ है और उसमें ऐसी ही सावधानी से खेती होती है जैसी भूमि के अधिकार के विचार से प्रजा से होनी संभव है, तो इस दशा में बेशक यह होना चाहिए कि यह राज्य वैसा ही बड़ा और अच्छी सेनाएं नौकर रख सकता है जैसी प्राचीन समय में थीं। परंतु आजकल तो कुस्तुनतुनियां में यह हाल है कि यदि पांच-छह हजार सिपाही भरती करने हों तो तीन महीने लग जाते हैं। मैं इस देश में अच्छी तरह घूमा हूं और मैंने इसको बहुत ही दुर्दशाग्रस्त तथा उजड़ा हुआ देखा है। हां ईसाई गुलाम जो उस देश के सब भागों से यहां आते हैं उनसे इस देश को कुछ सहायता मिलती है, परंतु यदि यहां की शासन प्रणाली बहुत वर्षों तक ऐसी ही रही तो अवश्य यह अपनी भीतरी कमजोरी के कारण बर्बाद हो जाएगा। परंतु यह प्रत्यक्ष है कि अभी यह कमजोरी इसको स्थिर रखे हुए है क्योंकि किसी प्रांत का कोई शासक या कोई और व्यक्ति इतना जोर नहीं रखता कि कोई छोटी-सी भी लड़ाई कर सके, या इतने सिपाही एकत्र कर सके जो उसके लिए यथेष्ट हों। क्या आश्चर्य कि जो कुछ इस राज्य की अवनति का कारण है वही कुछ दिन के लिए उसकी स्थिरता का भी कारण है।

बात यह है कि ऐसी अवस्था में विद्रोह और उपद्रव के रोकने तथा इस प्रकार की आपदाओं के टालने के लिए वही विचित्र उपाय इस देश के योग्य जान पड़ते हैं जो पेगू देश के एक बौद्ध ने किए थे। अर्थात बहुत समय तक जमीन का बोना जोतना बंद कर दिया, देश को जंगल और उजाड़ बना दिया और सचमुच आधी

प्रजा को भूखों मार डाला परंतु इससे भी कुछ न हुआ। उसकी यह आशा और सब उपाय व्यर्थ गए क्योंकि देश कई भागों में बंट गया और थोड़े ही दिन हुए कि उस देश की राजधानी आवा नगरी पर थोड़े-से चीनी जो भागकर आए थे, अधिकार करने वाले थे।

परंतु जो हो हमको मानना चाहिए कि हमारे जीते जी संभवतया रूम राज्य बिलकुल ही बरबाद न हो जाएगा और हम प्रसन्न होंगे कि इससे अधिक उसकी बुरी अवस्था न देखें क्योंकि उसके पड़ोसी राज्यों का तो यह हाल है कि उस पर आक्रमण करना तो क्या बाहरी सहायता के बिना अपना बचाव भी वे नहीं कर सकते और बाहरी सहायता की यह दशा है कि दूर की यात्रा और आपस के द्वेष के कारण उसके पहुंचने में देर होती है। इसलिए उस सहायता को अपूर्ण और साथ ही अयोग्य समझना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि इस बात का कारण नहीं दिखाई देता कि एशिया के राज्य अच्छे कानून से लाभ क्यों नहीं उठा सकते और वहां के लोग वजीर या स्वयं बादशाह की सेवा में क्यों नहीं प्रार्थनाएं पहुंचा सकते तो मैं जानता हूं कि अवश्य ही वहां अच्छे कानून हैं और यदि उन कानूनों पर अमल किया जाए तो एशिया भी संसार के और देशों की भांति सुखी हो जाए। परंतु जबकि उन पर अमल न हो और न इस बात की संभावना हो कि यह जबरदस्ती उन पर अमल कराया जाए तो ऐसे कानून से क्या लाभ ? और जबकि प्रांतों के अफसर उसी वजीर या बादशाह के नियुक्त किए हुए हैं जो उनके विषय की नालिश सुनने की शक्ति रखता है और जबकि वास्तव में ऐसे ही अत्याचारी लोगों के अतिरिक्त अफसरों का नियुक्त करना वजीर या बादशाहों की शक्ति से भी बाहर है या अफसर वजीर या बादशाह के द्वारा नजराना देकर नियुक्त किए गए हैं तो उन की नालिश किस के पास की जाए ? या यदि मान लिया जाए कि वजीर या बादशाह की इच्छा लोगों की प्रार्थना सुनने की है भी, तो यह कैसे संभव है कि एक गरीब किसान या सताया हुआ कारीगर चार पांच सौ मील की यात्रा का कष्ट उठाकर राजधानी तक पहुंच सके ? इसके अतिरिक्त यह आफत है कि यह जबरदस्त अत्याचारी जैसा कि प्रायः हुआ है शिकायत करने वाले को रास्ते ही में खपा देते हैं या उसको अपने वश में लाकर जैसा जी में आता है वैसा व्यवहार करते हैं। यदि किसी प्रकार कोई शिकायत करने वाला बादशाह तक पहुंच भी जाता है तो सूबेदार के पक्षपाती असल बात को छिपाकर कुछ और का और ही बादशाह से कहते हैं। तात्पर्य यह कि सूबेदारों को उनके प्रांतों का संपूर्ण रूप से मालिक और स्वाधीन अधिकारी समझना चाहिए। वे आप ही जज (विचारक), आप ही पार्लियामेंट, आप ही प्रेसीडेंशल कोर्ट (प्रधान विचारालय), आप ही असेसर (अपराध का निर्णय करने वाला) और आप ही राजकर के वसूल करने वाले होते हैं। एक ईरानी ने इन अत्याचारी, लोभी, सूबेदारों, जागीरदारों और

तहसीलदारों के विषय में क्या ही अच्छा कहा है कि "ये बालू में से तेल निकालते हैं।" पर सच तो यह है कि इनकी स्त्रियों, बच्चों, सेवकों और लुटेरे साथियों के खर्च के लिए कोई भी आमदनी काफी नहीं हो सकती।

यदि कोई कहे कि हमारे फ्रांस देश के बादशाहों की खास जमीनें ऐसी ही जोती बोई जाती हैं तो इसका उत्तर यह है कि ऐसे राज्य की तुलना जहां का बादशाह केवल कुछ भूमि का मालिक है ऐसे राज्य के साथ जिसकी समग्र भूमि बादशाह की है, नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त फ्रांस के कानून ऐसे ठीक हैं कि उनका पालन करना सबसे पहले बादशाह अपना कर्तव्य समझता है और जो जमीन उसके अधिकार में है उन पर जो सत्व किसी जोतने बोनेवाले को प्राप्त है वह उसको नष्ट नहीं कर सकता और उसके कर्मचारियों तथा उसकी ओर से वसूल करने वालों पर कानून के अनुसार नालिश हो सकती है। सबसे बढ़कर बात यह है कि अत्याचार पीड़ित किसान या कारीगर निस्संदेह न्याय को पहुंच सकता है। परंतु एशिया में निस्सहायों और अत्याचार पीड़ितों के लिए कोई आश्रय नहीं है। कानून जिससे सब झगड़ों का निर्णय किया जाता है केवल अफसर का सोटा या उसकी बेठिकाने और मनमानी राय है।

मुझे शंका है कि कुछ लोग यह कहेंगे कि कुछ लाभ ऐसे हैं जो वास्तव में एक मंत्री शासन में ही मिल सकते हैं, जैसे इस अवस्था में अदालती वकील बहुत कम होते हैं, मुकदमे भी अधिक दायर नहीं होते और जो दायर होते भी हैं उनका शीघ्र फैसला हो जाता है। मैं भी मानता हूं मुकदमों के फैसले में देर और खिंचावट होना प्रत्येक राज्य के लिए बड़ा भारी ऐब है और अवश्य ही बादशाह को यह ऐब मिटाना उचित है, परंतु यह लोग चाहे कुछ ही कहा करें हम तो ईरान की इस पुरानी कहावत की बहुत बढ़कर प्रशंसा नहीं कर सकते कि जल्दी के न्याय से अन्याय हो जाता है। यह निश्चित बात है कि इस जल्दी के दूर करने का इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं है कि प्रजा के माल का हक मिटा दिया जाए। जब यह हक न रहेगा तब अनगिनत कानूनी कार्यवाहियों की आवश्यकता आप ही नहीं रहेगी, विशेषकर उन कार्यवाहियों की जो कठिन, लंबे-चौड़े और पेचदार मुकदमों में होती हैं। न बहुत-से मजिस्ट्रेटों और जजों के रखने की आवश्यकता होगी और न बहुत-से वकीलों और मुखत्यारों का ही काम पड़ेगा जिनके पेट पालने के द्वार यही मुकदमे हैं।

परंतु इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि यह औषधि रोग से भी खराब है, अर्थात यह उपाय सर्वथा हानिकारक है। इसका जो बुरा परिणाम होगा उसका अनुमान नहीं किया जा सकता और मजिस्ट्रेटों तथा जजों के बदले जिनकी नेकनीयती और ईमानदारी पर बादशाह भरोसा कर सकता है प्रजा उसी प्रकार के शासकों के अधीन जा पड़ेगी जिनका उल्लेख अभी मैंने ऊपर किया है। वास्तविक बात यह है कि एशिया महादेश

में यदि कभी न्याय होता है तो उन गरीब और छोटे दर्जे के लोगों के साथ होता है जो काजियों को रिश्वत देने के योग्य नहीं हैं, या जो कुछ देकर झूठे गवाह नहीं बना सकते जो कि सदैव बहुत सस्ते और अधिकता से मिल सकते हैं और जो कभी दंड नहीं पाते।

मैंने ऊपर जो कुछ लिखा है वह कई वर्षों के अनुभघ से लिखा है और मुझे अनेक व्यक्तियों द्वारा इन विषयों की जानकारी प्राप्त हुई है, और यह उस अनुसंधान का फल है जो हिंदुस्तान और यूरोपियन व्यापारियों से जो कि बहुत दिनों से इस देश में कारोबार करते हैं तथा भिन्न भिन्न राज्यों के एलचियों, दूतों इत्यादि से बड़े यत्न के साथ मैंने प्राप्त किया है। मैं जानता हूं कि मेरा यह कथन मेरे देश के प्रायः यात्रियों के कथन के विरुद्ध है, परंतु कदाचित उन्होंने किसी नगर में रास्ता चलते चलते दो नीच व्यक्तियों को देख लिया होगा कि काजी ने उनमें से एक या दो के तलवों पर कड़ी चोट लगवा कर जल्दी से उनको कचहरी के बाहर निकलवा दिया होगा या दोनों को 'मेबेल बाबा' (नहीं मालूम बर्नियर साहब ने यहां पर किस शब्द की दुर्दशा की है) या कुछ और ऐसे ही शब्द कहकर जो काजी लोग उस समय कहा करते हैं जब कि उनको दोनों पक्षों में से किसी पक्ष से कुछ मिलने की आशा नहीं होती, उनको जल्दी से विदा कर दिया होगा। निस्संदेह ऐसी कार्रवाई देखकर उनके दूसरे फ्रांसीसी यात्रियों को आश्चर्य हुआ और इसी से वे फ्रांस में यह कहते हुए पहुंचे कि वाह वाह क्या अच्छा और कैसा जल्दी न्याय होता है। और हे सत्य के पुतले हिंदुस्तान के काजियों ! फ्रांस के मजिस्ट्रेटों को तुम्हारा अनुकरण करना चाहिए। पर उन बेचारों को इसका ध्यान भी नहीं हुआ कि छोटे दर्जे के व्यक्ति के यदि इतनी सामर्थ्य होती कि पांच सात रुपयों से वह काजी या उसके मुहर्रिरों की जेब गर्म कर देता अथवा दो चार रुपये खर्च करके दो झूठे गवाह खड़े कर लेता तो मुकदमे को जितना बढ़ाना चाहता बढ़ा सकता।

महाशय ! मैं अत्यंत सचाई से फिर निवेदन करता हूं कि यदि जायदाद की मालकी नष्ट कर दी जाए तो अत्याचार, अन्याय और दरिद्रता इत्यादि इसके अवश्य भावी परिणाम होंगे और जमीन की जोताई बोवाई रुककर देश सुनसान तथा उजाड़ हो जाएगा। संक्षेप में यह कि इससे राजा और प्रजा दोनों की बर्बादी का रास्ता खुल जाएगा, क्योंकि मनुष्य इसी आशा पर परिश्रम करता है कि उसका फल उसको और उसकी संतान को मिले। यह आशा हर एक अच्छी और लाभ पहुंचाने वाली चीज की नींव है। यदि हम संसार के राज्यों की अवस्था पर दृष्टि डालें तो हमको मालूम हो जाएगा कि उनकी उन्नति या अवनति इसी बात के विचार या अविचार पर निर्भर रहती है। सारांश यह कि इसी विचार को काम में लाने या इसकी ओर से लापरवाही करने का फल है कि देशों की अवस्था पलटती और बदलती रहती है।

माथेलिवेयर के नाम एक पत्र

देहली और आगरा

महाशय !

मैं समझता हूं कि जिस समय मैं स्वदेश को लौट आऊंगा उस समय आप मुझ से यह प्रश्न अवश्य करेंगे कि यहां की राजधानियों—देहली और आगरा की सुंदरता और उनके निवासियों का क्या हाल है और ये शहर पेरिस के मुकाबले में कैसे हैं ? इसलिए सबसे पहले इन्हीं का वर्णन करता हूं। साथ साथ में और भी विशेष बातें लिखता जाऊंगा जिन्हें संभवतया आप भी मनोरंजक समझेंगे।

इन दोनों नगरों का सविस्तार वर्णन करने के पहले मैं यह उचित समझता हूं कि मुझे यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि जो यूरोपियन भारत में आकर रहते हैं वे प्रायः कहा करते हैं कि यहां के शहरों के मकान वैसे सुंदर नहीं होते जैसे यूरोप के होते हैं। पर वे इस बात पर जरा भी ध्यान नहीं रखते कि प्रत्येक देश में रहने के लिए मकान आदि उस देश की जलवायु के अनुसार बनाए जाते हैं। अर्थात जो इमारत लंदन या अमस्टरडम वालों के लिए उपयुक्त है वह देहली और आगरे वालों के किसी काम की नहीं है। और यदि ये शहर भारत में आ जाएं और भारत के शहर वहां जा रहें तो उनके मकान और इमारतों को तोड़-फोड़ कर एक बिलकुल नए ढंग पर बनाना आवश्यक होगा। इसमें संदेह नहीं कि यूरोप के शहर बहुत ही सुंदर और वहां की जलवायु के अनुकूल हैं पर देहली भी यहां के जलवायु के अनुसार कुछ कम सुंदर नहीं है। यहां गर्मी इतनी अधिक होती है कि स्वयं बादशाह भी अपने पैरों की रक्षा के लिए मोजे नहीं पहन सकता, केवल हलके स्लीपरों के ढंग की एक चीज पहनता है जिसे 'पापोश' कहते हैं। सिर की रक्षा के लिए एक बहुत ही सुंदर और बारीक कपड़े की हलकी-सी पगड़ी होती है और बाकी कपड़े भी प्रायः ऐसे ही हलके होते हैं। गर्मी के दिनों में घर की दीवार या सिरहाने के तकिए पर हाथ रखना कठिन होता है। छह महीने या अधिक दिनों तक प्रत्येक व्यक्ति घर के बाहर खुली हवा में बिना किसी प्रकार के साए के सोता है। साधारण लोगों का यह हाल है कि वे गलियों में पड़े रहते हैं। बड़े बड़े धनिक व्यापारी और अमीर घर के आंगन या बाग में और कभी मकान के चबूतरों पर जिन्हें वे पहले ही से पानी छिड़क कर ठंडा कर रखते हैं, सोते हैं ? अब ऐसी अवस्था में यदि पेरिस का प्रसिद्ध पहलल्ल सेंटजेक्स या सेंटडेनिस—जिनमें चारों ओर से बंद और ऊंचे ऊंचे मकान हैं—यहां आ जाएं तो मैं आपसे पूछता हूं कि क्या कोई व्यक्ति उनमें रह सकेगा या रात के समय जब गर्मी के कारण लोगों का दम घुटने लगता है उनमें कोई सो सकेगा ? मान लीजिए कि एक व्यक्ति घोड़े पर सवार घूम-फिर कर घर

में आया है, गर्मी और गर्द के मारे अधमरा हो रहा है और साधारणतया पसीनों से तर है तो यदि उसे छोटी छोटी सीढ़ियों से होते हुए मकान के चौथे या पांचवें खंड पर जाना पड़े और ऐसे कमरे में ठहरना पड़े जहां गर्मी के मारे दम घुटता हो तो कैसी दिल्लगी हो ? भारत में ऐसे अवसरों पर कुछ भी कष्ट नहीं होता यहां तो सवारी से उतरते ही थोड़ा-सा ठंडा जल और नींबू का शरबत पी लेते हैं, कपड़े उतार कर मुंह हाथ धोकर साए में पलंग पर लेट जाते हैं और दो एक नौकरों को बड़े बड़े पंखे लेकर झलने की आज्ञा देते हैं।

शहर देहली का हाल—अब मैं आपको देहली का पूरा पूरा हाल सुनाता हूं, तब आप स्वयं समझ सकेंगे कि यह शहर सुंदर है या नहीं। प्रायः चलीस वर्ष हुए वर्तमान बादशाह के पिता शाहजहां ने अपने स्मृति चिह्न के लिए पुरानी देहली के निकट एक नया शहर बसाया और अपने नाम के अनुसार इस शहर का नाम शाहजहानाबाद व जहानाबाद रखा। इसके राजधानी बनाए जाने का कारण यह प्रकट किया गया कि गरमी की अधिकता के कारण आगरा बादशाह के रहने योग्य नहीं है। पर इसके बनाने के लिए सब चीजें पुरानी देहली के आसपास के खंडहरों में से ली गई हैं इससे विदेशी आदमियों को पुराने और नए शहर में कोई भेद नहीं मालूम होता। भारत में लोग इसे जहानाबाद ही कहते हैं, पर सरलता के लिए मैं भी विदेशियों की तरह इन्हें एक ही कहूंगा।

शहर देहली चौरस जमीन पर जमुना के किनारे जो ल्वायर नदी के समान है—चंदाकार बसा हुआ है। नदी को छोड़कर—जिस पर नावों का पुल बंधा है—बाकी तीनों ओर रक्षा के लिए पक्की शहरपनाह बनी हुई है। अगर इन बुरजों पर से जो शहरपनाह के किनारे सौ सौ कदमों पर बने हुए हैं या उस कच्चे पुश्ते पर से, जो चार या पांच फ्रांसीसी फुट ऊंचा है, देखा जाए तो यह शहरपनाह बिलकुल ही अपूर्ण है, क्योंकि न तो इसके निकट कोई खाई है और न कोई दूसरा रक्षा का उपाय है।

यह शहरपनाह नगर और किले दोनों को घेरे हुए है तथा उसकी लंबाई इतनी अधिक नहीं है जितनी लोग समझते हैं क्योंकि तीन घंटे में मैं उसके चारों ओर फिर आया हूं। मेरे घोड़े की चाल एक फ्रांसीसी लीग या तीन मील प्रति घंटे से अधिक न थी। मैं इसमें शहर के आसपास की उन बस्तियों को नहीं मिलाता जो बहुत दूर तक लाहौरी दरवाजे की ओर चली गई हैं और न पुरानी देहली के उस बचे हुए बड़े भाग को, और न उन तीन-चार बस्तियों को मिलाता हूं जो शहर के पास हैं। क्योंकि इन्हें भी उसी में मिला लेने से शहर की लंबाई इतनी बढ़ जाती है कि यदि शहर के बीचों-बीच एक सीधी रेखा खींची जाए तो वह साढ़े चार मील से भी अधिक होगी। यद्यपि बाग आदि के बीच में आ जाने के कारण मैं नहीं कह सकता कि नगर का ठीक-ठीक व्यास कितना है पर फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वह बहुत

ही अधिक है।

किला जिसमें शाही महलसरा और मकान हैं और जिनका वर्णन मैं आगे चलकर करूंगा, अर्द्ध गोलाकार-सा है। इसके सामने जमुना नदी बहती है। किले की दीवार और जमुना नदी के बीच में एक बड़ा रेतीला मैदान है जिसमें हाथियों की लड़ाई दिखाई जाती है और अमीरों, सरदारों और हिंदू राजाओं की फौज बादशाह को देखने के लिए खड़ी की जाती है जिन्हें बादशाह महल के झरोखों से देखा करता है।

किले की दीवार अपने पुराने ढंग के गोल बुरजों के कारण शहरपनाह से मिलती-जुलती है। यह ईंट और लाल पत्थर की बनी हुई है जो संगमरमर से मिलता-जुलता होता है, इसीलिए शहरपनाह की अपेक्षा यह अधिक सुंदर है। यह शहरपनाह से ऊंची और सुदृढ़ भी है। इस पर छोटी छोटी तोपें चढ़ी हुई हैं जिनका मुंह नगर की ओर है, नदी की ओर को छोड़कर किले के सब ओर पक्की और गहरी खाई बनी हुई है। इसके बांध भी मजबूत पत्थर के बने हैं, यह खाई हमेशा पानी से भरी रहती है और इसमें मछलियां बहुत अधिकता से हैं यद्यपि यह इमारत देखने में बहुत दृढ़ मालूम होती है पर वास्तव में यह दृढ़ नहीं है, और मेरी समझ में एक साधारण तोपखाना इसे गिरा सकता है।

इस खाई के निकट एक बड़ा बाग है जिसमें बहुत सुंदर और अच्छे फूल होते हैं। किले की लाल रंग की दीवार के सामने होने के कारण यह बाग बहुत ही सुंदर मालूम होता है। इसके सामने एक बादशाही चौक है जिसके एक ओर किले का दरवाजा है और दूसरी ओर शहर के दो बड़े बाजार आकर समाप्त हो जाते हैं। जो नौकर राजे प्रति सप्ताह यहां चौकी देने आते हैं उनके खेमे आदि उसी मैदान में लगाए जाते हैं क्योंकि ये लोग जो एक प्रकार के छोटे छोटे बादशाह होते हैं, किले में रहना अस्वीकार करते हैं और इसीलिए किले के अंदर उमरा और मनसबदारों का पहरा होता है। इस जगह सवेरे बादशाही घोड़े फिराए जाते हैं जो इसके निकट ही एक बड़े अस्तबल में रहते हैं। इसी स्थान पर फौज का मीरबख्शी नए सवारों के घोड़ों को देखता-भालता है, और तुर्की या और दूसरे अच्छे मजबूत घोड़ों की रान पर बादशाही तथा उस अमीर का निशान लगवा देता है जिसकी फौज में वे नौकर हों। इससे यह लाभ होता है कि पेश करने के समय नए सवार इन्हीं घोड़ों को लेकर पेश नहीं कर सकते। इसी स्थान पर तरह तरह की चीजों की बिक्री के लिए गुजरी लगती है। इसमें पेरिस के पोंटनियों की तरह भानमती और हिंदू तथा मुसलमान नजूमी आदि इकट्ठे होते हैं। ये झूठे ज्योतिषी धूप में एक मैला कालीन का टुकड़ा बिछाए बैठे रहते हैं। इनके सामने एक बड़ी-सी किताब खुली पड़ी रहती है जिसमें ग्रहों के चित्र बने होते हैं और सामने रमल फेंकने का पांसा होता है। यों ही ये लोग राह चलतों को धोखा देते और फुसलाते हैं और लोग उन्हें विद्वान समझ कर उनसे प्रश्न करते हैं। एक पैसा लेकर ये लोग उस बेचारे को उसका भविष्य बतला देते हैं, और

उनके हाथ और मुंह को खूब अच्छी तरह देखभाल कर उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि वास्तव में वे कुछ हिसाब लगा रहे हैं। किसी काम के आरंभ करने के लिए समय पूछने पर ये लोग मुहूर्त बतलाते हैं। नासमझ स्त्रियां सिर से पैर तक सफेद चादर ओढ़कर उनके निकट खड़ी रहती हैं प्रायः अपनी सब बातों के संबंध में उनसे कुछ न कुछ पूछा करती हैं और अपना सारा हाल उन्हें सुना देती हैं। ठीक वैसे ही जैसे फ्रांस में कोई स्त्री पादरी के सामने क्षमा किए जाने के लिए अपने सारे दोष सुनाती है। इन मूर्खों को पूर्ण रूप से यह विश्वास होता है कि ग्रहों के फलों को बदल देना इन्हीं ज्योतिषियों के हाथ में है। इनमें सबसे विचित्र एक दोगला पुर्तगीज था, जो गोवा से भाग आया था। यह भी कालीन बिछाए हुए बड़े ही शांत भाव से बैठा रहता था। इसके पास बहुत से लोग आया करते थे। यह व्यक्ति कुछ भी लिखा पढ़ा नहीं था। इसके पास ज्योतिष के यंत्रों के स्थान में केवल एक पुराना जहाजी दिग्दर्शक यंत्र या कुतुबनुमा था, और ज्योतिष की पुस्तकों के स्थान पर रोमन कैथिलकवालों की नमाज की दो पुरानी सचित्र पुस्तकें थीं। यह कहता कि यूरोप में ग्रहों के चित्र ऐसे ही होते हैं। एक दिन जैस्विट वर्ग के पादरी फादर बुजी ने उसे इस प्रकार देखकर उससे प्रश्न किया कि तू यह क्या करता है। उसने निर्लज्जता से उत्तर दिया—ऐसे मूर्खों का ज्योतिषी भी ऐसा ही होना चाहिए ? यह हाल उन गरीब ज्योतिषियों का है जो बाजारों में बैठे दिखाई देते हैं, पर जो ज्योतिषी अमीरों के पास जाते हैं वे बहुत ही विद्वान समझे जाते हैं और यों ही वे लोग धनवान बन जाते हैं। सारा एशिया इस व्यर्थ के वहम में फंसा हुआ है। स्वयं बादशाह तथा और बड़े बड़े अमीर इन धोखेबाज भविष्यवक्ताओं को लंबे चौड़े वेतन देते हैं, और बिना इनकी सलाह के साधारण काम भी आरंभ नहीं करते मानो यह नजूमी आकाश की—भविष्य की सारी बात जानते हैं। प्रत्येक काम आरंभ करने के लिए उत्तम समय नियत करते और कुरान के पृष्ठ उलट पुलट कर सब प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

उन दो बड़े बाजारों की चौड़ाई जिनका वर्णन मैंने अभी किया है और जो चांदनी चौक में आकर मिलते हैं पच्चीस या तीस कदम है। जहां तक दृष्टि पहुंचती है वे सीधे ही चले जाते हैं। इनमें से जो बाजार लाहौरी दरवाजे की ओर गया है वह बहुत ही लंबा है। दोनों रास्तों पर मकान तथा इमारतें समान ही हैं। पेरिस के प्रसिद्ध बाजार पैलेस रायल की तरह इन बाजारों के दोनों ओर की दूकानें महराबदार हैं पर इनमें भेद इतना ही है कि एक तो यह ईंटों का बना हुआ है और दूसरे यह एक ही खंड का है। इन दूकानों की छतें खास चबूतरों का काम देती हैं। एक भेद और है, पैलेस रायल की दूकानों के बरामदे ऐसे बने हैं कि इनमें प्रवेश करने पर मनुष्य बाजार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा सकता है, पर यहां की दूकानों के बरामदे अलग अलग होते हैं और उनके बीच में दीवारें बनी होती हैं। दिन के समय यहीं बैठकर व्यापारी और सर्राफ अपना अपना काम करते हैं और ग्राहकों

को माल दिखाते हैं। इन बरामदों के पीछे असबाब आदि ररखने के लिए कोठियां बनी हुई हैं जिनमें रात के समय सारा असबाव रख दिया जाता है। इनके ऊपर व्यापारियों के रहने के लिए मकान बने हुए हैं जो बाजार में से देखने पर बहुत ही सुंदर मालूम होते हैं। ये मकान हवादार होते हैं और धूल बिलकुल नहीं आती। यद्यपि शहर के भिन्न भिन्न भागों में भी दूकानों के ऊपर इसी प्रकार के मकान होते हैं पर वे इतने छोटे और नीचे होते हैं कि बाजार में से भली भांति दिखाई भी नहीं देते। अधिक व्यापारी दूकानों पर नहीं सोते वरन रात को काम कर चुकने पर अपने अपने मकानों को जो शहर में होते हैं चले जाते हैं।

इनके अतिरिक्त पांच और बाजार हैं यद्यपि इनकी बनावट आदि वैसी ही है पर वे इतने लंबे और सीधे नहीं हैं। और भी बहुत-से छोटे-बड़े बाजार हैं जो एक दूसरे को काटते हुए चले जाते हैं। यद्यपि उनके सामने वाली इमारत महराब के ढंग की है तथापि वे ऐसे लोगों के हाथ से बने हुए होने के कारण जिन्हें इमारत के सुडौल होने का कोई ध्यान ही नहीं था, इतने सुंदर, चौड़े और सीधे नहीं हैं जितने वह बाजार हैं जिनका वर्णन मैंने अभी ऊपर किया है।

शहर के गली कूचों में मनसबदारों, हाकिमों और धनिक व्यापारियों के मकान हैं और उनमें से भी बहुधा अच्छे और सुंदर हैं पर ईंट या पत्थर के बने मकान बहुत ही कम और कच्चे या घास फूस के बने अधिक हैं। इतना होने पर भी वे सुंदर और हवादार हैं। बहुत-से मकानों में चौक और बाग होते हैं। जिनमें सब प्रकार की सुख सामग्री वर्तमान रहती है। जो मकान घास फूस के बने होते हैं वहां भी अच्छी सफेदी की हुई होती है। इन अनगिनत छोटे छोटे घास फूस के मकानों में—जो प्रायः बड़े बड़े मकानों के आसपास और उनसे मिले हुए होते हैं—साधारण खिदमतगार और नानबाई आदि जो बादशाह के लश्कर के साथ जाया करते हैं, रहते हैं। इन्हीं के कारण नगर में प्रायः आग लगती है। गत वर्ष तीन बार ऐसी आग लगी कि तेज हवा के कारण जो यहां गरमी के दिनों में चला करती है कोई साठ हजार छप्परों पर पानी फिर गया और कुछ ऊंट, घोड़े तथा पर्दे वाली स्त्रियां भी इसी में जलभुन कर राख हो गईं। ये स्त्रियां कुछ ऐसी लजीली होती हैं कि पर पुरुष के सामने मुंह छिपाने के सिवा इनसे कुछ होता ही नहीं। इसीलिए जो स्त्रियां आग लगने के कारण जल मरी थीं उनमें इतना साहस नहीं था कि भागकर बच जाएं। इन कच्चे और घास फूस के मकानों के कारण ही मैं समझता हूं कि देहली मानो कुछ देहातों का समूह या फौज की छावनी है। पर भेद इतना है कि यहां कुछ थोड़ा-सा सामान आराम का भी है।

अमीरों के मकान प्रायः नदी के किनारे और शहरों के बाहर हैं। इस गरम देश में वही मकान अधिक अच्छा समझा जाता है जिसमें सब प्रकार का आराम मिले और चारों ओर से विशेषकर उत्तर से अच्छी तरह हवा आती हो। यहां वही

मकान अच्छे कहे जाते हैं जिनमें एक अच्छा बाग, पेड़ और हौज हो और दालान के अंदर या दरवाजे में छोटे छोटे फव्वारे और तहखाने हों। इन तहखानों में बड़े बड़े पंखे लगे होते हैं और गरमी के दिनों में जब संध्या को दो पहर से चार या पांच बजे तक हवा ऐसी गरम होती है कि सांस नहीं लिया जाता, यहां बहुत ही आराम मिलता है। पर तहखानों की अपेक्षा लोग खशखानों को अधिक पसंद करते हैं। यह छोटे छोटे साफ कमरे होते हैं जो एक प्रकार की खुशबूदार घास की जड़ों से बाग में हौज के निकट इस अभिप्राय से बनाए जाते हैं कि नौकर चमड़े की डोलचियों में भर भर कर अच्छी तरह उन पर पानी छिड़कें और उन्हें तर कर सकें। जिस मकान के चारों ओर ऊंचे ऊंचे दालान हों, चारों ओर की हवा उसमें आती हो और वे किसी बाग के अंदर बने हों तो वे बहुत अधिक पसंद किए जाते हैं। वास्तव में कोई बढ़िया मकान ऐसा नहीं है जिसमें घरवालों के सोने के लिए आंगन न हो। वर्षा या आंधी के समय या सवेरे जब ठंडी हवा चलती या ओस पड़ने लगती है तो पलंग को खिसका कर अंदर कर लेते हैं। वह ओस यद्यपि अधिक नहीं होती तो भी बदन में बैठ जाती है जिससे कभी कभी हाथ-पांव ऐंठ जाते हैं।

अच्छे घरों में बैठने के लिए फर्श के ऊपर रुई का एक भारी और चार अंगल मोटा गद्दा बिछा रहता है जिस पर गरमी के दिनों में अच्छा कपड़ा (चांदनी) और जाड़ों के दिनों में रेशमी कालीन बिछाया जाता है। इस दीवान खाने में अच्छे स्थान पर एक या दो छोटे गद्दे पड़े रहते हैं जिन पर रेशम के हल्के काम की सुज़नी जिसमें सुनहरी और रुपहली जरी की धारियां होती हैं पड़ी रहती हैं। इस पर मालिक या और प्रतिष्ठित लोग जो उनसे मिलने आते हैं बैठते हैं। प्रत्येक गद्दे पर कमखाब का एक तकिया पड़ा रहता है और इसके अतिरिक्त और लोगों के लिए दालान में इधर-उधर कमखाब, मखमली और फूलदार रेशमी तकिए पड़े होते हैं। दालान में चारों ओर जमीन से डेढ़ या दो गज ऊंचे भांति भांति के सुंदर ताक बने होते हैं जिनमें अच्छे अच्छे चीनी के बर्तन और गुलदान रखे जाते हैं। दालान की छत पर बहुत-से बेल-बूटे बने होते हैं और उन पर मुलम्मा किया होता है पर मनुष्य या किसी और जीवित पदार्थ की तस्वीर उन पर नहीं होती क्योंकि यह बात मुसलमानी धर्म में वर्जित है।

भारत के एक अच्छे मकान का यह प्रायः पूरा पूरा वर्णन है और देहली में ऐसे बहुत-से मकान हैं। मैं समझता हूं कि भारतवर्ष की राजधानी के मकान—चाहे यूरोप के मकानों से उनकी समानता न हो—किसी प्रकार सुंदरता से खाली नहीं हैं। पर हां, जो चीजें यूरोप के शहरों की मुख्य सुंदरता का कारण हैं वह बड़ी बड़ी दूकानें जो देहली में नहीं हैं। यह शहर एक बड़े और जबर्दस्त बादशाह के दरबार का स्थान है जहां पर बहुमूल्य चीजों की अच्छी दूकानों का होना एक आवश्यक बात है पर फिर भी यहां कोई ऐसा बाजार नहीं है जैसा हमारे यहां सेंट डेनिस है और जिसके समान का बाजार कदाचित एशिया भर में न होगा।

बहुमूल्य वस्तुएं यहां प्रायः मालखानों में रखी रहती हैं और इंग्लैंड की तरह भड़कदार और बहुमूल्य असबाबों से दूकानें कदाचित ही कभी सजाई जाती हों। यदि किसी एक दूकान में पश्मीना, कमखाब, जरीदार मंदीलें और रेशमी कपड़े आदि हैं तो पास ही कोई पच्चीस दूकानों में चावल, दाल, घी, तेल और गेहूं आदि अनेक प्रकार के अनाज जो न केवल हिंदुओं के ही खाद्य पदार्थ हैं जो मांस कभी नहीं खाते वरन गरीब मुसलमान और बहुत-से सिपाही भी यही खाते हैं, बोरियों में भरे हुए रखे होते हैं। हां एक बाजार ऐसा है जिसमें केवल मेवा बिकता है। गर्मी के दिनों में इन दूकानों में ईरान, बलख बुखारा, और समरकंद के मेवे बादाम, पिस्ता, किशमिश, बेर, शफतालू और अनेक प्रकार के सूखे फल और जाड़े के दिनों में रुई की तहों में लपेटे हुए बढ़िया ताजे अंगूर जो उन देशों से आते हैं और नाशपाती तथा कई तरह के अच्छे सेब और सरदे जो जाड़े भर बिकते रहते हैं, भरे होते हैं। ये मेवे बहुत महंगे मिलते हैं, इसका अंदाज आप इसी से लगा सकते हैं कि एक सरदा पौने चार रुपये का बिकता है और इतना महंगा होने पर भी यहां के लोग और मेवों की अपेक्षा इसे अधिक पसंद करते हैं। अमीर लोग इसे बहुत अधिक खरीदते हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे आका के यहां सबेरे भोजन के समय प्रायः पचास रुपये के मेवे आते थे।

गर्मी के दिनों में देशी खरबूजे बहुत सस्ते मिलते हैं पर ये कुछ अधिक स्वादिष्ट नहीं होते। हां वे खरबूजे जिनका बीज ईरान से मंगवाया और यहां बोया जाता है (और प्रायः यहां के अमीर लोग ऐसा ही करते हैं) बहुत अच्छे होते हैं। इतना होने पर भी अच्छे और स्वादिष्ट खरबूजे यहां बहुत कम मिलते हैं क्योंकि यहां की जमीन उनके अनुकूल नहीं है और उसके बीज भी एक वर्ष बाद बिगड़ जाते हैं।

गर्मी के दिनों में आम यहां बहुत सस्ते और अधिकता से मिलते हैं पर देहली में जो आम पैदा होता है वह न तो कुछ ऐसा अच्छा ही होता है और न बुरा। सबसे अच्छा आम बंगाल, गोलकुंडा और गोवा से आता है जो वास्तव में बहुत अच्छा होता है और जिसकी बराबरी कोई मिठाई नहीं कर सकती। तरबूज यहां बारहो मास रहता है, पर जो तरबूज देहली में पैदा होता है वह नरम और फीका होता है, उसकी रंगत भी अच्छी नहीं होती। पर अमीरों के यहां कभी कभी बहुत स्वादिष्ट तरबूज देखने में आते हैं जो इसके लिए बहुत धन व्यय करके और बाहर से बीज मंगवाकर बड़ी सावधानी से पेड़ लगवाते हैं।

शहर में हलवाइयों की दूकानें अधिकता से हैं पर मिठाई उनमें अच्छी नहीं बनती। उन पर गर्द पड़ी होती है और मक्खियां भिनभिनाया करती हैं। नानबाई भी बहुत हैं पर यहां के तंदूर हमारे यहां के तंदूरों से बहुत ही भिन्न और बहुत बड़े होते हैं और इसी कारण न तो रोटी अच्छी होती है और न भली-भांति सेकी हुई पर जो रोटी किले में बिकती है वह कुछ अच्छी होती है। अमीर लोग तो अपने

मकानों पर ही रोटियां बनवा लेते हैं। उनमें दूध, मक्खन और अंडा डाला जाता है इससे वह और भी अधिक स्वादिष्ट हो जाती है। यद्यपि वह बहुत फूल जाती है पर स्वाद इसका जली हुई रोटी का-सा होता है। यह रोटी साधारण केक (विलायती चपाती) की तरह होती है और पेरिस के गेतिस (एक प्रकार की रोटी) आदि-सी स्वादिष्ट नहीं होती। बाजार में बहुत तरह का कबाब और कलिया बिकता है पर मुझे विश्वास नहीं कि वह किसी अच्छे जानवर का मांस हो, क्योंकि मैं जानता हूं कि कभी कभी यह मांस ऊंट, घोड़े या बीमार पशुओं का भी होता है और इसीलिए जो चीजें अपने मकान पर न बनवाई जाएं वे कभी खाने और व्यवहार में लाने के योग्य नहीं होतीं। देहली की प्रत्येक गलियों में मांस बिकता है पर कभी कभी बकरी के धोखे में भेड़ का मांस भी दे देते हैं। इसीलिए इन सबों को अच्छी तरह देखभाल कर लेना और खाना चाहिए। यद्यपि बकरी वा अन्य ऐसे पशुओं के मांस का स्वाद बुरा नहीं होता पर यह कुछ गर्म होता है, बादी करता है, और देर में पचता है। बकरी के बच्चे का मांस सबसे अच्छा होता है पर वह बाजार में नहीं मिलता इससे जीवित बच्चा खरीदना पड़ता है। बड़ी कठिनता तो यहां यह है कि सुबह का मांस शाम तक नहीं ठहरता और दूसरी यह कि जानवर दुबले मिलते हैं जिससे उनके मांस का स्वाद बिगड़ जाता है। बाजार में कसाइयों की दूकानों पर भी दुबली बकरियों का मांस मिलता है जो बहुधा कठोर होता है पर मैं इन सब कष्टों से बचा हुआ हूं कारण यह है कि मैं इन लोगों के ढंगों से परिचित हूं और इसीलिए अपने खाने का मूल्य बादशाही बावर्चीखाने के दारोगा के पास किले में अपने नौकर के हाथ भेज देता हूं और वह मुझे खुशी से अच्छा भोजन भेज देता है। यद्यपि उन चीजों पर उनकी लागत बहुत ही कम आती है पर मैं उन्हें मूल्य कुछ अधिक देता हूं। मैंने एक दिन अपने आका से इस चोरी और चालाकी के विषय में कहा भी, जिस पर वह बहुत हंसा। (फ्रांस में) मैं 8 आने में बादशाही भोजन कर लिया करता था, पर यहां यदि ऐसी चालाकी न करता तो कदाचित 375/- रु. में जो मुझे मेरे आका की सरकार से मिलते हैं मेरा गुजारा कभी न होता और मैं भूखों मर जाता।

इस देश के लोगों में दया अधिक है और इसी कारण मुर्गी बाजार में नहीं दिखाई देती पर नहीं मालूम यह दया उन मनुष्यों के भाग्य में क्यों नहीं होती जो जनाने मकानों के लिए खोजा बनाते हैं। चिड़िया बाजार में अनेक प्रकार की अच्छी और सस्ती मिलती हैं। यहां एक प्रकार की छोटी मुर्गी जिसका चमड़ा काला होता है और जिसका नाम मैंने 'जिसी' रखा है मिलती है। कबूतर भी मिलते हैं पर बच्चे नहीं मिलते। इसका कारण यही है कि यहां के लोग बच्चों को मारना बड़ी निष्ठुरता का कार्य समझते हैं। तीतर भी मिलते हैं पर हमारे देश के तीतरों से छोटे होते हैं। लेकिन जाल से फंसाकर और पिंजरों में बंद करके लाए जाने के कारण वे ऐसे अच्छे नहीं होते जैसे और अनेक पशु। यही अवस्था यहां मुरगाबियों और खरगोशों की

होती है जो जीवित पकड़े जाकर पिंजरों में भरे हुए शहर में आते हैं। देहली के मछुए अपने कार्य में कुछ ऐसे चतुर नहीं हैं पर फिर भी मछलियां कभी कभी बाजारों में अच्छी बिकती हैं विशेष कर रोहू और सिधाड़ी जो अपने यहां की कार्प के समान होती है, अच्छी होती है। जाड़े के दिनों में मछुए कम मछलियां पकड़ते हैं कारण यह कि यहां के लोग सर्दी से उतना ही डरते हैं जितना हम लोग गर्मी से। जाड़े के दिनों में यदि कोई मछली बाजार में दिखलाई दे तो ख्वाजासरा उन्हें स्वयं खरीद लेते हैं, वह लोग इसे बहुत पसंद करते हैं पर इसका कोई विशेष कारण मुझे अब तक मालूम नहीं हुआ। अमीर लोग अपने कोड़ों के बल पर जो उनके दरवाजों पर इसी कार्य के लिए लटकते रहते हैं, जाड़े के दिनों में प्रायः मछली पकड़वाया करते हैं।

अब आप ही कहें कि क्या कोई पेरिस का भला आदमी अपनी इच्छा और खुशी से यहां आएगा। इसमें संदेह नहीं कि यहां के धनी पात्रों को हमेशा अच्छी चीजें मिला करती हैं पर यह केवल उनके रुपये और बहुत-से नौकरों के ही बल से मिलती हैं। देहली में साधारण स्थिति के लोग नहीं रहते, बड़े बड़े अमीर, उमरा और रईस या बिलकुल ही कम हैसियत के लोग जिनका जीवन कष्ट से बीतता है, रहते हैं। यद्यपि मुझे यहां अच्छा वेतन मिलता है और मैं व्यय भी करता हूं पर बहुधा मुझे अच्छा भोजन नहीं मिलता। और जो मिलता भी है वह बहुत ही रद्दी, जो अमीर लोगों के नापसंद होने के कारण बच रहता है। मदिरा जो हमारे यहां भोजन का प्रधान अंग है, देहली की किसी दूकान में नहीं मिलती। जो मदिरा यहां देशी अंगूर की बन सकती है वह भी नहीं मिलती क्योंकि मुसलमानों के कुरान और हिंदुओं के शास्त्रों में उसका पीना वर्जित है। अहमदाबाद और गोलकुंडा में मुझे कुछ डच और अंग्रेजों के यहां अच्छी मदिरा पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मुगल राज्य में भी जो मदिरा शीराज व कनारी टापू से आती है, अच्छी होती है। शीराजी मदिरा ईरान से खुश्की के रास्ते 'बंदर अब्बास' और वहां से जहाज के द्वारा सूरत में पहुंचती और वहां से देहली आती है, शीराज से देहली तक मदिरा आने में 46 दिन लगते हैं। किनारी टापू से मदिरा सूरत होती हुई देहली आती है। पर यह दोनों मदिराएं इतनी महंगी होती हैं कि इनका मूल्य ही इन्हें बदमजा कर देता है। एक शीशी जो तीन अंग्रेजी बोतलों के बराबर होती है 15 से 16 रुपये की आती है। जो मदिरा इस देश में बनती है और जिसे यहां के लोग 'अर्क' कहते हैं बहुत ही तेज होती है। यह गुड़ के भभके में खींचकर बनाई जाती है और बाजार में नहीं बिकने पाती और धर्म विरुद्ध होने के कारण अंग्रेजों व ईसाइयों के अतिरिक्त इसे कोई भी नहीं पी सकता। यह अर्क ठीक वैसा ही है जैसा पोलैंड के लोग अनाज से बनाते हैं और जिसके जरा-सा अधिक पीने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है। समझदार आदमी या तो सादा पानी पीएगा या नींबू का शरबत जो यहां सहज ही में मिल जाता है और

हानिकारक भी नहीं होता। इस गर्म देश में लोगों को मदिरा की आवश्यकता भी नहीं होती। मदिरा न पीने और बराबर पसीने आते रहने के कारण यहां के लोग सर्दी, छूतिया बुखार, पीठ का दर्द आदि के रोग से बचे रहते हैं और जो ऐसे रोगी यहां आते हैं वह शीघ्र ही अच्छे भी हो जाते हैं और जिसकी परीक्षा मैं स्वयं कर चुका हूं। यहां के मर्दों को यह बीमारियां बहुत कम होती हैं जिनकी हमारे देश में प्रधानता है और यदि अभाग्यवश कभी हो भी जाती हैं तो वह इतनी भयंकर नहीं होतीं जैसी हमारे यहां। इस देश के लोग प्रायः स्वस्थ रहने पर भी उतने साहसी नहीं होते जैसे हमारे देशभाई। गर्मी की अधिकता के कारण यहां के लोग बहुत सुस्त हो जाते हैं और यह गर्मी विदेश से आए हुए लोगों पर तो और भी बुरी तरह अपना प्रभाव डालती है।

देहली में शिल्प के कारखाने बिलकुल ही नहीं हैं, पर इससे यह न समझना चाहिए कि यहां के लोगों को कुछ आता ही नहीं, क्योंकि यहां के प्रत्येक प्रांत में अच्छे अच्छे कारीगरों की बनाई बहुत ही सुंदर चीजें दिखलाई पड़ती हैं और जो बिना किसी प्रकार की मशीन वा कल के बनाई जाती हैं और कदाचित ऐसे लोगों के हाथ की बनी होती हैं जिन्होंने कभी किसी से इसकी शिक्षा भी नहीं पाई। कभी कभी तो यह लोग यूरोप की बनी वस्तुओं की ऐसी नकल करते हैं कि असल और नकल में कुछ भी भेद नहीं मालूम होता। शिकारी और बंदूकें बहुत ही सुंदर और अच्छी बनती हैं और सोने के गहने तो ऐसे अच्छे बनते हैं कि कोई यूरोपियन सुनार उनका मुकाबला नहीं कर सकता।

चित्र बनाने और नक्काशी करने का काम तो यहां ऐसा उत्तम और बारीक होता है कि जिसको देखकर मैं चकित हो गया। अकबर बादशाह की एक बड़ी लड़ाई की तस्वीर एक चित्रकार ने सात वर्ष में एक ढाल पर बनाई थी, उसे देखकर मैं हैरान हो गया। पर हिंदुस्तानी चित्रकार मुंह वा किसी और अंग पर उन भावों को नहीं झलका सकते जो उस समय चित्रित के मन में होते हैं। पर यदि इन्हें पूर्ण रूप से शिक्षा दी जाए तो यह दोष मिट सकता है और इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि भारत में बहुत अच्छी चीजों का न होना यहां के लोगों की अयोग्यता के कारण नहीं वरन शिक्षा के अभाव से है और यह भी प्रकट है कि यदि इन लोगों को उत्साह दिलाया जाए तो बहुत-से अच्छे अच्छे काम यहां हो सकते हैं। कारीगरों को यहां उनके कामों का उचित पुरस्कार नहीं मिलता वरन उल्टे उनसे सख्ती का बर्ताव किया जाता है। धनी लोग सब चीजें सस्ते मूल्य पर लेना चाहते हैं। जब कभी किसी अमीर को कारीगर की आवश्यकता होती है तो वह उन्हें बाजार से पकड़वा मंगाता है और उस बेचारे से जबर्दस्ती काम लिया जाता है और चीज तैयार हो जाने पर उसकी योग्यतानुसार नहीं किंतु अपनी इच्छानुसार उसे मजदूरी देता है और कारीगर कोड़ों की मार खाने से बच जाने पर ही अपना अहोभाग्य समझता है। तब ऐसी अवस्था

में कब संभव है कि कोई कारीगर अच्छी और सुंदर चीजें बनाने की चेष्टा करे। उन्हें तो नाम पैदा करने की अपेक्षा अपनी जान की फिक्र करनी पड़ती है। वह लोग यही समझते हैं कि किसी तरह जल्दी पीछा छूटे और इतनी ही मजदूरी मिल जाए जिससे उसका और उसके बाल-बच्चों का काम चल जाए और इसीलिए वही कारीगर कुछ अधिक नाम पैदा कर सकता है और अपनी योग्यता दिखला सकता है जो बादशाह या किसी और अमीर का नौकर है और केवल अपने स्वामी ही के लिए चीजें बनाता है।

किले के अंदर के मकानों का वर्णन—किले में शाही महलसरा और अनेक और महल हैं, लेकिन इससे आप यह न समझें कि यह फ्रांस के ल्वायर या स्पेन के स्क्यूलियर की भांति है क्योंकि यहां की कोई वस्तु यूरोप की इमारतों से नहीं मिलती और जैसा मैंने ऊपर वर्णन किया है उनमें समानता भी नहीं होनी चाहिए क्योंकि ये इमारतें इस देश की जलवायु के अनुसार ही सुंदर और शानदार हैं।

हथिया पोल दरवाजा—किले के दरवाजे पर कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसका वर्णन किया जाए। हां उसके दोनों ओर दो बड़े बड़े पत्थर के हाथी बनाकर खड़े किए गए हैं जिनमें से एक पर चित्तौड़ के सुविख्यात राजा जयमल और दूसरी पर उनके भाई फत्ता की मूर्ति है। यह दोनों भाई बड़े वीर और पराक्रमी थे, इनकी माता इनसे भी अधिक बहादुर थी। यह दोनों भाई अकबर से इतनी बहादुरी से लड़े थे कि इनका नाम प्रलय तक संसार में अमर रहेगा। जिस समय शहंशाह अकबर ने इनके शहर को चारों ओर से घेर लिया तो इन्होंने बड़ी वीरता से उनका सामना किया और इतने बड़े बादशाह के समाने पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा उन्होंने अपनी तथा माता की जानें दे देना उत्तम समझा और यही कारण है कि उनके दुश्मनों ने भी उनकी मूर्तियों को चिह्नस्वरूप रखना उचित समझा। वह दोनों हाथी जिन पर यह दोनों वीर बैठे हैं बड़े शानदार हैं उन्हें देखकर मेरे दिल में उनकी वीरता की ऐसी छाप पड़ी कि जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

इस फाटक से होकर किले में जाने पर आगे एक लंबी-चौड़ी सड़क मिलती है जिसके बीचों बीच पानी की नहर बहती है और उसके दोनों ओर 5 या 6 फ्रांसीसी फुट ऊंचा और प्रायः चार फीट चौड़ा चबूतरा पेरिस के पौंट नीयोफ की भांति बना हुआ है और जिसको छोड़कर दोनों ओर बराबर महराबदार दालान बनते चले गए हैं जिनमें भिन्न भिन्न विभागों के दारोगा और छोटी श्रेणी के ओहदेदार बैठे हुए अपना काम करते रहते हैं और वह मनसबदार भी जो रात के समय पहरा देने आते हैं इसी पर ठहरते हैं, पर इनके नीचे से आने जाने वाले सवारों और साधारण लोगों को इससे कोई कष्ट नहीं होता।

किले के दूसरे फाटक का वर्णन–किले के दूसरी ओर के फाटक के अंदर की ओर भी ऐसी ही लंबी-चौड़ी सड़क है और उसके दोनों ओर वैसे ही चबूतरे हैं, पर महराबदार दालानों के स्थान में वहां दूकानें बनी हुई हैं, और सच पूछिए तो यह एक बाजार है, जो लदाव की छत के कारण जिसमें ऊपर की ओर हवा और प्रकाश के लिए रोशनदान बने हुए हैं, गरमी और बरसात के कारण बड़े काम का है।

इन दोनों सड़कों के अतिरिक्त उसके दाहिने और बाएं ओर भी अनेक छोटी छोटी सड़कें हैं, जो उन मकानों की ओर जाती हैं जहां नियमानुसार उमरा लोग सप्ताह में एक दिन बारी बारी से पहरा दिया करते हैं। यह मकान जहां उमरा लोग चौकी दिया करते हैं अच्छे हैं क्योंकि यह लोग उन्हें अपने ही व्यय से सजाते हैं। यहां बड़े बड़े दीवानखाने हैं और उनके सामने बाग हैं जिसमें छोटी छोटी नहरें, हौज और फव्वारे बने हुए हैं। जिस अमीर की नौकरी होती है उसके लिए भोजन शाहीखाने में से आता है, जब भोजन आता है तब अमीर को धन्यवाद और सम्मान स्वरूप महल की ओर मुंह करके तीन बार आदाब बजा लाना अर्थात जमीन तक हाथ ले जाकर माथे तक लाना होता है। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थानों में सरकारी दफ्तरों के लिए दीवानखाने बने हुए हैं और खंभे लगे हैं जिनमें प्रत्येक में किसी अच्छे कारीगर की निगरानी में काम हुआ करता है। किसी में चिकनदोज और जरदोज आदि काम करते हैं किसी में सुनार, किसी में चित्रकार और नक्कास, किसी में रंगसाज, बढ़ई और खरादी, किसी में दर्जी और मोची, किसी में कमखाब और मखमल बुनने वाले और जुलाहे जो पगड़ियां बुनते, कमर के बांधने के फूलदार पटके और जनाने पायजामों के लिए बारीक कपड़ा बनाते हैं बैठते हैं, यह कपड़ा इतना महीन होता है कि केवल एक ही रात व्यवहार में लाने से बेकाम हो जाता है, पच्चीस और तीस रुपये मूल्य का होता है और जब इन पर सूई से बढ़िया जरी का काम किया जाता है तो इनका मूल्य और भी अधिक हो जाता है। यह सब कारीगर सबेरे से आकर अपना अपना काम करते और शाम को अपने घर चले जाते हैं, और इन्हीं कामों में उनका जीवन व्यतीत हो जाता है और जिस अवस्था में वह जन्म लेता है उससे उन्नत अवस्था में होने की चेष्टा भी नहीं करता। चिकनदोज आदि अपनी संतान को अपना ही काम सिखलाते हैं, सुनार का लड़का सुनार ही होता है और शहर का हकीम अपने पुत्र को हकीमी ही सिखलाता है और यहां तक कि कोई व्यक्ति अपने लड़के या लड़की का विवाह अपने पेशे वालों के अतिरिक्त और किसी के घर नहीं करता। इस नियम का पालन मुसलमान भी वैसा ही करते हैं जैसा कि हिंदू जिनके शास्त्रों की यह आज्ञा है। और इसीलिए बहुत-सी सुंदर लड़कियां क्वांरी ही रह जाती हैं, पर यदि उनके माता-पिता चाहें तो उन लड़कियों का विवाह बहुत ही अच्छी जगह हो सकता है।

खास व आम और नक्कारे का वर्णन—अब मैं खास व आम का वर्णन करना उचित समझता हूं जो इन मकानों के आगे मिलता है। यह इमारत बहुत ही सुंदर और अच्छी है। यह एक बड़ा-सा मकान है जिसके चारों ओर महराबें हैं और 'पैलेस रायल' से मिलता है, पर भेद इतना ही है कि इसके ऊपर कुछ इमारत नहीं है। इसकी महराबें ऐसी बनी हुई हैं कि एक महराब में से दूसरी में जा सकते हैं। इसके सामने एक बड़ा दरवाजा है जिसके ऊपर बालाखाना बना हुआ है। इस में शहनाई, नफीरियां और नक्कारे रखे हुए हैं और इसी कारण लोग इसे नक्कारखाना कहते हैं, जो दिन और रात को नियत समय पर बजाए जाते हैं। यह नक्कारे नवागंतुक फिरंगियों के कानों को बहुत ही बुरे मालूम होते हैं। दस बारह नफीरियां और इतने ही नक्कारे एक साथ बजाए जाते हैं। इनमें सबसे बड़ी नफीरी जिसको 'करना' कहते हैं 9 फीट लंबी है और इसके नीचे का मुंह एक फ्रांसीसी फुट से कम नहीं है। लोहे या पीतल के सबसे छोटे नक्कारे की गोलाई कम से कम छह फीट है। इसी से आप समझ सकते हैं कि इस नक्कारखाने से कितना शोर होता होगा। जब मैं पहले पहल यहां आया तो शोर के मारे कान बहरे हो गए पर अभ्यास हो जाने के कारण अब मैं उसे बड़े चाव से सुनता हूं, विशेषतया रात के समय जबकि मकान की छत पर लेटे हुए उसकी आवाज दूर से सुनाई देती है तो बहुत ही सुरीली और भली मालूम देती है, और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कारण कि इसके बजाने वाले बचपन से ही इसकी शिक्षा पाते हैं और इन बाजों की आवाज को ऊंचा नीचा करने और सुरीली और लयदार बनाने में बड़े चतुर होते हैं। यदि यह नफीरी दूर से सुनी जाए तो बहुत अच्छी मालूम होती है। नक्कारखाना बादशाही महल से बहुत दूर बना है जिससे बादशाह को इसकी आवाज से कष्ट न हो।

नक्कारखाने के दरवाजे के सामने सहन के आगे एक बड़ा दालान है जिसकी छत सुनहरे काम की है। यह बहुत ऊंचा, हवादार और तीन ओर से खुला हुआ है। उस दीवार के बीचोंबीच जो इसके और महलसरा के मध्य में है, प्रायः छह फीट ऊंचा और एक फुट चौड़ा शहनशीन बना हुआ है जहां नित्य दो पहर के समय बादशाह आकर बैठता है, उसके दाएं और बाएं शहजादे खड़े होते हैं और ख्वाजासरा या तो मोरछल हिलाते हैं या बड़े बड़े पंखे हिलाते हैं और या बादशाह का हुक्म बजा लाने के लिए हाथ बांधे खड़े रहते हैं। तख्त के नीचे चांदी का जंगला लगा हुआ है जिसमें उमरा, राजे तथा अन्य राजाओं के प्रतिनिधि हाथ बांधे और नीची आंखें किए खड़े रहते हैं और तख्त से कुछ दूर हटकर मनसबदार या छोटे छोटे उमरा खड़े रहते हैं। इसके अतिरिक्त जो स्थान खाली बचता है उसमें बड़े-छोटे अमीर गरीब सब तरह के लोग भरे रहते हैं। केवल यही एक स्थान है कि जहां सर्वसाधारण को बादशाह के सामने उपस्थित होने का अवसर मिलता है और इसीलिए उसे आम व खास कहते हैं। यहां डेढ़ दो घंटे तक लोगों का सलाम और मुजरा होता रहता है। इसी समय

बादशाह के मुलाहजे के लिए अच्छे अच्छे सजे हुए घोड़े पेश किए जाते हैं। इनके बाद हाथियों की बारी आती है, जिनकी मैली खाल खूब नहला धुला कर साफ कर दी जाती और फिर स्याही से रंग दी जाती है। इनके सर से दो लाल रंग की लकीर सूंड के नीचे तक खींच दी जाती हैं। इन पर जरी की झूल पड़ी होती है जिसमें चांदी के दो घंटे एक जंजीर से बांध कर उसके दोनों ओर लटका दिए जाते हैं और सफेद सुरा गाय की दुमें जो तिब्बत से आती हैं और बहुमूल्य होती हैं लटका दी जाती हैं जो बड़ी-बड़ी मूंछें-सी मालूम पड़ती हैं। दो छोटे छोटे हाथी जो खूब सजे होते हैं खिदमतगारों की तरह इन बड़े हाथियों के दोनों ओर चलते हैं। ये हाथी झूम झूम कर और संभल कर पैर रखते हैं और इतराते हुए चलते हैं और जब तख्त के निकट पहुंचते हैं तो महावत जो उनकी गर्दन पर बैठा होता है लोहे की कुछ नोकदार चीज उसे चुभोता और जबान से कुछ कहता है। उस समय हाथी घुटने के बल बैठकर सूंड ऊपर की ओर उठाकर चिंघाड़ता है जिसे लोग उसका सलाम करना समझते हैं। इसके उपरांत और जानवर पेश होते हैं जैसे सिखाए हिरन जो लड़ाए जाते हैं, नीलगाय, गैंडे और बंगाल के बड़े बड़े भैंसे जिनके सींग इतने बड़े और तेज होते हैं जिनसे वह शेर के साथ लड़ सकते हैं, चीते जिनसे हिरन का शिकार खेला जाता है और अनेक प्रकार के शिकारी कुत्ते जो बुखारा आदि से आते हैं और जिन पर लाल रंग की झूलें पड़ी होती हैं पेश होते हैं। सबके अंत में शिकारी पक्षी जैसे, बाज शिकरे आदि जो तीतर और खरगोश को पकड़ते हैं, पेश होते हैं। कहते हैं कि ये पक्षी हिरन पर भी छोड़े जाते हैं जिन पर ये बहुत तेजी से झपटते और पंजे मार मार कर उन्हें अंधा कर देते हैं। इन सबके पेश हो जाने के बाद कभी कभी दो एक अमीरों के सवार भी पेश किए जाते हैं जिनके कपड़े और समय की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य और सुंदर होते हैं। इनके घोड़ों पर पाखरें पड़ी होती हैं और तरह तरह के जेवर जैसे हैंकल, झुनझुने आदि से सजे होते हैं। बहुधा बादशाह की प्रसन्नता के लिए अनेक खेल किए जाते हैं, मरी हुई भेड़ें जिनका पेट साफ करके फिर सी दिया जाता है, बीच में रख दी जाती हैं और उमरा मनसबदार, गुर्जबर्दार और आशाबर्दार उन पर तलवार से अपना करतब दिखलाते और एक ही हाथ में उन्हें काटने की चेष्टा करते हैं, यह सब खेल दरबार के आरंभ में हुआ करते हैं। इनके बाद राज संबंधी अनेक मामले पेश होते हैं। फिर बादशाह सब सवारों को बड़े गौर से देखता है, जबसे लड़ाई बंद हुई कोई सवार या पैदल ऐसा नहीं है जिसे बादशाह ने स्वयं न देखा हो, बहुतों का वेतन बादशाह स्वयं बढ़ाता, अनेकों का कम करता और कईयों को बिलकुल ही मौकूफ कर देता है।

इस अवसर पर सर्वसाधारण जो अर्जियां पेश करते हैं वे सब बादशाह के कानों तक पहुंचती हैं और बादशाह स्वयं लोगों से उनके दुख के विषय में पूछता और उसके निवारण का उपाय करता है, इनमें से दस अर्जियां देने वाले चुनकर सप्ताह

में एक दिन बादशाह के सामने पेश किए जाते हैं और उस दिन बादशाह पूरे दो घंटों तक वह अर्जियां सुना करता है। इन अर्जी देने वाले व्यक्तियों के चुनने का काम एक अमीर के सुपुर्द है। इनका फैसला बादशाह शहर के दो काजियों के साथ 'अदालतखाना' नामक कमरे में बैठकर करता है और इसमें कभी नागा नहीं पड़ती। इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि वे एशियाई बादशाह जिन्हें हम फिरंगी लोग मूर्ख और तुच्छ समझे हैं अपनी प्रजा का न्याय करने में त्रुटि नहीं करते।

इस 'आम व खास' दरबार में होने वाली बातें जिनका मेंने अभी जिक्र किया है यद्यपि सब उचित और अच्छी हैं पर तो भी मुझे उन खुशामदों आदि का उल्लेख करना आवश्यक है जो यहां देखने में आती हैं। यदि किसी छोटी से छोटी बात के विषय में बादशाह के मुंह से कोई अच्छा शब्द निकल आता है तो दरबार के बड़े बड़े उमरा आसमान की ओर हाथ उठाकर उस शब्द के साथ 'करामात करामात' कहकर चिल्ला उठते हैं और अर्ज करते हैं कि सुबहान अल्लाह ! क्या खूब इरशाद हुआ है। और कदाचित ही कोई ऐसा मुगल हो जिसे यह शेर न आता हो और वह इसे ऐसे अवसरों पर न पढ़ता हो—**अगर शद रोज रा गोयद शबस्त ई। बवा यद गुफ्य एंयक माह परवीं।** अर्थात यदि बादशाह दिन को रात कहे तो कहना चाहिए वह देखिए चंद्रमा और सितारे हैं। यह खुशामद का रोग प्रायः सब छोटे-बड़ों में पाया जाता है। यदि कोई मुगल मेरे पास दवा लेने के लिए आता तो वह सब बातों से पहले मुझसे यह कह देता है कि आप अपने समय के अरस्तू, सुकरात और बो अलीसेना हैं, पहले पहल तो मैंने उन लोगों को इस बात से रोकना चाहा और कहा कि जितनी प्रशंसा आप मेरी करते हैं मैं कभी इस योग्य नहीं हूं और मेरी समता इन महानुभावों से नहीं हो सकती पर जब मैंने देखा कि मेरी इन बातों से वे और भी अधिक प्रशंसा करते चले जाते हैं मैं उनकी बात चुपचाप सुन लेता और कुछ दिनों में मैं इन बातों को सुनने का वैसा ही अभ्यस्त हो गया जैसा यहां के शाही नक्कारखानों के रागों का। मैं आपको एक ऐसी बात सुनाता हूं जिससे आपको इन बातों का पूरा परिचय मिल जाएगा। एक पंडित ने जिसे मैं ही अपने आका के पास ले गया था, अपने बनाए एक श्लोक में पहले तो उन्हें बड़े बड़े राजाओं से अधिक बतलाया और फिर बहुत-सी व्यर्थ की बातें बककर अंत में बड़ी ही गंभीरता से कहा—जिस समय आप घोड़े पर सवार होकर अपनी फौज के आगे आगे चलते हैं उस समय वह अष्ट दिग्गज जो पृथ्वी को अपने ऊपर उठाए हुए हैं आपका बोझ नहीं संभाल सकते और इस कारण पृथ्वी कांपने लगती है। यह सुनते ही मुझे हंसी आई और मैंने बड़ी गंभीरता से अपने आका से कहा कि आप जरा संभलकर घोड़े पर सवार हुआ करें, ऐसा न हो कि कहीं भूचाल आ जाए और सारी पृथ्वी उलट-पुलट हो जाए। उन्होंने भी हंसकर उत्तर दिया कि इसी से मैं पालकी की सवारी अधिक पसंद करता हूं।

आम व खास के बड़े दालान से सटा हुआ एक खिलवतखाना है जिसे गुसलखाना

कहते हैं। यहां बहुत कम आदमियों को जाने की आज्ञा है। यद्यपि यह आम व खास के बराबर नहीं है पर फिर भी बहुत ही बड़ा और सुंदर सुनहरे काम का है और शहनशीन की तरह चार या पांच फ्रांसीसी फुट ऊंचा है। यहां कुरसी पर बैठकर बादशाह वजीरों से जो इधर-उधर खड़े होते हैं सलाह करता है। बड़े बड़े अमीरों और सूबेदारों की अर्जियां सुनता और अनेक गूढ़ राज्य कार्य करता है। जिस तरह सवेरे आम व खास में उपस्थित न होने से अमीरों पर जुर्माना होता है उसी प्रकार संध्या को यहां उपस्थित न होने से सजा मिलती है। केवल मेरे आका दानिशमंदख़ां एक ऐसे अमीर हैं जो अपनी विद्वत्ता, योग्यता और अनेक दूसरे राज्य कार्यों के कारण यहां आने से बरी हैं। हां बुधवार को जो उनकी चौकी का दिन है उन्हें भी और अमीरों की तरह उपस्थित होना पड़ता है। इन दोनों उपस्थितियों की चाल बहुत पुरानी है और कोई भी अमीर उसकी शिकायत नहीं करता, कारण कि स्वयं बादशाह जब तक उसे कोई बीमारी न हो दोनों समय दरबार में आता है। औरंगजेब को उसकी अंतिम बीमारी के समय यदि दोनों समय नहीं तो एक समय अवश्य लोग दरबार में उठा लाते थे। वह दिन-रात में एक समय अवश्य लोगों के सामने आना उचित समझता था क्योंकि इतने बीमार होने के समय उसके एक दिन भी दरबार में न आने से सब राज्य कार्यों में हलचल और शहर में हड़ताल पड़ जाने की संभावना थी।

यद्यपि गुसलखाने के दरबार में यही बात होती है जो मैंने अभी कही है पर आम व खास की तरह यहां भी अधिकांश जानवरों आदि का मुलाहजा होता है, हां रात हो जाने के कारण और सामने सहन के छोटे होने के कारण अमीरों के रिसालों का मुलाहजा नहीं हो सकता। इस समय के दरबार में यह विशेषता है कि वे मनसबदार जिनकी उस दिन चौकी की बारी होती है बड़ी ही शिष्टता और अदब के साथ सलाम करते हुए सामने से गुजर जाते हैं। इनके आगे लोग हाथों में 'कौर' लिए हुए चलते हैं। ये कौर बहुत ही सुंदर होते हैं और चांदी की छड़ियों के सिरे पर मढ़े होते हैं। इनमें से कुछ तो मछलियों की शक्ल के, कुछ एक बड़े भयानक सर्प के रूप के जिसे अजहद कहते हैं, और कुछ शेर की शक्ल के और हाथ और पंजे की तरह बने हुए तथा इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के जिनका विचित्र ही अर्थ बतलाया जाता है, होते हैं। इन लोगों में से बहुत से बुर्जबरदार होते हैं जो शरीर के हृष्ट पुष्ट देखकर भरती किए जाते हैं और जिनका यह काम है कि दरबार के समय हुल्लड़ या गड़बड़ न होने दें और बादशाही आज्ञापत्र आदि पहुंचाएं तथा बादशाह जो आज्ञा दे बहुत जल्द उसका पालन करें।

शाही महलसरा–अब मैं आपको बड़ी प्रसन्नता से शाही महलसरा की सैर कराता हूं जैसे अभी किले की इमारतों की कराई है। पर कोई व्यक्ति आंखों देखी अवस्था

नहीं बतला सकता। बादशाह के दिल्ली में उपस्थित न होने के समय यद्यपि मुझे अनेक बार वहां जाने का अवसर प्राप्त हुआ है और मुझे याद है कि एक बार बड़ी बेगम की बीमारी के समय जो वहां की रीति के अनुसार बाहर नहीं लाई जा सकती थीं बहुत दूर तक अंदर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, पर मेरे सिर पर एक लंबी कश्मीरी शाल इस प्रकार डाल दी गई थी कि एक लंबे स्कार्फ (ओढ़नी) की भांति वह मेरे पैरों तक लटकती थी और एक ख्वाजासरा मेरा हाथ इस प्रकार पकड़ कर ले गया था जैसे कोई अंधे को पकड़ कर ले जाता हो, इसलिए आपको उन वृतांतों से संतुष्ट होना चाहिए जो मैंने कुछ ख्वाजासराओं के मुख से सुन कर लिखा है। उनका कथन है कि महलसरा में बेगमों की योग्यता और हैसियत के अनुसार अलग अलग बहुत सुंदर और बड़े बड़े महल बने हुए हैं जिनके दरवाजों के सामने हौज, छोटे छोटे सुंदर बाग, और क्यारियां, नहरें, फौव्वारे, छायादार छोटी छोटी आरामगाहें और दिन की गर्मी से बचने के लिए गहरे तहखाने, और रात को ठंडक में आराम करने के लिए ऊंचे ऊंचे चबूतरे और सहन ऐसे बने हुए हैं कि इस देश की कष्टप्रद उष्णता वहां पहुंच नहीं सकती। ये लोग एक छोटे-से बुर्ज की जो नदी की ओर है बहुत ही प्रशंसा करते हैं जिसमें आगरे के दो बुर्जों की भांति सोने के वर्क चढ़े हुए मीनाकारी के काम और बहुत सुंदर सुंदर बड़े बड़े शीशे लगे हुए हैं।

दरबार और तख्त ताऊस (मयूरासन)–किले का वर्णन समाप्त करने के पहले मैं कुछ बात और दरबार आम व खास की अपेक्षा बतलाता हूं और उन वार्षिक जलसों और दरबारों के संबंध में कुछ कहना चाहता हूं, विशेषतया उस बड़े दरवार के विषय में जो मैंने लड़ाई समाप्त हो जाने के बाद देखा था, और जिससे बढ़कर मैंने कोई तमाशा अपनी सारी उमर में नहीं देखा। उस दिन बादशाह दीवान आम खास में एक जड़ाऊ तख्त पर बैठा था। उसके कपड़े बहुत ही सुंदर और फूलदार रेशम के बने हुए थे, और उस पर बहुत अच्छा जरी का काम किया हुआ था, सिर पर एक जरी का बादशाहों की लूट और प्रत्येक अमीर उमरा का मंदील था, जिसमें बड़े बड़े बहुमूल्य हीरों का तुर्रा लगा हुआ था उसमें एक पुखराज ऐसा था जो बेजोड़ कहा जा सकता है वह सूर्य के समान चमकता था। उसके गले में बड़े बड़े मोतियों का एक कंठा था जो हिंदुओं की माला की तरह पेट तक लटकता था।

छह सोने के पायों पर यह तख्त बना था, कहते हैं कि यह बिलकुल ठोस था, इनमें याकूत और कई प्रकार के हीरे जड़े हुए थे। मैं उनकी गिनती और मूल्य का निश्चय नहीं कर सकता क्योंकि इसके निकट जाने की किसी को आज्ञा नहीं है, इससे कोई उनकी गिनती आदि का पता नहीं लगा सकता था, पर विश्वास कीजिए कि उसमें हीरे और जवाहरात बहुत थे। मुझे खूब याद है कि इसका मूल्य चार करोड़ रुपया आंका गया था। इस तख्त को औरंगजेब के पिता शाहजहां ने इसलिए बनवाया

था कि खजाने में पुराने राजाओं और पठानों के समय समय पर नजराने से जो जवाहरात इकट्ठे हुए थे, लोग उन्हें देखें। उसकी बनावट और कारीगरी उसके जवाहरों के समान नहीं है, हां दो मोर जो मोतियों और जवाहरों से बिलकुल ढके हुए थे, इसको एक कारीगर ने—जिसका नाम आश्चर्य कारक था और वह वास्तव में फ्रांस का निवासी था, और जो एक विचित्र प्रकार के नकली हीरे बना बना कर यूरोप के रईसों को ठगा करता था और जो वहां से भाग कर मुगल सम्राट की शरण में आया था, और यहां भी बहुत रुपये कमाये थे—बनाया था।

तख्त के नीचे की चौकी पर जिसके चारों ओर चांदी का कटहरा लगा हुआ था और ऊपर जरी की झालर का एक बड़ा चंदुआ रंगा हुआ था; उमरा बहुमूल्य वस्त्र पहने खड़े थे। वहां के खंभे जरी के काम किए कपड़ों से मढ़े हुए थे, और रेशमी चंदुए जिनमें रेशम और जरी के फुंदने लगे हुए थे, तने थे और बहुत बढ़िया रेशमी कालीन बिछे हुए थे। बाहर एक खेमा खड़ा था जिसे असपक (एक प्रकार का बड़ा खेमा) कहते हैं और जो इन मकानों से भी बड़ा था। वह सहन में आधी दूर तक फैला हुआ था और चारों ओर से चांदी की पत्तियों से मढ़े हुए कटहरों से घिरा था उसमें लकड़ी के तीन बड़े खंभे थे जो जहाज के मस्तूल के समान थे, और बाकी सब छोटे थे।

इस खेमे के बाहर की ओर लाल रंग का कपड़ा लगा हुआ था, और भीतर की ओर मछलीपटम की सुंदर छींट थी। यह छींट इसी काम के लिए बनाई गई थी, इसके बेल-बूटे ऐसी उत्तमता से बनाए गए थे और उनका रंग इतना तेज था कि वह बहुत ही सुंदर और प्राकृतिक मालूम होते थे। सब अमीरों को आज्ञा दी गई थी कि वे आम व खास के चारों ओर की महराबें अपने अपने खर्च से सजाएं, इसलिए बादशाह के विशेष कृपापात्र बनने के लिए सबने अपनी अपनी महराबों के सजाने में एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न किया। जिसका फल यह हुआ कि सारी दीवारें आदि कमखाब और जरी से ढंक गईं और जमीन बहुमूल्य सुंदर कालीनों से भर गई।

इस जलसे के तीसरे दिन पहले बादशाह और उसके बाद बहुत-से अमीर उमरा बड़ी बड़ी तराजुओं में जिनके पलड़े और बट्टे सोने के थे तोले गए। मुझे याद है कि औरंगजेब के तौल में गत वर्ष की अपेक्षा एक सेर के बढ़ जाने से सारे दरबार ने प्रसन्नता प्रकट की थी। इस प्रकार के जलसे हर साल हुआ करते हैं पर ऐसा शानदार जलसा कभी नहीं हुआ और न इतना कभी व्यय हुआ। कहा जाता है कि इस जलसे के इतनी धूमधाम से होने का कारण यह था कि बादशाह की इच्छा थी कि लड़ाई के कारण वर्षों तक जिन सौदागरों का कमखाब आदि नहीं बिका था उनका माल बिक जाए। इस जलसे में उमरा का बहुत अधिक खर्च पड़ा और अंत में उसका एक भाग बेचारे फौजी सिपाहियों के सिर थोपा गया। इन सिपाहियों को लाचार होकर

अपने अपने अमीरों की आज्ञानुसार अपने अपने कपड़ों के लिए कमखाब खरीदना पड़ा।

इन वार्षिक जलसों पर एक पुरानी रस्म है, जिसे अमीर लोग बहुत नापसंद करते हैं। उनको ऐसे अवसरों पर कोई एक बहुमूल्य चीज नजर करनी पड़ती है जिसका मूल्य उनके वेतन के अनुसार कम या अधिक होता है। कुछ अमीर तो बहुत ही अच्छी चीजें पेश करते हैं। यह नजर कभी तो केवल दिखावे के लिए, कभी इसलिए कि बादशाह उनकी उन पिछली बुराईयों को भूल जाए जो उन्होंने अपने सूबेदारी के समय में टो थीं, और उसके संबंध में कोई दंड न दे बैठें, और कभी उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए और इसी प्रकार अपना वेतन बढ़वा लेने के लिए होती हैं। निदान बहुत-से लोग तो उत्तम हीरे-मोती और माणिक आदि भेंट करते हैं और कुछ सोने के जड़ाऊ बर्तन आदि और अशर्फियां जिनका मूल्य बहुत अधिक होता है भेंट करते हैं। ऐसे ही उत्सव के अवसर पर जब बादशाह जाफरखां की एक नवीन हवेली देखने के बहाने से गया जो न केवल राजमंत्री ही था बल्कि बादशाह का संबंधी भी था, तो उसने ढाई लाख रुपये की अशर्फियां, कुछ अच्छे मोती और एक लाल जिसका मूल्य एक लाख रुपया कहा जाता है भेंट किया था। पर शाहजहां ने जो जवाहरात के परखने में बहुत निपुण था, उसका मूल्य केवल साढ़े बारह सौ रुपये से भी कम बतलाया। जिसे सुनकर बड़े बड़े जौहरी जिन्होंने उसके परखने में धोखा खाया था चकित हो गए।

मीना बाजार–कभी कभी इन अवसरों पर महलसरा में एक कृत्रिम बाजार लगा करता है। बाजार में बड़े बड़े अमीरों और मनसबदारों के लिए सुंदर स्त्रियां दुकानें लगा कर बैठती और कमखाब और अच्छी अच्छी जरदोजी के काम की चीजें, जरी की मंदीलें, सफेद बारीक कपड़े जो अमीरजादियों के व्यवहार में आते हैं तथा और बहुमूल्य चीजें बिक्री के लिए रखती हैं। बादशाह, उसकी बेगमें और शहजादियां आदि वहां माल खरीदने जाती हैं। यदि किसी अमीर की बेटी रूपवती और नवयौवना होती है उसकी मां उसे अवश्य अपने साथ इस बाजार में ले जाती है, जिससे बादशाह की दृष्टि उस पर पड़ जाए और बेगमों से भी परिचय हो जाए। बड़ा मजा तो यह है कि हंसी दिल्लगी के लिए स्वयं बादशाह एक एक पैसे पर झगड़ता है, और कहता है यह बेगम साहब बहुत महंगी चीजें बेचती हैं, इससे सस्ती और अच्छी चीजें आगे मिलेंगी। हम इससे अधिक एक कौड़ी न देंगे, आदि आदि। इधर यह चेष्टा करती हैं कि हमारी चीजें अधिक मूल्य पर बिकें और बादशाह अधिक नहीं देता तब बात बात में कह बैठती हैं कि मालूम होता है कि आपको सौदा ही नहीं लेना, आपके पास इतना मूल्य ही नहीं है, हमारा माल आपके लिए बहुत महंगा है, आपको जहां सस्ता मिले वहीं चले जाइए। बादशाह की अपेक्षा बेगमें और भी अधिक झगड़ा

करती हैं। इनकी बातों में इतनी गरमागरमी होती है कि वह एक अच्छा खासा झगड़ा मालूम होता है। इतना हो चुकने पर वह माल खरीद लिया जाता है। बादशाह, बेगम, शहजादे, शहजादियां जो चीजें खरीदती हैं उनका मूल्य उसी समय दे दिया जाता है। मूल्य देने में रुपयों के साथ साथ अशर्फियां भी गिन देते हैं। यह अशर्फियां मानो अनजान होकर दी जाती हैं। यह उस दूकानदार या उस सुंदर कन्या की भेंट होती हैं। दूकानदार भी उन्हें यों ही बेपरवाही से उठा लेते हैं। और इसी प्रकार हंसी खुशी से बाजार समाप्त होता है।

शाहजहां बहुत विलासी था। यद्यपि बहुत-से अमीरों को यह बात खटकती, पर फिर भी वह प्रायः ऐसे ऐसे अवसरों पर यही स्वांग कराया करता। इसके अतिरिक्त वह रात के समय महल में उन स्त्रियों को भी बुला लेता और उन्हें रात भर वहीं रखता जिन्हें कंचनी कहते हैं। ये स्त्रियां बाजारू नहीं होती थीं, बल्कि अच्छी प्रतिष्ठित होती थीं, और अमीरों या मनसबदारों के यहां विवाह आदि के समय पर केवल नाचने गाने जाती थीं। यह कंचनियां बहुधा बहुत ही सुंदर और रूपवती होती हैं और उनके वस्त्र भी अच्छे और बहुमूल्य होते हैं। यह बहुत ही अच्छी गाने वाली होती हैं, और नाचने में अपने अंगों को इस सुंदरता से लचकाती हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। यह कंचनियां ताल और स्वर में भी ठीक होती हैं, पर फिर भी कस्बियां ही होती हैं।

इन औरतों के इस मेले में आने ही से शाहजहां को संतोष नहीं होता था, बल्कि बुधवार के दिन जब वह नियमानुसार सलाम करने के लिए दरबार में हाजिर होतीं तो वह प्रायः रात भर के लिए वहीं ठहरा लिया करता और रात भर नाच गाना हुआ करता। पर औरंगजेब अपने पिता का-सा विलास-प्रिय नहीं है, उसने इनका आना जाना एकदम रोक दिया है। पर हां, नियमानुसार बुधवार के दिन सलाम करने के लिए हाजिर होने से मना नहीं किया, इस दिन वह दूर ही से सलाम करके चली जाती हैं।

इस समय जब कि मैं मीना बाजार और कंचनियों का जिक्र कर रहा हूं एक घटना का वर्णन भी आवश्यक समझता हूं। जो बर्नर्ड नामक एक फ्रांसीसी से संबंध रखता है। मेरी समझ में प्लुटार्क का यह कथन बहुत ही ठीक है—साधारण और छोटी छोटी बातों को छिपा रखना भी उचित नहीं है, क्योंकि प्रायः उससे किसी जाति या समाज की रीति नीति आदि के संबंध में उचित मत देने में बड़ी बड़ी बातों की अपेक्षा अधिक सहायता मिलती है इसलिए यद्यपि यह हंसी की बात नहीं है फिर भी सुनने योग्य है।

जहांगीर के अंतिम समय में बर्नर्ड नामक एक प्रसिद्ध और योग्य डाक्टर था। उस पर बादशाह की बहुत अधिक कृपा थी। प्रायः बादशाह के भोज में योग दिया करता था। वह दोनों बहुत अधिक मदिरा पी लेते थे। बादशाह और डाक्टर का

स्वभाव भी एक ही-सा था। बादशाह दिन-रात भोग विलास में लिप्त रहता था, और राज्य का कुल कारोबार अपनी प्रसिद्ध बेगम नूरजहां को सौंप दिया था। वह कहा करता था राजकार्य चलाने के लिए उसकी बुद्धि और योग्यता बहुत अधिक है। बर्नर्ड का वेतन साधारण पच्चीस रुपये रोज था। पर बादशाह के महलसरा में और दूसरे अमीरों के यहां जाने के कारण और न केवल इसलिए कि वह डाक्टर था, बल्कि बादशाह का कृपा पात्र होने के कारण लोग उसकी बहुत खातिर किया करते थे, उसे बहुत कुछ मिलता रहता पर वह धन की कुछ परवाह न करता और एक ओर से लेते ही दूसरी ओर किसी को दे देता। इसी से वह सब लोगों का प्रिय हो गया था, विशेषतया कंचनियों का जिन्हें उसने बहुत कुछ दिया था। रात भर उसके मकान पर कंचनियों का जमघट लगा रहता। एक बार यह उनमें से एक युवती पर जो बहुत ही सुंदर और नाच गाने में प्रसिद्ध थी आसक्त हो गया। इसने उसके लिए अनेक चेष्टाएं कीं, पर उसकी मां उसे एक पल के लिए भी अपनी आंखों से ओझल न होने देती, क्योंकि वह समझती थी कि अवस्था के कम होने के कारण कहीं उसके रूप या स्वास्थ्य की कुछ हानि न हो। इसलिए बर्नर्ड अपनी प्रेमिका से वंचित रहा। एक दिन दरबार में जहांगीर ने उसे एक उत्तम चिकित्सा करने पर कुछ इनाम देना चाहा। उसने प्रार्थना की कि मैं चाहता हूं कि हुजूर मुझे इस इनाम से माफ रखें और उसके बदले मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें कि यह कंचनी जो दरबार में इस समय सलाम के लिए हाजिर हुई है मुझे मिल जाए। सब दरबारी जिसे उसके ईसाई और कंचनी के मुसलमान होने के कारण इस प्रार्थना के स्वीकार होने में संदेह था उसकी बात सुन कर मुस्करा दिए। पर जहांगीर जिसे धर्म की कुछ परवाह न थी, इस पर जोर से हंस पड़ा और उसने आज्ञा दी कि इस कंचनी को अभी इसके कंधे पर बैठा दो और यह उसे ले जाए। उसी समय भरे दरबार में वह कंचनी उसके कंधे पर बैठा दी गई और वह बड़ी प्रसन्नता से उसे घर लेकर चला गया।

हाथियों की लड़ाई–उत्सव की समाप्ति एक ऐसे तमाशे पर होती है जिससे यूरोप वाले बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं। यह तमाशा हाथियों की लड़ाई है। जो सर्वसाधारण के सामने यमुना की रेती में होती है। बादशाह, बेगमें और अमीर उमरा यह तमाशा किले के झरोखों में से देखते हैं। तीन या चार फीट चौड़ी और पांच या छह फीट ऊंची एक कच्ची दीवार बनाई जाती है, और उसके दोनों ओर से दो बड़े बड़े हाथी जिन पर दो दो आदमी सवार होते हैं एक-दूसरे के सामने किए जाते हैं। हाथी पर दो आदमी इसलिए सवार होते हैं कि एक आदमी उसकी गर्दन पर से गिर पड़े तो दूसरा उसी समय उसके स्थान पर आ जाए और अंकुश से उसे चला दे। कभी ये लोग हाथी को बढ़ावा देकर, कभी भला बुरा कह कर और कभी पांवों से मार कर आगे बढ़ाते हैं। अंत में यह बेचारे इस दीवार के निकट पहुंचकर एक ऐसी टक्कर

लगाते हैं कि देखकर भय मालूम होता है। सिर, सूंड और दांतों की चोट लगने के कारण उनके जीवित रहने में भी आश्चर्य मालूम होता है। लड़ाई रह रह कर होती है और बलिष्ठ हाथी दीवार को फांदकर एक-दूसरे का पीछा करता और उसे भगा देता है और उसका पीछा वह नहीं छोड़ता, क्योंकि यह स्वभाव से ही डरपोक है और विशेषकर आग से बहुत डरता है। यही कारण है जब से आग के अस्त्रों का व्यवहार लड़ाई में होने लगा तब से युद्ध में हाथियों का कुछ उपयोग नहीं होता। सरनन्दीप के हाथी प्रायः सबसे अधिक साहसी होते हैं पर फिर भी चाहे कहीं के हों युद्ध क्षेत्र में ले जाने से पहले वर्षों तक उनका भय मिटाने के लिए उनके कानों के पास बंदूकें और पैरों के पास पटाखे छोड़े जाते हैं। इनकी लड़ाई का अंतिम भाग बड़ा ही करुणाजनक होता है प्रायः एक हाथी अपनी सूंड से दूसरे हाथी के महावत को पकड़कर नीचे उतार लेता और पांवों से कुचल डालता है। महावत उस समय लड़ाई में जाने के लिए अपने जोरू बच्चों से इस प्रकार विदा होता है मानो मौत के मुंह में जा रहा हो। पर एक बात से उसे संतोष भी रहता है कि बच गया तो न केवल उसकी तनख्वाह ही बढ़ेगी बल्कि बादशाह की कृपा दृष्टि भी होगी और पच्चीस रुपये के पैसों की एक थैली भी हाथी से उतरते ही उसे मिल जाएगी और यदि मर गया तो उसका वेतन उसकी स्त्री को मिलता रहेगा और उसका लड़का उसके स्थान में नौकर हो जाएगा। इस लड़ाई में केवल महावतों ही की जान नहीं जाती बल्कि क्रोधी जानवरों के सामने से भागने के समय पैदल और सवार इतना दौड़ते हैं कि कभी कभी लोग आदमियों या स्वयं हाथी के पैरों तले कुचलकर मर जाते हैं। दूसरी बार जब मैं तमाशा देखने गया था अपने घोड़ों और दो नौकरों ही के कारण कठिनता से बच सका था।

जुम्मा मस्जिद–किले का वर्णन छोड़कर अब मैं फिर शहर की ओर फिरता हूं जिसकी दो इमारतों का हाल अभी तक लिखना बाकी है। उनमें से एक तो बड़ी मस्जिद है जो शहर के बीच में एक ऊंची पहाड़ी पर बनी होने के कारण दूर से दिखाई देती है। इसके बनाने से पहले पहाड़ी की जमीन बिलकुल साफ और चौरस खोदी गई थी और चारों ओर मैदान कर दिया गया था जहां मस्जिद के चारों ओर से चार बाजार आकर मिलते हैं। उनमें से एक तो सदर दरवाजे के सामने है और दूसरा पीछे को और बाकी दोनों ओर के दरवाजों के पास। अंदर जाने के लिए तीनों ओर पत्थर की 25-25 सुंदर सीढ़ियां बनी हुई हैं, और पीछे की ओर साफ करके पहाड़ी की ऊंचाई तक पत्थर लगा दिए गए हैं जिनसे वह इमारत और भी सुंदर हो गई है। इसके तीनों दरवाजे बहुत सुंदर लाल पत्थर के बने हुए हैं, और उनके किवाड़ों पर तांबे या पीतल की पत्तियां जड़ी हुई हैं। सुंदर दरवाजा जिस पर संगमरमर की छोटी छोटी बुर्जियां बनी हुई हैं, बहुत ही खूबसूरत हैं। मस्जिद के पिछले भाग में

तीन बड़े बड़े गुंबद हैं जो संगमरमर के बने हुए हैं। बीचवाला गुंबद कुछ अधिक बड़ा और ऊंचा है। मस्जिद के केवल इसी भाग के ऊपर छत बनी हुई है और इसके आगे सदर दरवाजे तक बिलकुल खुला हुआ है, जो गर्मी के कारण खुला रखना आवश्यक है। मस्जिद के अंदर संगमरमर और बाहर लाल पत्थर की सिलें जमीन में जड़ी हुई हैं।

यद्यपि यह बात ठीक है कि यह इमारत उस ढंग से नहीं बनाई गई है जैसी हम लोग बनाते हैं तथापि उसमें किसी प्रकार का दोष भी नहीं है। उसके भाग बहुत उचित रीति से किए गए हैं और उसकी बनावट मे भी मुझे पूर्ण आशा है कि यदि इसी ढंग का कोई गिरजा पेरिस में बनाया जाए तो वह विचित्र पर सुंदर होने के कारण सब लोगों को पसंद आ जाएगा। तीनों गुंबदों और छोटी बुर्जियों के अतिरिक्त जो संगमरमर की बनी हैं बाकी सारी मस्जिद लाल पत्थर की बनी हुई है। यह लाल पत्थर संगमरमर की अपेक्षा अधिक नरम होता है और समय पाकर उसमें से पत्थर झड़ने लगते हैं। भारतवासियों का कथन है कि जिस खान से यह पत्थर निकलता है, कुछ दिनों बाद उसी में वह आप से आप पैदा होता है। यदि यह बात वास्तव में ठीक हो तो बहुत ही विचित्र है। इस खान में हर साल पानी भर जाता है। पर इसके संबंध में मैं कोई निश्चित राय नहीं दे सकता।

प्रत्येक शुक्रवार को जो मुसलमानों में हमारे देश के रविवार की तरह पवित्र समझा जाता है, बादशाह इस मस्जिद में नमाज पढ़ने आते हैं। जिस रास्ते से वह आते हैं गर्मी और धूल से बचाव के लिए पहले उस पर छिड़काव कर देते हैं। किले के दरवाजे से मस्जिद तक सड़क के दोनों ओर तीन या चार सौ सिपाही पंक्तिबद्ध खड़े हो जाते हैं, जो हाथों में छोटी छोटी सुंदर बंदूकें लिए रहते हैं, जिन पर लाल रंग की बनात की खोल मढ़ी रहती है। पांच छह अच्छे सवार किले के फाटक पर इसलिए उपस्थित रहते हैं कि बादशाह की सवारी के लिए आगे से रास्ता साफ रखें और लोगों को हटाते रहें। यह आदमी बादशाह की सवारी से इतने आगे रहते हैं कि जिससे बादशाह को उनके घोड़ों की गर्द से कष्ट न पहुंचे। इतनी तैयारियां हो चुकने पर बादशाह की सवारी निकलती है। कभी तो बादशाह हाथी पर सवार होकर निकलता है जो बहुत सजा होता है और जिस पर सुनहरी बेल-बूटों का काम किया हुआ हौदा कसा रहता है, और कभी सुनहरी या आसमानी पालकी पर सवार होता है जो कमखाब या मलमल से मढ़े हुए डंडों से बंधी होती है, और जिसे आठ चुने हुए तथा भारी वर्दी वाले कहार अपने कंधों पर उठाए रहते हैं। इसके पीछे बहुत-से अमीर होते हैं, जिनमें से कोई घोड़ों पर, और कोई पालकियों पर सवार होते हैं। इन्हीं के साथ साथ मनसबदार और चांदी की छड़ियां लिए हुए चोबदार आदि होते हैं। मैं इस सवारी की समता रूम के सुलतान की शानदार सवारी से या यूरोपियन बादशाहों के जुलूसों से नहीं कर सकता क्योंकि इसकी शान और ठाठ कुछ और

ही है पर हां फिर भी कुछ राजसी नहीं है।

यहां की दूसरी वर्णन करने योग्य इमारत बेगम सराय या कारवां सराय है जो शाहजहां की बड़ी बेटी—बेगम साहब ने—गत लड़ाई के समय जिसके संबंध में मैं पहले भी लिख आया हूं बनवाई थी। और न केवल इसी शहजादी ने बल्कि और भी अनेक अमीरों ने वृद्ध बादशाह की प्रसन्नता के लिए शहर की रौनक बढ़ाने में बहुत रुपये व्यय किए हैं। पैलेस रायल की तरह यह भी एक बड़ी महराबदार चौकोर इमारत हैं। इसमें लगातार कोठड़ियां बनी हुई हैं और उनके आगे अलग अलग बरामदे हैं। यह इमारत दो खंडों की है, और नीचे के खंड की तरह ऊपर के खंड में अलग अलग कोठरियां और बरामदे हैं। ईरानी तथा और विदेशी अमीर व्यापारी इसे सुरक्षित समझकर यहीं आकर ठहरते हैं। रात के समय फाटक बंद कर दिया जाता है। क्या ही अच्छा होता यदि पेरिस में भी दस बीस ऐसी ही सराएं होतीं ताकि विदेशियों को पहुंचकर एक रक्षित और अच्छा मकान ढूंढ़ने में कष्ट न उठाना पड़ता, जितना अब उठाना पड़ता है और जब तक अपने मित्रों से मिलकर रहने का कोई उचित प्रबंध न कर लेते तब तक वहीं ठहरते और इसके अतिरिक्त वह सब प्रकार के विदेशी व्यापारियों के ठहरने और भांति भांति की चीजों के बिकने के स्थान होते।

बस्ती—मैं समझता हूं कि आप मुझसे अवश्य यह प्रश्न करेंगे कि यहां की जनसंख्या कितनी है और पेरिस की अपेक्षा यहां के धनिक कितने और कैसे हैं। इसलिए देहली का हाल समाप्त करने से पहले मैं इसका वर्णन करना आवश्यक समझता हूं। पेरिस के सारे मकान तीन या चार खंड के हैं, जो सब के सब प्रायः आदमियों से भरे रहते हैं, इससे वह शहर तीन या चार शहरों के बराबर मालूम होता है और सड़कों और गलियों में स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों, पैदल और सवारों से भरे होने तथा चौकों, बागों या बड़े बड़े मैदानों के कम होने के कारण वह शहर (पेरिस) मुझे मनुष्यों का वन मालूम होता है, और इसलिए मैं नहीं कह सकता कि जितने आदमी पेरिस में हैं उतने ही यहां भी हैं। पर जब भारत की लंबाई चौड़ाई असंख्य दूकानों तथा इस बात का ध्यान करता हूं कि अमीरों के अतिरिक्त पैंतीस हजार सवार से कम यहां कभी नहीं रहते और सबके सब गृहस्थ और बाल-बच्चे वाले हैं, और सबके पास बहुत-से नौकर चाकर हैं, जो अपने मालिकों की तरह अलग अलग मकानों में रहते हैं, और कोई ऐसा घर नहीं है जिसमें स्त्रियां और बच्चे न हों, और संध्या के समय जब गर्मी जरा कम हो जाती है और लोग बाहर निकलते हैं तो तमाम सड़कें और गलियां बड़ी होने पर भी भरी हुई होती हैं और गाड़ियां (जिनसे अधिक स्थान रुकता है) बहुत कम दिखाई देती है। तब मैं नहीं कह सकता कि देहली और पेरिस की जनसंख्या में क्या समानता है। पर फिर भी मेरी समझ में यदि देहली में पेरिस से अधिक आदमी नहीं हैं तो कुछ कम भी नहीं हैं, हां यदि धनिकों और अमीरों की

ओर से ध्यान दिया जाए तो पेरिस और देहली में बहुत कुछ भेद मालूम होता है क्योंकि पेरिस में दस में सात या आठ आदमी अच्छे वस्त्र पहने और सुसंपन्न दिखाई देते हैं, पर देहली में केवल दो या तीन आदमी ऐसे दिखाई देते हैं और बाकी गरीब और फटे पुराने कपड़े पहने होते हैं जो केवल फौज के कारण यहां आते हैं इतने पर भी मैं कह सकता हूं कि मुझे प्रायः ऐसे लोगों से भेंट करने का अवसर मिला है जो अच्छे और बढ़िया कपड़े पहने होते हैं और उनकी सवारी में अच्छे घोड़े होते हैं और उनके साथ नौकर-चाकर और नफर होते हैं।

अमीरों की सवारी—जिस समय अमीर राजे और मनसबदार चौकी देने या दरबार में हाजिर होने के लिए आते हैं उस समय किले के सामने वाले चौक की शोभा अपूर्व हो जाती है। चारों ओर से मनसबदार बहुत अच्छे कसे-कसाए घोड़ों पर सवार और चार खिदमतगार जिनकी वर्दी अच्छी होती है साथ लिए हुए जिनमें से दो पीछे और दो भीड़ हटाने के लिए आगे रहते हैं, आते हैं। बड़े बड़े अमीर और राजे हाथियों पर, कुछ लोग मनसबदारों की तरह घोड़ों पर, बहुत-से लोग अच्छी अच्छी पालकियों पर आते हैं, जिन्हें छह छह कहार अपने कंधों पर उठाए होते हैं और जिनके पीछे सुनहरे और जरी के तकिए लगे रहते हैं, वे होंठों को लाल और मुंह को सुगंधित रखने के लिए पान खाते हैं, पालकी के एक ओर एक नौकर चांदी या चीनी का उगालदान लेकर चलता है, और दूसरी ओर दो नौकर मक्खियों और धूल से बचाने के लिए मोरछल झुलाते रहते हैं। तीन या चार प्यादे आगे आगे लोगों को हटाते हुए चलते हैं और उनके पीछे थोड़े-से सवार—जो बहुत ही बहादुर और चुने हुए होते हैं—चलते हैं। जिस समय यह लोग इस प्रकार आते हैं तो पेरिस की तरह वहां भी खूब भीड़-भाड़ हो जाती है और वह दृश्य बहुत ही सुहावना मालूम होता है।

देहली के आसपास की भूमि बहुत ही उपजाऊ है, उसमें चावल, गेहूं, गन्ना, नील, मूंग और जौ आदि जो वहां के लोगों का प्रधान भोजन है, अधिकता से उत्पन्न होते हैं, आगरे की ओर जो सड़क गई है उस पर देहली से प्रायः छह मील पर एक स्थान है, जिसे मुसलमान ख्वाजा कुतुबउद्दीन कहते हैं, यहां एक बहुत पुरानी इमारत है जो कदाचित पहले मंदिर था। जिस पर एक लेख खुदा है जो बहुत प्राचीन मालूम होता है। उसकी लिपि किसी से पढ़ी नहीं जाती और उसकी भाषा भारत की सब प्रचलित भाषाओं से भिन्न है।

नगर की दूसरी ओर प्रायः सात आठ मील दूर एक बहुत ही सुंदर इमारत या महल है पर फिर भी फौंटेन ब्ल्यू सेंट जर्मन वा वर्सल के समान नहीं है। और न आप यह समझें कि देहली के आसपास सेंट क्लों चौंटली, म्योडंस लिंकर्सबो वा रुपेल के समान कोई इमारतें हैं। यहां आपको वैसे छोटे छोटे बाग आदि भी न मिलेंगे जो हमारे यहां के साधारण निवासी या व्यापारी बनवाया करते हैं। इन सबके कारण

यहां की एक रीति है जिसके अनुसार प्रजा का जमीन पर किसी प्रकार का हक नहीं है।

देहली से आगरे तक जो डेढ़ या पौने दो सौ मील लंबी सड़क चली गई है उस पर फ्रांस की तरह आपको कोई अच्छी बस्ती न मिलेगी। हां केवल मथुरा एक पुराना नगर है, जिसमें एक बड़ा और प्राचीन मंदिर अब तक वर्तमान है। और इसके अतिरिक्त कुछ कारवां सरायें हैं जो रात के वक्त यात्रियों के ठहरने के लिए बनी हैं। इस सड़क के दोनों ओर जहांगीर की आज्ञा से बड़े बड़े पेड़ लगाए गए हैं और यों ही यह सड़क प्रायः पांच सौ मील तक चली गई है। रास्ता दिखाने के लिए एक एक मील की दूरी पर छोटी छोटी बुर्जियां और आदमियों के पानी पीने तथा खेतों को सींचने के लिए पक्के कुएं बने हैं।

आगरा—देहली का पूरा पूरा हाल जान लेने पर आगरे के संबंध में भी आप कुछ न कुछ अवश्य अनुमान कर सकेंगे। यह शहर भी यमुना के किनारे बसा हुआ है और किले तथा बादशाही महलों और इमारतों के कारण देहली से उसकी बहुत-से अंशों में समानता है। बहुत-सी बातों में यह देहली से बढ़ा-चढ़ा भी है। अकबर के समय से जिसने इसे बसाया था और जिसके कारण इसका नाम अकबराबाद हुआ अब तक यह नगर सारे बादशाहों का निवास स्थान था। देहली की अपेक्षा यह बहुत बड़ा है। राजाओं और अमीरों के बड़े बड़े मकान, अच्छी अच्छी सरायें और सर्वसाधारण के बनाए हुए बड़े सुंदर तथा पक्के मकान भी यहां अधिक हैं। इसके सिवा यहां दो प्रसिद्ध मकबरे हैं जिनका वर्णन मैं आगे चलकर करूंगा। कुछ बातों में यह देहली से घटा हुआ भी है। इसके चारों ओर शहरपनाह नहीं हैं और न इसमें देहली की-सी साफ लंबी चौड़ी, खूबसूरत सड़कें ही हैं। चार या पांच बाजारों को छोड़कर जिनमें व्यापारी अधिकता से रहते हैं बाकी सब छोटी छोटी गलियों और मोड़ों के सिवा और कुछ नहीं है, और जिनमें बादशाह के यहां उपस्थित रहने के समय खूब ही धक्कम धक्का रहती है। इन सब बातों के सिवा, जिनका वर्णन मैंने अभी किया है। मैं देहली और आगरे में एक भेद और पाता हूं, वह यह कि यदि किसी ऊंचे स्थान पर चढ़कर देखा जाए तो आगरा देहली की अपेक्षा अधिक देहाती शहर मालूम होता है, लेकिन उसका यह देहातीपन भद्दा नहीं बल्कि बहुत ही सुहावना मालूम होता है, क्योंकि अमीर राजे तथा और और लोग अपने बागों और मकानों के आंगनों में साये के लिए बड़े बड़े वृक्ष लगवाते हैं। इनके बागों और मकानों के बीच में बनियों की बड़ी बड़ी हवेलियां जंगलों की पुरानी गढ़ियों के समान दिखाई देती हैं। इन सब मकानों के कारण नगर का दृश्य बहुत ही भला मालूम होता है और विशेषकर एक ऐसे गर्म देश में जहां के निवासियों की आंखें सदा हरियाली और छांह की ओर ही लगी रहती हैं।

पर फिर भी संसार का सबसे सुहावना दृश्य देखने के लिए आपको पेरिस से बाहर नहीं जाना पड़ेगा। किसी रोज पौंट नि आफ पर दिन के समय चले जाइए और अपने चारों ओर नजर दौड़ाकर वहां की भीड़भाड़ और जमघट को देखिए। रात के समय चारों ओर ऊंचे ऊंचे मकानों की खिड़कियों से बाहर आने वाली रोशनी को देखिए, ऐसे समय में आपको आधी रात तक वही भीड़-भाड़ और रौनक दिखाई देगी। प्रतिष्ठित पुरुष और स्त्रियां चोर उचक्कों के किसी प्रकार के भय के बिना (पर यह बात आप एशिया के किसी भाग में न पाएंगे) या कीचड़ और गर्द से कष्ट पाए बगैर चलती फिरती तथा जहां तक दृष्टि काम देती है चारों ओर जलती हुई लालटेनों की पंक्तियां दिखाई देंगी। बस एक वार यों ही घूम फिर कर आप यह दृश्य देख लीजिए, और फिर आप मेरी बात पर विश्वास रखकर दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि सारे संसार में इससे सुंदर मनुष्य का बनवाया कोई दृश्य है ही नहीं। पर चीन और जापान के संबंध में जिन्हें मैंने अब तक नहीं देखा, मैं कुछ नहीं कह सकता। और उस समय उसकी शोभा, सुंदरता एवं छटा कितनी अधिक हो जाएगी जब ल्वायर की इमारत जिसके संबंध में लोग शंका करते थे कि वह कभी बनेगी ही नहीं, और उसका नक्शा केवल कागज ही पर दिखाई देगा—बन कर तैयार हो जाएगी। ऊपर मनुष्य का बनाया हुआ मैंने इसलिए कहा कि संसार के सबसे अच्छे दृश्यों का वर्णन करते समय हम को कुस्तुनतुनियां का वह दृश्य छोड़ देना होगा, जो महल के ठीक नीचे उस बड़ी खाड़ी में एक छोटी किश्ती पर बैठने से दिखाई देता है, क्योंकि उसे देखते ही आप आश्चर्य सागर में गोते खाने लगेंगे और आप अपने को जादू के बने एम्फी थियेटर में बैठा पाएंगे। कुस्तुनतुनियां में प्राकृतिक दृश्य अपूर्व है और पेरिस में मनुष्य के हाथ का बनाया हुआ और इसलिए वह और भी अधिक सुंदर मालूम होता है। पेरिस की शोभा देखने से विदित होता है कि वह किसी बड़े बादशाह का निवास स्थान है और किसी बड़े राज्य की राजधानी है। देहली, आगरा और कुस्तुनतुनियां की शोभा का ध्यान रखते हुए और सबका मुकाबला करते हुए मैं बिना किसी प्रकार का पक्षपात किए कह सकता हूं कि पेरिस सबसे अधिक सुंदर और अमीर तथा सारे संसार में मुख्य नगर है।

मुगल राज्य में पादरी—आगरे में जेविस्ट वर्ग के पादरियों का एक गिरजा और एक कालेज बना है, जहां वे पच्चीस या तीस ईसाई घरानों के लड़कों को धार्मिक शिक्षा देते हैं। मैं नहीं कह सकता कि ये ईसाई यहां क्योंकर आए। पर जहां तक मैं समझता हूं जेविस्ट लोगों की कृपा के कारण ही ये यहां रहते हैं। जिस समय भारत में पुर्तगीजों का बहुत जोर था उस समय अकबर ने उन्हें यहां बुला लिया था। यह उनके भरण-पोषण के लिए राज्य से कुछ रुपये देता था और प्रधान नगरों आगरा और लाहौर में गिरजे बनाने की आज्ञा भी उन्हें दे दी गई थी। उसके पुत्र जहांगीर ने उन पर और भी

अधिक कृपा की। पर जहांगीर के पुत्र और औरंगजेब के पिता शाहजहां ने उन्हें सहायतार्थ धन देना बंद कर दिया। लाहौर का गिरजा तुड़वा डाला और आगरे के गिरजे का वह बड़ा भाग भी गिरवा दिया जिस पर बड़ा घंटा बना हुआ था और जिसकी आवाज सारे शहर में सुनाई देती थी। जहांगीर बादशाह के समय से जेविस्ट वर्ग के पादरियों को अपने धर्म के अच्छी तरह प्रचार होने की बहुत कुछ आशा थी, क्योंकि वह मुसलमानी धर्म की कुछ परवाह नहीं करता और ईसाई धर्म पर अनुराग प्रगट करता था। यहां तक कि उसने एक बार अपने दो भांजों या भतीजों और एक व्यक्ति मिरजा जुलकर्नेम को खुल्लमखुल्ला ईसाई हो जाने की आज्ञा दे दी थी। मिरजा एक धनिक आर्मेनियर की स्त्री का पुत्र था जिसे बादशाह ने अपने महल में रख लिया था। मिरजा को ईसाई करने के लिए उसने यह बहाना किया था कि उसका जन्म ईसाइयों के घर हुआ है।

यही पादरी कहते हैं कि बादशाह की ईसाई हो जाने की इतनी प्रबल इच्छा हो गई थी कि उसने सारे दरबार को फिरंगियों के-से कपड़े पहनने की आज्ञा दे दी। यह सब कह चुकने पर उसने स्वंयं वैसे कपड़े पहन लिए और एक अमीर को बुलाकर उन कपड़ों के विषय में उसकी सम्मति मांगी। पर उसने ऐसा उत्तर दिया कि जहांगीर डर गया और विवश होकर उसने अपना यह विचार बदल दिया और उस बात को दिल्लगी में उड़ा दिया।

ये पादरी यह भी कहते हैं कि जहांगीर ने मरने के समय ईसाई होने की इच्छा प्रकट की थी और इसके लिए उसने पादरियों को बुलाने की आज्ञा भी दी थी, पर ये समाचार हम लोगों तक न पहुंचाए गए। बहुत-से लोग उनकी इस बात का विरोध करते हैं और कहते हैं कि जहांगीर मरने के समय भी वैसा ही नास्तिक और अधर्मी था जैसा अपने जीवन काल में। उसकी यह भी इच्छा थी कि अकबर की तरह अपने को पैगंबर प्रसिद्ध करे और स्वयं एक नवीन स्वतंत्र धर्म की नींव डाले। मैंने एक मुसलमान से जिसका पिता जहांगीर का नौकर था, यह भी सुना है कि एक दिन नाच रंग के समय जहांगीर ने फ्लोरेंस के एक पादरी को बुलाया जिसका नाम उसने (उसे स्वाभानुकूल) 'पादरी आतिश' रखा था। बादशाह की आज्ञानुसार जब बड़े बड़े मुसलमान मुल्लाओं के सामने उनके धर्म की पूर्ण रूप से निंदा और अपने धर्म की प्रशंसा कर चुका तो बादशाह ने कहा कि दोनों धर्मों के झगड़े का फैसला करने का यह बहुत अच्छा अवसर है और आज्ञा दी कि एक गड्ढा खोदकर उसमें आग जलाई जाए और पादरी आतिश अपने हाथ में इंजील लेकर और मुल्ला कुरान लेकर उसमें कूद पड़ें, उनमें से जो व्यक्ति बिना जले बाहर निकल आएगा उसी का धर्म स्वीकार किया जाएगा। पादरी आतिश ने इस बात को स्वीकार कर लिया, पर मुल्ला डर गए और बादशाह ने इस परीक्षा का न होना ही उत्तम समझा।

चाहे इन कहानियों में कुछ सत्यता हो या न हो, पर इसमें संदेह नहीं कि

जहांगीर के समय में दरबार में इन पादरियों की प्रतिष्ठा होती थी और उन्हें अपने धर्म के प्रचार की बहुत कुछ आशा थी, पर इसके बाद फादर बुजे और दारा की घनिष्ठता के अतिरिक्त इन लोगों को इस प्रकार की और कोई आशा न थी। इन मिशनरियों के संबंध में एक अलग पत्र लिखने की मेरी इच्छा थी, उनमें से कुछ बातें यहीं लिखता हूं।

इन मिशनरियों, विशेषकर कैप्यूशियन और जेविस्ट वर्गों तथा कुछ दूसरे वर्ग वालों का यह काम प्रशंसा के योग्य है। ये लोग बहुत ही नम्रता से उपदेश करते हैं और दूसरों की तरह अशिष्टता व असभ्यता का व्यवहार नहीं करते। अपने देश के ईसाइयों के साथ चाहे वे कैथोलिक, ग्रीक, आर्मीनियन, जैकोविट्स या किसी अन्य वर्ग का हो—बहुत ही सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हैं। विदेशियों को यह लोग अपने यहां ठहरा लेते हैं और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते, और अपनी विद्वत्ता, योग्यता तथा आदर्श चरित्र के कारण विधर्मी, अयोग्य और दुश्चरित्रों को लज्जित करते हैं। धर्म के कामों में हाथ डालने की अपेक्षा ऐसे लोगों को अपने घरों या गिरजे ही में पड़ा रहना अधिक उत्तम है, ऐसे लोगों का धर्म ऊपरी और दिखावा मात्र होता है और ऐसे लोगों के दुष्कर्मों एवं दुश्चरित्रों के कारण ख्रीष्ट धर्म पर बहुत बुरा धब्बा लगता है। पर किसी बात से सर्वसाधारण पर आक्षेप नहीं हो सकता। मैं इन बातों को नापसंद करता हूं और मेरी समझ में विद्वान और सुयोग्य पादरी इस काम के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। ऐसे ऐसे धर्माधिकारियों का सब स्थानों में होना ईसाई धर्म के लिए बड़े ही घमंड की बात है। यहां के काजियों के साथ रहने और उनसे संबंध रखने के कारण मैं कह सकता हूं कि और और स्थानों की तरह एक बार के उपदेश करने में दो-तीन हजार आदमियों को ईसाई बना लेना बिलकुल ही असंभव है। मैं उन सब स्थानों में हो आया हूं जहां मिशनरी स्थित हैं और मैं निज के अनुभव से कह सकता हूं कि केवल भारत ही नहीं बल्कि सारे मुसलमानी राज्यों में दान आदि के कारण कुछ अन्य विधर्मियों पर वे अवश्य अपना प्रभाव डाल सकते हैं पर दस वर्ष में भी वे एक मुसलमान को ईसाई नहीं कर सकते। इसमें संदेह नहीं कि मुसलमान हमारे धर्म का मान करते हैं। ख्रीष्ट का नाम हमेशा बड़ी प्रतिष्ठा से लेते हैं और कभी केवल 'ईसा' शब्द का उपयोग नहीं करते। बल्कि उसके पहले शब्द 'हजरत' लगा लेते हैं। हम लोगों की तरह वे भी विश्वास रखते हैं कि ख्रीष्ट किसी दैवी शक्ति के कारण कुंवारी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, और वह परमेश्वर की आत्मा थे। उनसे कभी यह आशा न रखनी चाहिए कि वे अपने उस धर्म को त्याग देंगे जिसमें उनका जन्म हुआ है और चाहे उन्हें कितने ही प्रमाण क्यों न दिए जाएं पर वे अपने पैगंबर को न तो कभी झूठा मानेंगे और न हमारा मत स्वीकार करेंगे। हमारे यूरोपियन ईसाइयों को उचित है कि वे यथाशक्ति तन मन धन से इनकी सहायता करें, और ऐसे ऐसे देशों में इन लोगों को भेजने का

प्रयत्न करें। मुसलमानी धर्म अत्याचार और अस्त्र-शस्त्र के बल से स्थापित हुआ है और अब भी उसका प्रचार इसी प्रकार होता है। और जहां तक मैं समझता हूं इसके रोकने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। चीन और जापान के उदाहरण से और उन कामों से जो जहांगीर के समय में हुए हैं हम लोगों को बहुत कुछ आशा रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अपने धर्म के प्रचार करने में ईसाइयों को एक और कष्ट का सामना करना पड़ेगा—अर्थात ईसाई अपने गिरजों में ईश्वर को प्रत्यक्ष मानकर भी बहुत-सी असभ्य और ईश्वरी नियम के प्रतिकूल बातें करते हैं, पर मुसलमानों में ये बातें बिलकुल नहीं हैं। मस्जिदों में मुसलमानों पर ईश्वरी भय छाया हुआ मालूम होता है। जिसके कारण बोलना तो दूर रहा वे अपना सिर भी नहीं हिला सकते।

डचों की कोठी—आगरे में एक कोठी डचों की भी है जिसमें साधारणतया चार या पांच आदमी रहते हैं। पहले वे लोग बानात, छोटे-बड़े शीशों, सादी सुनहरी और रुपहली लैस तथा छोटे-मोटे लोहे के सामान का व्यापार करते थे, जो कि आगरे के आसपास पैदा होता है। विशेषतया बयाना में जो आगरे से प्रायः छह मील दूर है, वे हर साल जाते हैं और वहां उन्होंने इसी काम के लिए एक कोठी बनवा रखी है। जलालपुर और लखनऊ से भी वे लोग नील खरीदते हैं जो आगरे से सात या आठ दिन के रास्ते पर है और जहां उनकी कोठियां हैं जिनमें हर साल उनके एजेंट जाया करते हैं। पर अब वे लोग कहते हैं कि उनमें अधिक लाभ नहीं है क्योंकि एक तो आर्मीनियन लोग वह काम अधिकता से करने लग गए हैं और दूसरे सूरत से आगरा आते समय ग्वालियर तथा बहरामपुर वाली सीधी सड़क को रास्ते में पहाड़ होने के कारण छोड़ देने और अहमदाबाद तथा अन्य रास्तों से होकर आने के कारण रास्ता बहुत बढ़ जाता है और उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। पर मेरी समझ में अंग्रेजों की तरह ये लोग भी अपनी कोठी आगरे से कभी न उठाएंगे क्योंकि गरम मसालों आदि के बेचने से बहुत कुछ लाभ हो जाता है। एक उन्हें यह भी है कि उनमें आदमी बादशाही दरबार के निकट रहते हैं और यदि बंगाल, पटना, सूरत या अहमदाबाद में—जहां इनकी कोठियां हैं—कोई हाकिम इन पर किसी प्रकार का अत्याचार करे या इनके साथ कोई अन्याय करे तो ये उसी समय उसके समाचार बादशाह के कानों तक पहुंचा सकते हैं।

ताजमहल—अब मैं अपने इस पत्र को उन दो मकबरों के वर्णन करके समाप्त करता हूं जिनके कारण आगरा देहली से बहुत बढ़ा चढ़ा है। पहला मकबरा जहांगीर ने अपने पिता अकबर के लिए बनाया था और दूसरा शाहजहां ने अपनी स्त्री मुमताज के लिए। मुमताज़ महल अपनी अपूर्व सुंदरता के कारण बहुत ही प्रसिद्ध थी। बादशाह उसे इतना चाहता था कि जब तक वह जीती रही उसने किसी दूसरी स्त्री का मुंह

न देखा और उसके मरने के समय दुख और चिंता के कारण इतना व्याकुल हुआ कि स्वयं भी मरने के निकट हो गया।

मैं अकबर के मकबरे के संबंध में कुछ न कहूंगा क्योंकि उसके सारे गुण और सारी सुंदरता ताजमहल में—जिसका वर्णन मैं अभी करूंगा, पूर्ण रूप से वर्तमान है। यदि आप आगरे से निकलकर पूरब की ओर चलें तो आपको एक लंबा चौड़ा पथरीला रास्ता मिलेगा जो धीरे धीरे ऊंचा होता जाएगा। उसके एक ओर एक बड़े बाग की (जो हमारे पैलेस रायल से भी अधिक बड़ा है) ऊंची और लंबी दीवार चली गई है। दूसरी ओर नए बने हुए मकानों की एक पंक्ति चली गई है जिनमें देहली के बाजारों की तरह जिनका कि वर्णन ऊपर किया जा चुका है महराबें बनी हुई हैं। इस दीवार के आधी दूर तक पहुंचने पर दाहिनी ओर (अर्थात इन मकानों की ओर) आपको एक बड़ा फाटक मिलेगा जो बहुत अच्छा बनाया हुआ है और वास्तव में वह एक सराय का फाटक है। और इसके सामने उस दीवार में एक दूसरे बड़े फाटक की इमारत है जिसमें से होकर बाग में जाना होता है और जिसके दोनों ओर पत्थर के दो बड़े हौज बने हुए हैं। चौड़ाई की अपेक्षा इस इमारत की लंबाई अधिक है और एक प्रकार के लाल रंग के पत्थर की बनी हुई है जो बहुत मुलायम होता है। इसका अगला भाग सेंटलूइस के अगले भाग के समान है जो हमारे यहां सेंट एंटनी (पेरिस के एक बाजार) में है और लंबाई तथा सुंदरता में उससे अधिक तथा ऊंचाई में उसी के समान है। हमारे देश की तरह आप यहां खंभे और कर्निसें वैसी सुंदरता से बनी हुई नहीं पाएंगे। ये बहुत ही विचित्र, सुंदर और निराले ढंग से बने होते हैं और मेरी समझ में इस योग्य होते हैं कि उनका वर्णन हमारे यहां की इमारत संबंधी पुस्तकों में किया जाए। सैकड़ों तरह के दालानों और महराबों पर जो एक-दूसरे पर बने हुए हैं, यह इमारत बनी है। देखने में यह बहुत ही सुंदर है और इसकी बनावट भी बहुत अच्छी है। इसमें कोई स्थान ऐसा नहीं है जो देखने में भद्दा मालूम हो बल्कि सारी इमारत ही सुंदर बनी है और उसके देखने से कभी जी नहीं भरता। अंतिम बार जब मैंने उसे देखा उस समय मेरे साथ फ्रांसीसी व्यापारी था। मुझे भय था कि बहुत दिनों तक भारत में रहने के कारण कदाचित मेरी समझ कुछ बदल गई हो और इसी कारण से मैंने अपनी सम्मति उससे प्रकट न की। पर एक ऐसे व्यक्ति से जो हाल ही में फ्रांस से आया था मैं यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ कि सारे यूरोप में उसने ऐसी सुंदर और शानदार इमारत कभी नहीं देखी।

बड़े फाटक में प्रवेश करते ही आप एक बड़े गुंबद के नीचे पहुंचेंगे जिसमें नीचे और ऊपर चारों ओर गैलरियां बनी हुई हैं, और आपकी दाहिनी तथा बाईं ओर दो दालान होंगे जो आठ या दस फुट ऊंचे हैं। आपको सामने एक और बड़ी महराब दिखाई देगी जिसके नीचे होते हुए आगे जाने पर एक रविश मिलेगी जो बाग को दो भागों में करती हुई उसके अंतिम भाग तक चली गई है। यह रविशें इतनी बड़ी

हैं कि इस पर छह गाड़ियां बराबर चल सकती हैं। यह रविश या पहली प्रायः आठ फुट ऊंची है और इसके किनारों पर पत्थर जड़े हुए हैं और इसके बीच में एक नहर है जिसमें स्थान स्थान पर फव्वारे लगे हुए हैं। इस रविश पर बीस या पच्चीस कदम चलकर यदि आप पीछे फिरकर देखें तो आपको उस इमारत का दूसरा भाग दिखाई देगा। यद्यपि यह भाग बाहर वाले भाग के समान नहीं तथापि बहुत ऊंचा है और उसकी बनावट भी बाहरी भाग की-सी है। इस इमारत के दोनों ओर उस बाग की दीवार में छोटे छोटे खंभों पर जो एक-दूसरे के निकट हैं एक दालान बना है। वर्षा काल में, सप्ताह में तीन दिन यहां भिखमंगे आते हैं जिन्हें शाहजहां की नियत की हुई खैरात दी जाती है।

इसी रविश पर और आगे जाने पर आपको एक बड़ा गुंबद मिलेगा जिसके नीचे कब्र हे और उसके नीचे दाहिनी और बाई ओर रविशें हैं जो पेड़ों सें ढकी हैं और हरा भरा बाग है। उस बड़े गुंबद के अतिरिक्त इस रविश के सिरे पर दोनों और दो इमारतें हैं जो फाटक वाली इमारत की तरह लाल पत्थर की बनी हैं। पीछे की ओर से ये दोनों इमारतें बाग की दीवार से मिली हुई हैं और उनमें प्रवेश करने के लिए तीन महराबदार फाटक हैं। इन महराबों के नीचे जाने पर अनुमान होता है कि ये बड़ी बड़ी और ऊंची गैलरियां हैं।

इन इमारतों के अंदर की छतों, फर्शों और दीवारों पर बहुत अच्छा काम किया हुआ है, पर यहां उनका वर्णन करना मैं अनावश्यक समझता हूं। क्योंकि इनमें जो काम किया हुआ है वह प्रायः वैसा है जैसा अंदर की इमारत का और जिसका वर्णन मैं अभी करूंगा। इस बड़ी रविश (जिसका वर्णन अभी किया गया है) और मकबरे के बीच में एक बड़ा एवं सुंदर मैदान है, जिसे मैं वार्टर पार्टियर कहूंगा, क्योंकि उसके फर्श में पत्थर इस प्रकार से लगे हुए हैं कि उन पर चलने पर आपको अनुमान होगा कि वे हमारे यहां के 'पार्टियर में' बाक्स की भांति लगे हुए हैं। इस पार्टियर के मध्य में खड़े होने पर आपको इस इमारत का वह भाग दिखाई देगा जिसमें मकबरा है और जिसका वर्णन मैं अभी करूंगा।

संगमरमर का बना हुआ एक बहुत बड़ा गुंबद है जो ऊंचाई में पेरिस के वाल डीग्रेश के लगभग है और इसके चारों ओर संगमरमर की बनी हुई बहुत-सी बुर्जियां हैं जिनके अंदर सीढ़ियां बनी हुई हैं। सारी इमारत चार बड़ी महराबों पर बनी हुई है इनमें तीन खुली हुई हैं और चौथी एक दीवार मे बनी हुई है जहां मुल्लाओं के बैठने के लिए स्थान बने हुए हैं। यहां बैठकर कुछ मुल्ला जो इसी बात के लिए नियत होते हैं ताजमहल की सुख शांति के लिए कुरान पढ़ा करते हैं। ये चारों महराबें संगमरमर की बनी हैं और इन पर संगमूसा (काले पत्थर) से बड़े बड़े अक्षरों में अरबी लिपि में लेख लिखा है जो देखने में बहुत सुंदर मालूम होता है। इस गुंबद का भीतरी भाग और सारी दीवार पर—एक सिरे से दूसरे सिरे तक संगमरमर जड़ा हुआ है और

इनमें कोई स्थान ऐसा नहीं है जिसमें कला-कौशल न दर्शाया गया हो और कोई विशेष सुंदरता न हो। ड्यूक आफ फ्लोरेंस के गिरजों की भांति यहां अनेक प्रकार के अफ्रीक तथा पत्थर लगे हुए हैं और दीवार में संगमरमर के ऊपर बहुमूल्य एवं सुंदर पत्थर सैकड़ों ढंगों के जड़े हुए हैं। फर्श पर संगमरमर और संगमूसा की सिलें बहुत ही सुंदरता से लगाई गई हैं।

इस गुंबद के नीचे एक छोटा-सा कमरा है जिसे मैंने अंदर से नहीं देखा है। वह साल में एक ही बार बड़े ठाट-बाट से खुलता है। उस स्थान की पवित्रता के कारण (जैसा कि वे लोग कहते हैं) किसी ईसाई को अंदर नहीं जाने देते पर जहां तक मैंने सुना है उसके अंदर कोई ऐसी विशेषता या सुंदरता नहीं है।

अब तक चबूतरे के अतिरिक्त और कोई स्थान ऐसा नहीं है जो वर्णन करने के योग्य हो, यह चबूतरा प्रायः बीस या पच्चीस कदम चौड़ा और उतना ही या उससे कुछ अधिक ऊंचा है और गुंबद से बाग की सीमा तक बना हुआ है। इस स्थान पर खड़े होने से बहुत से बाग, आगरा नगर तथा किले का एक भाग और अनेक बड़े बड़े अमीरों के मकान जो यमुना के किनारे किनारे बने हुए हैं दिखाई देते हैं। अब इस चबूतरे को देखते हुए जो इस बाग का एक भाग है आप ही निर्णय कीजिए कि मेरा यह कथन कि—ताजमहल प्रशंसा करने के योग्य स्थान है—ठीक है या नहीं ? संभव है कि भारत में रहने के कारण मेरी रुचि कुछ बदल गई हो, पर फिर भी मैं जोर देकर कह सकता हूं कि यह इमारत संसार की विचित्र चीजों में मिश्र के उन पिरामिडों की अपेक्षा गिने जाने के लिए अधिक योग्य है जो केवल अनगढ़ पत्थरों के ढेर मात्र हैं, जिन्हें दोबारा देखने पर मेरा जी उकता गया, जिनको देखने से यह अनुमान होता है कि एक पर एक पत्थर लाद दिए गए हैं और जिनमें कारीगरी या कला-कौशल का बहुत ही कम समावेश है।

मि. चैप्लेन के नाम पत्र

मूर्ति पूजक हिंदू

सूर्य ग्रहण—महाशय ! यदि मेरी स्मरण-शक्ति ठीक है तो मैं कह सकता हूं कि सूर्य ग्रहण के वे दो दृश्य जो सन् 1654 में फ्रांस में तथा सन् 1666 में हिंदुस्तान में देखे थे कभी न भूलूंगा। पहले ग्रहण के याद होने का कारण यह है कि मैंने अपने देश के सर्वसाधारण की मूर्खता और लड़कपन के कृत्य देखे थे। बहुत-से लोगों को तो भय ने इतना आ दबाया था कि उन्होंने ग्रहण से बचने के लिए बहुत-सी दवाइयां और जड़ी बूटियां मोल ली थीं। बहुतेरे अंधेरे कमरे और कोठरियों में छिप गए थे और ठठ के ठठ लोग गिरजाघरों में रक्षा के लिए पहुंच गए थे। बहुत-से बुद्धिमानों

पर तो इतना भय छा गया था कि ये लोग समझने लगे कि अब शीघ्र ही प्रलय होने वाला है और यह ग्रहण सारे संसार को नष्ट कर देगा। यद्यपि गेसेंडी खर्वल तथा अन्य प्रसिद्ध विद्वानों तथा ज्योतिषियों ने पहले ही प्रसिद्ध कर दिया था कि यह ग्रहण प्रकृति के विरुद्ध नहीं था, इससे पहले भी अनेक ऐसे ग्रहण बीत गए और उनसे संसार को किसी प्रकार की हानि नहीं हुई। इस ग्रहण में कोई विचित्रता या विशेषता न थी और मूर्ख नजूमियों की बतलाई हुई झूठी बातों से भय न करना चाहिए, तथापि हमारे देश के लोगों को संतोष न हुआ और उन मूर्खों की बातों में मैं भी फंस गया।

जो ग्रहण मैंने देहली में देखा था उसके याद रहने का कारण यह है कि उस समय भी मैंने भारतवासियों के बहुत-से ऐसे ही विचित्र कृत्य देखे थे। जिस समय ग्रहण लगने को था उस समय मैं अपने घर की छत पर चढ़ गया, यह घर यमुना किनारे था। यहां से मैं यमुना के दोनों किनारों का दृश्य—जो एक दूसरे से प्रायः तीन मील थे, भली भांति देख सकता था। मैंने देखा कि यमुना नदी के दोनों किनारों पर हिंदू कमर तक पानी में खड़े इस अभिप्राय से आकाश की ओर देख रहे थे कि ज्यों ही ग्रहण आरंभ हो त्यों ही वे लोग चटपट स्नान कर लें। छोटे छोटे बच्चे बिलकुल नंगे थे, मर्द भी प्रायः नंगे के समान थे, क्योंकि वे केवल एक धोती बांधे हुए थे और स्त्रियां या छोटी छोटी लड़कियां जिनकी अवस्था छह या सात वर्ष की थी, केवल एक एक कपड़ा पहने हुए थीं। बड़े बड़े राजा और रईस (जो प्रायः बादशाह के दरबारी थे) सर्राफ, कोठीवाल, जौहरी और अन्य अच्छे अच्छे व्यापारी सपरिवार यमुना के पार दूसरे किनारे पर चले गए थे वहां उन लोगों ने बहुत-से खेमे लगा रखे थे और स्त्रियों सहित नहाने, पूजा पाठ करने और पर्दा करने के लिए नदी में कनात लगा दी थीं। ग्रहण के लगते ही इन लोगों ने बहुत शोर मचाया और सब के सब पानी में गोते लगाने लगे। मैं नहीं कह सकता कि उन्होंने सब कितने गोते लगाए। इसके बाद वे लोग पानी में खड़े होकर आकाश की ओर मुख और हाथ किए पूजा और जप करने लगे। कभी वे जल उठाकर सूर्य की ओर फेंकते और सिर झुकाते तथा अपने हाथ कभी इधर कभी उधर हिलाते, और इसी प्रकार ग्रहण के मोक्ष तक ये लोग नहाते और पूजा करते रहे। जब वे जल से बाहर निकलने लगे उस समय उन्होंने बहुत-सी दुअन्नियां और चवन्नियां इधर उधर फेंकी और ब्राह्मणों को जो इस अवसर पर आने से नहीं चूके थे, बहुत कुछ दान देने लगे। मैंने देखा कि पानी से निकलने पर सबने नए वस्त्र तो पहले से रेत पर रखे थे पहने और बहुतों ने अपने पुराने वस्त्र वहीं छोड़ दिए। इस प्रकार मैंने अपने मकान की छत पर से ग्रहण देखा और गंगा, सिंध तथा भारत की और नदियों यहां तक कि तालाबों में भी उस समय प्रायः ऐसा ही हुआ। भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों से थानेश्वर में इस समय कोई डेढ़ लाख आदमी गए थे क्योंकि ग्रहण के अवसर पर वहां का जल और दिनों की अपेक्षा

अधिक पवित्र समझा जाता है।

मुगल सम्राट मुसलमान होने पर भी हिंदुओं की इन पुरानी बातों में हाथ नहीं डालता था। या तो वह इसमें हाथ डालना नहीं चाहता और या हाथ डालने का साहस नहीं करता। पर फिर भी ऐसे अवसरों पर पहले ब्राह्मण एक लाख रुपये बादशाह की नजर करते हैं और बादशाह की ओर से उन्हें केवल कुछ वस्त्र और एक बूढ़ा हाथी मिलता है। अब मैं यह बतलाता हूं कि वे इस पूजा पाठ आदि का क्या कारण बतलाते हैं।

वे कहते हैं कि ईश्वर ने ब्रह्मा के द्वारा हमें चार वेद दिए हैं। उनमें लिखा है कि एक राक्षस जो अपवित्र, दुष्ट और मैला है (यह बात वे स्वयं अपने मुख से कहते हैं) सूर्य को ग्रस लेता है, अर्थात उसे छूने दौड़ता है और परछाईं से सूर्य को काला कर देता है। यद्यपि सूर्य स्वयं देवता है पर वह संसार का हितकारक और दयालु है। इसलिए इस काले दुष्ट से बहुत दुख और कष्ट भोगता है। इसलिए सब लोगों को उसे इस कष्ट से मुक्त करने के लिए चेष्टा करनी चाहिए और उसके लिए जप तप पुण्य दान और स्नान आदि ही योग्य है। वे कहते हैं कि ऐसे अवसर पर दान पुण्य का बड़ा महात्म्य है और इस समय के दान का सौगुना फल होता है। फिर कौन व्यक्ति ऐसा है जो इस सौगुने लाभ वाले अवसर से चूके।

महाशय ! यही वे दोनों ग्रहण हैं जिनके संबंध में मैंने कहा था कि मैं इन्हें कभी न भूलूंगा। प्रसंगवश मैं आपको इन लोगों के और भी ऐसे ही हाल सुनाना चाहता हूं जिन्हें सुनकर आप जो उचित समझें इन लोगों के संबंध में अपने विचार निश्चित करें।

रथ यात्रा–बंगाल की खाड़ी के किनारे पर जगन्नाथ नामक एक नगर है जहां पर जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर है। जहां तक मुझे याद है प्रतिवर्ष आठ या नौ दिनों तक वहां एक उत्सव हुआ करता है। जिस प्रकार प्राचीन समय में हम्मन (यूनानियों और रूमियों के सबसे बड़े प्राचीन देवता ज्युपिटर का नाम हम्मन है) मंदिर में या आजकल मक्का में भीड़ होती है उसी प्रकार यहां भी होती है। कहा जाता है कि कभी कभी यहां डेढ़ लाख तक आदमी आया करते हैं। वे लोग लकड़ी का एक बड़ा रथ बनाते हैं जो भारत के और और स्थानों में देखा है। इस पर बहुत-सी विचित्र मूर्तियां बनी या रंगी होती हैं। किसी के दो सिर, किसी के दो धड़, किसी का आधा धड़ मनुष्य का और आधा पशु का अथवा और और ऐसे ही विचित्र आकार की मूर्तियां बनी होती हैं। इस रथ में 14 या 16 पहिए होते हैं और लगभग पचास या साठ आदमी इसे धकेलते या खींचते हैं। सबके बीच में जगन्नाथ जी की मूर्ति रखी होती है जिसे बहुमूल्य वस्त्र पहनाकर लोग अच्छी तरह सजा देते हैं और इस रथ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

पहले दिन जिस समय मंदिर में दर्शन होता है उस समय वहां भीड़ इतनी अधिक होती है कि कोई वर्ष ऐसा नहीं बीतता जबकि दूर दूर से चलकर थके मांदे किसी न किसी यात्री का वहीं प्राणांत न हो जाता हो। सब लोग उस समय उस व्यक्ति की बहुत ही प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि वह बड़ा भाग्यवान था जो इतनी दूर से चलकर यहां आकर मरा। जिस समय रथ गड़गड़ाता हुआ चलता है उस समय बहुत-से ऐसे व्यक्ति होते हैं जो धर्म पर विश्वास रखकर इसके भारी पहिए के आगे स्वयं गिर पड़ते और उसी समय मर जाते हैं। इन्हें विश्वास होता है कि यह कार्य बहुत अच्छा और वीरता का है। इस प्रकार मरने से जगन्नाथ जी उन्हें अपने निकट बुला लेंगे और दूसरे जन्म में उन्हें खूब वैभव और सुख मिलेगा।

ऐसे अवसरों पर ब्राह्मण अपने स्वार्थ के लिए (अर्थात पुण्य दान की चीजें पाने के लिए) लोगों को ऐसे कामों के लिए और भी उत्तेजना देते हैं और प्रायः ऐसी धूर्त्तता किया करते हैं कि यदि मैं स्वयं पूर्ण रीति से उनसे परिचित न हो जाता तो मुझे कभी उन पर विश्वास न होता। वे लोग किसी एक सुंदर कुमारी कन्या का जगन्नाथ जी से ब्याह करा देते हैं और रात को मंदिर में जगन्नाथ की मूर्ति के पास बैठाकर उसे विश्वास दिलाते हैं कि रात को स्वयं जगन्नाथ जी उसके पास आएंगे और उससे यह भी कह देते हैं कि इस वर्ष के शुभाशुभ अपनी पूजा, सवारी, रथ और दान आदि के संबंध में जो कुछ जगन्नाथ जी को आवश्यक हो वह उनसे (जगन्नाथ जी से) पूछ ले। रात के समय चोर दरवाजे से एक पुजारी उस मंदिर में चला जाता है और उस कुंवारी कन्या के साथ संभोग करता है और जो चाहता है वही उस बेचारी को विश्वास करा देता है ? दूसरे दिन वह फिर रथ पर उसी ठाट-बाट के साथ जैसा पहले दिन बैठाई गई थी जगन्नाथ जी की सहधर्मिणी बनाकर उसके साथ बैठा दी जाती है और रथ एक मंदिर से दूसरे मंदिर की ओर प्रस्थान करता है। वहां पहुंचने पर यह ब्राह्मण उससे कहते हैं जो कुछ रात को उसने जगन्नाथ जी से सुना हो वो जोर से सब लोगों को कह सुनावे। (शायद यह बात बर्नियर साहब के समय में होती रही हो या उन्होंने किसी से सुनकर लिख दिया हो, परंतु अब इन बातों का कहीं वहां जिक्र तक नहीं है—अनुवादक)

उत्सव के दिन रथ के आगे—और मंदिरों में भी—कस्बियों का नाच होता है और वे सैकड़ों प्रकार के भद्दे अश्लील इशारे करती हैं और ब्राह्मण उन सब बातों को भी धर्म का एक अंग बताते हैं। मैंने बहुत-सी ऐसी स्त्रियों (वेश्याओं) को देखा है जो सुंदरता में बहुत प्रसिद्ध हैं पर वे सर्वसाधारण के पास नहीं जातीं। उन्होंने बहुत-से मुसलमानों, ईसाइयों और हिंदुओं के साथ रहना और बहुत द्रव्य लेना अस्वीकार कर दिया क्योंकि उन्होंने अपने आपको देवताओं, मंदिरों के पुजारियों और उन साधुओं को अर्पण कर दिया है जो धूनी रमाए और जटा धारण किए मंदिरों में नंगे बैठे रहते हैं और जिनके संबंध की विशेष बातें मैं आगे चलकर कहूंगा।

सती–भारतवर्षीय स्त्रियों को अपने मृत पति के साथ जीवित जल मरने का हाल बहुत से विदेशी यात्रियों ने लिखा है और मैं समझता हूं कि उस पर कुछ न कुछ अवश्य विश्वास किया जाता होगा। मैं स्वयं भी अब कुछ इस विषय में लिखना चाहता हूं। पर हां, इसमें संदेह नहीं कि जो कुछ इसके संबंध में कहा गया है वह सर्वथा सत्य नहीं है और न अब सती होने वाली स्त्रियों की संख्या पहले की तरह अधिक होती है, क्योंकि मुसलमान जो आजकल भारतवर्ष का शासन करते हैं इन रस्मों के विरोधी हैं और जहां तक हो सकता है वे ऐसी बातों को रोकने की चेष्टा करते हैं। पर वे इन बातों का पूर्ण रूप में विरोध नहीं करते, क्योंकि बलवे के भय से वे अपनी मूर्ति पूजक प्रजा को जो संख्या में उनसे कहीं बढ़कर है अपने धर्म का पालन स्वतंत्र रीति से करने देते हैं। वे इन बातों का विरोध स्पष्ट रूप से करते हैं। मुसलमान हाकिम की आज्ञा पाए बिना स्त्री सती नहीं हो सकती। हाकिम उस स्त्री को अपने घर की स्त्रियों के पास भेज देता है जो उसे अनेक प्रकार से समझाती हैं। उसके साथ अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएं की जाती हैं और उसे सती होने की आज्ञा नहीं दी जाती। पर इतनी चेष्टाएं करने पर भी वह अपनी इच्छा पर दृढ़ रहती हैं और इतना होने पर भी सतियों की संख्या कुछ कम नहीं होती, विशेषतया उन राज्यों की सीमा के अंदर सतियां अधिक होती हैं जहां कोई मुसलमान हाकिम नहीं होता। मैं उन सतियों का पूरा हाल नहीं लिखूंगा जिन्हें मैंने स्वयं जलते देखा है, क्योंकि इससे यह प्रकरण बहुत ही बढ़ जाएगा और आप हैरान हो जाएंगे। मैं यहां केवल दो या तीन सतियों का हाल लिखूंगा और इसी से बाकी सतियों के संबंध में सब कुछ निश्चय कर सकेंगे। सबसे पहले मैं उस स्त्री का हाल लिखूंगा जिसे समझाने के लिए मैं स्वयं भेजा गया था।

हमारे आका दानिशमंदखां का मुख्य मुनीम और मेरा मित्र बेनीदास जिसका इलाज मैंने दो वर्ष तक किया तपेदिक की बीमारी से मर गया। उसकी स्त्री ने उसी समय अपने पति के शव के साथ जल जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर उसके संबंधियों ने जो आका के नौकर थे–आका की आज्ञा से उसे बहुत समझाया और कहा कि यद्यपि उसका सती होना बहुत ही उचित और योग्य है और सती होने से उसके संबंधियों का बहुत मान होगा तथापि उसे अपने उन बच्चों का भी ध्यान करना चाहिए जो अभी छोटे थे और इन बच्चों को यों ही न छोड़ देना चाहिए, उन छोटे बच्चों की भलाई का अधिक ध्यान रखना चाहिए। उसके संबंधी जब इन सब उपायों से सती होने से उसे रोकने में असमर्थ हुए तो उन्होंने मुझसे यह इच्छा प्रकट की कि मैं आका की ओर से और अपनी पुरानी मित्रता के संबंध से जाकर उसे समझाऊं। मैं गया और जब उसके मकान पर पहुंचा तो मैंने सात या आठ भयानक आकृति वाली बुढ़ियों और 4 या 5 बूढ़े ब्राह्मणों को शव के निकट रोते पीटते देखा, और वह विधवा स्त्री बाल खोले शव के पैरों की ओर बैठी हुई रो पीट रही थी,

उस समय उसका चेहरा पीला पड़ गया था और उसकी आंखों में आंसू न थे। जब रोना पीटना समाप्त हुआ तो मैं इन लोगों के और निकट चला गया और उस विधवा को धीरे-से समझाने लगा कि मैं दानिशमंदखां की ओर से आया हूं, यदि तुम सती न हो और दोनों उन बच्चों का लालन-पालन करो तो आका उन दोनों बच्चों के लिए पांच पांच रुपये प्रति मास देंगे। और यदि तुम्हारी सती होने की इच्छा इतनी ही अधिक प्रबल है तो हम और उपायों से तुम्हें सती होने से रोक लेंगे और साथ ही उन लोगों को दंड भी दिया जाएगा जो तुम्हें सती होने के लिए उत्तेजित करते या भड़काते हैं। इस समय सती होने से तुम्हारे संबंधी संतुष्ट नहीं हैं, और उन स्त्रियों की अपेक्षा तुम्हारी अधिक बदनामी नहीं होगी जो पति के मर जाने और किसी संतति के न होने पर भी सती नहीं होतीं। मैंने इन्हीं बातों को कई बार उसके सामने दोहराया पर उसने कोई उत्तर न दिया, अंत में उसने कहा कि यदि मैं सती न होने पाऊंगी तो अपना सिर दीवार पर पटक दूंगी। मैंने मन में कहा कि क्या इस पर कोई भूत सवार है और इसके उपरांत जोर से चिल्लाकर उससे कहने लगा कि—अच्छा, तो ले पहले इन दोनों बच्चों का गला काट ले और फिर सती हो जा, मैं अभी दानिशमंदखां के पास जाता हूं और वह रुपये जो मासिक मिलने को थे बंद कराता हूं। मैंने यह बातें बहुत जोर और धमकाते हुए कही थीं जिससे उस स्त्री तथा और लोगों पर जो उस समय उसके पास थे अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने चुपचाप अपनी गर्दन नीचे झुका ली और वृद्धा स्त्रियों तथा ब्राह्मणों का वह झुंड धीरे धीरे वहां से चला गया। मैंने उस स्त्री को उसके उन संबंधियों के सुपुर्द कर दिया जो मेरे साथ आए थे। अब मैं समझ गया कि मेरा कर्तव्य पूरा हो चुका और अपने घोड़े पर सवार होकर घर चला गया। संध्या के समय जब मैं आका को सब वृत्तांत सुनाने जा रहा था तो रास्ते में मुझे उसके संबंधी मिले जिन्होंने मुझे धन्यवाद दिया और कहा कि मृतक की दाहक्रिया कर दी गई और विधवा उसके साथ सती नहीं हुई।

स्त्रियों के सती हो जाने के भयंकर दृश्य मैंने इतनी बार देखे हैं कि अब फिर देखने की इच्छा बिलकुल नहीं है और जब मैं उन दृश्यों का ध्यान करता हूं तो अब भी मुझे बहुत भय मालूम होता है। तो भी मैं उनमें से कुछ घटनाओं का वर्णन करूंगा। पर मैं उनके उस उत्साह और धैर्य का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकता कि जिससे वे इस भयानक कृत्य के लिए उद्यत होती हैं। इनका पूरा हाल देखने ही से विदित हो सकता है।

जब मैं अहमदाबाद से—राज्यों में से होता हुआ—आगरे की ओर जा रहा था तो एक दिन साथियों सहित आराम करने के लिए छांव में गया। मैंने सुना कि एक स्त्री अभी अपने मृत पति के साथ सती हुआ चाहती है। मैं उसी समय दौड़ता हुआ वहां पहुंचा। देखा कि एक बड़ा गड्ढा खोदा हुआ है उसमें बहुत-सी लकड़ियां चुनी रखी हैं। लकड़ियों के ऊपर एक मृत देह पड़ी है जिसके पास एक सुंदरी लकड़ियों

के उसी ढेर पर बैठी हुई है। चारों ओर से चार पांच ब्राह्मण उस चिता में आग दे रहे थे, पांच अधेड़ स्त्रियां जो अच्छे अच्छे वस्त्र पहने थीं एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चिता के चारों ओर नाच रही थीं और इन्हें देखने के लिए बहुत-सी स्त्रियों और पुरुषों की भीड़ लगी थी। इस समय चिता में आग अच्छी तरह जल रही थी क्योंकि उस पर बहुत-सा तेल और घी डाल दिया गया था। मैंने देखा कि आग उस स्त्री के कपड़ों तक जिनमें सुगंधित तेल, चंदन, कस्तूरी आदि मली हुई थी—भली भांति पहुंच गई। मैंने यह सब देखा, पर मुझे उस स्त्री में किसी प्रकार के दुख या कष्ट के चिह्न नहीं दिखाई दिए। हां कहा जाता है कि उसने बड़े जोर से पांच दो का उच्चारण किया जिसका अर्थ पुनर्जन्म के मानने वालों के कथनानुसार यह होता है कि अब की पांचवीं बार यह स्त्री इसी पति के साथ सती हुई है और अब केवल दो बार सती होना बाकी है, और या तो यह बात उसे उस समय याद आ जाती है या उसमें किसी देवता का अंश आ जाता है। लेकिन इतने ही से इसकी समाप्ति नहीं हुई। मैंने अनुमान किया कि यह पांचों स्त्रियां यों ही नाच गा रही हैं, पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जब उनमें से एक स्त्री के कपड़ों तक आग पहुंची तो वह भी उसी जलती चिता में कूद पड़ी और इसी तरह जब दूसरी के कपड़ों में आग लगी तो वह भी उसी में कूद पड़ी। मुझे यह देखकर और भी अधिक आश्चर्य हुआ। बाकी दोनों स्त्रियां बिना किसी प्रकार के भय और उसी तरह एक-दूसरे का हाथ पकड़कर नाचने लगीं और अंत में उन्होंने पहली दोनों स्त्रियों का अनुकरण करते हुए उस चिता में अपने प्राण दे दिए। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मैं इसका कुछ मतलब न समझ सका, पर मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि यह पांचों दासियां थीं और जब उन्होंने देखा कि उनकी स्वामिनी अपने पति के बीमार होने से बहुत दुखित और चिंतित है और पति के साथ सती होगी तब उन्होंने भी उसके साथ सती होने का निश्चय कर लिया। बहुत-से लोगों ने जिनसे मैंने सती के संबंध में बातचीत की थी, मुझे यह विश्वास दिलाना चाहा कि सती होने का कारण पति का प्रेम ही है। पर अंत में मैं समझ गया कि इसका कारण पति और विश्वास है। माताएं इन्हें बचपन से यह शिक्षा देती हैं कि अपने पति के साथ सती हो जाना प्रशंसा और पुण्य का काम है और पतिव्रता स्त्री सदा सती हो जाती है। इस प्रकार की शिक्षा का बीज उनके हृदय में अज्ञानावस्था ही से बो दिए जाते हैं पर वास्तव में यह सब मर्दों की धूर्त्तता है जो इसी प्रकार स्त्रियों को अपने बस में कर लेते हैं और फिर इन्हें यह भय भी नहीं रहता कि बीमारी के समय में स्त्री अच्छी तरह उनकी सेवा शुश्रूषा न करेगी अथवा उन्हें जहर दे देगी।

अब मैं आपको एक और सती का वृत्तांत सुनाता हूं जिसमें औरों की अपेक्षा कुछ अधिक विशेषता है। उस समय मैं स्वयं वहां उपस्थित नहीं था। इससे आप कदाचित उस पर विश्वास न करें लेकिन मैंने भी इसी प्रकार की घटनाएं देखी हैं

जो प्रायः मुझे असंभव मालूम होती थीं। यह घटना भारत में इतनी अधिक प्रसिद्ध हो गई है कि अब यहां उसके संबंध में किसी को कुछ संदेह न रह गया, और संभव है कि आपने इसका हाल यूरोप में भी सुना हो।

एक स्त्री का अपने पड़ोसी मुसलमान युवक के साथ जो दर्जी था और तंबूरा भी अच्छा बजाया करता था, अनुचित प्रेम था। स्त्री ने उस युवक से विवाह हो जाने की आशा पर अपने पति को विष दे दिया और उस दर्जी के पास जाकर उसने कहीं भाग चलने की इच्छा प्रकट की और यह भी कहा कि यदि हम लोग भाग न चलेंगे तो मुझे अपने मृत पति के साथ सती होना पड़ेगा। पर उस युवक ने इस काम को बुरा और अनुचित समझकर उसकी प्रार्थना अस्वीकार की। उस स्त्री को इस पर कुछ आश्चर्य न हुआ वरन उसने अपने संबंधियों से अपने मृत पति की अचानक मृत्यु का हाल कहा और पति के साथ सती होने की दृढ़ इच्छा प्रकट की। वे लोग उसके इस कृत्य से—जिससे उनके कुल की प्रतिष्ठा थी बहुत ही संतुष्ट हुए, उसी समय उन्होंने एक गड्ढा खोदा उसमें लकड़ियां चुनकर तैयार कीं और उन पर शव रखकर नीचे से आग लगा दी। सब चीजें तैयार हो गईं और वह स्त्री अपने संबंधियों से जो उस समय पास ही खड़े थे गले मिलने और उनसे विदा होने के लिए चली। इस देश की रीति के अनुसार बहुत-से बाजे वाले भी उस समय बुलाए गए थे और उनमें वह मुसलमान तंबूरे वाला युवक भी था। उसे देखते ही वह स्त्री क्रोध से आग बबूला हो गई और उसकी ओर इस तरह बढ़ी मानो उससे विदा होने जा रही हो। पर साधारण रीति से गले लगने के बदले उसने उसका गला जोर से पकड़ लिया, उसे घसीटती हुई चिता की ओर ले गई और उसे साथ लिए ही जलती आग में कूद पड़ी जिससे वह दोनों जलकर राख हो गए।

सूरत से फारस की ओर जाते हुए मैंने एक अधेड़ सुंदरी को सती होते देखा था। उस समय वहां पेरिस के मांशियर चार्डिन तथा और कई अंग्रेज और डच उपस्थित थे। उसकी गंभीरता और प्रसन्नता—जो उस समय उसके मुख पर झलक रही थी—विचित्रता से स्नान करना और संबंधियों से बात करना, हम लोगों की ओर देखना, अपनी कुटी पर दृष्टिपात करना जो घास फूंस और छोटी छोटी लकड़ियों से चिता पर बनी हुई थी, अपने पति का सिर गोद में रखकर चिता पर बैठना, अपने हाथों से एक मशाल से चिता में आग लगाना, चारों ओर से ब्राह्मणों का उस चिता को जलाना आदि आदि बातें ऐसी थीं कि जिनका पूरा वर्णन करना मेरे लिए बिलकुल ही असंभव है और यद्यपि इस घटना को देखे मुझे थोड़े ही दिन हुए तो भी अब मुझे उस पर कठिनता से विश्वास होता है।

मैंने कुछ ऐसी स्त्रियों को देखा है जो चिता और अग्नि को देखते ही भयभीत हो जाती हैं और जो कदाचित अवसर पाकर भाग भी जाती हैं। वे ब्राह्मण जो उस समय बड़े बड़े लठ लिए हुए उनके पास खड़े होते हैं केवल उन्हें उत्तेजित ही नहीं

करते वरन कभी कभी चिता में ढकेल भी देते हैं। मैंने स्वयं देखा है कि एक बार ब्राह्मणों ने एक स्त्री को जो चिता से पांच छह कदम दूर ही से हिचकने लगी थी, ढकेल दिया और एक बार जब एक स्त्री के कपड़े तक आग लगी और उसने भागना चाहा तो इन ब्राह्मणों ने लंबे लंबे बांसों की सहायता से उसे फिर चिता में ढकेल दिया। मैंने प्रायः ऐसी सुंदर स्त्रियों को देखा है जो ब्राह्मणों के हाथ से बचकर निकल जाती हैं और उन नीच जाति के लोगों में मिल जाती हैं जो यह जानकर कि सती होने वाली युवती सुंदर है और उसके साथ अधिक संबंधी नहीं होंगे तो उस स्थान पर अधिकता से एकत्र हो जाते हैं। जो स्त्रियां चिता देखकर डरती और इस प्रकार भाग जाती हैं वे अपनी जाति वालों से मिलने या उनके साथ रहने की आशा कभी नहीं कर सकतीं, क्योंकि वे लोग उसे बहुत बदनाम कर देते हैं और उसके इस अनुचित कार्य से अपने धर्म की अप्रतिष्ठा समझते हैं। जिन लोगों के साथ ये स्त्रियां अपना बचा हुआ जीवन व्यतीत करती हैं, भारत में उनकी गणना भी बहुत ही नीची जातियों में की जाती है। विपत्ति में पड़ने के भय से कोई मुगल ऐसी स्त्री की रक्षा नहीं करता। हां कभी कभी कुछ पुर्तगीजों ने जो समुद्र तट पर रहते और जहां उनकी विशेष प्रबलता है ऐसी स्त्रियों को बचा लिया है। इन ब्राह्मणों के कृत्यों को देखकर कभी कभी मुझे इतना अधिक दुख और क्रोध हुआ है कि यदि मेरा वश चलता तो मैं उनका गला घोंट देता। मुझे याद है कि लाहौर में एक बहुत ही सुंदर लड़की को मैंने जलते हुए देखा, मैं समझता हूं कि उसकी अवस्था बारह वर्ष से अधिक न होगी। वह लड़की उसी तरह चिता के निकट लाई गई। भय के कारण अधमरी-सी मालूम होने लगी, वह कांपती और बिलख बिलख कर रोती थी। इतने में तीन चार ब्राह्मण जिनके साथ एक बुढ़िया भी थी और जो उस लड़की को अपनी गोद में लिए हुए थी, आए और उसे चिता पर बैठा दिया, उसके हाथ और पैर बांध दिए और इस प्रकार उसे जीवित ही जला दिया। यद्यपि दुख और क्रोध के कारण उस समय मैं आपे से बाहर हो गया था तथापि मैंने अपने आपको बड़ी कठिनता से—विवश होकर रोका और केवल उन्हीं बातों को स्मरण करके मैंने संतोष किया जो कि कवि ने उस अवसर पर कहे थे जब कि एनेमेमन ने ग्रीस वालों के स्वार्थ के लिए जिनका कि वह नेता था अपनी कन्या इफीजीनियां को डायनी देवी के आगे बलिदान दिया था। यथा—

"धर्म मनुष्यों से कैसे कैसे बुरे और अनुचित कार्य करा सकता है।"

इसके अतिरिक्त यहां और भी बहुत-सी अनुचित रस्में हैं जो यहां के ब्राह्मण और देश के और भागों में कराया करते हैं। अर्थात जब कोई स्त्री विधवा हो जाती है तब वे उसे नहीं जलाते वरन जीवित ही गले तक जमीन में गाड़ देते हैं और फिर दो या तीन ब्राह्मण आकर उसका गला मरोड़ या दबा देते हैं, और इसके उपरांत उसके ऊपर थोड़ी-सी मिट्टी डालकर पैरों से रौंद डालते हैं। अस्तु अब मैं इस देश

की और दूसरी रस्मों का वर्णन करता हूं।

शवदाह—हिंदू प्रायः अपने मुर्दों को जला देते हैं। पर कोई कोई ऐसे भी होते हैं जो उनके किसी अंग को घास से जलाकर और शव को नदी के किनारे किसी ऊंचे स्थान से नीचे की ओर ढकेल देते हैं। मैंने कई बार गंगा जी के किनारे पर लोगों को ऐसा करते देखा है।

कभी कभी जब ये लोग किसी व्यक्ति को मृत्यु के निकट देखते हैं तो उसे नदी के तट पर ले जाते हैं (एक बार ऐसे अवसर पर मैं स्वयं उपस्थित था) वे पहले उसके पैरों को जल में डाल देते हैं और फिर धीरे धीरे खिसकाकर गले तक पानी में डुबा देते हैं। जब उसका सांस निकलने लगता है तब वे उसे अच्छी तरह पानी में डुबाकर वहीं छोड़ देते हैं और फिर रोते पीटते हैं। वे कहते हैं कि ऐसा करने से आत्मा के सारे पाप जो उसने जीवित अवस्था में किए थे, छूट जाते हैं। केवल अपढ़ लोगों ही का यह कथन नहीं है किंतु बड़े बड़े सुशिक्षित भी इसका समर्थन करते हैं।

साधु और संन्यासी—भारत के साधु-संन्यासी और जोगियों के अनगिनत भेद हैं, उनमें से अधिकांश के पास एक मठ होता है जिसका पूरा अधिकार वहां के महंत या गुरु के हाथ में होता है। यह लोग अपना सारा जीवन ईश्वर आराधना आदि में इस प्रकार व्यतीत करते हैं कि मुझे संदेह होता है कि यदि मैं उसका वर्णन आप से करूं तो आप उस पर विश्वास करेंगे या नहीं। साधारणतया यह लोग योगी कहे जाते हैं जिसका अर्थ है ईश्वर तक पहुंचा हुआ। यह लोग सदा या तो नंगे रहते हैं और या दिन रात राख पर पड़े रहते हैं। प्रायः यह योगी किसी तालाब के किनारे एक बड़े वृक्ष की छांह में अथवा किसी देव मंदिर के दालानों में पड़े रहते हैं। किसी के बाल उलझे हुए उसके घुटनों तक लटकते रहते हैं और कोई कोई अपना एक वा दोनों हाथ ऊपर को उठाए रहते हैं। उनके नाखून प्रायः बढ़कर मुड़ जाते हैं और नाप में वह छोटी उंगली से आधे होते हैं। उनके हाथ छोटे और दुबले होते हैं, क्योंकि सदा ऊपर ही की ओर उठे रहने के कारण वे बढ़ नहीं सकते, और जोड़ों के सूख जाने के कारण वे नीचे की ओर नहीं झुक सकते जिससे ये रोगी और साधु कुछ खा पी नहीं सकते। इनके साथ साथ शिष्य या चेले भी हुआ करते हैं जो इनको पूज्य मानकर इनकी सेवा किया करते हैं।

देशी राजाओं के राज्य में मैंने प्रायः ऐसे ऐसे साधुओं के झुंड के झुंड देखे हैं। कोई ऊपर की ओर हाथ उठाए रहते हैं, कोई अपने लंबे लंबे बाल खोले या सिर में लपेटे रहते हैं, किसी के हाथ में सोटा होता है और किसी के कंधे पर शेर की खाल पड़ी होती है। ये लोग गलियों और बाजारों में नंगे घूमा करते हैं। मुझे

आश्चर्य होता है कि स्त्रियां, पुरुष और लड़के किस तरह उन्हें देख सकते हैं और उनके निकट जाकर उन्हें शिक्षा देते हैं।

देहली के बाजार में मैंने सरमद (यह पहले यहूदी था पीछे मुसलमान हो गया) नामक एक व्यक्ति को बहुधा देखा है। वह सदा नंगा फिरा करता था, एक बार औरंगजेब ने उसे कपड़े पहनाने की आज्ञा दी पर उसने उसे अस्वीकार किया और इसीलिए उसका सिर काट लिया गया था।

बहुत-से साधु-संन्यासी बहुत दूर दूर की यात्रा करते हैं बल्कि ऐसे अवसर पर नंगे रहने के अतिरिक्त लोहे की बड़ी बड़ी सिकड़ियों से भी लदे फंदे रहते हैं। बहुत-से साधुओं को मैंने किसी विशेष तपस्या के वास्ते बिना बैठे या पड़े सात सात और आठ आठ दिन खड़े खड़े बिताते देखा है, रात के समय केवल कुछ घंटों के लिए किसी वस्तु के सहारे झुक जाने के सिवाय दूसरा कोई सहारा नहीं लेते। इससे प्रायः उनकी पिंडलियां सूजकर जांघों के बराबर हो जाती हैं। कोई कोई साधु फकीर घंटों हाथों के बल सिर नीचे और पांव ऊपर किए बड़े उत्साह के साथ खड़े रहते हैं। बहुत-सी अवस्थाओं में ये लोग अपने नेत्रों को दुख देते हैं।

मैंने सुना है कि ये साधु फकीर बड़ी बड़ी कठिन तपस्याएं इस आशा पर करते हैं कि अगले जीवन में हम राजा होंगे और यदि राजा न भी हुए तो भी हमारा जीवन राजाओं से अधिक सुखमय होगा।

कुछ साधुओं के संबंध में लोगों को यह विश्वास होता है कि वे पूर्ण ज्ञानी और महात्मा होते हैं। वे लोग नगर से दूर किसी एकांत स्थान में निवास करते हैं और अपने स्थान से कहीं नहीं जाते। यदि कोई इन्हें भोजन की सामग्री आदि लाकर दे दे तो वे खा लेते हैं और नहीं तो वे महात्मा बिना भोजन ही के रह जाते हैं।

एक प्रतिष्ठित योगी ने एक बार मुझसे कहा था कि हम लोग घंटों तक ईश्वर का ध्यान करते हैं और ऐसी अवस्था में हमारी सब इंद्रियां निर्जीव हो जाती हैं और हमें साक्षात परब्रह्म परमेश्वर के दर्शन होते हैं।

इन साधुओं की ईश्वर की ओर ध्यान लगाने की भिन्न भिन्न परिपाटियां हैं जैसे कोई कोई साधु पहले बहुत दिनों तक बिना कुछ खाए पिए एकांत में रहते हैं और फिर आकाश की ओर निगाह जमाकर देखते रहते हैं। और जब इस प्रकार वे पूरे अभ्यस्त हो जाते हैं तो दोनों आंखें इस प्रकार नीची करते हैं कि एक ही समय में नाक का ऊपरी भाग तथा दोनों नथने दिखलाई दें। इसी प्रकार कुछ दिनों अभ्यास करने से उन्हें एक दिव्य ज्योति के दर्शन होते हैं।

जादूगर आदि—अब मैं कुछ ऐसे फकीरों का हाल लिखता हूं जो उपर्युक्त साधुओं से बिलकुल ही भिन्न और विचित्र हैं। ये लोग प्रायः देश भर में घूमा करते हैं और प्रत्येक वस्तुओं को व्यर्थ बतलाते हैं। सर्वसाधारण का विश्वास है कि वे सोना बनाना

जानते हैं और पारे को ऐसी उत्तमता से शुद्ध कर देते हैं कि यदि कोई बीमार दो चावल के बराबर खाए तो शीघ्र ही निरोगी और हृष्ट पुष्ट हो जाए। उसके खाने से पाचन शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि भारी अधिक भोजन करने पर भी वह शीघ्र पच जाता है। जब कभी ऐसे दो फकीर मिल जाते हैं तो वे बहुत-सी विचित्र बातें दिखलाते हैं। वे किसी व्यक्ति के आंतरिक भावों को बतला देते हैं। एक घंटे में किसी पेड़ की एक डाली को जमीन में गाढ़कर उसमें फल फूल और पत्ते लगा देते हैं। और पंद्रह मिनट में अंडे को बगल में रखकर जो जानवर आप कहें पैदा कर देते हैं जो उसी समय इधर उधर कमरे में उड़ने लगते हैं। पर मुझे दुख है कि इसके अतिरिक्त और जो कुछ मैंने इन जादूगरों की प्रशंसा सुनी है उसके सत्य होने के मुझे कोई प्रमाण नहीं मिले। एक बार मेरे आका ने एक बाजीगर को बुलाया और उससे कहा कि यदि तुम कल मेरे मन की बात बतला दोगे तो मैं तुम्हें तीन सौ रुपये दूंगा। उसी समय मैंने भी कहा कि यदि मेरे मन की बात बतला दी जाएगी तो मैं भी पचीस रुपये दूंगा। पर फिर वह कभी लौट कर हम लोगों के मकान की ओर न आया। एक बार और भी मैंने एक जादूगर को किसी बात पर बीस रुपये देने को कहा था पर फिर भी मुझे निराश ही होना पड़ा। इसके अतिरिक्त मैंने आज तक कोई ऐसा विचित्र तमाशा नहीं देखा जिसे मैं न समझ सकता। जब कभी मैं ऐसे तमाशे के स्थान पर जा निकलता जिसे देखकर लोग चकित होते थे तो मैं उस बाजीगर से बहुत-से प्रश्न करता और जब तक मुझे उसकी चालाकी का पूरा पता न लग जाता तब तक मैं उसी प्रकार प्रश्न करता रहता था। मुझे स्मरण है कि मैंने एक बार एक व्यक्ति की चालाकी ताड़ ली थी जिसने कहा था कि मैं कटोरा दौड़ाकर चोर को पकड़ लूंगा।

कुछ फकीर केवल एक धोती पहने हुए एक सफेद चादर ओढ़े हुए नंगे पैर बाजारों और गलियों में घूमा करते हैं। ऐसे फकीर दो दो होकर फिरते हैं और हाथ में एक छोटा-सा मिट्टी का पात्र लिए रहते हैं। ये लोग गली गली भीख न मांगकर हिंदुओं के घरों में चले जाते हैं जहां इनका बहुत आदर सत्कार होता है और घरवाले उनके आगमन से अपने को कृतार्थ समझते हैं।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित

5) Procedure: (i) Fix the 2 nos. of 2-w switches on the Board.

(ii) connect the 2 terminals (One side) of each switch with a short pc. of wire.

(iii) Connect the circuit with 6 pcs. of clipped wires as shown in diagram.

6) Observation: See the effects of light with operations of switches alternatively.

7) Precaution: Connect the common terminals of switch - 1 to Battery (+) and the common terminal of switch - 2 to lamp respectively.

8) Suggestion for further work:

(i) Make a wiring plan of a stair-case lighting, placing the lamp on ending of stair-case, one 2-way switch at ground floor and another switch at first floor.

(ii) Think for, controlling 2 lamps by one 2-way switch.

....

Minimum Level of Learning in Environmental Studies (Science) for Classes I - VIII

Compiled by : Dr.P.K.Durani

Aims :

The module on minimum package content in environmental Sciences aims (i) to foster the acquisition by teachers of knowledge, skills and attitudes useful to teaching about the environment and its problems, (ii) to help develop teaching competencies and (iii) to stimulate initiative in including environmental dimensions in the primary school curriculum. While teaching environmental sciences as a self contained course, the teacher should fulfil the main aims:

1. that he himself possesses the knowledge, cognitive skills and effective attributes to be imparted to the students at the primary level and
2. that these acquired attributes fulfil the aims of environmental education.

Objectives:

The specific objectives include:

a) that educator is acquainted of need, the importance, the goals and guiding principles of environmentaal studies,

b) that an educator is well acquainted of environmental concepts, realizes the totality of environment as a rational for the use of interdisciplinary approach in school,

c) to familiarise the teacher and teacher educators with certain activities and experiments related to teaching and teaching of the environmental dimension of the primary school curriculum.

Contd....

Concepts (Major)

Environment encomparising everything living and non-living objects may be conveniently regarded as an amalgamation of Bio-physical and socio-cultural facts.

The module will treat the content in the Bio-physical facet of environmental sciences under two headings:

1. Biophysical component and

2. Ecosystem interrelationship

Concept 1: Biophysical component includes

a) Physical environment:

Planet earth is one of the nine planets that revolves around an incandescent ball of gaseous star - the Sun. The earth has i) an atmosphere of its own with O_2, N_2 and CO_2 as life sustaining components. ii) a temperature which can support life, iii) an input of tremendous quantities of energy from sun and iv) the main stay of the basic life sustaining energy conversion reaction .- PHOTOSYNTHESIS which is most important single factor influencing living system.

The earth may be regarded as a 'system' within the 'systems'. The various systems that control the life on earth are (a) abiotic system or physical environment comprised of weather and climate, rocks and soil and (b) biotic components comprised of plants, animals and microbes. All the Abiotic components are highly interrelated and interdependant on the biotic component of the environment.

Contd....

List, temperature, rainfall and wind are the <u>components of climate:</u>

- Light affects photosynthesis in plants and reproduction in living systems.
- Temperature controls bio-chemical processes, transpiration and evaporation from plant and animal surfaces. We have warm blooded animals (the birds and mammals) with wide range of temperature tolerances and cold blooded animals (Fishes) with narrow range of tolerances. Thus we have Eurythermal (Wider range of temperature tolerances) and stenothermal (narrow range of temperature tolerances) organisms.
- Rainfall and other forms of water like snow, ice, hail, frost, dew (collectively known as precipitation) control the abundance, composition, diversity, distribution and structure of all living organisms. Thus we have desert vegetation, forest vegetation, grasslands, thorns and bushes - all determined by amount and distribution of precipitation per year.
- The direction and intensity of wind controls, size and shape of plants, evapo-transpiration, translocation of particulate matter like dust, sand and pollen and translocation of water vapours from soil and living organisms and waste gases from industrial installations.
- <u>Plants and animals are also greatly influenced by</u> physiographic factors: Physiographic factors include altitude, latitude, longitude and the steepness of the region, nature of the underlying rocks and the extent of weathering and erosion. It should be understood that physiographic factors have implication on temperature and atmospheric pressure, plant and

Contd...

animal population including man (altitudinal effect), soil building (Weathering effect) and the stability of soil surfaces, topography etc. (nature of rock effect).

Soil factor includes the nature and type of soil.

Soil texture, porosity, aeration, water holding capacity, micro-organisms and humus content determine the soil factors.

Soil humus deserves a special mention. Dead animals and plants (litter) under the unfluece of several microscopic organisms (bacteria, fungi, protozoa and macro-organisms (earth-worms, ants mlnts etc.) break down into a morphous black particiculate matter known as 'humus' that ultimately mingles and integrates with soil particles. Further disintegration of 'humus' releases all the minerals tapped in it thus enriching and replenishing the soil with the minerals removed by plants when alive. Humus content also determines physical porosity, water holding capacity, aeration etc.) and chemical (acidity, alkalinity, mineral and nutrient content etc.) characteristic in the soil.

b) Biological System:

Biological system consists of Plants, animals and microbes.

Biological components consists of diverse types of plants, animals and microbes ranging from single celled simple microscopic organisms like Amoeba, Chlorella, Vacteria, to highly complex multi-cellular forms like trees, herbs and shrubs , several algae, edible and poisonous mushrooms, fish, toads, flesh-eating animals like lion and tiger, mamoth elephants and above all man himself. Some of these living organisms are autotrophs (self feeding) like trees of the forests, grasses of grassland,

Contd....

algae of ponds and all those which possess that unique green pigment which we call chlorophyll with the the help of which solar energy is trapped and simple abiotic or physical components of environment like water and carbon dioxide are converted into complex forms like Glucose, carbohydrates, proteins fats etc. or food. Part of the food manufactured by the green plants by process of photosynthesis is utilized by the manufacturer (green plant) and part of it is shared by all other types of organisms which lack the chlorophyll and are termed as Heterotrophs.

All living organisms with similar habitat requirements tend to occur together and occupy specific areas in the habitant.

Such specific areas are known as 'Niches'. Variety of relationship have evolved amongst the living organisms which include competition between 'similars' and 'disimilars', prey-predator symbiosis, parasitism, commensalism. Several examples can be cited for each such relationship like competition between two green plants for light, hawk (predator) and snake (Prey); Round worms (Parasite)- man (host); Lichen (a symbiotic association between algae and fungus for mutual benefit). Man, himself is a best example to illustrate the varied type of relationship it develops with physical and biological environment. Inspite of the fact that man is capable of manipulating almost all factors in the environment, it possesses variety of relationships ranging from equal competition to symbiosis.

No organism including man lives in isolation:

All living organisms develop meaningful interrelationship with other organisms on one hand and physical environment on

Contd....

the other hand thus giving rise to yet another complicated type of interrelationship called as Ecosystem Interrelationship.

2. Ecosystem Interrelationship:

Ecosystem interrelationship involves transfer of food and energy from one living component to another. This relationship starts with the trapping of solar energy by green plants (called as producers) by a process of photosynthesis and its subsequent transfer to herbivores (like rabit) which feed directly on green plants (herbivory) and then to carnivores (like lion, tiger, snake) which feed on the berbivores (carnivory) thus setting a chain of food (Energy) transfer from one feeding level to another level in a systemmatic chain like fashion known as food chain or trophic chain with well marked levels known as trophic levels. At each trophic level some energy is lost by way of respiration (Metabolism). Therefore, the amount of energy which is passed on to next trophic level decreases. As such no energy is left for recirculation at the last trophic level. Unidirectional and noncyclic flow of energy is fundamental characteristics of all Ecosystems. Apart from Autotroph - Heterotroph, producer-consumer or Producer-Herbivare - Carnivare food chain, there exists another type of food chain in the ecosystem which is called as the detritus food chain which involves the action of several forms of micro-organisms (Bacteria, Fungi, protozoa etc.) collectively called an the decomposers, on dead bodies of producers, herbivores and carnivores. These decay organisms act on dead bodies to nourish themselves and release into the system what is excess for them and thus cause recycling of inorganic nutrients to renew plant and animal population .

Contd....

Ecosystem may bedefined as any system which involves the interaction between the living a nd non-living components. This leads to flow of energy which in turn leads to clearly defined trophic structure, biotic diversity and exchange of materials. Within this system of relationships (Ecosystems) several food chains are linked together this forming food webs..Some examples of food chain and food webs may be cited.

On land — Simple food chains

(Green)Producer - Grasshopper (herbivore)-Frog-Snake-Peacok (carnivores)

1. Grassplant - Rabit - Wolf
2. Green Plant - Deer - Lion
3. Green Plant - Goat - Man
4. Green Plant - Man -

In Water

1. Green algae - Insect larvae - small fish - Large fish -man
2. Phytoplanton - Crustaceasns - Zooplanktons
   small fish - Large fish

Food Web

	Dear	Wolf		
Green Plant	Rabit	Vulture	Lion	
	Grasshopper	Frog	Snake	Peacock
	Sheep	Man		

In a balanced ecosystem, competition is such as to keep each section of population at a level at which none is threatened and each can retain its individuality. It, therefore, follows that at each trophic level number of

Contd.....

organisms that can be accomodated is optimum. This number decreases as the trophic level increases from producer level to top carnivare level, thus resulting in a pyramid type of model known as "Pyramid of numbers" which under certain conditions may be inverted also. For example a single large tree sheltering a large number of fruit eating birds and a few birds of prey. Form an inverted Pyramid of numbers.

The total mass of living matter or biomass which can be supported at a given trophic level at a particular time also gets less in natural system as the trophic level increases resulting in a Pyramid of Biomass which at times may be inverted.

The energy content under all circumstances decreases from lower to higher trophic levels resulting alwwys in an erect "Pyramid of Energy". The three types of Pyramids together are known as Ecological Pyramids, diagramatically represented as follows:

Minerals are essential for Ecosystem functioning:

Apart from solar radiation, there are about 22 elements needed to build organic substances by living organisms especially plants. Some of these are needed in large quantities like C, H, O, N, P etc. and are known as

Contd...

Macronutrients. Some of these are readily available in nature in large quantities as C, O, N, ; Several element s though needed in extremely small quantities (Micro-nutrients) are scarcely available in nature Co, Zn, Boron, Manganeese etc.). Majority of these nutrients are made available by series of cyclic arrangements in nature. The cyclic movements of the nutrients in the ecosystem constitute yet another important aspect of Ecosystem interrelationship and referred to as Bio-Geo-Chemical cycles: They are catagoriesed into:

1) Hydrological cycle or water cycle: involves the exchange of water between oceans, land masses as a result of evapo-transpiration and atmosphere as a result of precipitation. The balance between evapo-transpiration and precipitation in a given region determines its fauna and flora.

2) Sedimenteny cycles are exemplified by cycles like phospherus and sulphur. A simplified diagram of phospherus cycle is shown as follows:

Animals

Plants Decemposition Humus

Phosphete from Soil minse

As a constituent of Protoplasm (nucleic acid, phospholipids and numerous phosphorylated compounds), phospherus is one of nutrients of major importance to biological systems but of all the nutrients, phosphorus, perhaps, is the most rare nutrient available only

Contd...

through the decomposition of phosphete rocks and human.

3) <u>Gaseous Cycles</u> are exemplified by Carbon, Nitrogen and Oxygen cycles. All these have the atmosphere as the major reservoir. These cycles show little or no permanent change in the distribution and abundance of the elements.

<u>Nitrogen cycle</u> involves the converCion of atmospheric N_2 into Nitrites and Nitrates (Nitrification) by Nitrite and Nitrate bacteria), ammonia (ammonification) by ammonifying bacteria and conversion of ammonia, Nitrates and Nitrites into gescous N_2 (denitrification) by denitrifying bacteria. Several types of plants especially members of pea family (Lequminosee) directly convert atmospheric N_2 into nitrogen compounds (subsequently incorporated with protoplasm) with the help of symbiotic baderia like Rhizobium, (recollect root nodules of Pea) - a process known as Nitrogen fixation. Blue green algae are important in this regard. What appears to be a simple cycle is in fact more extensive, complicated and ordered. It is also highly specific in that certain organisms are able to act only in certain phases of the cycle.

<u>Carbon cycle</u> is perhaps the simplest of all nutrient cycles and is essentially a perfect cycle in that carbon is returned to the environment about as fast as it is removed. This basic movement of carbon is from the atmospheric reservoir to producers to consumers and from both these groups to decomposers and thence back to reservoir. It should, however be mentioned that oceans hold more than 50 times greater CO_2 than the atmosphere and there is a constant exchange of CO_2 from atmosphere to the oceanic reservoir. In past few decades increased use and

Contd...

incomplete combustion of fossil fuels has resulted in detectable increase of atmospheric carbon; The prediction is for a 25% increase in atmospheric CO_2 by the end of century. What the long term effects will be of such an increase or of further increase is a matter of considerable and immediate concern which needs to be discussed in detail.

In the natural undistrubed state these cycles will continue to operate continuously so that a sufficiency of the materials they circulate is ensured.

Nature has enough to fulfil man's need. But at present man works for his 'greed'. He has converted forest of magnificient trees into forests of 'concrete'. Man has constricted water ways and erected dams and reservoirs. He has chocked the streams and filled all possible water bodies with any fish that can swim. In the name of cultural and industrial revolution man has invented polluted culture, polluted political system and polluted environment. We are slapping the nature so mercilessly and robbing its natural resources so brutally that we have the current idiom "the world's ills involve three 'P'S - Pollution, Population, and Poverty'. It is imperative, therefore, for a teacher and teacher educator to understand these problems and bring about the message in clear and in an unambiguous tone that constant misuse of nature will 'boomrang'. That pollution has been a concomitant of man's existence as have the effects of population growth; that the status of these problems is to be determined by their urgency and immediacy. A swollen stream, for example, does not await the training of Engineers who in turn construct dams and diverge waterways. It warrants an immediate convergence of sandbags on the stream banks. With the

flood crest passed, the sandbags may remain for sometime as a grim reminder of a torturous experience but most likely soon begin gradually to fall into disorder. The immediate problem of the flood is resolved, but the long-range problem of manegging water resource is not, for it could happen again. What has this to do with the ecologist ? Simply that i mediate problems can be solved, like stopping the discharge of industrial acid into a stream that serves as a source of potable water for community downstream. The long-range problems of learning how to cope with the by products of man's biology and culture require infinitely more patience and tune, and training and experience. Much more can be suggested regarding the content area in envkronmental sciences but to achieve the primary aim of teaching environmental education, the teacher should know hoe to manage the content area in the classroom especially at Primary level. How the knowledge about environmental education must be selected, adapted, and modified for the primary-level student and how it can be included in the curriculum. Because the primary level teacher is usually a generalist. The infusion method seems an obvious choice for teaching at this level. The goals of the teaching should be concerned mainly with attitude formation through awareness, appreciation and acation. The child at the primary level, should develop a sense of his own position in the total environment and be aware of the effect of environment on him and of the effect of his own actions on the environment. At the end of primary schooling, the child should have reached a basic level of what might be called "environmental literacy". Environmentally literate person has acquired of life style which is environmentally appropriate in the sense that this life style allows the environment to function as a life support system in the total ecosystem.

: Minimum Level of Learning in Environmental Studies (Science)

S. Bhattacharya

Overview:

There has been over time many attempts to improve the curriculum at all level. At the Primary level (Classes I-V), Environmental studies was introduced. However, no new curriculum is successful unless its expected learning outcomes/objectives are achieved. Sadly enough the stress was on teaching and not on learning. The teachers felt that once they had finished teaching the textbook their job was over. No attempt was made to evaluate how much was actually learnt.

The National Policy on Education 1986 took a fresh view of the situation and stated that "Minimum levels of learning will be laid down for each stage of education".

In this module an attempt has been made to explain what is meant by minimum level learning and how to achieve it using examples from environmental studies (Science).

Objectives

After having completed this module the teacher will be able to:

- State the objectives of environmental studies.
- explain what is understood by minimum level of understanding.
- devise strategies to achieve minimum level of learning.
- evaluate whether minimum levels have been achieved.

What is minimal level of learning:

A curriculum is devised with certain objectives in mind. It is the role of the teacher to achieve these objectives through different teaching learning strategies. How far the objectives have been achieved can be evaluated. If 100% of the class has achieved the objective, the teacher has been very

successful. But it is rare to achieve this in case of all objectives. Usually a large number does not attain all the objectives. But it is necessary that a minimum level is attained in terms of competencies - cognutive and pschymotor skills. In order to identify the minimum level each topic has to be analysed keeping in view overall objectives at that stage, the specific objectives of the particulars class. All the learning outcomes of the particular topic has to be noted. Then the minimum learning level has to be identified by a group of teachers. The teachers are then expected to the topic with a view that all students must attain the minimum level, however as far as possible all the learning outcomes should be attained.

In order to determine the minimum level of learning in Environmental studies (Science) it is necessary to identify the objectives both general and specific which will enable one to identify the minimum level to be achieved by a student completing five years of primary school.

Objectives of Environmental Studies for the Primary level:

1.0 OBSERVATION: The development of the ability in children to implore the world around them with a specific purpose, recognise and identify objects so as to find relationships between new and observed facts using all their senses. (This process does inculcate a sense of personal satisfaction in knowing and exploring the environment through direct experience).

The pupil

1.1 recognises the properties of objects and phenomena using the senses of sight, sound, taste, smell and touch.

1.2 recalls the properties of objects from previous experiences.

1.3 identifies objects, events and changes occurring in the environment.

1.4 distinguishes objects on the basis of their properties, and develops a habit of nothing minute differences in the properties of objects and phenomena.

1.5 voluntarily seeks new information about the physical and social environment.

1.6. develops curiosity to see new objects of the environment.

2.0 CLASSIFICATION: The development of the ability in children to discriminate order, arrange, give sequence, observe events using given or chosen criteria in order to compare phenomenon. This process develops an awareness of the diversity of systems and the importance of ordering and interpreting phenomena.

The pupil

2.1 describes differences between objects and phenomena on the basis of given or chosen criteria.

2.2. distinguishes between objects and phenomena on the basis of similarity and differences.

2.3 orders objects on the basis of one or more criteria.

2.4 identifies and names properties which could serve as the basis for classification.

2.5 appreciates that there are several different ways to group objects and events.

3.0 COUNTING AND MEASUREMENT: The development of the ability in children to identify the purpose of measurement; to select which type of measurement would serve the purpose and how the measurement is to be taken and recorded in order to make inferences about relationship between variables in the environment.

The pupil

3.1 identifies sets and their members.

3.2 compares areas and masses of different shapes and sizes.

3.3 demonstrates measurement of length, area, volume, time, temperature and volume using relevant instruments.

3.4 orders numbers.

3.5 determines number relationships.

3.6 distinguishes differences between estimation and measurement of objects and phenomena.

3.7 selects situations when measurement and estimation are to be used for determining length, weight, area, distance, size, etc.

3.8 compares measures and makes inferences about the variables.

3.9 designs tables for recording data.

3.10 prefers to be accurate in measurement.

3.11 appreciates the need to measure for interpreting relationships between phenomena.

4.0 USE OF SPACE-TIME RELATIONSHIP: The development of the ability in children to identify the relationship in the social and physical environment between movement and time and the changes that occur in time and over space of social and physical processes.

The pupil

4.1 recognises specified objects in relation to other objects.

4.2 identified direction and movement of objects in space.

4.3 interprets trends and the changes of environmental phenomena over space and in time.

4.4. compares changes in the spatial position and relationships between physical and social phenomena over time.

4.5. develops tentative generalizations to explain changes of social and physical phenomena over space and in time.

4.6 appreciates the dynamic nature of natural and social systems; develops awareness of the diversity and constant change of social and physical processes.

5.0 EXPERIMENTATION AND INVESTIGATION: The development of the ability in children to pose questions which require investigation, suggest, and use procedures to collect data, organise and interpret data to derive generalizations. Considering the stage of development of the child, the experiments would range from simple to complex.

The pupil

5.1 poses questions and identifies problems which are likely to be answered by investigation and experiments.

5.2 suggests possible or tentative conclusions.

5.3 establishes possible relationships between variables.

5.4 constructs and/or assembles relevant apparatus for experimentation.

5.5. prepares appropriate tools for investigation.

5.6 conduct experiments and investigations systematically.

5.7 shows perseverance in undertaking experiments and investigations.

5.8 skilfully manipulates instruments.

5.9 obeys safety regulations.

5.10 voluntarily undertakes care and maintenance of tools, materials and living things.

5.11 practises honesty in reporting results.

6.0 ANALYSIS AND INTERPRETATION: The development of the ability in children to identify the relationships between variables, to infer cause effect relationships and to deduce conclusions derived by investigation and experimentation.

The pupil

6.1 organises data efficiently.

6.2 recognises central themes/issues and assumptions.

6.3 compares trends and patterns of observed phenomena.

6.4 infers relationships between phenomena.

6.5 establishes relationship between variables.

6.6. suspends judgements till adequate data is available.

6.7 forms a habit of systematic enquiry.

7.0 GENERALISATION AND PREDICTION: The development of the ability in children to formulate generalizations, draw conclusions, verify facts and predict consequences on the basis of analysis and interpretation. The appreciation of using enquiry to form hypotheses and critical judgement of evidences is an outcome of this process.

The pupil

7.1. deduces relationships between variables.

7.2 verifies conclusions with further evidence.

7.3 extrapolates trends/implications, assumptions based on obtained data and previous knowledge.

7.4 derives principles on the basis of relationships between variables.

7.5 appreciates the need to revise opinions on the basis of newly available facts.

7.6 supports ideas and arguments with sound and logical arguments.

8.0 COMMUNICATION: The development of the ability in children to express through writing, speech and action, relevant observations, conclusions and arguments. The requisite skills to understand and use information through the

development of the skills to read, listen, see and locate information effectively is an expected outcome of this process.

The pupil

8.1 uses relevant new words, sounds, actions, tools and instruments correctly.

8.2 translates observations, conclusions into suitable means of expression.

8.3 precisely describes objects, phenomena, trends, experiments, procedures through words, sounds, drawing, writing and demonstration.

8.4 locates relevant sources of information from the environment.

8.5 voluntarily participates in group activities.

8.6 willingly shares ideas and accepts arguments and ideas of others.

Determining the minimum level of learning:

These objectives of environmental studies can all be achieved through the teaching of the science component of the environmental studies. Take for example the topic about "Plants around us" which is generally taught in class-III. This topic course the following concepts.

a) There are living and non-living things around us.
b) Plants and animals are living things.
c) Plants have different parts.
d) Man often uses seeds to grow new plants
e) Man uses plants in different wasys

Objectives of teaching this chapter are:

The pupils will be able to:

a) Observe:

i) different types of plants and animals in the locality.
ii) that plants have different parts - root, shoot, stem, leaf, flower, fruit and seeds.

iii) that seeds germinate into seedlings.

iv) that different vegetables and fruits are available at different times.

lassify:

i) living and non-living things

ii) plants and animals

iii) plants on the basis size, shape, utility, growth requirements.

Use numbers:

i) to count the numbers of various parts of the plants

Measure:

i) the height of plants using scale/tape/string/rod et

ii) nursery beds, distance for sow-ing seeds, transplanting seeds.

Use space time relationship

i) to compare the changes in growth of plants over a particular period of time/reason.

ii) perceive objects in relation to other objects like butterflies and bees during flowering, or plants that invariably grew near the water or fruits and vegetables that come in the same season.

Communicate

i) through oral and written descriptions what they observe.

ii) through drawings of what they observe.

iii) Displays/exhibitions of plants and plant parts collected by them.

iv) rhymes, songs, stories, gestures, imitations.

Experiment/Investigate:

i) how seeds germinate to form seedlings

ii) conditions necessary for germination

iii) the same type of seeds gives rise to the same type of plant.

h) Generalize:

i) that plants and animals are living things.

ii) the plants have some common features.

iii) seeds develop into plants.

i) Develop:

i) an appreciation for the variety of living things around them.

ii) interest in physical and natural environments

iii) a sympathetic attitude towards living things.

Having spelt out the objectives it is quite apparent that all the students will not achieve all the objectives but in any situation a minimum level has to be achieved. The next step is to identify the minimum level of learning. In this above example, one may say objectives (e) and (i) may not come under minimum level. The last step is to devise evaluation tools based on the teaching-learning strateges adopted which will indicate how far each specific objective has been achieved. This includes changes in behaviour also.

The evaluation may be by oral or written test covering all the outcomes. Some questions are suggested below which give different levels of difficulties, and test different objectives.

1. Name five plants in your locality. (Ob.(a)(b)(f)
2. Draw a diagram of a plant and label its part (Ob,(a)(f))
3. Group the vegetables named below into the reasons in which they are available Tomato, brinjal, beans, pea, cauliflower, cabbage, pumpkin, ground (Ob(a)(b)(e)
4. Fill in the blanks (Ob(a) (h)

   a) Plants have __________ growing into the soil

   b) Seeds are found inside __________.

   c) Plants are generally __________ in colour.

In addition the teacher should prepare a check list to evaluate a child's ability to conduct experiments and investigations. An example is given below:

CHECK LIST:

Tick the one that is relevant to the child.

i)	Handles the materials carefully	Yes/No
ii)	Makes careful observations	Yes/No
iii)	Records observations properly	Yes/No
iv)	Reaches conclusions cautiously	Yes/No
v)	Reports findings honestly	Yes/No

This checklist can be extended and modified to suit specific experiments/investigations.

In addition to the above there are certain attitudinal changes that are to be achieved. These can only be evaluated . These can only be evaluated at this level by the teacher by observation and recording, e.g., does the child (a) voluntarily participate in group activities, (b) willing to share ideas and accepts arguments of others (c) shows respect towards living things (d) does not unecessarily pick flowers or destroy plants.

Having evaluated the learning outcomes the teacher will be in a position to judge how far each objective has been achieved. It may be that many of the objectives will be totally achieved, while some others may be achieved by 90% of the students and others by still less number of children. The minimum level of learning requires that questions pertaining to the minimum level be answered correctly by all the students while they may or may not be able to answer those above the minimum.

It is once again emphasised that the minimum level is in terms of individual pupils attaining the minimum learning objectives.

Activity - 1

Select a topic/chapter from environmental studies (Science) and identify the concepts to be covered.

Define the specific objectives based on the general objectives given on page........ of this module.

Outline activities and teaching learning strategies.

Identify the minimum level expected from pupils.

Devise evaluation items/checklists/for the objectives outlined earlier in order to determine whether the minimum learning outcomes had been achieved.

In case the learning outcomes have not been achieved by a substantial number the teacher has to develop alternate teaching learning strategies.

Activity - 2

Select one objective from activity 1 and devise alternate strategies which will help reinforce the learning already achieved Design an alternate bur equivalent test to whether the objective has been achieved.

In case only a few students fail to reach the minimum level, special attention has to be given to these students so that they achieve the minimum level.

Activity - 3

Outline a few remedial activities which may help a student achieve minimum level if he has achieved a few of the above mentioned (Activity - 1) learning objectives.

Module 15 Child centred Approach/Activity Based Approach

Objectives: The module on Child Centred Approach helps the reader to :

- Over view the prevailing practices in education;
- understand the meaning of child centred approach in education;
- know the basis of child centred approach;
- be acquainted with the essentials for practising child centred approach;
- illustrate child centred approach with examples.

Contents: Prevailing practices in Education.

- Child centred approach.
- Fundamentals of child centred Approach
- Requirements.
- Examples.

Duration : One hour

Mode of transmission: Discussion and participation of participants.

Prevailing practices in Education.

In the prevailing system of education whatsoever happens, it is determined by authority in its own right. The authority may be vested in Govt. or delegated to the departments of education or with some body else but teachers and taughts are the least authorised individuals to set the scheme of things in educaton. Teacher organizes teaching as he is ordained from above. The student is but to enable himself to act as an obedient student to learn what he is made to learn by approved methods of teaching. This all accounts for rendering present system of education as an authority centred education.

Authority centred approach has come to manifest its inability to deliver the desired results. It has failed to deliver the kind of man power to the society for which it has been specifically structured. The system of education of the day, cannot claim to supply from its schools and institutions of learning, children as responsible citizens, keen learners, sincere workers and fine persons.

National Policy on Education (1986) has taken note of it. In its programme of Action (1986, p.13), it has been emphasised that:

> "By making elementary education child-centred, we would be introducing a long-awaited reform in the system. The most important aspect of this reform will be to make education a joyful, inventive and satisfying learning activity rather than a system of rote and cheerless authoritarian instruction."

<u>Child centred approach</u>:

Education is inherently a child centred process. It is organized for the desirable and healthy allround growth and development of one and all children. It evolves itself as per the requirements of the growth and developmental needs of children.

Child centred approach in education draws its sustenance from needs, abilities, aptitudes and aspiration of children. In this system, teachers conduct themselves as group leaders and fascilitators of learning for children. The entire spectrum of activities is child centred approach is made to fit and be useful for the allround development of each and every child.

In child centred approach, Education becomes practically an entirely a child-show. In this approach, child is a pivot around which the process of education revolves.

In child based education, child is not left at the disposal of education rather the otherway around, the system of education itself is placed at the service of each and every child.

Fundamentals of Child Centred Approach.

Child centred approach in education is based upon the fundamental tenants of the process of education:

- education means allround drawing out of the best in child and man body, mind and spirit(Gandhiji).
- each and every child is a child who is considered to be capable of developing his potentialities and overcoming his limitations at his own (Rogers).
- each and every child is a unique and worthwhile child who should be respected for his inter-intra individual differences.
- each and every child needs a guide to guide him, fascilitate him to develop his allround personality in a healthy and desired direction.
- children as human beings have an inherent desire and need for achieving self realization to establish themselves as perfectly perfect, competent and useful individuals members of the society they are born in.

Child centred approach in education is an approach in education which while accepting the given unique individuality of the child as a worthwhile useful personality, it assists him emplore his assets and develop them to enable himself to establish himself as an individually satisfying and socially useful individual.

In child centred education, the child is welcome, motivated and encouraged to play a participant role with

his teachers to build up his programme of learning. In this strategy, nothing is supposed to be imposed upon the child as a passive learner. In popular parlance, education is considered to be the twin process of teaching and learning. For teaching, teachers are made accountable and for learning learners are held responsible. But it is in the scheme of things in child centred approach in education, teachers and pupils are considered equally answerable to the net results of teaching and learning, students coming out of the process of education with the allround development of their respective individualities.

Children are identified with the process of education in child centred approach. A programme of learning is arrived at with the perfect understanding of the developmental needs of children. And this design of education is conducted through activity based approach in which the children themselves are actively involved in their learning whole virtually playing their childhood in a most congenial teaching learning situation.

In child-centred education, the teacher is not supposed to assume the role of a 'master' of the children but he acts, like a friend, guide and a philosopher in their learning. The school provides a liberal atmosphere in which teachers and pupils enter into a phonomenon of healthy human interaction for the education of citizens of tomorrow. Teacher as a group leader of students in child centred practices in education is considered to be a fascilitator of their learning.

The teachers in child centred approach begin with their work with a thorough understanding of each and every child. The home conditions of children, their parents'

socio-economic status and educational status is very important to know to understand the children. All the more, students physical health especially their being free from any disability in learning because of any deficiency in learning, seeing, talking and walking have to be taken note of. Students' intellectual development, their aptitudes and attitudes, habits and temp-raments are needed to be known by the teachers teaching them. The maintainance of cumulative record of each and every child goes a long way to help the teachers in this direction. Actually teachers following child centred approach do maintain an up-to-date cumulative record of their children. This record goes to highlight the achievement of students, their failures and gives an understanding of their developmental requirements. It may be said that progressively maintained and insightfully interpreted cumulative records of children lay the foundations of a child centred approach in education.

What is needed is, in whatever way the child shows his talents, he should be given full opportunity to develop them while the knowledge of his limitations is required to be accepted as a fact for which the child should never be taken to task for nothing. There is nothing to be ambitious for the growth and development of any child. His limitations should be appre-ciated and his developmental perspectives should be acknowledged.

Teachers having known the children on all accounts for their individual differences are well set to follow child centre approach in their teaching. In this approach if it is to be effectively pursued, there is a need to keep pupil-teacher ratio at a reasonable level. A high ratio between teacher and pupils does not permit the teacher to follow child centred approach very strictly.

In child centred approach teachers need be given a good amount of freedom to practise their own well perceived

styles of conducting themselves with children. This should be left to the best of the judgement of teachers themselves as to how they should enlist the active and willing participation of students in the process of their education.

The courses of studies or the curriculum to be followed in the child centred approach needs to be flexible. Teachers should be given a chance for their association in the development of programme of education of children. Teachers should be given a bit of freedom to make the choice of curriculum to be followed with a particular set of students to follow child centred approach in its real sense of the word.

Child centred approach works as activity based approach. This approach needs a good amount of teaching aids along with the space in which demonstration work can be taken. That way infra-structure of the school is required to be kept up to the mark.

Child centred approach is an insightful approach on the part of teachers. That way teachers who are expected to follow the approach should be basically professionally trained and personally wedded to the teaching profession. Teachers cherishing no love for children or for the teaching profession can hardly be imagined to purse child centred approach in their styles of functioning as teachers. Teachers of commitment, dedication and of a mission in teaching profession towards the children can only be seen coming forward to practise child centred approach in education.

Child centred approach is a painstaking approach in pedagogy. Teachers need be well motivated to purse this approach. In schools, men of sound mental health and

professional competency can only pursue this child centred approach.

Examples :

a. Maintaince of school complex.

Maintaince of school complex, keeping the surroundings neat and clean is very important for an effective process of education. Towards the achievement of this end in schools, students' active participation is a must. Not only this, students involvement in this aspect of their schooling helps us to achieve the very purposes of schooling the children to a good extent.

A teacher in his guidance can motivate the students keep their classrooms neat and class. By turn, students may be expected to clean their rooms to begin with every early morning. Similarly, decoration of classrooms with students-prepared charts and diagrams help us to enlist students participation in their self-education through activity based approach. Development of small flowercorners on the available land near by ea ch classroom can also serve us best to practise this approach. Community work programmes, social service compaigns in the vicinity of the school complex help the students in their allround development for which they come to the school.

An activity based education is the real education for children. It is very important for running an effective process of education. The enlightened teachers can find many ways to practise this approach in their daily working in schools. Students' involvement in educational activities can teach them what can't be taught to them in any other way

just by preaching or sermonising the children in schools.

b. Organization of Co-curricular activities:

Co-curricular activities are the playful programmes in activity based approach in education. These activities are presumed to be liked by the children. In child centred approach, these co-curricular activities need to be systematically planned and designed for the definite purpose of helping the children for their allround personality development.

In the organization of co-curricular activities, teachers should leave much desired to be done for students themselves. Let the students manifest their initiative, work over their plans and conduct themselves most freely. They need not be given too many instructions. However, teachers must associate themselves with students and with students' activities with us deep interest. They may suggest them improvements hithes and thithen to improve upon the things in the right direction.

Students do accept, expect wise council from their teachers which should be whole heartedly provided. Students should be encouraged and patted to undertake the activities with sincerity of purpose, devotion and active enthusiasm. Let the students learn by doing as to how to work together and organise their own learning experiences through the educational activities. Teachers need be men of child psychology both in their thoughts and actions to guide the students in the most desirable ways. They are required to keep themselves always available to students.

Essentials of personlity can well be inclucated in students through activity based approach in education.

professional competency can only pursue this child centred approach.

Examples :

a. Maintaince of school complex.

Maintaince of school complex, keeping the surroundings neat and clean is very important for an effective process of education. Towards the achievement of this end in schools, students' active participation is a must. Not only this, students involvement in this aspect of their schooling helps us to achieve the very purposes of schooling the children to a good extent.

A teacher in his guidance can motivate the students keep their classrooms neat and class. By turn, students may be expected to clean their rooms to begin with every early morning. Similarly, decoration of classrooms with students-prepared charts and diagrams help us to enlist students participation in their self-education through activity based approach. Development of small flowercorners on the available land near by ea ch classroom can also serve us best to practise this approach. Community work programmes, social service compaigns in the vicinity of the school complex help the students in their allround development for which they come to the school.

An activity based education is the real education for children. It is very important for running an effective process of education. The enlightened teachers can find many ways to practise this approach in their daily working in schools. Students' involvement in educational activities can teach them what can't be taught to them in any other way

just by preaching or sermonising the children in schools.

b. Organization of Co-curricular activities:

Co-curricular activities are the playful programmes in activity based approach in education. These activities are presumed to be liked by the children. In child centred approach, these co-curricular activities need to be systematically planned and designed for the definite purpose of helping the children for their allround personality development.

In the organization of co-curricular activities, teachers should leave much desired to be done for students themselves. Let the students manifest their initiative, work over their plans and conduct themselves most freely. They need not be given too many instructions. However, teachers must associate themselves with students and with students' activities with us deep interest. They may suggest them improvements hithes and thithen to improve upon the things in the right direction.

Students do accept, expect wise council from their teachers which should be whole heartedly provided. Students should be encouraged and patted to undertake the activities with sincerity of purpose, devotion and active enthusiasm. Let the students learn by doing as to how to work together and organise their own learning experiences through the educational activities. Teachers need be men of child psychology both in their thoughts and actions to guide the students in the most desirable ways. They are required to keep themselves always available to students.

Essentials of personlity can well be inclucated in students through activity based approach in education.

C. Classroom Teaching.

Classroom teaching or text-book educational should not be merely a spoon feeding activity. Students should be helped to develop self study habits. Classroom teaching should be developed with an active involvement of students. Teaching of a lesson should not be merely a delivery process from one end of the teacher to the other end of the students. On the basis of previous knowledge of the lesson, the lesson should be developed from known to unknown. Teacher should add to the previous knowledge of students in a very smooth way. Child centred approach provides a playful way of teaching the children.

Illustration: I. Introduction of Multipication at the primary stage.

Yes, it is supposed that at the stage of learning multipication tables, students know addition and substration. We may write on the black board in sequence:

2	2	2	2	2	2			
+2	+2	+2	+2	+2	+2			
(I)	+2	+2	+2	+2	+2			
	(II)	+2	+2	+2	+2			
		(III)	+2	+2	+2			
			(IV)	+2	+2			
				(V)	(VI)	(VII)	(VIII)	(IX)

Students will be invited to come on the black board and add these figures. A stage may be brought by the teachers when he should ask the students as to how it is possible if we have to add 2 for 20 times or more. At this stage concept of multipication tables may be introduced. It may be said

that 2 has been counted twice, thrice four times and so on. In arithmatic this type of exercise is said to be 2 multiplied by 2,3,4 and so on. We can simply write the alove writings as:

2x2, 2x3, 2x4, 2x5, 2x6, 2x7 - - -

x - is the sign of multipication in contrast to + being the sign of addition.

2 x 2 = 4
2 x 3 = 6
2 x 4 = 8
2 x 5 = 10 - so on. This is known as multipication table of 2 and 2 x 1, means 2 has been added only once, 2 x 2 means, 2 has been added twice and so on. Similarly we have

3	3	3	3	3	3
	+3	+3	+3	+3	+3
		+3	+3	+3	+3
			+3	+3	+3
				+3	+3
					+3

This is to say that 3 has been added once, twice, and so on. This is a multipication table of 3 which may be written as

3 x 1	3 x 2	3 x 3	3 x 4	3 x 5	3 x 6
=	=	=	=	=	=
3	6	9	12	15	18

After giving them this practice, let us see some students may develop the multipication Tables of 4,5 etc. If not let us help them develop these tables and remember them.

Students should be encouraged to help in learning. Students who learn fast should come to assit the students who take little bit more time to learn. None of them should be allowed to develop superiority or inferoirity complex. Students who learn slow may play fast and vice cersa. Each one has his own point of merit which should be duly recokoned with. In this way, following child centred approach students are helped to learn bookish knowledge as well as essential personality traits, too.

Illustration II. Language Development.

A language book may not be taught from page to page by reading it out to the students by the teachers. Let the students read where they may be given guidance for correct pronunciation. Let the students improve their prouncïation by listening to other classfellows, too. Let the students twll what they understand by what they read. This sort of mutual learning-teaching is the essence of child centred approach in education.

Students telling the stories, singing songs and talks on current topics of interest to one and all should be the activities which should help in the language development of children.

Education trips expose the students to their wider environments. These activities should be associated with the teaching of history of Geography as well as science to the students.

A conscientious teacher who has the conviction in child central approach in education can find many ways to pradise it in his own very natural ways.

Education of First Generation Learners

Dr. S.P.Anand

Objectives: The module on the Education of First Generation learners helps the readers to:

- know who are first generation learners;
- understand the family background of first generation learners;
- understand the need for motivating the first; generation learners for learning;
- know the teachers' role in the education of first generation learners;
- be acquainted with the essential teaching-learning strategies for first generation learners.

Content: First generation learners
Family background
Motivation for Education
Teachers' attitude
Education of first Generation learners
Teaching-learning strategies

Duration: One hour

Mode of Transection: Descussion and participation of participants.

First Generation Learners

In the movement of universalization of elementary education of the day, we have come to talk about first generation learners. This concept comes into being when educatio is recognised to be the fundamental right of each and every child irrespective of his family belongingness. Who are first generation learners ? It needs to be clearly understood to begin with the discussion of their education.

The children belonging to the families who have had never benefitted themselves from any formal or informal system of education for generations together when such like children are brought under and given the advantage of an organized pattern of education for their desired growth and development, these children are identified as first generation learners.

The children of the families who become first in themselves in their own respective illiterate homes to receive education in an organized, formal or informal system of education are recognised as first generation learners.

First generation learners are the children whose none of the family members is found to be educated ever and they happen to be the forerunners for ushering in an rera of education in their families.

Family Background:

First generation learners are essentially the children of illiterate parents who in their entire life time have had never enjoyed any type of systematic education. These parents in their own turn might have remained uneducated because of financial constraints (poverty) of their respective parents who were unable to foot their expenses required in their being educated. It might be that social practices and rituals of their times along with their family traditions had not permitted them to avail of the school facilities available to them in their school going ages. Leaving aside these pertinent barriers, it can also be said that parents of first generation learners could not get education because they had been living in far flung areas cut off from the mainstream of social life and they had virtually no access to any organization of learning worth the name.

Generally, the families or parents of first generation learners are known as economically poor, socially disadvantaged and culturally deprived ones. In most of the cases, families from the weaker sections of the community like that of scheduled castes, scheduled tribes and families of other backward classes make the family background of first generation learners.

Motivation for Education:

To begins with, the first generation learners are never the least found to be anyway intrinscially motivated for having any kind of education. Perhaps, otherway round, these children may be found cherishing a sort of apathy towards education. Their parents too have no inclination to send these children to the schools. All the more first generation learners might be discouraged by their parents to cherish any lone for education.

First generation learners as well as their parents have yet to give a deserving place to education in their family culture. It may be that they may be thinking that education is not meant for them and they are not made for each other. All the more, parents of such like children may be having a negative attitude towards schools in their thinking that schools spoil their children. They may hold the opinion that children will become useless if they are sent to schools. Till recently, family practices and traditions of first generation learners are found to the totally against their being educated.

The unhealthy notions about education cherished by illiterate parents may be based upon the fact that their children are also working as wage earners for their families. They add to the net financial earnings of the family. Children as well as parents have an immediate future in sight without any vision for any for remote future. They have no

high ambitions in life. They are very much contended in their own small world with small earnings and a self-contained vision of life as a whole. Their style of life carries no allurement for education at all.

Parents of first generation learners are required to be persuaded to send their children to the schools. They need an awakening for allowing their children to be educated in their own interest as well as in the interest of society as a whole. Parents as well as their children need an assurance of the utility of education in their life. Parents have to be mentally well prepared to send their children to the school as willingly as it may be possible to begin with. This is to enlist the active cooperation of home of first generation learners to affect an effective system of education in their allround personality development.

In most of the cases, first generation learners are wage-earners in the family. They add to the net-income of their families. Parents need to be financially componsated for their children having stopped earning because of their going to the schools. Not only this, the education of first generation learners need be entirely financed by school or some other agency itself. These children need be provided with books, school uniforms and meals free of cost. School should not in any way pose a financial burden on the parents of first generation learners. In some cases besides all this such like children have to be fascilitated to continue to be wage earners along with their going to the schools. They may be allowed to come to the school in their off hours. Or, schools may open earning avanues within the school campus itself along with their formal programme of learning. Vocational education has been accepted to be an essential aspect of the education of first generation learners.

First generation on learners will be well motivated to learn when they are assured of earning while learning which eventually leads them to place themselves in life as better wage earners and respectable members of the society Teachers' Attitude.

School should acept first generation learners as potential learners without any sort of prejudice towards them. Teachers should accept them with a positive attitude towards them and on their part rassure them a loving and affectionate treatment. In any case, teachers should never the least consider or brand first generation learners as second grade learners. There should not be in anyway discrimination between first generation learners and their peer group at the hands of their teachers.

The unique individuality of each and every first generation learner needs to be recognised and respected by the school which matters a lot for these learners to come to the school, stay there and have the benefit of schooling for their healthy allround personality development.

Teachers of first generation learners for their effectiveness to be establiched in teaching these children successfully have to develop a personal equation with them. Personal relationships between first generation learners and teachers play a fundamental role in their education. And for that teachers have to play a 'senior' role to earn the trust, faith and confidence of first generation learners.

Education:

Education of first generation learners needs to viewed in its true perspectives.

Education is altogether a novel and new experience for the first generation learners as well as for their parents. It is to bring in a cultural revolution in the families of first generation learners. It is accepted in principle, that the

process of education should revolve around the child. It should be designed befitting to the needs, abilities and aspirations of learners. That way, the entire process of education for first generation learners must be designed as per the requirements of these learners. It should be attractive to them. It should be fascinating to them. It should be convissing to the first generation leamers that education being processed for them is fundamentally useful to them, it will benefit them a lot in the long run while taking care of their immediate interest. To arrive at such an acceptable pattern of education for the first generation learners, the following salient points may be kept in mind.

First generation learners have no conductive educational atmosphere at home. They have already been deprived of a congenial surroundings at home in the very early but very sensitive age of their development in all its facets. Their cognitive development has already been adversely affected. Improvished learning experiences meted out to them at home have kept them deprived of enlarging their attention span and perceptual attitudes. An illiterate kind of situation at h home has not allowed them to develop basic skills of learning to any extent, their vocabulary span in very much limited, they lack the comprehension pover and lag for behind in their expression as compared to the children belonging to literate families. They have not acquired a natural training for memory, retention and recaptualation. Their exposure to surroundings is confined to a very small area limited to their own family dwelling only. It has not enabled them to learn to make observations and interpretions of their surroundings. As a whole, cognitive development of first generation learners has to be takes as suppressed and depressed one which needs to be given a momentus start for its potential growth and development.

First generation learners need to be attended to for their social development. Before coming to school, they might not have come across a group of their own age-group, friends to stay with, deal with, work with and stay with. Students have to be given a sufficient amount of social training where they can learn how to live together work with a team spirit, share their joys with each other and render a helping hand to one and all as and when so required by anyone. We are basically social human beings living in a vast universe and are dependent on each other in many ways has to be brought home to the first generation learners.

First generation learners are not only deficit in mental and social development but their emotional maturity too may be lagging behind as may be expected for their age. They have yet to learn to play emotions in their day-to-day behaviour. Emotions of love and affections joy and sorrow, fear and anger etc. have to be given a due place in their routine style of life. These learners have to be trained to make appropriate and adequate response reactions to the given situations.

First generation learners in their education are required to be given a reali-stic but a broader view of human life. Human life is a great blessing which should be very keenly nurtured and matured this is that the first generation learners need to understand. And for this all they have to be guided for the development of their well integrated personalities. To achieve this end, their basic human needs are to be satisfied to begin with. The educational programme for first generation learners must be based upon

our basic concern for the satisfaction of their psychological needs. They should have a sense of security, recognition and achievement. They should have sufficient independence to work independently to initiate their own creative subtle initiative. They need to be helped to identify their own areas of making merits and wiss recognition from friends, teachers and parents alike. The satisfaction of these psychological needs will help first generation learners develop self-confidence and self-reliance in themselves to make intelligent choice, plans and adjustments in daily life.

In education, it will be always advisable to pay due attention to the aforesaid deficit areas of personality development of first generation learners. In the framework of curriculum, due consideration should be given to the preparatory ground to be made before any useful scheme of things in education could be effectively undertaken for the benefit of first generation learners. Their education should be guidance oriented education which should help them in their allround and integrated personality development.

Teaching-learning Strategies:

For running an effective system of education for the benefit of the growth and development of first generation learners, teaching-learning strategies should be based up:

I. Child centred Approach (Activity based Approach)
II. Learning for mastery.

The pedagogy to be followed for the education of first generation learners should evolve itself by the teachers themselves while teaching the concerned learners. Learners should be

actively associated with the development of educational programmes for them. Actually, first generation learners should be helped for self-study and self-learning. Their personal involvement in their teaching is very much essential.

First generation learners should be helped, to learn from their immediate environments. Their thinking and reasoning faculties of mind should be given a definite direction by the loving and affectionate treatment towards these children. Their suppressed cognitive development need be given an open and liberal opportunity to unfold itself in its very natural ways. While working together, organising their own playful activities, first generation learners should be encouraged and fascilitated to initiate their learning from their well known playway activities. Let them look at their routine school activities quite intelligently which will help them broaden their vision of life and look at the things in more than one ways. All these well organised child-centred activities in the school will usher in much awaited era of mental, social, emotional and physical development in the life of first generation learners.

To begin with, first generation learners may be exposed to the outside limits of their immediate environments. Let them stretch their thinking, broaden their horizon of life and enlighten themselves with what is happening around them which had till recently remained absolutely unknown to them. Excursions, educational tours and outings organized by the school for the benefit of first generation learners generates in them a taste and desire for learning and receiving education for themselves.

Child centred activities and child organised activities will really go a long way for making first generation learners as well motivated learners who should have the urge and enthusiasm to learn.

First generation learners learn only in schools. Teachers are squarely responsible for their learning. Teachers may not expect home to play much role in the learning of first generation learners. Their initial difficulties, hesitations and hurdles in their learning need be appreciated by teachers. Teachers should have appreciation for the invididual differences prevailing amongst the students. Teachers have to take a keen personal interest in the successful education of each and everychild.

Learning for mastery a crucial strategy in the process of learning needs to be pr ctised while programming the education of first generation learners. Teachers should plan out their teaching well in advance. No casual or a haphazard.style of teaching should be practised atleast in the teaching of fist generation learners. Their learning has to be made quite an interesting exercise for them by utilizing teaching aids by the teachers. No. such learner should be expected to take up the second phase of learning or go to t-he next step of learning a unit till he has fully mastered the first step at hand. Let each child help the child who needs more time to learn or more help to learn from others. Teacher at his end should resort to remedial and compensatory teaching to enable each and every child to learn what is taught by him in the school.

Pupil-teacher ratio should be kept reasonably small so as to enable the teacher reach and every first generation learner. The teacher in his individualized stretegy of teaching has to be particular best many child should develop a feeling of failure in his learning. Learning of first generation learners has to be a slow process to begin with which must get mometum as the achievement

level of or rate of learners fislearning improves upon. Students realization for making a head way in their learning arguments their real pace of learning. And for this, teachers have to monitor the progress made by first generation learners as an essential exercise for them. Teacher may develop the habit of maintaining an accumulative record of the progress of learning and their participation in other activities for one and all first generation learners.

MULTIPLE CLASS TEACHING

Dr. S.T.V.G. Acharyulu
Prof. & Head, Deptt. of Edn.

This module will enable you to :

- understand the prevalence of single or two teacher schools and their need in the States/UTs of the Eastern region.
- understand the problems associated with Multiple class Teaching.
- understand the advantages of Multiple class Teaching.
- acquaint yourself with the methodologies of curriculum transaction in schools having Multiple class Teaching.
- understand the problems pertaining to teaching-learning process in Multiple class settings.
- acquaint yourself with the techniques of classroom organisation and management in Multiple class situation.
- understand the need for preparation of teachers for Multiple class teaching-preservice and inservice.
- acquaint yourself with the strategies of effective supervision of schools practicing Multiple class teaching.

The single or two teacher school in India is not a new phenomena. Such schools existed in ancient India. From the vedic period to modern times they have continued their existence in some form or other. With the advent of Independence and the constitutional provision for the universal compulsory education of all children in the age group 6-14 years, single teacher schools were established in some of the

remote and difficult forest and mountain terrains, island habitats and other inaccessible regions of the country.

Why Single or Two Teacher Schools ?

Inspite of persistent efforts, primary schools could not be provided in all the 9,64,664 rural habitations in our country. There are still as many as 1,90,666 (19.77%) rural habitations which do not have a school within a walking distance of one kilometer from the homes of children. In these sparsely populated areas it is not feasible to provide primary schools with several teachers. Although the single or the two teacher school is not the desired pattern, these have been established in the low density population areas. Whenever the population is low, there will be fewer children of any particular school going age and consequently, the total number of children needing primary education would be rather small. In such situations, the single or two teacher school continues to be the only alternative.

It is necessary to keep in mind that in most countries of the world, single teacher schools do exist. It is not uncommon to find such schools in U.S.A., U.K., U.S.S.R., Canada, France, Germany and other European, African and Arab countries. In short, in most countries having habitats with a population of less than 300 or so there have been single teacher schools which cater to the primary education needs of children and in many countries they still continue to function.

Prevalence of Schools with Single or Two Teachers in the Eastern Region

In our country out of a total of 529392 primary schools, 148033 (27.96%) are single teacher schools 171389 (32.38%) are two teacher schools, 80365 (15.18%) are three teacher schools, 47188 (8.91%) are four teacher schools and 79789 (15.07%) five or more teacher schools. Table No.1 gives the state wise distribution of such schools in the Eastern region.

Table 1

Primary Schools in the Eastern Region with single, two, three, four and five or more teacher

Sl. No.	State/ Union Territory	No. of Teachers in the Primary Schools						Total
		Zero	Single	Two	Three	Four	Five & above	
1.	Arunachal Pradesh	4 (.42)	526 (55.25)	256 (26.89)	81 (8.51)	19 (2.00)	66 (6.93	952
2.	Assam	0 (0.00)	8903 (34.41)	10646 (41.15)	3168 (12.24)	1552 (6.00)	1604 (6.20)	25873
3.	Bihar	757 (1.47)	13303 (25.89)	23407 (45.56)	8254 (16.07)	3498 (6.81)	2158 (4.20)	51377
4.	Manipur	0 (0.00)	510 (18.50)	820 (29.74)	572 (20.75)	329 (11.93)	526 (19.08)	2757
5.	Meghalaya	0 (0.00)	1969 (53.33)	1046 (28.33)	355 (9.62)	143 (3.87)	179 (4.85)	3692
6.	Mizoram	0 (0.00)	1119 (11.84)	273 (27.16)	233 (23.18)	177 (17.61)	203 (20.20)	1005
7.	Nagaland	0 (0.00)	42 (3.71)	132 (11.67)	168 (14.85)	216 (19.10)	573 (50.66)	1131
8.	Orissa	200 (0.59)	14112 (41.29)	8746 (25.59)	6475 (18.94)	2253 (6.59)	2392 (7.00)	34178
9.	Sikkim	0 (0.00)	21 (4.49)	67 (14.32)	88 (18.80)	78 (16.67)	214 (45.73)	468
10.	Tripura	1 (0.05)	145 (7.52)	512 (26.57)	509 (26.41)	305 (15.83)	455 (23.61)	1927
11.	West Bengal	2 (0.00)	1679 (3.46)	14065 (29.03)	13994 (28.88)	9408 (19.42)	9308 (19.21)	48456
12.	A & N Islands	0 (0.00)	41 (23.16)	43 (24.29)	31 (17.51)	19 (10.73)	43 (24.29)	177
	All Eastern Region	964	41370	60013	33928	17997	17721	171993
	All India	2628	148033	171389	80365	47188	19789	529392

Percentage of Teachers in Schools are given in parentheses.

Source : Fifth All India Educational Survey : Selected Statistics as on September 30, 1986, NCERT, New Delhi, Pages-82-83.

Curriculum Transaction in Multiple Class Teaching

In most of the countries primary school curriculum is supported by a list of what are called "minimum learning competencies". These are usually analysed into objectives relevant to each class level. The methodology to be followed to achieve these objectives are also indicated.

The major problem of the teacher in a single or two teacher school concerns the planning of his work. He has to plan his work in such a way that the students of different classes are purposefully engaged in activities and study. Most teachers in these schools are indecisive about curriculum transaction - specially, what to teach and how to teach ? These teachers tend to use methods of teaching and instructional materials which are designed for the ordinary primary school classroom situation to their own multiple class situation. Another major problem for the teacher is the absence of individualized instructional materials for use with students in multiple class teaching. Likewise, there is also the need for developing tools for continuous evaluation and dignostic testing. Such an assessment would help the teacher in understanding the progress of each student and for planning remedial work in each subject.

- How do you help teachers in evolving methodologies of teaching suitable to multiple class teaching ?
- What instructional materials such as work books, self study materials, self assessment materials etc. do you think would be helpful ?

Problems of Teaching Learning Process
In Multiple Class Teaching Contexts

The following are some of the problems related to the teaching learning process :

- The tendency of teachers to work with multiple classes as one group without taking into account the special needs, and developmental stages of the learners.
- Teacher's lack training in handling multiple class situation and they are often too causal in teaching.
- Over emphasis on completion of textual lessons.
- Insufficient attention to gifted and slow learners.
- Assigning and correcting of home work of students of different classes.
- Insufficient time for health and physical èducation activities, creative arts and cocurricular activities.
- Problems of individualizing instruction in multiple class situations.
- Absence of instructional materials and A.V. aids suitable for use in multiple class teaching.
- Frequent interruptions and distractions in multiple class teaching.

The above are only some of the problems and the list could be even more. These problems merit our attention.

- How would you help the teacher to face these problems ? List out your ideas and suggested activities.

Classroom Organization and Management in Multiple Class Settings

Classroom organization and management is as important a component as time budgeting in multiple class teaching. Unlike the regular primary school, in a single or two teacher school daily or weekly time table is prepared keeping in view the load of the teacher, the various activities to be assigned to the students, the classes and activities to be managed by monitors, the facilities available within the school etc. Normally, the following are taken into account in preparing the daily/weekly schedule :

- allocation of periods to subjects in terms of the weightage given in the curriculum.
- each period of 45 minutes has 15 minutes of direct teaching by teacher, 15 minutes of assistance by monitor/voluntary teacher, and 15 minutes of self study by pupils.
- activities planned to be mostly based on textual lessons.
- cocurricular activities.
- health and physical education activities.

Flexbility characterises the time-table in a single or two teacher school where multiple class teaching goes on.

> - What timings would be suitable ? Should there be morning and afternoon sessions ?
> - Prepare a daily/weekly time-table and try out.

rangement and Combining of
r Multiple Class Teaching

seating arrangement of multiple class teaching is from the usual arrangement one sees in the primary .e seating arrangement takes into accounts a number ;. These include :

'ailability of space.
)mbination of classes for teaching and other :tivities.
tudents comfort and adequate lighting.
isual and hearing problems etc. of students.
inimisation of noise distractions etc.

re are no prescribed rules or standards for combining r for seating arrangement. The seating arrangement s the combination of classes may vary from one to another. Usually non-consecutive classes are ogather on the assumption that the students of higher re capable of independent work while student of lower epend upon teacher assistance. What ever the combination s used and whatever seating arrangement may be followed important thing is to train children in self-discipline.

following is an example of seating arragnement:
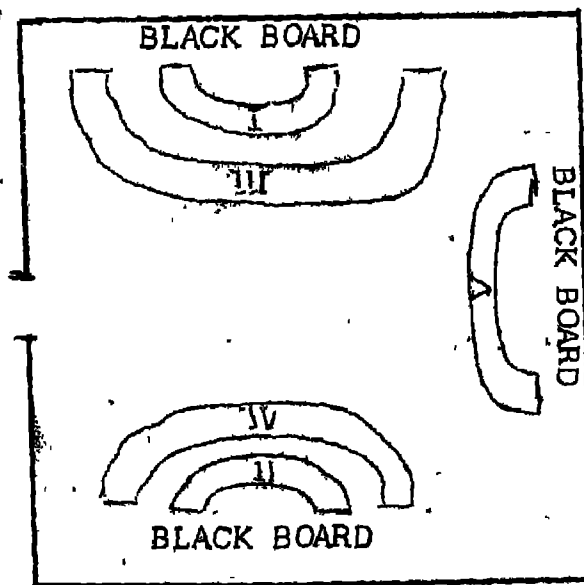
A teacher in a single or two teacher school, by virtue of his own experience over the years may adopt class groupings which are found to be useful for various activities related to the curricular or co-curricular domains.

> - Suggest and tryout class grouping for curricular and co-curricular activities.
> - What sort of seating arrangement would you use if the school has - (a) only one hall, and (b) two rooms.
> - How do you manage instruction in other classes when you are busy teaching in a class.

Developing a Climate for Learning

Most children in our rural areas have no pre-school education. Therefore, it is desirable that the teaching in classes I and II is informal for a few months. Story telling, games, play way activities etc., may be planned to generate, promote, and sustain school readiness in children. These activities should involve pupils so that they develop listening comprehension, speech articulation conversational skills etc. Actual Reading, Writing and Arithmetic can be taken up as soon as children become regular in their attendance.

Evaluation of Pupil Progress in a Multiple Class Teaching Context.

In MCT situations, the students are made to understand what to learn and how to learn. Students are given clear cut instructions as to what they are to do and what is expected of them. Timely diagnosis of student weaknesses and continuous monitoring of students work is important for reinforcement, feedback and remediation. Remedial approaches in MCT context

include special instruction for removal of doubts and difficulties, additional exercises in areas where students are weak, attachment with bright students or senior students, and provision of self-learning materials.

Fostering a Positive attitude towards MCT

The level of parental literacy of children in the single or two teacher schools is rather low. They often fail to see the relation between education and future jobs for their children. Children also understand that their parents are not keen on their education and so absent themselves on minor pretexts of assisting parents in their work. Inability of parents to provide textbooks and stationery adds to the poor performance of children at school.

Multi class teaching is seen by many as undesirable, although in terms of pupil numbers it is a necessary alternative to single class teaching. How to generate a positive attitude towards Multiple class teaching ? The following are some of the ways to generate favourable attitude towards Multiple class teaching :

- Convince parents that MCT is not inferior to single class teaching.
- Publicise the results of multiple class teaching.
- Make teachers realise that teaching in multiple class situation is not difficult than teaching single class provided they possess the basic skills in the art of multiple class teaching.
- Ensure that the teachers teaching in multiple class situations have as much status as those teaching in ordinary primary schools.
- Convince teachers that their posting in a single or two teacher school is not a punishment.

Pre-service Training of Teachers and Multiple Class Teaching

As it is, there is no provision for special teacher training to meet the needs of single or two teacher schools. There are primary teacher training institutions which prepare primary teachers and their teacher education programmes, by and large do not include multiple class teaching methods. Very few provide some theoretical instruction about single teacher schools, multiple class teaching and non-graded schools. Most institutions, however, do not expose their student teachers to the single or two teacher situation even for a short duration or for practice teaching. Consequently, the teachers coming out of these institutions have no practical experience in handling the classes when appointed in such schools.

- Should multiple class teaching be offered as an area of specialization like 'School Administration', 'Guidance and Counselling' etc.
- How do you expose student-teachers to multiple class teaching situations ?

Inservice Training of Teachers and Multiple Class Teaching

The purpose of inservice training for primary teachers is to enable them to keep pace with the developments in the content and process of education. Inservice teacher training programmes for primary teachers are organized in every state every year. But such programmes for single/two teacher schools are extremely rare if not non-existent. There is a great need for inservice programmes for teachers in single or two teachers schools. Such programmes should be in areas such as :

- Multiple class teaching.
- Classroom organization and management.
- Preparation of instructional materials (including low cost or no cost aids, self-learning and self-evaluation type materials, work books, activity sheets, teachers guides etc.)
- Continuous comprehensive evaluation of pupil progress.
- Use of community resources both human and material.
- Teaching methodologies suitable for multiple class teaching.
- Minimum learning outcomes and their assessment.

> - What other inservice programme would you suggest ?
> - How do you ensure that the inservice programmes are need based ?
> - What follow up action would you propose ?

Mere provision of inservice training to teachers of single or two teacher schools is not enough. We need to evaluate the performance of teachers who have undergone such inservice training. It is also necessary to strengthen the supervision of such schools so that we are in a position to plan need-based inservice training programme in areas where deficits are noticed.

Strategies for Supervision of Multigrade Schools

Supervision of single or two teachers schools is rather scanty. The reasons include remoteness of schools, difficult terrians, absence of transport facilities, etc., very often the supervisors themselves are not exposed to these school situations. There is a need to orient supervisors

on the functioning of the schools, multiple class teaching strategies, problems faced by teachers in Multigrade schools, community involvement and parental participation in school programmes etc. It is a good idea to have inservice programmes for supervisors along the same lines as those conducted for teachers of multigrade schools.

Advantages of Multigrade Schools

Single teacher schools, inspite of a number of problems associated with them, have certain definite advantages. They are the only alternative to education of young children in certain regions of the country. Grouping together children of different classes, ages and abilities as practiced in Multigrade schools have merits. It lays the foundations of community living - It develops in children the habit of working on their own through participation in self-learning situations - Children learn to display a high sense of responsibility - The workshop like organisation of classes calls for active participation of pupils. As the children are in contact with only one teacher over a period of years, a strong teacher-pupil relationship is developed - The organisational structure and the flexible nature of the time-table are such that they enable the pupils to learn at a rate suited to their needs and abilities - Teacher has a tremedous opportunity to individualise instruction.

- Can you think of other advantages ?

In the context of universalisation of elementary education, it is necessary to strengthen these schools. Equally important is the provision of competent teachers for these schools. The DIETs in our country have to become more sensitive to the needs and problems of schools where multiple class teaching is the only alternative.

***

b/s

Module 16.

: Education of Children with Disabilities

Dr. S.K. Goel

Background

Objective

Learning Activities

Children with Locomotor Disability

Children with Speech and Hearing Disorders

Children with Visual Impairment

Children with Low Mental Ability

Children with Learning Disability

An Overview

References

Self-Check Exercises

Key

BACK-GROUND

You might have come across some children with special needs in your classrooms. These children have learning problems and need a little extra help from you. Sometimes it may be easy to understand their problem but sometimes it may not be possible and learning problems may persist despite your special help. You get an opportunity to observe all the children in the initial grades in both academic and non-academic situations. These observations can facilitate the early identification of disabled children. The teachers can perform this function successfully if they are aware of the specific manifestations of the disability in personal appearance and behaviour. These children have learning problems because of factors either inherent in themselves or in their homes or in their schools.

The degrees of special needs arising out of a disability, alongwith educational implications, have been worked out in this module. The learning activities involve (a) individual activities of doing paper-pencil exercises and reading; (b) group work; and (c) discussion in plenary sessions. You will enjoy doing these exercises and many guidelines given in this module regarding simple identification procedures for various disabilities and their educational implications will ease your problems to a considerable extent. At the end of this module, some self-check exercises are given and this will help you to evaluate your learning.

OBJECTIVES

After completing the module, you are expected to:

1) State the various learning problems of the disabled children and classify them under various categories.
2) describe ambulation disabilities (that are cerebral and non-cerebral), special health problems, convulsive disorders, sensori-motor disabilities, mental retardation and learning disabilities.
3) identify the children with disabilities at initial level and refer them to specialised agencies for detailed investigation and assessment.
4) Suggest the points of action for educating children with disabilities in the least restrictive environment.
5) list the agencies and organizations that teahcers may contact for assistance in meeting the educational needs of children with learning problems identified above; and
6) Suggest follow-up action that you propose to take to meet the educational needs of such children in your classroom.

LEARNING ACTIVITIES

During your teaching career you must have come across some children who have learning problems and do not perform well as expected by you inspite of your best efforts and special attention. Your colleagues must have also experienced the same problems with such children and might have possibly shared their views during some formal or informal discussion.

Why not think them over and list all the learning problems of such children on the basis of your experience. Also make an effort to find out the possible causes of such learning problems. You might have spoken to their parents, siblings, peers, other teachers and also directly to the children and thus may help you to find out the possible causes of learning problems. You may further find out the causes may be classified into various categories i.e. Home, School, Child or any other. Let us do some of these activities.

Activity Sheet No.1 Learning Problems of the Children in the Classroom.

- -

I find the following learning problems of the children in my classroom.

1. . . . .
2. . . . .
3. . . . .
4.
5.
6.
7.
8.
9.
10.

Activity Sheet 2: Possible Causes of Learning Problems.

Problems

I feel that the learring problems of my children are due to following reasons.

1.
2.
3.
4.
5.
6.
7.
8.
9.
10.

Activity Sheet No.3: Classification of Learning Problems.

Category:	Learning Problems Classified Under this category
1. Child	1.
	2.
	3.
	4.
	5.
	6.
	7.
	8.
	9.
	10.

2. School
1. ___
2.
3.
4.
5.
6.
7.
8.
9.
10.

3. Home
1. ___
2.
3.
4.
5.
6.
7.
8.
9.
10.

4. Any other
1. ___
2.
3.
4.
5.
6.
7.
8.
9.
10.

The unfavourable attitude of parents and siblings towards the child, the broken family, the marital disharmony between the parents, frequent transfer of father leading to adjustment problems to the child in different schools could be some of the factors related to learning environment at home. The biased attitude of the teacher, inadequate instruction and facilities could refer to the learning environment of the school. Any hearing/visual/special health/ lowered intellectual level, etc. could be the problems of the child. We as teachers cannot afford to neglect these children and suitable curative and corrective measures will have to be taken. If no suitable measures are taken, many new problems will crop up and the learning problems will multiply. Such situations are likely to cause frustration due to constant failure and as a result, the children will ultimately drop out and develop behaviour problems which may be detrimental to their well-being.

The focus of this module is to deal with children with disabilities in regular schools.

You must have made various attempts to deal with the learning problems of your children. You must have made certain behavioural observations and used some adaptation/adjustment in the curriculum and modifications in your teaching methods. You must have supplemented your verbal explanations by using various instructional devices/audio-visual andis and showing practical demonstrations.

You may list the action taken by you so far and also think what further you can do about them.

Activity Sheet No.4: Teacher's Approach to deal with children with disability.

Disability	Action taken so far	Further action Required
	1.	1.
	2.	2.
	3.	3.
	4.	4.
	5.	5.
	6.	6.
	7.	7.
	8.	8.
	9.	9.
	10.	10.

Once these children with disabilities are observed consistently in the classroom, they may be referred to specialized agencies. They may require some medical help and correction to overcome the disability e.g. they may need hearing aid/lens/magnifying lens/crutches/wheelchair/writing aid, etc. The curative and corrective measures are accompanied by adjustment in curriculum and instruction with the objective of making the curriculum accessible to such children. Each area of disability has been discussed briefly within this specific framework and some important guidelines for identification of disability and education of children have been highlighted.

CHILDREN WITH LOCOMOTOR DISABILITY

Children with physical disabilities are those whose physical or health problems result in an impairment of normal interaction with society to the extent that specialized

services and programmes are required for them. They may have locomotor problems i.e. problems related to bones, joints and muscles. As a result, the mobility of limbs and extremities gets restricted. They may find difficulty in moving around and some other problems in their home and school environment but they are capable of learning like other children. For example, a child having certain deformity in fingers may not be able to have a proper grip of the pencil and experience a problem in writing. Some children having postural defects may have certain difficulties in performing some learning activities due to fatigue. Some normal children may also make fun of these disabled children due to lack of awareness and the disabled children may therefore fact adjustment problems.

Like children with other disabilities, the physically disabled are typically grouped in categories. We will discuss children who are grouped according to their abilities to function in a particular area and children who are grouped according to their medical diagnosis. The functional categories are ambulation, which refers to the child's ability to move from place to place, and vitality which refers to the child's health and ability to sustain life. In the medical category, we will discuss convulsive disorders. We will also discuss architectural barriers, and devices designed to assist the physically disabled.

Terminology Based on Anatomy

Term	Body Area Involved
Monoplegia	One limb
Hemiplegia	Both limbs on the same side of the body.

Paraplegia	The lower limbs.
Diplegia	All four limbs, but the lower limbs more seriously than the lower.
Triplegia	Three limbs
Quadriplegia	All four limbs
Double Hemiplegia	Upper limbs more seriously affected than the lower.
Anterior	Front
Posterior	Back
Medical	Nearest the middle
Lateral	Farthest from the middle
Super-ior	Nearer to the head.
Inferior	Farther from the head.

There are a number of other terms used to describe the physically disabled. The terms "proximodistal" and "cephalocaudal" are used to describe the growth of children. The term proximodistal means that the development proceeds in the outward direction. That is, the central parts of the body mature earlier than the peripheral parts. For example, the trunk and shoulders develop first and then the arms and fingers begin their real worth. The term "cephalocaudal" means head-to-foot direction of development. The head starts growing at a very rapid rate almost immediately after conception. A fetus's head is well developed before his legs assume their final form; are buds appear before leg buds. This progressive differential growth first the head, then the trunk, then the legs - has been designated by the term cephalocaudal (head-to-foot).

AMBULATION DISABILITIES:

Physical disabilities that prevent a child from entering a building, traveling easily from room to room, using toilet facilities, moving from one floor to another, or traveling in a crowded halfway all cause serious problems. It is this type of impairment that has restricted the physically disabled to special schools and modified self-contained classrooms. We will briefly describe the ambulation disabilities which are cerebral in origin and which are caused by noncerebral factors.

Cerebral Palsy

Cerebral Palsy (CP) is a ambulation disability that is cerebral in origin. CP is caused by damage to the brain. It is characterised by impaired motor coordination. It is a nonprogressive disorder that affects gross and fine motor coordination. The other disorders often associated with CP are communication disorders, sensory disorders, convulsive disorders, intellectual deficits, etc. There are several types of cerebral palsy including spastic, athetoid, ataxia, rigidity, tremor and mixed.

CP can cause a wide variety of problems, some very serious, some relatively easy to adapt to. Those who suffer from it can be expected to attend school in regular class-rooms, in classes for the orthopaedically handicapped, or in programmes for the severelly or multiply handicapped. These children may need physical, occupational and speech therapy. Some will need minimal extra attention, where-as others will need a great deal of assistance to develop to their full potential.

AMBULATION DISABILITIES (Caused by noncerebral factors)

The other disorders that affect ambulation are muscular dystrophy, spinal muscular atrophy, poliomyelitis, arthrogryphosis, arthrities, osteogenesis imperfecta, spinal cord injuries and other musculosketetal disorders. Muscular dystrophy is a progressive weakening and degeneration of the voluntary muscles. Spinal muscular atrophy affects the spinal cord and results in progressive degeneration of the motor nerve cells. Poliomyelitis (infantile paralysis) is a viral infection that affects or destroys the cells in the spinal cord. When these nerve cells are destroyed, the muscles that they serve eventually die or become paralyzed. The paralysis may affect the entire body or just parts of the entire body. Many people with polio are bed-redden, confined to wheelchairs, or dependent on braces and crutches for ambulation. Spina bifida is a congenital defect. caused by the failure of the bones of the spine to grow together completely. Ostegenesis imperfecta is also known as brittle bone disease. Arthorogryphosis is a congenital disorder characterised by stiff joints and weak muscles. The first signs of the disease Arthritis are general fatigue, stiffness and aching of the joints as they swell and become tender. The five common types of arthritis are: rheumatoid, osteoarthritis, ankylosing spondylitis, rheumatic fever and gout.

A problem in one part of the body frequently causes problems in another part. Children who have spina bifida, muscular disorders, or other disorders frequently have back problems as well. Muscles that pull too hard or that are unequally balanced can cause such disorders as scoliosis

lordosis, and kyphosis. Inadequate muscle tension sometimes results in the complete collapse of the skeletal system. A club foot is a disorder that can appear by itself or in conjunction with another problem. Children with this disorder are born with one or both feet turned down and in. Amputation is another important disability. It can be partial or complete. Most amputations are necessary because of accidents but some are required by life-threatening physiological disorders and diseases. Limbs may also be missing as the result of disruptions in the early fetal development of the limbs. This sometimes occurs randomly but it can be caused by drugs such as thalidomide if taken by the pregnant woman particularly during the first trimester of pregnancy.

The children with locomotor disabilities can be easily identified with the help of the following checklist.

Identification checklist for Orthopaedically Disabled Children.

1. Observable deformity in fingers, legs, hands, waist (Spine), neck, etc.
2. Frequently complains of pains in the joints or shows signs of pain during physical exercise.
3. Walks awkwardly with jerks/limp.
4. Has amputated limbs.
5. Falls frequently.
6. Has difficulty in sitting, standing and walking.
7. Has difficulty to have a proper grip of the pencil.
8. Innovluntary movements of limbs.
9. Poor motor control or coordination. The child is unable to coordinate two or more muscle groups for performing any task.
10. Moves in a shaky fashion.
11. Has difficulty in holding objects, picking up and putting them on the table or on the ground.

The teacher must assist the parents of such children to procure aids for mobility and proper functioning through District Rehabilition Centres, Vocational Rehabilitation Centres.

DISABILITIES THAT AFFECT VITALITY

Some of the disabilities that can affect the vitality of children are congenital heart defects, cystic fibrosis, diabetes and asthma, children with disabilities that affect vitality are frequently placed in special classes or programmes. Although all these disorders are life-threatening, some are more dangerous than others. All children with these types of disorders will need special assistance from a primary care worker or teacher, and special educational, social and vocational training as well.

Children with mild health problems come under the educable IED group. Their health problems donot interfere with educational planning. But precautions need to be taken in terms of getting adequate medical checkups and support. There are children with severe health problems who cannot be integrated in regular schools. The severity of their health problems interferes with educational planning. Such children require constant medical attention and may not be able to participate in the academic and non-academic activities of general classrooms. These children require rest very often as they get severely tired after 10-15 minutes of studies. Such children need to be educated either in special classes in regular schools or be given homebound/hospital bound instruction.

Children with special health problems can be identified by the teacher with the help of following checklist.

Children with Special Health Problems : Identification Checklist.

1) Shortness of breath.
2) Blue apperance of skin.
3) Low tolerance for exercise.
4) Frequent coughing.
5) H ve an increased appetite. .
6) Have low physical stamina and gets easily tired.
7) Takes snacks, sweet biscuits during classtime.
8) Excessively restless.
9) Extremely slow and inactive.
10) Complains of frequent pains in arms, legs, joints, chest etc.
11) Extremely inattentive.
12) Has slight temperature most of the time.
13) Faints frequently
14) Gets irritated, anger very quickly.
15) Frequently throws temper-tantrums.
16) Exhibits destructive and aggressive tendencies without proper reason.
17) Frequent urination, abnormal thirst, extreme hunger, rapid loss of weight, sleepiness, weakness.
18) Frequent skin infections such as itching/boils, etc.
19) Breathes noisily and perspires often.
20) Allgargic to dust and feels difficulty in breathing.

CONVULSIVE DISORDERS

Epilepsy and seizures are categorised under the general heading of convulsive disorders. Epilepsy is caused by uncontrolled electrical discharges in the brain and can usually be controlled with medication. Epilepsy is treated as a special health problem. The three primary types of seizures that result from epilepsy are grand mal, petit mal, and psychomotor seizures.

You may protect the child by cradling it in your hands and donot restrain child movement, however. The teacher may notice the following symptoms of this problem:

1) The child shakes violently as if in the grip of hysteria.
2) The child becomes unconscious.
3) He falls and moves arms and legs violently.
4) He may become pale and there is constant recurrence of fits.
5) He may unnecessarily go on rubbing of arms and body parts.
6) There is twitching of eye lids.
7) He starts taking off his clothes.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

Many types of assistive and adaptive equipment have been developed to help physically disabled children in their day-to-day existence, travel, adaptive to their environment, and communication. Prosthetic devices such as artificial arms and legs are used to replace missing body parts. Orthotic devices are attachments, such as a leg brace or a splint that assist a body function.

Depending upon the severity of the child's physical disability/special health problem and the extent to which he requires special attention, the child might be placed in any of the educational environment which is least restrictive. The great majority of the physically disabled children can be educated in regular classrooms with the use of assitive equipment and special teaching aids. Before recommending the placement of orthopaedically disabled children in the regular

classroom, it is necessary to consider that their medical, travel, transfer and lifting, self-care, and positioning needs can all be appropriately met in the regular classroom.

The first and foremost thing is that a teacher should create an atmosphere of acceptance of a disabled child in the classroom. He should be involved in all learning activities as an equal partner with his peers. The teacher should encourage peer interaction on the basis of mutual respect, whole-hearted support and cooperation. This can be facilitated by telling the normal children the implications of physical disability.

Necessary seating arrangements for the disabled children in the front side will facilitate free movement for other children in the classroom. Ramping arrangements may also be necessary for children with wheel chairs. They should be given adequate opportunities for participation in games, physical and recreational activities at their level of functioning. Efforts may be made to plan such activities for normal and disabled children as a joint venture.

In the classroom you must have experienced of dealing with a child with locomotor disability and adjusted your teaching and classroom arrangement for children with problems of (a) movement from one place to another, (b) posture arising out of muscle tension, and (c) muscle rigidity interfering with their academic learning/skills.

. CHILDREN WITH SPEECH AND HEARING DISORDERS:

Communication is disordered when it deviates from accepted norms such that it calls attention to itself,

interferes with the message, or distress the speaker or listener. Speech results from many organs of the body working cooperatively to produce sound. The three major types of sounds in our language are vowels, diphthongs, and consonants. Speech and language are developmental processes acquired over time. Language disorders are the most complex and most serious of all communication problems. Most speech disorders involve problems with articulation, voice or fluency. Speech language pathologists are the professionals to deal with communication disorders. The classroom teacher has an important role in the early identification of communication disorders. The following checklist summarizes behaviours and characteristics of children with speech disorders:

a) Does the child have any observable deformity of the speech organs ?
b) Does the child make frequent natural breaks while speaking words and phrases ?
c) Does the child frequently mispronounce despite corrective efforts make by the teacher ?
d) Does the child hesitate in participating in oral group activities ?

Gains made in therapy sessions must be reinforced in the home and classroom for speech therapy to be effective. A child listens a lot before the can speak well. Our ears are the doorways to the world of communication. It is the listening child who learns to say his first words by the age of 12 months. The professionals who evaluate hearing by means of audiometric testing are called audiologists. Hearing loss can affect speech and language development, and educational, vocational, social and emotional adjustment.

Depending upon whether hearing loss is mild, moderate, severe or profound, the hearing aid is to be fitted. Hearing aids make sound louder but donot make sounds clearer. Auiditory training is important for listening. For educational purposes, children with hearing disorders are classified as either hard of hearing or deaf. The philosophy of total communication makes use of both oral and manual procedures to teach deaf children.

Regular classteachers should be able to recognize signs that may indicate hearing disorders so that they can refer children for hearing evaluations. They can help keep children with hearing disorders in the regular classroom in many ways. A classroom teacher should watch for the following signs of possible hearing loss.

IDENTIFICATION CHECKLIST:

1) Does your child have problems paying attention in school ?
2) Does your child favour one year for listening purposes ?
3) Does he have problems to hear when you speak to him from behind ?
4) Do you think your child can hear, but only when he wants to hear ?
5) Do you think your child speaks too loudly or too softly ?
6) Does he exhibit voice problem and mispronounciation?
7) Does he tune the Radio/TV too loud ?
8) Does your child answer questions irrelevantly ?
9) Does your child keep away from age mates ?

10) Is your child unable to respond when you call from the other room?
11) Does your child understand only after few repetitions ?
12) Does the child focus on the speaker's face while listening to and understanding speech ?
13) Does the child ask for help from fellow students in taking notes when the teacher gives verbal explanation of the lessons in the classroom ?
14) Does the child complan of frequent earaches or ear discharge ?
15) Does the child scratch his ear frequently ?
16) Does the child have any observable deformity of the ear ?

If one or more of these symptoms are present in your child, you need to observe the child and see if the behaviour is consistent in similar situations. If the behaviour is found consistent, your child needs professional help from an audiologist.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

The treatment and educational requirements of a school age child will depend on the nature and severity of the child's hearing loss. There are many children with mild to moderate hearing loss in regular schools. The following suggestions may help the teacher work with them effectively.

1) If the teacher generally teaches from the front of the room, the hard-of-hearing child should be seated in the front, preferably slightly off center

towards the windows. This allows the child to hear better and read lips more effectively. Linght should be directed towards the teacher's face and away from the speech reader's eyes.

2) If the hearing impairement involves only one ear, or if the impairment is greater in one ear than the other, the child should be seated in the front corner seat such that this better ear is toward the teacher.

3) The child should be encouraged to watch the face of the teacher whenever she is talking to the child. The teacher should speak at the speech reader's eye level whenever possible.

4) The teacher should pay attention to the posture of the hearing impaired child's head. The habits of extending the head or twisting the neck to hear better can become firmly fixed.

5) The teacher should not speak loundly or use exaggerated lip movements when speaking to the hard of hearing child.

6) The hearing impaired child should be encouraged to turn around to watch the faces of children who are reciting.

7) An interest in music and participation in vocal music should be encouraged.

8) The teacher should be able to assist the child who wears a hearing aid in the classroom.

9) The hard-of-hearing child should participate activively in all plays and other activities which involve speech.

10) Teachers should watch carefully for illnesses in hearing impaired children. Colds, influenza, throat and nose infections, tonsilitis, and other ailments should be treated as soon as possible.

Under the centrally sponsored scheme on Integrated Education of Disabled Children revised 1987, there is more emphasis on the integrated of mild and moderate cases of hearing impaired. The integration of severe and profound cases has been recommended after preparation in preacademic skills.

CHILDREN WITH VISUAL IMPAIRMENT:

The basic function of eye is to collect visual information from the environment and transmit it to the brain. We collect nearly 80-90% of information through our eyes. This inpute is denied to the visually impaired. Visually impaired children (VIC) are classified as either blind or partially sighted. The blind children cannot read the usual text and need braille, which is read through touch. These children can be easily identified. The vision of some of the partially sighted children can be corrected through a lens, some require magnifying glasses to read and some can read only large print of 18 point and above. Some children have a restricted filed of vision.

Most visually impaired children are not totally blind. Approximately two-thirds of all visually impaired children have some remaining vision. A majority of cases of blindness are either preventable or curable.

Much use of blackboard and reading from the books is required for academic learning. Visual impairment leads to several learning problems. Such children can be easily identified by the teacher with the help of the following checklist.

Identification Checklist for the Visually Impaired.

1) Observable deformity in the eye(s).
2) Frequently reddening of eyes.
3) Rubs eyes excessively.
4) Hodls objects and books close to his eyes.
5) Covers one eye and tilts the head forward.
6) Blinks eyes frequently.
7) Squints eyes.
8) Asks other children for help while taking notes from the blackboard.
9) Complains about headache following close eye work.
10) Watery eyes.
11) Pupils of the eyes are of different sizes.
12) Seems very sensitive to light.
13) Becomes inattentive during reading sessions.
14) Body becomes terse while trying to distinguish the distance of objects.
15) Takes false steps while walking.

If a child displays some of this behaviour, the teacher may refer him to PHC or hospital for eye check-up and medical treatment.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS:

Visually impaired Children tend to lag behind their seeing peers in school achievement. Once a child has been placed in the most suitable educational environment, the educator must consider the curriculum that will best meet his/her needs.

Children with visual problems are usually taught the same sequence of subjects as children with normal vision because they need to master the same basic skills. However, unlike sighted children they will need to be taught special skills in addition such as Orientation and Mobility, Daily Living Skills, Braille Reading and Writing, etc. Although the responsibility

for implementing the total curriculum plan lies with the regular teacher, the assistance of a specially trained teacher will be necessary to teach these special skills to VIC. The media through which VIC obtain information are tactile, auditory, and visual.

Those involved in educational planning should remain flexible in their approach to placement. It is important to remember that the most appropriate, least restrictive invironment for VIC is the one in which they would normally be enrolled if they were not visually impaired. They should be educated to the greatest extent possible with sighted children. In considering basic instructional methods for visually impaired children, it is important to remember that many of the techniquest and strategies that are effective with seeing children are also appropriate for the visually impaired. VIC do have some unique instructional needs and will require help from specially trained teachers of the visually impaired in some academic areas.

Here are some guidelines for the teacher to help VIC in integrated setting.

1) Make the VIC seated in front so that they may be able to read from the blackboard without much difficulty.
2) He should write on the blackboard with bold and clear letters and speak loudly whatever he writes.
3) He should supply books with large prints (18 points or more) to cater to the needs of VIC.
4) He should supply hand lens, magnifying glasses, etc. from DRCs/hospitals for children whose correction is beyond the spectacle lens.
5) VIC may be given training in listening with comprehension.
6) Provide opportunities for participation in physical education games.
7) Give more auditory and tacticle aids to compensate for visual loss.
8) Arrange to provide audio-cassettes for VIC from SIE/SCERT/CIET/NCERT/NIVH, etc.

9) Provide more verbal cues while explaining the concept in the class.
10) Provide compensatory aids like came for mobility, braille slate and stylus for learning to read and write braille, abacus to learn numerical concepts and brailler to cope up with speed of taking dictation in glass classroom.

CHILDREN WITH LOW MENTAL ABILITY

Mental Retardation is impaired mental ability. To be diagnosed as mentally retarded, a person must be significantly subaverage in both intelligence and adaptive behaviour. A retarded child learns more slowly; at maturity his capacity to understand will be less than normal. He finds difficulty in learning, social adjustment and economic productivity.

The classification system based on severity of systems, which identifies children as mildly retarded (Educable Mentally R terded), moderately retarded (Trainable Mentally Retarde) and Severely/Profoundly retarded (Custodial Mentally Retarded), is the system of greatest utility. The performance of mentally retarded children is affected in the class by their delayed development. The observable behaviours that will help the teacher in identifying such children are given in the following checklist.

Identification Checklist for the Mentally Retarded

1) Consistent low academic achievement
2) Has short attention span
3) Has a poor self-image
4) Lacks self-confidence
5) Has restricted communication
6) Often inattentive and easily distracted
7) Seeks immediate reward
8) Has poor muscular coordination
9) Seeks repetition and practice
10) Displays fear of failure

11) Shows excessive reliance on presentation of concere objects.
12) Has a problem in understanding instructions/abstract things.
13) Does not take initiative in group activities.
14) Faces difficulty in doing things for himself.

Educational Implications

It is best to regard retarded as "developing individuals" who are capable of growth and development that can lead to favourable changes in their behaviour. With early and proper teaching, with suitable schools and vocational training, the mildly retarded, who constitute 75 percent of the retarded population, can learn to be fairly self-supporting adults. These EMR children with good adaptive behaviour skills can often be successfully integrated into regular classes. TMR children are usually educated in special classes and can only be integrated in non-academic areas with adequate preparation. They can be trained in vocational areas and daily living skills. The retarded benefit from all types of attention and training. Even the S/PR can improve. The CMR cases need help in developing daily living skills and can be educated in special institutions. They cannot be integrated due to poor adaptive behaviour.

The following guidelines for adapatation of instructional material and methodology for the EMR may be useful for the teacher.

1) Provide concrete experiences for these children.
2) Provide direct experiences of the environment by field trips.
3) Provide more repetition and practice.
4) Present the learning task in small steps.
5) Draw their attention to important points of the learning task.

6) Ask simple questions to give them a sense of accomplishment.
7) Provide immediate reward as and when the child gives correct response.
8) Provide training in communication skills through practice in social situations.
9) Arrange situations so that they may participate along-with normal peers.
10) Transact the curriculum through simple and interesting experiences.
11) Ensure mastery of basic skills in the three Rs.
12) Organize learning activities through games, physical activities and music which form a permanent impression on their minds.
13) Arrange activities requiring eye-hand coordination.
14) Arrange activities which help in developing sound discrimination.
15) Utilize advantageously a situation chosen by the child himself for learning a particular skill.
16) Provide all necessary aids and supportive materials to learn a concept adequately.

CHILDREN WITH LEARNING DISABILITIES:

Learning Disabled (LD) have difficulties in learning to read, write, speak, comprehend do arithmetic, spell the words, etc. The basic problem in learning-disabled children in an incapacity to learn through normal conventional channels. Such children are said to have a learning disability which arises out of the problems in psychological processes like perception and memory.

From a psychometric standpoint, a learning disability can be operationally defined as a significant discrepancy between a child's actual level of achievement and the achievement

expected of child at his/her chronological age. The causes of learning disabilities are very poorly understood, but they could include such disparate factors as maldevelopment of the train and poor teaching. The main characteristies of LD children are:

a) Attention difficulty
b) Perceptual problems
c) Memory problems
d) Language deficits
e) Poor motivation/attitude
f) Poor sound/symbol association
g) Transfer difficulties.

In order to be called a "characteristic" difficulties that children with learning disabilities have must be

a) Observed consistently over time
b) resistant to simple remedial teaching methods
c) accompanied by a significant goap between achievement and ability.

Identification Checklist for the Learning Disabled:

1) Has difficulty in telling the time, remembering the order of days, months and mathematical tables.
2) Is always untidy and late in submitting homework and coming to class.
3) Is so excited that he is unable to complete any task.
4) Finds it difficult to organize his work, uses trial and error approach, logical and sequential approach missing.
5) Seems dull and slow in responding to others.
6) Gets easily distracted even by slight distrurbance.
7) Cannot correctly recall oral instructions when asked to repeat them.
8) Confuses between left and right.
9) Reads words backwards, puts letters in wrong order, shortens words, misreads words, omits letters, adds letters, etc.

10) Difficulty in academic subjects, difficulty may be only in one subject or a combination of subjects.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

Learning disabilities and behaviour disorders may occur in part because our schools are unable to provide enough high-quality individual instruction. The regular classroom teacher should become skilled through inservice training in managing learning disabilities within the mainstream of the school.

It is very difficult to identify the children with a mild degree of learning disability at pre-school level. They can be identified early if the parents and teachers plan their instructional material systematically from the very beginning. The guidelines given below will help the teacher to adapt instructional material and methodology to the needs of these children.

1) For correcting learning disabilities the child should be given exercises to identify a particular letter or number which is difficult for him to recognise, write or speak.
2) Letters or words which resemble each other, either visually or auditorilly, should not be taught together.
3) Sensory experiences should be provided to copy letters correctly and to verbalize the differences. for example, saw and was; no and on.
4) Learning tasks should be divided into small groups so that the child feels that he has mastered the task.
5) The initial part of the remedial session should involve activities in which the child can achieve 80-90% success. A sense of success will act as a motivator.
6) Encourage the child to perceive the words as a whole rather than through identification of individual letters.

7) Ensure that the child is continually busy and interested in the task during the teaching session.

AN OVERVIEW:

There are children with some impairment who can be educated in general school with the existing facilities by general teachers without any formal preparation. There are children with certain impairments who can be educated in general schools with some preparation and slight modifications/ adjustments/adaptations in teaching methods and materials. There are also a limited number of children with disabilities, who will require comparatively prolonged formal preparation before they can be educated in general schools.

Children with different types and levels of disability will require educational provision matached with their needs. The educational provision may be considered on the basis of the extent of their participation in educational activities in common with other children. Targets of Universalization of Primary Education (UPE) can be achieved only through integrated education. Integrated Education is not an additional burden. Planned integrated education helps in universal enrolment and retention. Children with mild and moderate disabilities can be integrated in general schools. Adequate arrangements are to be made to give vocational training to the disabled. Teacher training programmes need to be reoriented in particular for teachers of primary classes, to deal with the special difficulties of handicapped children. Teachers should keep in touch with developments in the education of the disabled. Parents and the society need your help in developing disabled children as a human resource just like other children.

Module 17.

EDUCATION OF THE GIFTED CHILDREN

Dr. S.T.V.G. Acharyulu

The presence of the gifted child is a delight to parents at home and to teachers at school. The gifted are the 'stars' of the classroom. Teachers and parents uphold them as models for others to emulate. Teachers in our schools as elsewhere trot them on important occasion to impress their supervisors or visitors. Most teachers agree that the gifted have unique abilities and that there are self-straters.

Academic Giftedness - A More Valued form of Giftedness

No other form of giftedness is given as much as importance in our culture as academic giftedness. The criterion of such giftedness is either school marks or the marks obtained at some public examination.

We have shown only lip sympathy as far as the education of the gifted children is considered. The complaint about our schools is that they are intended for the average and not so much for the gifted. There is grievance that huge amount of money is being spent on average children in schools while the investment on the gifted, who are the promise of the future is staggeringly low.

Definition of Giftedness

The term gifted is used to refer to a small minority of the population in a country. The size of this group depends on the degree and kind of giftedness postulated. Further, any definition of giftedness is bound to be influenced by the talents, abilities and skills highly valued by the culture.

Terman considered the top one percent of students on an intellegence test as gifted. De Haan and Havighurst (1957) thought of the top 10 percent with a minimum of 120 IQ as gifted. Recently Vernon, Adamson and Vernon (1977) suggested that a child should have a minimum IQ of 130 before he is designated as gifted. More recently Angelino (1979) defined academically gifted as those with an IQ of 130 or above. It is not incommon to find some schools who consider the top 10 to 15% of the students in each class as gifted. In our country the Education Commision (1964-66) recommended that the top 5 to 15 percent of the students of our institutions could be considered as gifted.

Boarder Concept of Giftedness

However during the 50's several psychologists expressed dissatisfaction over such definitions of giftedness. Recently, the U.S. Federal Register (1975) defined the term gifted in a much broader way. According to it, the gifted are those individuals who are found to posses demonstrated or potential abilities that give evidence of superior performance capabilities in such areas as intellectual, academic, creative, performing and visual arts and who need differentiated education to realise such potentialities. Today the major concepttions of giftedness include such characteristics as superior cognitive abilfty creativity in thinking and production, superior talent in performing arts or other special areas which are socially desirable. Thus, any child who demonstrates excellent performance in any task of practical utility or theoritical interest could be treated as a gifted child. Gifted children possess both potential and functional skills necessary for academic achievement in the top 15 to 20% of school population.

- What kind of children should be considered gifted and why ?

Physical Characteristics of the Gifted

The Genetic studies show the gifted to be above average in physical development. The gifted are found to be ahead of the developmental norms for the average. The gifted were heavier than others at birth, teeth, talk and walk earlier than others earlier in pubescence; nutritionally better than the average and free from sensory defects. The gifted men and women have low morality rate, excellent mental and physical health, excellent adjustment and a wide range of social and leisure time pursuits. They sleep less than the normal individuals.

Learning Characteristics of the Gifted

The learning characteristics of gifted children are usually studied by contrasting them with normal children of comparable age and grade/class. Some of the typical learning characteristics are as follows :

- They learn the fundamental skill in about one-half the time needed by average children.
- They learn with little effort and their remembering capacity is proverish.
- They have more efficient memory process than average children.
- They are fluent and gramatical in speech and have rich and advanced vocabulary for age and class level.
- They are found to be superior in intellegence, art, judgement, music, memory, mathematics, and science when measured by standard tests.
- They show intiative and often work long hours on topics that interest them.
- They will honour the prizes for intelectual work.
- They are quick in comprehension and preception of new relations. They understand advanced topics with remarkable case.

- They enjoy intellectual problems puzzles and games.
- They are good at problem solving and often display originality.
- They take work seriously and show great deal of concentrations and persistance in task completion.
- The have competance in the mechanics of writing and have a found of correct and upto date information.
- They are avid readers of learning material and often read beyond their class level.

The above are only suggestive and the list of could be much larger. There is considerable variability among the gifted in their learning characteristics.

- From your experience with gifted children list other characteristics.

Reading Abilities and Interest of the Gifted

About 50% of the gifted learn to read before entering the school..Out of these about 8% and 5% were taught to read by their mothers and fathers respectively.

- What are your observations about reading abilities and interests of the gifted children ?

Emotional Characteristics of the Gifted

The gifted compared to the average are well adjusted both at home and school and display a wide range of play and creative activities. They are highly curious, self-confident, and emotionally stable. They show great initiative and resourcefulness. They have a high sense of responsibility and often assume leadership. The gifted in general are free

from serious problems of mal-adjustment. They show more positive self-concept self-motivation and very low anxiety levels.

- What other emotional characteristics of the gifted children are noticed by you ?

Social Characteristics of the Gifted

The gifted children do not lag behind in displaying superior social characteristics. The gifted are accepted and welcomed by their classmates and teachers. Their social status among peers is rather high. Most of the gifted occupy positions of leadership. Some studies have come out with the interesting finding that high IQ is not the cause of the gifted children's popularity. When the disparity in age between the gifted and other children is about two years or more problems of varying degrees arise in social participation and social games. Such problems are confornted by gifted children from lower-class homes to a great extent.

- What are your observations about the social nature of the gifted ?

Special Abilities of the Gifted

Gifted children are not equally gifted in all activities. There are variations in the abilities of such children. There are gifted children who are efficient in certain capacities but are sometimes below the average on other capacities. For example, talent in music and drawing correlate highly with general intelligence, young muscians and artist may have high IQs but many children with high IQs lack special abilities in drawing, music and or caricature.

- What kind of special abilities did you notice in the gifted children ?

Current Practices in the Identification of the Gifted

The concept of giftedness today is much broader than what it was. Consequently the method of identifying gifted children on the basis of a single intellegence test is no longer adequate. Likewise the responsibility for identification of gifted children lies out with the psychologists alone but with a number of personnel. These include parents, teachers, school administrators, guidance councellors, social workers, pediatricians and, in fact, all people who are closely associated with the child who is supposed to be gifted. The identification of the gifted is a complex is a process. Literature on the gifted revealed the use of the following types of tools in the identification of gifted:

- Intellegence Test
- Special Aptude Test
- Standardised Achievement and Reading Ability Test
- Interest Inventories
- Parent's Report about their Children
- Teachers Observation and Nomination
- Creativity Tests.

Educational Provisions for the Gifted

The aim of a comprehensive gifted child programme should be to offer such a diversity of levels and subject fields that it is possible to plan for each gifted child individually. It has to be different from what is provided to other students. Otherwise there is no justification for a gifted child programme. Such a programme cannot just be the 'more of the same school experience' type either. It is

true there is no simple or universally acceptable solution to the problem of the education of gifted. We may do well to shape our educational provisions for the gifted around the programmes and techniques successfully followed elsewhere. Theree major kinds of educational provisions are discernible from the literature on the gifted. They are :

A. Acceleration
B. Segregation or homogeneous grouping
C. Enrichment.

The first two are administrative while the third is basically academic in nature. Each has a number of variations. We shall acquaint ourselves with these.

A. Acceleration

This is a procedure that allows the gifted to progress more rapidly and complete a prescribed course of study in any subject in less time and/or at an early age than other students. Acceleration is based on the philosophy that's gifted student who is able to learn quickly and effectively all that is prescribed for his class should be allowed to move ahead and not compelled to stay in the class for a complete year. It involves no expenditure and no administrative adjustments or inconvinence. Acceleration can be for a minimum of one year and a maximum of two years and this is supported by research evidence. Various forms of acceleration are tired out. Recently Roth and Sussma (1974) presented a classification of the methods of acceleration. These include :

- Early Admission
- Grade/Class Skipping
- Grade/Class Telescoping
- Non-Graded Classes
- Additional Course in High School and Early Admission to College
- Advanced Placement.

Let us understand what each one really means.

i) Early admission.

There are certain rules regarding the minimum age for children to get admitted in a nursery/elementary school. In some countries like U.K. and Canada, a maximum concesion of 6 months is given to bright children who are identified by means of intellegence tests and reading readiness tests. This is done because their mental maturity is found to be more advanced than the average children. Studies show that young children who are admitted on age concession basis tend to keep up their superiority throughout their school career.

ii) Grade/Class Skipping was prevalent even before the 20th century. It is based on the philosophy that if a student in a given grade/class has acquired all learning experiences of the next grade or class, the child should be allowed to skip it and proceed to the next higher grade or class. This sort of acceleration is followed in some of the English - medium schools in our country, though this is restricted by and large to the primary classes. In some parts of our country it is known as 'double promotion'. Elseqhere it is known as 'acceleration through condensation (Sypers, 1972).

iii) Grade/Class Telescoping

In this method the gifted are not allowed to skip grades or classes. Broadly the approach as followed in U.S.A. and experimented sometime ago in U.K. and other countries is somewhat like this. The total period of 12 years of schooling is divided for example, in North America, into 4 stages of 3 years each. These stages are :

- Elementary Division I
- Elementary Division II
- Junior High School
- Senior High School.

In our country we may divide the 12 years of schooling into :

- Primary Stage (Class I to V)
- Upper Primary Stage (Class VI to VIII)
- Secondary Stage (Class IX to X)
- Higher Secondary Stage (Classes XI to XII).

The division into stages is not the focus here. What is more important is the time taken to cover the instruction normally provided in these stages is completed in a considerably less time for the gifted. For example, in some schools, all gifted children are put in one section and the 3 years course is covered in 2 years for the gifted group. Thus, while the normal children have to pass through 12 years of schooling, the gifted children are given the opportunity to complete the same in less than 12 years. There are several variations of this method of acceleration.

iv) <u>Non-Graded Class</u>

These are also known as "Continuous Progress Scheme" or "Levels System" or "Units System". They are more popular at the elementary level of education in U.S.A. and Canada. In this the entire course for a given stage of education is divided sequentially into a number of short stages or units. Each child is given the freedom to work on his own amd move from one unit to another. The 3 years course of 'elementary division' in U.S.A. which is organised sequentially in terms of Units, for example is covered by a gifted child in 2 years and by a slow learner in 4 years or more. The emphasis is on the mastery learning. The administration and organisation of such non-graded classes or schools is rather difficult. Hence, in countries like U.S.A., U.K. and Canada this is done by the computer. This is known as Computer Managed Instruction (CMI).

v) Additional Courses in High School and Early Admission to College

This approach is the result of a feeling that all students need not be forced to spend the specified number of years in a school, or college or university to ear their degrees. The gifted may master the course content in less than the stipulated length of time while the slow ones need more time than what is stipulated. It is with the gifted this method of acceleration is used. In schools which offer a variety of courses the students have the option to choose them according to their interests. Some of these are advanced or college-level courses. In schools where facilities for advance level are absent, the 11th and 12th grade students are permitted to take certain first year college courses. A gifted student can complete his schooling in a year earlier and thus earns his degree a year earlier. This approach is similar to that of early admission. While the early admission approach gives age concession for admission into the elementa school, this approach provides age concession for admission into the college level courses. However this approach has not gained much support.

vi) Advance Placement

In this method of acceleration the gifted high school students are given college level work. Credits are given if they pass the required examinations. However, they have to satisfy the normal age requirements for entry into the college. But if the gifted enter the college they are given exemption from certain first year college courses. This enables them to earn their degrees in less than the time usually taken by other students. This is so popular in U.S.A. that the College Entrance Examination Board now operates this scheme of acceleration.

- What are the advantages and disadvantages of acceleration ?
- Which form acceleration do you think is suitable and why ?
- What facilities are needed to implement ?
- What changes would you suggest at the school level ?

B. Segregation

Some belive that the best way to educate is to bring the gifted children together. In such a grouping the range of individual differences is reduced and teachers can use methods of teaching and learning experiences more suitable to them. Such aprocess of grouping is known as by various names such as 'ability grouping', 'segregation', and 'homogenous grouping'. What ever may be the name used the purpose is to provide greater opportunities commensurate with the abilities of the gifted. They are various forms of segretation. These include :

- Special schools
- Streaming
- Special classes in regular schools
- Part-time segregation.

Special Schools

In some countries, notably in U.S.A., special schools for the gifted are established. For example, there are 'Schools of Science', 'Schools of Fine Arts' etc., in large metropolitan areas. A number of criteria are used for admission into these schools and the academic requirements are stiff. Such schools exist at the elementary and secondary levels. Some of them also serve as a base for training teachers for the gifted.

Streaming

In this the students are divided into groups in such a way that the range of individual differences among them is reduced. There are many variations in homogeneous grouping. A very interesting variation which is gaining popularity in U.S.A. and some countries in Europe is based on the philosophy, that a gifted student need not be gifted in all subjects uniformally. Hence, it allows a gifted student to be with the gifted, say in mathematics, and with the average, say in a language subject, it entails a lot of difficulties in preparing time table. Flexible scheduling and block scheduling are being tried.

In some schools grouping is done in terms of college-oriented general and vocational courses. Allocation to these groups is based on pupil achievement, school counselor's recommendations and parental choices. Such school should have multiple curricula and offer a variety of elective subjects.

Special Classes in Regular Schools

In large schools, gifted students are identified class wise and provided special instruction. The gifted are separated from other children for all purpose except co-curricular and recreational activities. There are diverse schemes for special classes.

In small schools the gifted are identified and a programme for the gifted from such schools is developed and all such children are placed in a special school which is centrally located. This is found to be economical and beneficial to the gifted. For academic purposes the gifted attend the special school and for all other purposes they continue in their own schools. Such an arrangement, however, requires administrative modifications in terms of transport facilities besides a host of other problems.

Part-time Segregation

In this approach the gifted are separated from their classes for part of each day. They spend half-day with their regular teachers for clas work and the other half with resource teachers who provide enrichment activities. Some schools follow special grouping for such areas as Mathematics, Physics, Chemistry, English and Social Studies.

> - Is grouping of gifted children possible in our context for special education ?
> - What are the merits and demerits of ability grouping ?

C. Enrichment

This grew out of a realisation that the usual education offered in the school is not satisfying to the gifted. What is provided in the curriculum is too meagre and is completed by the gifted children in less than a year. This becomes a problem both to the gifted and their teachers. As a result, teachers and school administrators began to search for new content and activities for the gifted. Although acceleration and homogeneous grouping have been tried, the search for other alternatives continued. Soon the idea of enrichment of the gifted without separating them from their classes came. Enrichment involves the provision of experiences for which the average or below average child lacks the time, interest, or the ability to understand. Provision of more and more of the same kind of activities is not enrichment. To ask a gifted child, for example, to solve 20 arithmetic problems of the same level of difficulty, while others are required to do only 5 does not constitute enrichment. Enrichment involves the provisions of a greater variety of new learning situations, materials and activities of a

stimulating and challenging nature. Enrichment is not embellishment of existing course content, but different related and advanced content. Enrichment is by far the least controversial of the three administrative procedures. It implies the provision of opportunities for understanding complex ideas and systems of knowledge in different subject fields. Therefore, the emphasis is on the depth of content on a higher level of abstraction and understanding. The focus is on independent thinking, problem solving and discovering of new facts. There are various forms of enrichment. These include :

- Provision of special instruction in music, industrial arts, and other specialised fields.
- Provision of a variety of advance level and elective courses in different subjects.
- Participation in school club and other activities.
- Encouraging hobbies and collections etc.
- Arranging talks in the areas of special interest to the gifted.
- Provision of facilities to work after school hours in libraries and laboratories.
- Encouraging the gifted to coach others in the class.
- Participation in speech and essay competitions, Talent Search Examinations.
- Visitis to university departments and industrial establishment related to the interest of the gifted.
- Participation in Science fairs and Exhibitions.
- Individualisation of instruction.

Principles of Effective Enrichment

Any enrichment programme, if it is to be effective, should :

- Focus on the self expression of the gifted.
- Develop and promote skills of search and equiry.

- Stimulate self-intiated learning and independent thinking.
- Emphasis quantitative and qualitative accomplishment.
- Have a built in flexibility in its organisation and administration.
- Indivisualise instruction.
- Have competent staff.
- Have extensive facilities such as libraries and laboratories.
- Have closer community relations.

Horizontal and Vertical Enrichment

Enrichment could be individual or group horizontal or vertical. Horizontal enrichment involves the encouragement of the gifted to take up additional subjects of study over and above what is normally prescribed for the class. Vertical enrichment, as the name implies, involves the study of the subjects in greater depth through advance level courses, project work and so on.

- What are the merits and demerits of enrichment ?
- What kind of enrichment would you like to try ?
- How do you go about ?

Organising a Gifted Child Programme

It is possible for each school to have its own programme for the gifted. Our schools can start the programme in a modest way within the resource available. But many would like to know how a gifted child programme is organised. The major steps in the organisation of a gifted child programme are :

- Preparation
- Planning
- Distribution of responsibilities

- Identification
- Programming and Programme Implementation
- Evaluation and Follow-up.

Preparation

At the school level, there should be a sincere feeling that the school can do more than what it is now doing to help its bright students. Such a feeling is to be cultivated by the staff of the school. To start with, we may have a committee in the school to work out preliminary details. This committee may collect such information as the following :

- The size and type of community, its values, attitudes occupational structure and educational level.
- The number of pupils whom the teachers consider as bright and the basis on which it is done.
- The kind of attention given to the education bright students..
- The ideas teachers may have for encouraging the gifted.
- The resources available in the school for providing challenging learning experiences to the gifted, and
- The existing physical facilities.

The above are only suggestive and there can be numerous other items of information that may be relevant for the purpose. Such an approach helps us to understand the existing practices and facilities.

However modestly we may like to begin the gifted child programme, the support and committment of many persons at the school, community, district, and state levels is absolutely necessary. The involvement of teachers, parents and administrators is important in generating an awareness that something has to be done to facilitate the education

of gifted in our classrooms. This should be taken as a challenge, a matter of pride, and as a great leap for translating the concept of equality of educational opportunity into action.

Planning

Once the stage is set, a committee consisting of teachers, headmasters, parents, prominent local community members interested in education, and local/district education officers may prepare the blue print. This is based on a thorough review of literature on the gifted. The planning may include :

- The operational definition of giftedness.
- The statement of the objectives of gifted child education.
- Identification procedures and the criteria on which to base these.
- The decision whether services of experienced psychologists/test agencies/programme specialists would be needed for drafting the plan and programme suitable to the school.
- Collection of information of gifted child programmes, if any, in the country or abroad.
- Inviting suggestions for the gifted child programme.
- Preparation of draft plan and discussing it with groups of teachers, parents, experts in the field and State Department personnel connected with education.
- Deciding which of the three broad approaches - acceleration, segregation and enrichment - would be suitable for the school to follow. Specifying the programme in detail.
- Deciding the level at which the programme should operate at the initial stages.
- Finalising the plan.

Distribution of Responsibilities

As has been stated earlier, the school level committee with the head of the institution as the coordinator should assign specific responsibilities to the staff. These may include :

- Screening and identification of gifted.
- Notification to parents.
- Development of enriched curricular and cocurricular learning experiences.
- Exploring community resources for providing facilities to the gifted.
- Maintenance of records related to the various activities of the gifted children.

These are only suggestive and there can be many more things for which responsibilities are to be assigned.

Identification

Once the plan of identification and the criteria for identification are ready, we put these into action, identify and select the students with outstanding performance in the decided area of giftedness.

Programming and Programme Implementation

The programme should be such that the gifted children are given opportunity to learn more than the average students. The learning materials should be challenging enough to the gifted. Such materials are to be developed by the teachers themselves. What is provided to the gifted should be carefully planned and overloading should be avoided. Gradually, as teachers gain experience they can improve the programme and make it more and more meaningful, enjoyable, and purposeful.

of gifted in our classrooms. This should be taken as a challenge, a matter of pride, and as a great leap for translating the concept of equality of educational opportunity into action.

Planning

Once the stage is set, a committee consisting of teachers, headmasters, parents, prominent local community members interested in education, and local/district education officers may prepare the blue print. This is based on a thorough review of literature on the gifted. The planning may include :

- The operational definition of giftedness.
- The statement of the objectives of gifted child education.
- Identification procedures and the criteria on which to base these.
- The decision whether services of experienced psychologists/test agencies/programme specialists would be needed for drafting the plan and programme suitable to the school.
- Collection of information of gifted child programmes, if any, in the country or abroad.
- Inviting suggestions for the gifted child programme.
- Preparation of draft plan and discussing it with groups of teachers, parents, experts in the field and State Department personnel connected with education.
- Deciding which of the three broad approaches - acceleration, segregation and enrichment - would be suitable for the school to follow. Specifying the programme in detail.
- Deciding the level at which the programme should operate at the initial stages.
- Finalising the plan.

Distribution of Responsibilities

As has been stated earlier, the school level committee with the head of the institution as the coordinator should assign specific responsibilities to the staff. These may include :

- Screening and identification of gifted.
- Notification to parents.
- Development of enriched curricular and cocurricular learning experiences.
- Exploring community resources for providing facilities to the gifted.
- Maintenance of records related to the various activities of the gifted children.

These are only suggestive and there can be many more things for which responsibilities are to be assigned.

Identification

Once the plan of identification and the criteria for identification are ready, we put these into action, identify and select the students with outstanding performance in the decided area of giftedness.

Programming and Programme Implementation

The programme should be such that the gifted children are given opportunity to learn more than the average students. The learning materials should be challenging enough to the gifted. Such materials are to be developed by the teachers themselves. What is provided to the gifted should be carefully planned and overloading should be avoided. Gradually, as teachers gain experience they can improve the programme and make it more and more meaningful, enjoyable, and purposeful.

Along with the curricular provisions, teachers may plan the cocurricular activities for the gifted. They may even recommend and assign them to local organisations which are likely to stimulate their interests further and further. Such activities afford great scope for the development of students' talents.

Evaluation and Follow-up

It is necessary to know the effect of the programme on the performance of the gifted. We look for the gains and drawbacks as well. We evaluate the programme in terms of the goals set. We learn from the limitations and we effect needed improvements to the various aspects of the programme. It is again put into operation for the new batch of gifted. The gifted child programme is a continuous educational endeavour to nurture the talented.

Draw-up a programme for the education of the gifted in your school.

b/s

Module 18.

Module Title

Environmental Studies(Social Sciences)

Dr. M.A.Haque

The Primary School system is the largest part of any country's education system. A closer look at what primary school teach and how they teach it reveals uncomfortable facts. In most cases the curriculum in the schools is inappropriate to the needs of the children and the community. The teaching in many schools is formal, unstimulating and inefficient. "Education", the Kothari Commission (1964-66) has stated, "is a three-fold process of imparting knowledge, developing skills and including proper interests, attitudes and values". It points out that our schools mainly concentrate on imparting bookish knowledge and neglect the other two aspects of education as the curriculum makes inadequate provision for practical activities and experiences. Moreover, as the development of useful skills and the inculcation of the right kind of interests, attitudes and values are not given sufficient emphasis, the curriculum becomes not only out of step with modern knowledge, but also out of tune with the life of the people.

In order to upgrade and improve the school curriculum the Kothari Commission advised to removal of false barriers in learning in the primary school. It is, therefore, recommended that environmental studies-embracing science and social studies be included in the lower primary stage rather than separate disciplines of science, history, geography and civics. The UNESCO report, Learning TO Be, also amphasizes the process of learning, particularly self-learning. The method of teaching should change in the direction of helping pupils to learn better and on their own, not only in the school but also outside the school.

As a matter of fact, the Patel Committee has rightly stated that:

> "We venture to suggest that the premium on bookish knowledge in India can only be remove by a complete change in th structure of the curriculum and allotment of time to the area of work. This can only be done if more emphasis is laid on activities and experience rather than formal instruction".

Thus the need to achieve the three-fold process of education and to remove the artificiability of compartmentalizing learning in the primary school has been felt the world over. One answer to this is an approach in education which is known as environmental studies approach. It has been successfully used in Britain where much literature, resource material, children's workbooks and teachers' guides have been published. In India, it has been introduced for the first time in the ten-year school curriculum developed by the NCERT. The concept of environmental studies as given in The Curriculum for the Ten-Year School: A Framework (NCERT,1975) is that in primary classes the sciences and social studies should be taught as environmental studies; in Classes I and II as a composite course including both the natural and social environment, and in Classes III, IV and V as two subjects - Environmental Studies - I (natural science) and Environmental Studies - II (Social Sciences).

The Patel Committee has recommended the inclusion of health education along with social studies and nature study under environmental studies. This recommendation of the Patel Committee is very sound and logical in view of the recommendation of the Kothari Commission (p.188).

Meaning of Environmental Studies:

All parts of the earth and its people, past and present, and the heavenly bodies that we can see are all part of our

our environmental which the children should find out and learn about. However, with junior children we must give them as much direct experience with their environment. The Kothari Commission states that:

> At the lower primary stage the child should receive instruction in the basis tools of learning such as, reading, writing and computation and learn to adjust himself to his surroundings through an elementary study of his physical and social environment. He should participate in activities which develop his constructive and creative skills and teach him the habits of healthy living....(p.187).
> The study of the environment will be largely informal in the beginning and will be provided by making the child observe his immediate social and physical surroundings and talk in class what he observes. In Class III environmental studies will gradually lead to social studies and science which may now be treated as regular subjects, but in a very elementary manner. While the activity in the form of music, art work, dramatics and handwork should be organized for creative self-expression. Health education will stress the formation of good health habits.

Thus environmental studies is an approach through activities based on the child's physical and social environment, which lads to the progressive development of attitude and skills required for the observation, recording, interpretation and communication of scientific, historical and geographical data. However, the approach can overflow into language, mathematics, Art/craft, drama, music, moral and aesthetic education.

Aims:

According to the Joint Working Party Report on Environmental Education, UK:

The aim of environmemtal studies in the primary school is to assist in the acquisition and progressive development of basic skills and concepts, to provide a source and stimulus for creative work and to give opportunities for making discoveries at first hand. This approach should lead to the development of awareness of personal environmental responsibilities.

Although it is impossible to give detailed guidance which can be applied immediately to all situations, it is nevertheless possible to outline some of the aims and objectives which all teachers should have in mind when considering the potential of a particular situation for environmental studies. Some of the basic aims of environmental studies work can be expressed as follows:

1. To give the student experience of an approach to learning by enquiry.
2. To use the student's personal interests and abilities as the inspiration for his involvement in a wide range of related activities.
3. To encourage the student to develop attitudes of care and concern for his environment.
4. To encourage a spirit of cooperation between the members of a class or group, while at the same time encouraging individual self-reliance.

<u>Objectives:</u>

An environmental studies approach is the planned and conscious use of all the resources of the environment in the education process". Therefore, the objective which a particular curriculum or scheme of work sets out to achieve need to be very carefully and specially defined in terms of the age and ability levels of the students at the primary level and

particular circumstances of their situation.

Some suggestions are offered below as a guide to teachers engaged in formulating their own list of objectives. These suggestions have been given on the basis of the objectives of primary education as stated in the Report of the Education Commission (1964-1966). The curriculum for the Ten-Year School: A Framework (NCERT, 1975), and the Report of the Review Committee on the Curriculum for the Ten-Year School (NCERT, 1977). Apart from this, while framing objectives for environmental studies work the suggestion of the Council for Environmental Education, University of Reading, U.K. has also been taken into account. Thus in the course of the work the student should develop:

1. The ability of acquiring knowledge through observation, study and experimentation in the areas of social and natural sciences.
2. The ability to use the vocabulary necessary for accurate recording of information from the environment, and for creative self-expression.
3. The ability to demonstrate mathematical skills, including the measurement of dimentions, counting and recording, estimate of relative sizes, use of measuring instruments (e.g. ruler, calipers, tapes).
4. The ability to record information in a variety of other ways, including sketching and casting, and to use these various skills for creative self-expression.
5. The ability to analyse information gathered by the above methods and to present it in a variety of concise forms, including graphs, histrograms, pie-diagrams, charts, flow diagrams.
6. The ability of acquiring skills for planning and executing socially useful productive work with a view to making education work-based.
7. The ability of acquiring habits of co-operative behaviour within the family, school and community.

8. The social responsibility by inculcati g habits (individually as well as collectively) of appreciation of the culture and life-style of persons of other religions and countries; and readiness to serve the weaker and deprived.
9. The desire to participate in productive and other process of community life and to serve the community.
10. The habits of cleanliness and healthful living and an understanding of the proper sanitation and hygiene of its neighbourhood.
11. The ability to express itself freely in creative activities and should acquire habits of self-learning.
12. The ability to assess the information from all sources. to draw from it rational comparisons and conclusions concer ing the relationship between man and his environment and begin to formulate a personal scale of values and opinions concerning the management of society and man's surroundings.
13. The ability to work without constant supervision in cooperation with other members of the class or group.

Module 19.

Course in Teaching Methodology at
Elementary Level

Environmental Studies(Social Sciences)

Dr.M.A. Haque,

Very little formal teaching in environmental studies goes on at the primary level. The Patel Committee Report has rightly recommended: "We wish to stress the need for a change in the approach to the learning process in these classes (I-IV/V). We feel that there is need for more creative and joyful activities than formal instruction. Formal instruction must be reduced to a minimum.... "Thus in this kind of learning process the teacher rather becomes an adviser, director and responsible for the provision of learning situations. Sources for ideas should depend initially on the child's own environment.

The method is 'centre of interest' or work radiating from a starting point in the environment. Children must be given as much direct experience as possible throughout the work. The environment can be used as a stimulus for creative expression. Start with the direct impact of the environment on the child and the child's individual response to it. The teacher should be prepared to follow the personal interest of the children who, either singly or in groups follow divergent paths of discovery. Ideas that are listed and can be followed, should be divided into main topics and subsidiary topics. The main topic can be a starting point or centre of interest for a class or group.

The work is not to be all 'teacher-led'. If the children can follow out the work they are interested in and want to do, their work and experiences should be of higher standard. However, it is good for them to work within limits in a main

topic. If an idea is not forthcoming, teachers might have to lead the children in direct way on to the idea, An enthusiastic teacher can often inspire children. In individual topics the children can have free choice. Teachers will be much concerned with organizing the class so that the best can be obtained from the children, and helping them to experiment, investigate, discover and record for themselves. Sometimes assignment cards can prove helpful, especially if a child is lacking ideas. Teachers should try to avoid setting all the work on to assignment cards. Practical work and the first-hand experience is just as important as reference work using books. The work and experiences can be carried out in class, group and individual work. For a main topic, it is best to start off altogether as a class and then divide up into groups or even individually, and report back to class using displays, paintings, and other art work, models, specimens, graphs, drawing, writing and cut-out matetials in project scrap-books or folders, maps and charts. The teacher must lead children into covering all aspects of a topic such as geographical, historical and scientific. Naturally, in some topics these aspects cannot be perfectly balanced. This does not matter as long as the three aspects are covered. In subsidiary topic this is not necessary as some of the topics will cover only one or two aspects. Of course, subsidiary topics can be used within the framework of a main topic or arise from a starving point.

The emphasis throughout the course of work should be on individual and group inquiry work by the students themselves, involving the use of as wide a variety of resources and local contacts as possible. In addition there should be an emphasis on the discovery of the interrelationships which surround features of the environment and th-e problems and conflicits which can arise in connection with man's attempt to alter or

control his surroundings. Cooperation and communication between the various investigatory groups or individuals should be encouraged, and the principles and concepts which emerge from the local studies should gradually be examined at national and world level, broadening the students' outlook and preventing the investigations from being too narrow and parochial.

Choice of the Study Site:

The actual choice of a starting point will depend on many factors and the details of the lines of enquiry which can be followed will vary greatly from situation to situation. Any suitable environment can provide a host of starting points from which environmental studies work can be developed, for example, a school playground, garden, a tree, a street, a market, the local water supply, and so on. With all these starting points valid inter-disciplinary studies can take place provided the students are given sufficient guidance and are encouraged to look at all aspects of the situation under study.

In its chapter on 'Socially Useful Productive Work', the Patel Committee has suggested the following common activities for Classes I and II under environmental studies:

> Exploration of productive manual work and service situations at home in the school and in the community, through observation and enquiry. The children identify the productive manual work and services going on around them, they observe who perform these work and how they are performed. They get familiar with the raw materials and tools used in the different types of work and the method of manipulating them. They discuss the importance of manual work going on around them, realize their own role in the performance of these and learn how could these be performed in a better manner. They record their experience through verbal and non-verbal media.

About the common activities for Classes III, IV/V under environmental studies, the report further states:

> Exploration of productive manual work and service situations at home in the school and in the community related to the basis needs, viz. i) health and hygiene, ii) food, iii) clothings, iv) community work and social service. The method of exploration will be similar to that in the previous classes. Record-keeping through graphic and verbal media may be emphasized.

A question is being raised by many that in the environmental education whether one should teach from or for or about the environment. The answer is that in the early stage the child should be taught from the environment. Gradually he should be taught for and about the environment. As a result the child will not only learn to understand his environment but also he will develop a liking of preserving the environment. Thus the best way of imparting environmental education to the child at the primary level is to give more emphasis on the local studies as shown in the following flow diagram:
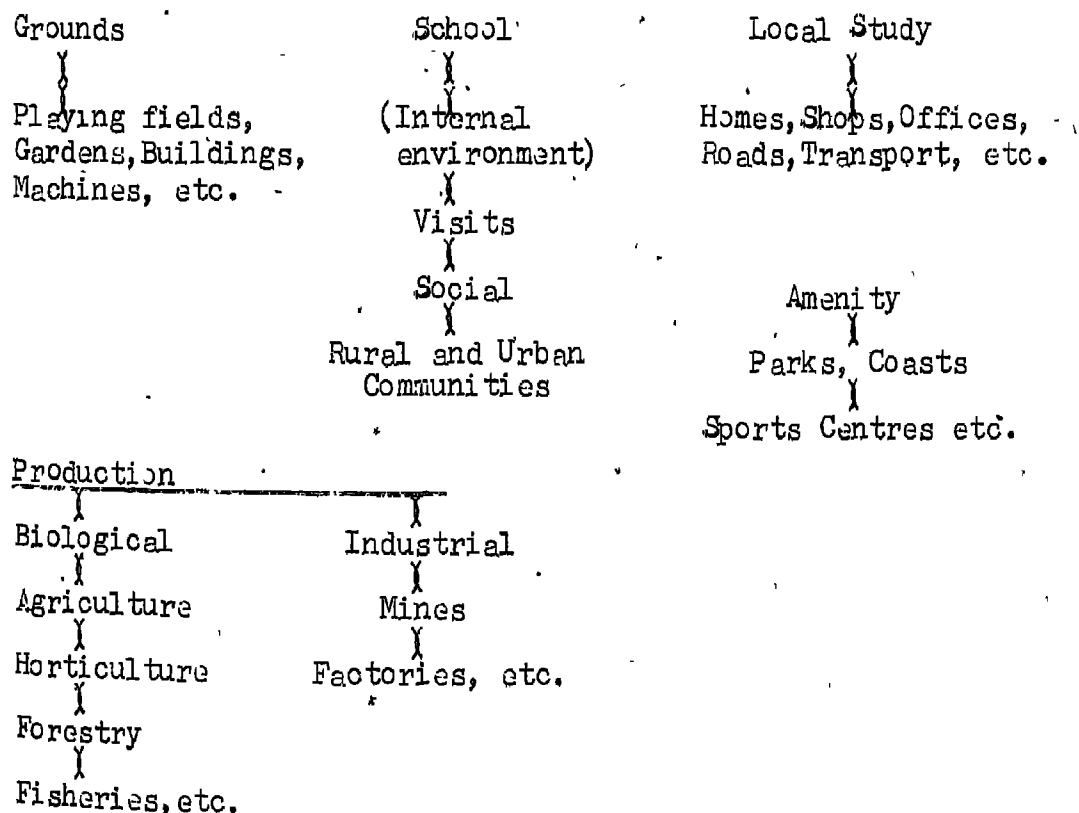
The Teacher's Role

In the teaching of traditional subjects by traditional methods, the teacher's task is straight forward and simple. The amount of information to be absorbed is decided by the teacher and the children's retention of this will be great or small according to their interest and ability. But the environmental studies approach places greater demands on the teacher. Under this system the teacher is rarely the dominant figure, but has complicated functions as mentioned below:

a) To arouse the children's interest.
b) To discuss the approach to problems or topics.
c) To organize the class into working groups, prepare work cards and group guide sheets.
d) To arrange visits or expeditions.
e) To provide reference materials for the children's use.
f) To provide materials needed for practical work.
g) To arrange for visiting speakers.
h) To discuss and guide the progress of each group.
i) To initiate and develop discussion and debate.
j) To persuade each group of children to explain their work to the rest of the class and summarize the result.
k) To provide facilities for displays and exhibitions of the work carried out.
l) To link the work with the wider world.

Conclusion:

Every child from its birth is influenced by his immediate social and physical environment. If properly utilized, the environment can become an instrument of education modifying traditional patterns. All teachers are aware of the cliches "from the concrete to the abstract" and "from the particular to the general", yet very few really put them into practice.

The environmental studies approach help to make these precepts a reality. The pupils is led to planned and directed explorations of his immediate environment-classroom, school compound, school neighbourhood and he will later relate these first-hand experiences to his study of the larger area of state, country and world.

Teachers frequently complain of the lack of suitable textbooks in the environmental studies subjects for primary classes. But they ignore the cheapest, and most up-to-date textbook the environment. Every environment, whether urban or rural, offers varied opportunities for exploration. However, it must be remembered that the environment will not yield up its riches unless the teacher himself has carefully explored it, noted its interesting features and possibilities and then planned for the children's activities and study. The teachers have to provide the resources from the environment for learning by the young child so that the child will discover knowledge and not just cram information from the textbooks. Education, specially in the primary stage, should not lead to an overloadinf of the child with too many books and too much of subject matter. This is the period when the rate of learning is fast and the teachers should take advantage of it by adopting environmental studies approach. One thing should be remembered that new syllabuses are imposed on schools for their own good, and if the medicine proves a little difficult to swallow, teachers are nevertheless expected to realize that it contains the best ingredients.

Module 20.

THE TEACHING OF ENVIRONMENTAL STUDIES (SCIENCE)

Prof.(Mrs.) S. Bhattacharya

Overview

This module is an attempt at informing the teacher/ teaches educator about the environmental approach at the Elementary level. It is essentially based on the role of the teacher in learning about the environment, through the environment and for the environment.

Objectives

After studying this module you will be able to

- know what is meant by environmental approach.
- understand why the environmental approach is necessary at the primary level.
- analyse your environment to determine what components of it can be used to teach science at the primary level.
- devise activities using the environment in order to develop in the child concepts, skills and attitudes which will eventually help him in adjusting to and studying other environments in space time.
- integrate teaching of language, mathematics and art with the teaching of environmental sciences.

What is Environment ?

This is discussed in detail in Module . . . . In the case of primary school children it is to their immediate environment at the start, and extends to a wider area as the child becomes concious what is happening beyond the immediate environment.

The immediate environment of a child includes the natural world (covering flora, fauna water, air etc.) along with the social world (ways of living, working, communicating).

It is these influences which moulds the child to live harmoniously in the environment.

As with all educational systems one goes from known to the unknown. Hence an environmental approach at approach at the primary level..

Salient Features of the Environmental Approach

1. Environmental Studies (Science) involves a child in organised investigation and exploration of his immediate environment.

2. It develops in the child awareness about the immediate environment and its problems.

3. Through the study of the environment a child learns certain basic concepts, skills and attitudes which will eventually help to understand and live successfully in other environments later.

4. The approach is child-centred and is activity-based, through which it is expected to develop logical thinking and problem-solving abilities in children.

5. The learning should be through the environment, about the environment and for the environment.

6. The aim is the all-round development of the child, and this can be best achieved through an integrated approach - for example using the same lesson to teach science, language and art.

Methodology of Environmental Studies (Science)

In order to satisfactorily teach through the environment, the teacher must be accetely aware of what is present and happening in the environment of his students and using it for the day to day activities. The activities outlined below are designed to do just that.

ACTIVITY - I

Equip yourself with a note book and try to obtain and note information about the following :

a) Water sources of the village/mohalla and their problems.
b) Flora and fauna - in most cases local names will serve for the student but if opportunity arises the teacher should try to find the proper Hindi/ English or scientific name. Any other information e.g. medicinal uses in case of plants, or small facts and figures about plants and animals are useful to make the class interesting.
c) Food habits
d) Santitation
e) Commonly occuring diseases and disorders of the locality and their mode of transmission and prevention.
f) Shelter - building materials, animal shelters (nest, burrowes etc.)
g) Occupations - with special reference to any scientific concepts related with them - e.g. potter, what clay does he use, what happens if sand is present, how does he get rid of the sand - decentation, filtration.
h) Fuels - source, use, scope for using alternate fuel.
i) Coomunication - (a) between people
   (b) between places i.e. transport.

This list is not exhaustive and a committed teacher may be able to gather much more information. On the other hand the average teacher should not get frightened by the long list. All the information need not be gathered all at once. It can done slowly as one takes up the topics one by one, but one

has to remember first that once information is gathered it should not be lost, and second as time goes by information should be added. Along with the pupils the teacher showed also grow in his depth of knowledge.

(b) Using the information

Having gathered this information, how does the teacher use it to improve his teaching ?

ACTIVITY - II

The information gathered above can be used by the teacher to conduct a successful field trip. An educative trip is usually well planned. Certain sequential steps have to be taken to organise a successful field trip.

- Identify one or two concepts you would like to teach during this trip e.g. variety in forms of plants and common features.
- Decide from your previous experience (by referring to your note book) the place where you will get a maximum variety plants and yet it will be a fairly safe. Dense jugles may harbour snakes or other harmful animals or river bank where children may fall into the water should be avoided.
- Make a list of the things you have to take with you. ____ e.g. knife, khrupa, scissors newspapers to press the plants, plastic bags,___ a small first aid kit for cuts and bites and a bottle of drinking water for emergencies, your note-book for reference. A whistle is useful to get the children to assembled.
- Inform the children beforehand, so that they may come prepared with note-book, pencil and newspaper or a plastic bag.

- Divide the children into groups of four or five and assign each group individual tasks e.g. one group may collect variety of leaves, others flowers, other fruits and seeds, others whole plants.
- Certain general instructions are necessary and the teacher should give these before leaving for the field trip.

  e.g. (a) Do not eat any fruits or berries which may look attractive.
  (b) Do not damage plants or kill animals unnecessarily.
  (c) Collect only one or two things of a kind.
  (d) Do not go into dangerious places.
  (e) Always stay in groups.

- At the excursion site repeat all instructions and then let the children collect their own specimens, and show them how to press and keep them, draw and note the colour of the flowers and fruit. The final assessment may either be dene back in school or at the site.
- Before leaving the site point out interesting features of the plants around - plants of economic value, habits (climbers, herbs etc.)
- Collate information gathered by children, make displays illustrating concepts - e.g. variety of seeds or pressed leaves may be displayed on a poster.
- Each child should be asked to pick anything from the collection and write 8-10 sentences describing the object. This helps in developing observation skills, and consolidate the learning. For encouragement the best ones should be displayed. - Alternatively a oral method may be adapted with the each child contributing a sentence.

- How to classify can also the taught from such collections.

Most of the time however the teacher is not able to organize many field trips. Often he is the only teacher in the school, and has to tackle more than one class. At such time giving a set of interesting activities to one class while he attends to other classes. Such activities are child-centred and can serve to integrate teaching of maths, arts and languages with science. Two such activities are outlined below.

ACTIVITY - III

Collect some glass jars with caps. Make some small holes in the cap. Place an insect, spider, or other small animal in each jar. Divide the class into small groups - four per group is ideal. Give each group a jar and ask them to observe the animal in it. After this they should be asked to write 10 sentences about the animal and its behaviour, and to make a drawing of it. It is more manageable to give the same animal to the whole class. The animal can be replaced by plants. The writing and drawing enhances the observation skill of the child. This activity can be used to acquaint the pupil with the flora and fauna of the area. While one class is busy with such activities the teacher can attend to other classes.

ACTIVITY - IV

Collect bottles of various shapes and sizes. Transparent white bottles are best, Jars can also be used. Take 4 bottles of same volume but different shape and dimensions. Take three other bottles which are smaller in volume than the 4 bottles fill the smallest completely with water. Fill the next largest also with water, and pour this amount into one of

the four large bottles. Pour similar amounts into the other empty bottles. Lastly fill the bottle used for measurement. Number the bottles and ask each child to write down which one he/she thinks contains maximum water and why ? Now ask a pupil to come up and measure with a measuring cyclinder (found in primary science kit) the amount of water in bottle 1, and note it one the blackboard. Repeat the exercise with other bottles using a different pupil each time. Now discuss their results and the results on the board. Points which may emerge are that depending on the shape and cross section the height of the water in each bottle is different, (ii) The thickness of the glass gives an illusion of larger quantity - a fact used by manufacturers to mislead people. (iii) A 750 ml. bottle (organge squash/hard drinks) are often used to measure berosine, oil etc. and the price they pay is for a litre. This is how people are cheated.

Many schools cannot afford teaching aids but it is possible to devise simple teaching aids with whatever is available in the environment. Some of these can be made by the older pupils with the help of the older students, but for all these the teacher must collect waste materials from the environment ------ boxes of various shapes sizes, bottles, tins, plastic bags, stoppers, pieces of wood newspapers, magazines etc. Much details on this is given in the module on the low cost teaching aids. How to use newspapers/magazines is outlined below.

ACTIVITY - V

Collect newspapers/magazines, additionaly, you will need scissors/blade, glue (paste made from flower does well).

(i) Cut out large letters from newspapers and magazines and use them to teach elphabets. Many word games can be devised using them.

(ii) Cut out photographs which show lack of sanitation, pollution etc. Paste them on a large chart/brown paper, Ask the pupils to point out what is wrong in the picture. Follow up with discussion. Such a chart can also be used to evaluate students understanding of sanitation and health.

(iii) Collect pictures of various uses of wood or stone or plastics Ask the students to list the various uses and discuss the environmental problems caused by use of wood or plastic.

(iv) Use papier mache or strips of paper glued perpendicularly in layers to build models. Such objects can easily be painted with water/poster colour.

(v) Use newspapers/magazine to press flowers and plants.

(vi) Use newspapers as an alternative to blotting paper.

Evaluation

How much of the module has improved teacher competency can be tested with the following activities.

(i) Give a specific topic, "Water", 'Diseases', 'Food habits' etc., to a teacher and ask for as much information as they collect about the topic in relation to the environment.

(ii) Ask the teacher to develop a child-centred activity-based lesson plan using resources available in the environment.

(iii) Provide the teacher with random items of low-cost materials and ask the teacher to devise an aid/experiment to teach about the environment at the Elementary level.

(iv) Ask the teacher to devise a lesson plan which involve a field trip and work out the details of field trip.

What effect such methodology has on the pupil can be assessed by seeking the answer to the following questions :

- Do the pupils show more interesting in class ?
- Is the class more mangeable when such methods are followed.
- Does it improve the concept-learning, and skills and attitudes.

+++

b/s

Module No. 21

TEACHING OF SCIENCE AT THE ELEMENTARY STAGE

Dr. J.K. Mohapatra

Introduction

A child, being an adult in the making, is a precious national resource which needs to be moulded and natured in a way so that he/she can be a functional component of the scientifically conscious emerging society of India. To achieve this the child has to be initiated to the scientific culture right from the elementary stage. He/she has to be helped to gradually imbibe in him/her the processes of this culture.

The teaching-learning of science as is now being practised inside a classroom is the following :

a) 40 to 50 students are jampacked into a small room called the classroom.
b) The teacher squeezes himself into the classroom and teachers science to the pupils by reading the textbook.
c) The textbook is a dull book with episodes like "reptiles", "lever" and with each episode followed by a battery of monotonous questions.

As a result of which the pupils get completely alienated from such a system, which, hence, is not conducive to the type of learning we envisage.

Such learning will be possible only by bringing about a total change in our approach to the teaching of science. With the child-centred approach as the basis and keeping in view the mental age and the psychological framework of the child this change could become a reality by realising three important dimensions of teaching science at the elementary stage.

The dimensions have been identified to help the pupil "Learn how to Learn Science".

Dimension-I : Science is 'FUN'

Children love fun in all spheres of their activity. Teaching in a classroom a prescribed science curriculum using a prescribed science textbook through chalk - talk method is very mundane. Learning of science can be more fun by well designed innovative activities, where the child not only takes part in the experiment but also, in some cases, becomes part of the experiment itself.

The teacher's role in these activities is not that of transferring information, but rather one of being,

a) a leader in designing the fun;
b) a facilitater in helping the child to learn through fun, and
c) an equal partner in the game of learning through fun.

In many occasions, the teacher should join the students in asking questions and searching for answers. It is also important to stress that

a) all the "ANSWERS" are not yet known and
b) sometimes "NOISES" are mistaken as answers.

Collect
Collate
Discuss

EXAMPLAR - I : (Lower Primary Level)

This is a group activity.

The advantages of this activity are a) it is not confined within the four walls of a small classroom and b) the pupils are part of the activity.

The objectives of this activity are that the pupils will learn (a) to use the senses of smell, hearing and touch, especially the sense of smell, and (b) how predators and prey interact.

Subject	: Science
Thrust area	: Ecology and wildlife
Place of activity	: Outdoors - fairly a flat area of 6 m X 9 m with some trees
Group size	: Group of 5 to 6 students
Duration	: 40 minutes.

Activity

Cordon the area, where, this activity is to take place, off with a rope. Ask the students to spread dry leaves at different locations within the area.

Make one student the predator (tiger) and the rest of the group the prey (deer), Blindfold them all including the 'tiger'. The 'tiger' has to carry an aromatic substance in his/her pocket.

The deer have to move all the time.

The tiger, who has to catch a deer to win, does not have to move around all the time.

The tiger should be positioned at one end of the area and the deer scattered around the field. Start the game.

When a deer is caught, the game can be played again with another student becoming the 'tiger'. If the 'tiger' does not make a catch within 2 minutes, it 'dies' (of hunger) and retires from the game.

The deer should concentrate on whether they can smell the aromatic substance or not, as that is the only way (why ?) that they can tell that the tiger is approaching. Both the tiger and the deer should listen for sounds.

Discuss with the students, what other senses the deer uses to protect itself, and the tiger to hunt in the wild.

Divide the class into four groups. Ask each group to prepare a list of senses used by specific animals chosen by the teacher. Ask them to write an instance/example of the use of the senses listed by them. Then let the leader of each group present the finding of his/her group.

EXAMPLAR - II : (Upper Primary Level)

This is a group activity :

The objectives of this activity are that the pupils will learn

a) to design an experiment
b) to formulate hypothesis
c) to observe and
d) to test the hypothesis.

Subject	: Science
Thrust area	: Convection current in air, weather
Place of activity	: Classroom
Duration	: 40 minutes
Type of activity	: Group activity

Activity

Divide the class into four groups. Help each group to design the experiment in the following way. Take a glass tumbler. Partition it vertically into two halves by using a card board, make a small hole at the base of the card board. Fix a small candle at the base of one of the halves of the glass tumbler. Light the candle. Now if an incense stick is inserted

a) in the half which does not contain the candle, what will happen to the smoke coming out from the incense stick ? and next,

b) in the half which contains the candle, what will happen to the smoke coming out from the incense stick ?

Let each group write down the answers (guess) to each of these questions. Their answers are their hypothesis. Help them to test the hypothesis.

Ask them to explain the match/mismatch between the hypothesis and the experiment.

Does this give an idea of convection current in air ?

Ask each group to enlist the precautions to be taken.

Ask them to justify their statements.

Why should there be a hole at the bottom of the cardboard ? If a hole is made at the top of the cardboard, instead, what will happen to the smoke coming out from the incense stick ?

Dimension - II : Science is 'EVERYWHERE'

Teacher has to realise that opportunities for learning science exist everywhere. The process of learning science is not confined to only the curriculum, the textbook and the four walls of the classroom. The child has to be helped to acquire meaningful experiences in a continuous, comprehensive way. These small planned experiences may form a small part of the board spectrum of environment, both social and physical. But the teacher has to operate as a catalyst so that these small pieces of experiences build into a longer mosaic of understanding. Thus the teacher has to guide the pupils to design and perform activities utilising their own local environment and opportunities.

Collect
Collate
Discuss

This out look will help the pupil to regard learning of science.

a) as a continuous process which transcends the boundaries of the four walls of the classroom.

b) as bits of correlated activities which can be performed any where.

EXAMPLAR - III : (Lower Primary Level)

This is an individual activity followed by comparison of the findings of the entire class. The objectives of this activity is to make the pupils (a) acquire knowledge about changes in weather and seasonal changes, (b) develop the skill for observing weather changes and (c) to be initiated to graphic skills.

Subject	: Science
Thrust area	: Environment
Place of activity	: Home and classroom
Group size	: Entire class
Duration	: Year - Round
Type of activity	: Individual activity.

Activity

Let the students discuss about weather. Let them list the types of weather conditions they can describe. Ask the students to represent each weather condition by a colour, like red for sunny days, blue for coludy days, green for rainy days, yellow for windy days and black for colud wintery days. Then taking colour papers they may cut down small pieces of say 2 cm. x 2 cm. size of each colour papers.

They may even represent each weather by symbolic drawings, like the sun for sunny days, clouds for cloudy days and so on.

Let each student prepare a callendar of the year in 12 sheets (for 12 months) of paper, providing a spece of 3 cm. x 3 cm. for each day. A callendar at home can also be used, instead. Ask each student to fill each day with symbolic colour/drawing suitable for that day. Ask them to do this at home.

At the end of the year ask each student to bring his/her weather chart.

Can they tell how many prominent seasons are there in a year ?

Can they tell the duration of these prominent seasons ?

Can they now predict the weather condition in any day of year ?

Ask them to check whether their predictions hace come correct or wrong.

If they are wrong, enquire what could be the possible reasons.

Ask the students to compare their observations with the weather forecasts in the newspaper or on radio or television.

EXEMPLAR - IV : (Upper Primary Level)

This can be performed as an individual/group activity.

The objectives of this activity are to help the pupils develop the habit of

a) utilising readily available objects as the inputs for an experiment.
b) bringing science to the home.
c) improving his/her skill for designing experiments.

Subject	: Science
Thrust area	: Food, nutrition, Physical Science.
Place of activity	: Classroom/home
Duration	: 40 minutes
Type of activity	: Group/Individual activity.

Activity

Ask the pupils to write down the broad category of nutrients our body needs. Next let them write the food items each has taken on that day. Can they now match the two lists i.e., the food items and the nutrients ? Let them try. Then guide them to test their cognjectures.

Divide the class into four convenient groups.

Materials needed for each group - one potato, cowpea, biscuits, ghee or oil, bread, blotting paper, iodine and a candle. All these materials will be locally available.

After preparing paste of each type of food separately, take a little paste of each item and add iodine.

Do the pupils notice any change in any food item ?

Make a list of food items that acquired a dark colour (develop in them the idea of classification).

What do these food items contain ?
Guide them to the answer "Carbohydrate".

Next ask them to rub a little of the paste of each food item separately on the blotting paper. Heat the blotting paper a little. Does any food item leave any stain? Does light partially pass through that stain ? What do the food items that have left this stain contain. Is it fat ?

Help the pupils to come to this conclusion by using past experience.

Dimention - III : Every Child is a 'SCIENTIST'

Every child has his/her own scheme of knowledge based on his/her past experience. Any new experience that he/she encountens, he/she tries to use his/her own methods of analysis to understand it in the same way as a scientist tries to explain any new phenomena by using the existing laws.

As with a scientists, the efforts of the child may also end in one of the following results.

a) Similarity with some old experience may lead the child to put the new experience in the old scheme without introducing any change.

b) New structures may be evolved in the old schema to accomode the new experience.

c) The domain of the old schema may get modified and enlarged.

d) A totally new schema may start.

All the above findings have been richly substantiated by huge body of research sutdies. One example will suffice.

A measuring cylinder, full to the brim with water, was taken. Then the students were asked what will happen if a brass ball is dropped into the water ?

Collect
Collate
Discuss

Case-A:

Pupil : Nothing will happen.
Teacher : Why ?
Pupil : Because I have seen that nothing happens to the level of tea in a cup although mother puts spoons of sugar into it.

Case-B:

Pupil : The level of water will do down.
Teacher : Why ?
Pupil : When I go home and sit on the couch, the couch gets squeezed, because I am heavier than the foam. Here brass is heavier them water.

These are enough to demonstrate that the child mind works like that of a scientist. The teacher should then make an effort to see that the scientist in the child flourishes and the child

a) is converted from a passive learner to a potential discoverer and
b) learns how to learn meaningfully.

EXEMPLAR - V : (Lower Primary Level)

This activity will acquaint the child to the processes of identifying variables, controling variables, designing an experiment, observing and coming to a conclusion i.e., he/she will get initiated to all the processes to become a discoverer.

However the entire activity has to be so designed that he/she enjoys it and becomes curious. Curiosity is likely to storm his/her creativity and lead him/her to the path of discovery :

Subject : Science
Thrust area : Food Chain, ecology
Place of activity: Classroom/home
Duration : Quite long period
Type of activity : Group/Individual activity.

Activity

Ask the students to hypothesize whether animals help plants for survival or plants help animals for survival.

Write down their answers as the hypothesis to be tested.

Ask them to identify the variables i.e., a plant an animal, an environment for survival.

Help them to chose a plant, an animal and an environment. (Suggestions - Hydrila, snail and water with sand).

Generate the environment in three wide meuthed glass bottles i.e., take three horlicks bottles, take water and some sand in all of them.

Ask them how can they control the variables to test their hypothesis.

Suggestions

The bottle to contain only hydrila, the second one only snail and the third one both the snail and hydrila.

Ask the students to observe the bottles for several days. Then test their hypothesis.

Lead them to the concept of producers and consumers in the food chain.

EXEMPLAR - VI : (Upper Primary Level)

This is again an activity where the child has to discover himself/herself the principle of lever. The activity is so designed that the child will be in conflict with what actually heppens in the experiment. This cognitive conflict will generate the necessary motivation in him/her to discover the answer to the problem. This activity again needs materials which are readily available locally. The materials are two bricks, one metre scale, one round shaped pencil. Few (four or six) fifty paise coins.

Subject	; Science
Thrust area	: Lever, simple machines
Place of activity	: Classroom
Duration	: 40 minutes
Type of activity	: Group activity.

Activity

Ask the students about physical balance. Do only equal weights keep the beam in balance ? Can unequal weights also keep the beam in balance ? Do you know how this is possible ? Can you discoover the principle behind this ?

Teacher may give the example of a see-saw.

Divide the class into four groups. Help each group to set up the experiment. Set the two brick with a gap of about 4 inches. Place the pencil across the two bricks put the scale on the pencil. Let the child adjust the position of the scale till it remains balanced i.e., horizontal.

Now put a 50 paise coin on one arm at a distance of 12 cms. from the pencil. Ask the students to use one 50 paise coin, put it on the other arm till the balance is restored.

Ask them to write their conclusions. Class it conclusion 1.

With one of the 50 paise coins fixed at a position of 12 cm. from the pencil, aks them to use two coins on the other arm and balance the scale.

Is conclusion 1 correct ?
If not what is the new conclusion ?
Test it by using three coins.

Next with one of the 50 paise coins fixed at a position of 12 cms. from the pencil, use again 2 coins on the other arm to bring the scale to balance. Now if the two coins are shifted by 1 cm. closer to the pencil, by how much the one 50 paise coin be moved to bring the scale to balance again ?

Make a guess ?
Test your guess ?
Experiment and find out the correct answer.
Repeat with various combinations of the four/six 50 paise coins. Tabulate the data.
Can you come to any conclusion ?
Can a law be discovered ?
What is the law ?
Test it ?

This is how the child can be guided to become a discover and learn how to learn.

Objectives

It is hoped that after going through this module the teacher will be in a position to

a) make learning of science more enjoyable for the learner,
b) help the child to discover science everywhere,
c) help the child to learn such scientific process as -
   - observe, record and report accurately,
   - categorise, classify and comprehend natural phenomena,

- realise the relationship between variables in the data,
- analyse data,
- make hypothesis and test it;
- design simple experiment,
- arrive at valid conclusions,

d) groom the child to inculcate such scientific attitude as openmindedness, receptive to change etc.,

e) realise the two way interaction between science and society and

f) mould the child to a state were he/she can learn how to learn.

Transaction:

The module has to be transacted in a participatory way in the sense that the teachers and teacher educators may be asked to draw on their experience and extend the list of examples in each of the dimensions of teaching-learning of science, discussed above.

The presentation, and transaction of the module is expected to take about 2 hours including fruitful discussion.

*****

b/s

Module 22.

Teaching of Mathematics at Primary Level.

DR. D.C. SAHOO

The National Policy on Education,1986 takes cognizance of child centred and activity based process of learning at the primary stage of Education. This means we must work to relate the experiences and activities in the classroom which will be suitable to the child's nature, interest and level of learning. By that the learning imparted will be meaningful and useful. This approach of learning will help the child to have a strong foundation for further learning.

Objectives

1) To know the most important factors to be taken into account in the process of learning mathematics.

2) To explain the term "Child-centred and activity based process of learning" with regard to teaching of mathematics.

3). To know the desirable teaching learning strategies which will be adopted at the Primary stage for teaching various concepts and skills in mathematics.

4) To prepare lesson plans on different topics keeping in view the strategies to be adopted.

Important factors to be taken into account:

There are two most important factors which must be taken into account while teaching mathematics.

a) The basic interest which stimulates efforts in the process of learning.

b) The sense of achievement which gives the child a feeling of satisfaction about the result of his/her efforts.

An essential condition of effective learning in mathematics is to arouse interest in the learner. To develop this interest, mathematics taught in the classroom must be meaningful and should be within the scope of understanding of the child. This should also be based upon the previous experience. This means that the teacher is required to direct activities and experiences in such a manner so that they are adjusted to the needs and abilities of the children. If the interest in the topic/subject is maintained throughout, then success must follow. A feeling of satisfaction is necessary for effective learning. So the task should be such that it should be within the capability of the child. If this factor is adhered to, the work done by the child will bring praise for him/her.

Activity Based Process of Learning:

Psychologists are of the opinion that the activity-based process of learning mathematics helps children to learn mathematical concepts thoroughly. The Chineese proberb says.

I read and I forget;
I see and I remember;
I do and I understand.

The child should be an activie participant in the learning process through his involvement in realistic and meaningful activities. The activities should be carefully selected and organised by the teachers in such a way that they can help the child to become a discoverer. In seeing the patterns, he/she can generalise. In such a situation the child is motivated and is fully involved in learning different concepts in mathematics. This approach ensures a smooth transition from the world of play to a world of school for the child. He does not feel that he has come from his world of play to a place which is very formal. Therefore, this approach helps the child to maintain interest and develop a positive attitude towards the study of mathematics.

Teaching Learning Strategies:

This is the adoption of a method which will ensure the attainment of the desired specified learning outcomes by all the children. While preparing the strategies keeping in view upto Class V, the students may be grouped into two major groups.

1) Group of students of Classes I and II
2) Group of students of Classes III, IV and V.

Children of the 1st group are deeply interested in games. With the help of games of aiming, chasing, hiding etc. Children are able to understand number concepts. Research findings indicate that the effective use of teaching aids will be very much effective. To make classroom teaching attractive, interesting and easily available teaching aids should be used in the teaching learning process. So each Primary school should have some sort of mathematic kit equipped with inexpensive teaching aids. These aids can be improvised with local materials. Children of this group should be allowed to work together and to workout mathematical truths and facts for themselves. Role of the teacher will be guiding and correcting them when it is needed.

Children of the 2nd group are different in nature. This stage marks a beginning of certain types of logical thinking in children. Thinking logically is necessary for understanding mathematical ideas and concepts. As the child manipulates objects he indirectly establishes the truth by inductive method by concrete objects. It is not enough if the teacher 'shows', 'tells' or 'explains'. The child should derive mathematics from concrete objects, patterns and aids by his own efforts.

Mathematics cultivates thinking and reseaning skills. So the curriculum at this stage envisages a conceptual approach which emphasises the discovery and understanding of mathematical ideas. Drill work for mastery of skills should be stressed. The focus is on encouraging children to seek out and discover ideas by themselves. Emphasis should be on problem solving and adequate practice to attain accuracy and speed. From this it is imperative to envolve a teaching learning environment which will facilitate problem solving by children. They should be encouraged to think, question, experiment estimate, explore and seek explanation.

Below, the teaching strategies of some concepts are discussed.

1) Substraction of whole members.

Substraction is a process of determining the difference between two numbers or quantities. The number from which another number is to be taken (substracted) is known as <u>minuend.</u> The number to be substracted is the <u>substrahend</u>.The result of the process is called the difference.

Rule for substracting whole numbers

i) Write the larger of the two numbers as the minuend.
ii) Write the number to be substracted underneath the minuend, so the nuerals are in their respective columns, i.e. units with units, tens with tens etc.
iii) Start with units column and substract the numeral in the substrahend from the minuend.
iv) Continue the process will tens, hundreds', and the other columns in the problems.

<u>Example:</u> Substract 346 from 988.

Step 1 Write the larger number i.e. 988

Step 2 Place below it the substrahend in proper columns.

Step 3 Start with the units column and take 6 away from 8. Record the difference (2) in the units column.

Step 4 Continue in the same manner with tens and hundreds.

Step 5 The answer (642) in the difference between the two numbers.

9	8	8
3	4	6
		2
	4	
6		
6	4	2

Rule for checking the substraction of whole numbers.

i) Arrange the numerals in the substrahend and the answer in columns.

ii) Add the substrahend and the difference. If the difference is correct, the sum of the difference and the subtrahend is equal to the minuend.

iii) Re-check if the answers are not equal. Check first the addition. Which is the easiest step. If the answers still donot agree re-work the original problem.

<u>Multiplying whole numbers</u>

Regardless of the number of digits in either the multiplicand or multiplier, the multiplication processes are the same.

Rule for multiplying whole numbers.

i) Write the larger of the two numbers as the multiplicand, the smaller, the multiplier.

ii) Place the numerals in both multiplicand and multiplier under each other in columns, tens in the tens column, hundreds in hundreds column, etc.

iii) Multiply the numerals in the unit column of both multiplicand and multiplier. Write the units result in units column and <u>carry over</u> the tens.

iv) Multiply the numeral in tens column of the multiplicand by the numeral in the units column of the multiplier. Add the tens reminder to this product. Write the 1st numeral on the right in the result in tens column.

v) Carry over any numeral representing hundreds and add to the next result.

vi) If no other numerals are to be multiplied, write each numeral in the result in the proper column.

vii) Continue to multiply every numeral in the multiplicand by every numeral in the multiplier.

viii) Add the result in each column.

Example: Multiply 156 by 78

Step - 1 Write numbers in columns

```
  1 5 6
  x 7 8
```

Step - 2 Multiply every numeral in the multiplicand by 8.

```
  1 5 6
  x   8
-------
6 x 8 = 48              8
5 x 8 + 4 = 44        4
1 x 8 + 4 = 12      2
                  1
```

Step - 3 Multiply every numeral in the multiplicand by the numeral in the tens digit of the multiplier i.e. 7

```
  1 5 6
  x 7
-------
6 x 7 = 42            2
5 x 7 + 4 = 39      9
1 x 7 + 3 = 10    0
                1
```

Step - 4 Add the numerals in each digit the result is 12168 so the product of 156 x 78 = 12168.

```
1 2 1 6 8
```

Dividing whome numbers

Rule for dividing whole numbers.

i) Write the number to be divided as the dividend within the division frame, the divisor outside.

Divisor) Dividend

ii) Determine how many times the numerals in the 1st few digits of the dividend may be divided by the divisor.

iii) Multiply the divisor by the trail quotient. The numeral in the units digit of the divisor is multiplied first, then tens, etc. The product is placed under the dividend.

Trial quotient

...) ......

...

Place product here.

If the trial quotient is larger than it should be, the product will be greater than the dividend when this happens, change the quotient to the next lower number.

iv) Substract the product from the dividend.

...) .....

- ...

v) Bring down the numeral in the next digit in the dividend. If the reminder cannot be dividend by the divisor, bringdown the next numeral in the dividend.

vi) Repeat the division process until all the numerals in the dividend are used.

- ...

...

- ...

...

Note: When the divisor does not divide evenly into the dividend, the number resulting from the last substraction is the reminder.

Express the quotient in terms of the quantities that are being divided.

Example: Case I. Without a reminder. Divide 1984 by 64

Step - 1: Write as division problem. 64) 1 9 8 4

Step - 2: Determine what the trial quotient is. Try (4 x 64 = 256) This is greater than 198 in the dividend.

Step - 3: Drop the trial quotient back to 3. Then multiply the divisor by 3 (3 x 64 = 192)

Step - 4: Place the 1st number (3) in the quotient over the proper number in the dividend. Write the product under the 1st three numerals in the dividend.

```
      3
64) 1 9 8 4
  - 1 9 2
  -------
        6
        6 4
  -     6 4
  ---------
```

Step - 5: Substract the product from the dividend.

Step - 6: Bring down the next numeral from the dividend.

Step - 7: Determine the next trial quotient in other words, how many times will be divisor (64) to into the reminder (64)?

Step - 8: Insert the next numeral (1) in the quotent (1x64 = 64). Since thus is no reminder, 64 ma-y be divided equally into 1984 thirty-one times. The answer is 31.

Case 2: With a reminder. Divide 3900 by 47

Step 1:	Determine the right quotient Try 9. (9 x 47 = 423)	47) 3 9 0 0 (quotient 8 2)
Step 2:	Drop back to 8, as 9 is in too large. (8 x 47 = 376)	3 7 6
Step 3:	Substract. Then bring down the next numeral in the dividend.	1 4 0
Step 4:	Determine the next numeral in the trial quotient. Try 2 (2 x 47 = 94)	9 4
Step 5:	Substract 94 from 140. The difference is 46, which is the remainder.	4 6

As there are no additional numbers in the dividend to be divided, the quotient is 82 and the remainder is 46.

Rule for checking Division.

i) Multiply the quotient by the divisor.

ii) Add the remainder to the product. The sum will be equal to the dividend when the division is correct.

Note: If the two quantities are not equal, first re-check the steps in the checking process. Next, if necessary, rework the original steps in division.

Division of Decimals.

Division is the simplified process of computing the number of times one number is contained in another. The division of decimals, like all other mathematical operation for decimal is essentially the same as for the whole numbers except that consideration must be given to the location of the decimal point in the answer.

Dividing Decimals

Rules for dividing decimals.

i) Place the number to be divided (called dividend) inside the division box.

ii) Place the divisor outside.

iii) Move the demimal point in the divisor to the extreme right. The divisor then becomes a whole number.

iv) Move the decimal point the same number of places to the right of the dividend.

Note: Zeros are added in the dividend if it has fewer digits that the divisor.

v) Mark the position of the decimal point in the quotient directly above the decimal point in the dividend.

vi) Devide as whole numbers and place each figure in the quotient directly above the digit involved in the dividend.

vii) Add zeros after the decimal point in the dividend if it can not be divided evenly by the divisor.

viii) Continue the division until the quotient has as many places as are required for the answer.

Example Case 1 : Divide 25.5 by 12.75

```
        (4)   2.  (3)
12.75/  25.50
```

Step 1: Move the decimal point in the divisor to the right (2 places)

Step 2: Move the decimal point in the dividend to the right the same number of places (2)

Note: Since there is only one digit after the decimal, add a zero to it.

Step 3: Place the decimal point in the quotient.

Step 4: Divide as whole numbers.

Example Case 2: Divide 123.573 by 137.4

```
      (4)
        .8993
137.4 / 123.57300     add zeros (3)
 (1)     10992        (2).
          13653
         12366
          12879
         12366
          5040
          4122
```

Module No. 23

WORK EXPERIENCE

By: Shri P.K.Mohanty/
Shri R.N. Rath.

Title of the module :- Methodology of teaching work experience at elementary level.

Objectives:- To acquaint the participants with the concept objectives and teaching learning strategy of Work-experience at primary and upper primary stage.

Content outline:-

-- Concept of Work-experience as defined in 'National Policy Decument'.

-- Objectives of W.E. at primary & upper primary stage.

-- Syllabus outline as developed at the National level.

-- Teaching-learning process.

-- Rexources for W.E. programme.

-- Principles of evaluation.

-- Sample curriculum units.

Transactional Mode:- Brief presentation followed by discussion, group work and demonstration.

Time:- 3 hrs.

Over-view:

This module is an attempt to present, in brief, the programme of 'Work-experience' as an integral part of school education. It provides you with the concept of work-experience, its scope, objectives, teaching-learning strategy and your role in its implementation.

National policy of education(1986) has re-iterated the importance of work-experience and accorded to it a central place in the school curriculum. Work-experience, although envisaged as a distinct curricular area, permeates all other academic subjects and hence calls for the involvement of all teachers.

Creativity, productivity and attitudinal development are the major planks of work-experience and 'learning by doing' is its basic feature. This module follows a doing-discussion approach. Its main focus is to clarify the effective modality for teaching work-experience at elementary level.

Objectives:

After going through this module you should be able to

-- Understand the concept, objectives and teaching-learning modality of work-experience programme.
-- lay down criteria for selection of appropriate work-experience activities.
-- locate and seek community involvement in W.E. programme.
-- plan, execute and evaluate W.E. programme on right lines.
-- develop curriculum units for various activities
-- demonstrate some activities individually

Concept:

In the document of N.P.E., work-experience has been viewed as purposive and meaning-ful manual work resulting in either

goods or services useful to the community and to be provided through well-structured and graded programmes. It would comprise activities in keeping with the interests, abilities and needs of the students, the level of skills and knowledge to be upgraded with the stages of education. The experience would be helpful on his/her entry into workforce.

Stage-wise objectives:

Primary stage (classes I - V)

At this stage of education, the objectives of W.E. come very close to those of education in general. The young children are in-quisitive by nature and enjoy participation in a variety of activities at school, at home and in the community rather than being engaged in bookish education alone. Therefore emphasis should be laid on the development of good health, environmental sanitation and beautification practices through W.E. activities.

One of the aims of education at this stage should be to develop awareness in the children about the world of work through visits to productive & service situation. They should be involved in simple work practice with pliable materials like clay, paper and cardboard etc.

The development of desirable attitudes, values and habits of work, such as appreciation of manual work and regard for manual workers, cooperativeness and team work , regularity, punctuality discipline, honesty, creativity etc. can be achieved through well organised self-expressive service and production oriented activities.

The natural inclination of children is to play. Anything that is new, attracts their attention. Their curiosity is insatiable. An intelligent teacher can exploit this curiosity

to develop and shape their interests, attitudes and skills in such a way that whatever they learn becomes a part of their future life. Ample opportunities should be given to the children to express themselves by drawing figures, pasting shapes and using colours to make whatever they wish.
No constraint need be placed on the activities of the children. All that the teacher should do is to provide some paper, some colours, scissors and a few burshes.

Objectives at Upper Primary stage: (Class VI - VIII)

At this stage, children are reasonably mature to carryout strenuous work with higher skills which may require closer co-ordination of hand and brain. They should be encouraged to participate more intensively in production processes by undertaking well-designed projects in selected area of human needs which will mark the beginning of pre-vocational orientation to the W.E. programme.

The children should also be able to relate their knowledge of facts and the scientific principles involved in various types of work. They should learn to apply problem solving methods and be able to identify and use the tools, raw-materials and equipment in a scientific manner. The process of inculcation of positive attitudes and values should be continued. Besides, the children should develop a deeper concern for the environment and a sense of belonging, responsibility and commitment to the community.

Selection of activities:

The W.E. programme centres around six areas of human needs, namely, food, health and hygine, clothing, shelter, culture and recreation, and social service. A balanced selection of activities in each of the areas may be made according to the educational potential of each activity.

The success of a W.E. programme, to a great extent, depends on the proper selection of activities. In selecting activities for pupils, special care should be taken to select those that are suitable for their level of maturity, satisfy their curiosity and have potential for developing desirable work and social values. At the primary stage, a variety of activities should be made available to the children. The schools can be provided with an open list with a great deal of variety suited to the intellectual and physical development of the children, and the Head of the Institution should exercise adequate freedom to select a set of 40 to 50 activities which should be conducted in the time allocation provided at this stage which should be of the order of 20%.

In selecting individual activities for W.E., the teacher must keep in mind the fact that the materials required must be collected from local sources, and as far as possible, they should be inexpensive. All schools are not fortunate enough to possess the required facilities and to provide for new machines and equipment from the market. Waste paper, rags of cloth, bamboo sticks, straw, kerosene tins, wooden pieces etc. should serve to meet the requirement of the class. No great virtue can be claimed for W.E. if costly, sophisticated items are to be purchased from the market. This does not mean that those institutions which can afford to, should not do so. What is important is that the children should develop the sense of converting the scrap or waste materials into useful products. This will inculcate in them a sense that all materials are useful and whatever can be used will result in economy and prevent wastage.

By and large, the activities at the upper primary stage should lead to the enhancement of nutrition, health, sanitation, productivity and economic status of the community. Activities in related areas may be sequenced so as to assume the form of a project to be completed over a span of time. The choice of activities and projects should be such that the needs of students and community are met, bearing in mind the maturity level of the children.

Syllabus outline:

The content of W.E. at the primary stage will have three components: environmental studies and application, experimentation with materials, tools and techniques and work practice.

ENVIRONMENTAL STUDIES AND APPLICATION:

These activities should be such that they lead to the development of self-reliance in meeting day-to-day needs and to the improvement of the environment.

EXPERIMENTATION WITH MATERIALS, TOOLS AND TECHNIQUES:

These activities should relate to a variety of materials used for various work practices and should help develop an elementary level of skill in the use of tools and techniques.

WORK PRACTICE:

Primary children are expected to work with pliable and soft materials like clay, paper, cardboard etc. Very sharp tools and heavy equipment are not to be handled by them. After repeated practice with tools and materials each activity performed by the children should lead to the production of goods and services.

UPPER PRIMARY STAGE:

At the upper primary stage, the content of work-experience will comprise two parts i.e. essential activities for the satisfaction of day-to-day living needs of the children, their families and communities and an elective programme of productive work and services, repeated practice of which may result in remuneration in cash or kind.

The need for giving more intensive skill component to the W.E. programme at the upper primary stage emerges out of the concern for a large number of students who either drop out or opt out of the educational system after eight years of general education and seek their absorption in the would of work and services in the community more or less on a local basis, migration not being a common phenomenon for this particular age group. In view of this the choice of areas of work should relate closely to the production processes existing in the vicinity of the schools and should provide the subject matter of study under W.E. The students should be made well aware of one a more such production processes where they study various aspects relating to the production processes. For example, the cultivation of vegetables may involve not only the study and practice related to the cultivation of vegetables but also their storage, preservation and marketing of the products to some extent. Such a participation in the productive activities in the community would prepare the individual for better participation with greater productivity and it will also provide proper orientation to children so that they can identify their own talents with regard to academic or vocational pursuits.

The purpose of 'Essential activities' is to bring about attitudinal changes and to develop readiness for productive work. The purpose of the elective programmes is to give a vocational bias to the W.E. programme. It may, therefore, require repetition or constant practice according to the time available.

GROUP WORK

Exercise - 1

> Keeping in view the objectives and content of W.E. at primary stage, prepare a list of specific activities that can be undertaken in and outside school.

Exercise - 2

> Suggest some activities covering six areas of human needs for upper primary stage and discuss the educational outcomes of each activity.

Teaching-Learning process:

The teaching learning process in W.E. has three phases : study of the world of work through observation and inquiry; experimentation with materials, tools and techniques and work practice. The first two are concerned with preparation for actual participation in productive work and services, and the third may lead to production.

In primary classes, study of the world of work through environmental studies should be related to the exploration of productive manual work and service situations at home, in schools and in the community through observation and inquiry. The focus will be on the variety of productive work and services around, workers engaged in them and the materials and tools being used.

In upper primary classes, the exploration or work can be more scientific and the social aspects of work can be further highlighted.

Experimentation with materials, tools and techniques at the primary stage should be restricted to those that are plastic and pliable in nature. The end product may be creative, self-expressional work or some usable things. Services should be such that children enjoy participating in them. At the upper primary stage, manipulation of harder materials like wood and metal may be introduced. Productive work in these classes will take the form of projects in volving higher skills and precision.

Work practice at the upper primary level would involve the mass production of some items prepared earlier under experimentation and also the performance of some services which can be assessed in terms of some return in cash or kind.

The products of the W.E. performed by the children can not be compared with the products of the professional workers. However, such products have an emotional value which componsates for the possible low quality of these products when compared with those produced by the

professional workers. Productive aspect should not be allowed to take precedence over the educational aspect and at the same time the productive aspect also should not be neglected.

In order to realise the educational objectives of W.E., it is necessary to follow the problem-solving approach. Children should be made aware of the problems related to their needs and the work that should be undertaken to satisfy their needs. They should be led to arrive at the solution of these problems by discussing the materials, tools and techniques for performing work and services, and by undertaking appropriate work. Work-experience should not be performed mechanically and must include planning, analysis and detailed preparation at every stage, so that it is educational in character. Improved tools and modern techniques should be adopted in the performance of work-experience activities so that it leads to the understanding of a progressive society based on technology.

Resources for work experience programme:

Generally schools have teachers to teach languages, Science, Mathematics and other subjects. There may not be special teachers for W.E.. Then who will teach W.E. and organise activities ? W.E. is the only curricular area where every teacher of the School can participate. Undoubtedly, the services of teachers trained in specific trades will be useful for conducting production oriented activities, but every subject teacher can think of and plan activities in his/her subject. Such subject-based activities will help students in learning by doing.

It is absolutely necessary to utilise community resources for the effective implementation of this programme. Although it is expected that all teachers should work as W.E. teachers, a large number of activities may require specialised personnel. There should be provision in this programme the involvement of experts from the community. While it may be necessary to allocate minimum resources to school, advantage must be taken of the local business enterprises, workshops and work-centres for work-site training.

Group work:

Exercise No. 3

> Think of some Work Experience activities that can be organised by different subject teachers. Make a subject-wise list of such activities.

Exercise No. 4

> Think about the resources available in the community that can be tapped for launching work experience programmes in your school. prepare a list of resources (Men, Materials & Work-sites)

Evaluation of pupils:

The entire evaluation in the area of work-experience should be a continuous process for all stages of school

education. The evaluation should be internally conducted by the teacher/teachers of the subject and should be shown on the performance record of the student. It should take care of theory and practice in an integrated manner but more weightage should be given to the evaluation of actual practical work. It is expected that in the evaluation of students' performance, while paramount importance will be given to attitudinal development at the primary stage, skill development should receive more and more weightage at higher stages. This will have to be reflected in the weightage assigned to the dimensions in terms of time and marks. It should be remembered that W.E. is pre-dominantly a 'doing' subject and, therefore, actual work performance should receive maximum attention here. Some of the important dimensions of evaluation are as follows.

A) Attitude towards the work:

1. Dignity of labour
2. Respect for work and workers
3. Initiative and interest
4. Social commitment
5. Discipline
6. Co-operation

B) Project or practical work

(a) 1. Selection of materials
2. Selection of tools
3. Proper use of tools
4. Techniques adopted
5. Accuracy and finish
6. Cost estimation
7. Saleability of the product

Q-R

(b) 1. Social service
2. Participation in the activity
3. Organization of work
4. Leadership
5. Efficiency in execution

Teachers should keep systematic records of pupils' progress in W.E. Apart from the teacher's record, each student may be asked to maintain his/her work-diary. Students should make necessary entries in the diary after completion of every unit of activity. For internal assessment, a well designed plan of continuous, comprehensive evaluation, using worthwhile evaluative criteria should be prepared. Assessment may be made and recorded after every operational stage of activity/project or its completion.

Group Work

Exercise No. 5

Discuss and prepare a comprehensive but practicable evaluation proforma for adoption in elementary school.

SAMPLE CURRICULUM UNITS

(No. 1)

1.	Classes	::	III - V
2.	Area	::	Community work & social service
3.	Sub. Area	::	Community work inside the school
4.	Title	::	Maintenance of cleanliness inside the school.
5.	Need and scope	::	

Inculcation of values such as dignity of labour, self-help, sense of responsibility, social sensibility are necessary for adequate development of the personality of the children. Maintenance of cleanliness is a suitable activity for the development of these values in them.

The scope of the project includes sweeping and mopping inside and outside the class room, dusting and arranging of the furniture, cleaning of the black boards and using of the dustbins.

6. Objectives:

i) To develop in the children the sense of shared responsibility, dignity of labour and work for others.

ii) To help children develop social sensibility and sense of commitment to the school community.

iii) To encourage the development of new attitude conducive to healthy living.

iv) To develop good hygienic habits through participation in mannual work.

v) To inculcate sense of self-reliance.

vi) To develop proper understanding of the principals of clean and healthy living.

vii) To develop a taste for good and decent life.

7. Organisation and Management of the project.

7.1 Methodology:

The teachers, the pupils and the members of the community form an organising committee. They will prepare a list of work items to be executed. Thereafter duty chart may be prepared. This should be a regular activity of the school throughout the year and form a part of the class time-table. The execution of the project will be a joint responsibility of all the students and teachers and no one should be granted exemption on the basis of socio-economic status or sex.

7.2 Tools, Equipment and materials etc.

Brooms, duster, dustbins, buckets, locally available disinfecting and cleaning materials and a proper place for keeping them in order. Brooms with long sticks and dusters with sticks should be preferred, because in that case the children will not have to bend down.

7.3 Time schedule: Half-an-hour daily

8. Break-up in doing learning units

8.1 EXPLORATION:

The pupils will explore the needs in respect of cleanliness of class room, verandah, school compound, sanitation block. They will also explore suitable places for the disposal of garbage and waste water.

8.2 EXPERIMENTATION:

The students will try different methods of sweeping, mopping, dusting, arranging the furniture, spraying, sprinkling etc.

8.3 WORK PRACTICE:

They will regularly follow the best method, discovered through experimentation.

9. SEQUENCE OF OPERATIONS:

i) Planning of the work
ii) Survey of the cleanliness of the school
iii) Obtaining tools, materials etc.
iv) Preparing the time-schedule
v) Distribution of duties
vi) Carrying out of the work
vii) Evaluation
viii) Follow-up work

10. PROBABLE OUT COMES:

10.1: The students will learn how to keep their class-rooms and other portions of the school clean. They will acquire the skills in dusting, cleaning, washing, sweeping and arranging things etc.

10.2: They will learn the need and importance of keeping the environment clean.

10.3: They will develop sense of self-help, self-reliance, co-operation, etc. Thus a number of attitudinal changes will take place in them.

11. RAMIFICATION IN OTHER SCHOOL SUBJECTS:

Language

As the students have to discuss at the planning, execution and evaluation stages of the project, they are likely to develop oral expression. They will also learn a number of new words concerned with the cleanliness.

Arithmetic

The students will practise work and time calculation with the help of various operation involved in the work.

Social Studies

The students will develop social and civic sense.

12. LINKAGE WITH DAY-TO-DAY LIVING:

The programme is directly related to the day-to-day living of the child in the home, school and community.

13. EVALUATION:

The evaluation work should be carried on at three levels, i.e

i) by the teacher,
ii) by the children and
iii) by the parents and community members.

The teacher will have to note the behaviour of the children as also the skills learnt by them in the above mentioned areas as an individual and as a member of the team.

Keeping of anecdotal records of students' behaviour will be of great help to him. The students will have to maintain diary of daily work and experiences gained alongwith their reactions. The community members and parents involved in the organizing committee may be consulted while assessing pupils behaviour and participation.

14. SUGGESTION FOR FOLLOW-UP WORK:

The teacher should keep contact with the parents to know the extent up to which the skills, attitudes and values acquired by the children in the school are being reflected in the home situations.

1. Class :: VII
2. Area :: Shelter
3. Sub-area :: Wood work
4. Title of the project :: Making of a name plate.
5. The Need and Scope of the Project:

It is necessary to identify the dwelling places. This project provides scope for (i) shaping flat wooden pieces, (ii) preparing the surface for painting, (iii) Painting letters and numerals on wood and (iv) fixing of fixtures when the name plate is ready.

6. General Objectives

Enabling the pupils to

6.1. realise the need of indicators;
6.2 design products according to their purpose and availability of resources;
6.3 develop basic skills in manipulating wood and paints;
6.4 evaluate process and product;
6.5 develop self-reliance.

7. Organisation and management of project

7.1 METHODOLOGY

With the help of discussions, the pupils realise the difficulty in identifying dwelling places which do not have any indicator. As a part of environmental study, they study different devices used marking dwellings and they discuss the merits and demerits of these. They discuss the

criteria of designing the name plate and selecting the raw material for making it. They observe the carpenter and the painter at work. They also observe the demonstration given by the teacher. The discuss the nature of working, correct use and maintenance of the material and the tools used in the project. They also discuss the process of executing the project, the safety precutions that have to be observed and the procedure of evaluating the process and the product. Finally, they collect the materials and tools, execute the project in group work and evaluate the process and the product.

7.2 MATERIALS, TOOLS AND RESOURCES REQUIRED

Boxwood from spare packing boxes, wooden planks or ply wood about 30 cms. x 12 cm. x 1 cm. Nails or screws (3 cm. long)-2, Hooks-2, Polish, Paints and sand paper. Rule, try square, hand saw, marking knife, smoothing plane, rasp, screw driver and painting brush, services of carpenter and painter for guidance.

7.3 TIME REQUIRED

4 periods of 40 minutes each.

8. Doing-learning Units

8.1 .EXPLORATION

8.1.1.Observation of name plates and sign boards in the neighbourhood for different designs.

8.1.2.Observation of carpenter engaged in marking, cutting, planning, shaping, finishing wood and the painter engaged painting.

8.2. EXPERIMENTATION

8.2.1. Planning
8.2.2. Procurement of materials and tools.
8.2.3. Shaping and finishing for different designs.
8.2.4. Paining in different colours or fixing of prepared letter.
8.2.5. Fixing of hooks and display
8.2.6. Evaluation and cost calculation

8.3. WORK PRACTICE

The pupils take orders for name plates and execute them.

9. Sequence of operations:

9.1. Designing of the name plate, in rectangular, circular or oval shape.
9.2. Preparing the bill of material and list of tools required.
9.3. Collection of material and checking of tools.
9.4. Preparing the wood for marking.
9.5. Marking the job on wood.
9.6. Cutting to shape.
9.7. Finishing
9.8. Polishing
9.9. Painting of letters or fixing of prepared letters.
9.10. Fixing hooks and display the plate.

10. Probable outcomes

10.1. The pupils are able to realise that (i) a name plate is more convenient for indicating the dwelling, (ii) wood is a suitable material for

making name plates, (iii) generally the name platesare rectangular, (iv) 30 cms. x 12 cms. x 1 cm. is a good size for a name plate. They develop the habit of marking and labelling. They do not disfigure the name plates.

10.2. They recognize teak, pine, kail and ply wood. They also recognize rule, try square, hand saw, smoothing plane, polish and paint and know-how to use these.

10.3. The pupils are able to determine the shape and size of the name plate and use smoothing plane, rule, try square and marking guage for preparing wood and marking it. They know the parts the tools, how to use them correctly and maintain them properly. They appreciate the importance of working methodically and accurately. They acquire basic skills in the use of hand saw and smoothing plane.

10.4. The pupils are able to cut wood along straight lines, and smooth the ė edge with rasp and sand paper. They know that wood has grains (xylum) and planing has to be done along the grains and not across.

10.5. The Pupils are able to polish wooden surfaces and apply paint in the desired design. They know that polish stains wood and gives glossy effect.

Paints cover the surface with protective pigments. They appreciate maintenance of wooden surface with polish and paints.

10.6. The pupils are able to fix hook, check the proportion of the length and breadth of the rectangle, correctness of the shape, size, smoothness, application of polish and paint, shape and size of letters and display the name plate. They also calculate the time taken and compare the performance of the fellow pupils. They are able to calculate the cost and estimate wages. They learn marketting skills.

10.7. They develop more speed in work and better management abilities as they execute work order. This unit could be taken up as a group project. They compare the individual and group method of working and thus realise the advantage of co-operation.

11. Ramification in Other School Subject:

11.1. Drawing

11.2. Language

11.3. Arithmetic.

12. Linkage with Day-to-day living

Somebody or the other has to identify the dwelling often.

13. Evaluation by the Teacher, Pupil and Community.

13.1. The teacher observes the pupils at work and helps them, if necessary, in marking correctly and using the tools properly. He observes the posture and method of working as well as the final products.

13.2. The role of the boys in evaluation have been explained under 10.6.

13.3. The community may also periodically evaluate the work done and suggest how to improve the work.

14. Suggestion for Follow-up Work in the Home or Community.

14.1. The children may observe different types of name plates and give a fresh look to their own name plate when they get worn out.

GROUP WORK

Exercise No. 6

Select some projects/Activities both for primary and upper primary stages and develop curriculum units for them

Module No. 24

Minimum Level of learning with special reference to Mathematics.

Sri G.S. Hati.

.....

An Indian classroom is always a hetregeneous one. It includes students of varying abilities, interests and attitudes. But there is only one syllabus for all these students. On the basis of the syllabus, a text book is followed. If one goes through a text book written on the basis of the objects specified in a syllabus, one student has to learn many things with respect to a unit/chapter. For example, if one has to learn addition in standard II of the primary-level according to the syllabus prescribed by Board of Secondary Education, Crissa, one has to learn;

a) addition of one digit with two digit number.
b) addition of two digit with two digit number .
c) Easy problems on addition
d) Difficult problems on addition
e) Row addition
f) Associative property of addition
g) Commutative property of addition
h) Difficult problems on these two properties.

as mentioned in the text book:

But all these concepts/process/skills on addition are not equally useful for higher studies or application in daily life. Out of the above, let us take some examples:

Problem No.1:Ram has 5 sticks more than Rahim. But John has 2 sticks less than Rahim. If Rahim has 15 sticks, how many sticks are there is total with Ram, Rahim & John?

Problem No.2: Ram has 5 pencils. Hari has 2 pencils more than Ram. How many pencils are there with Hari ?

Out of the above two problems, Problem No.1 is very much appropriate for bright students. But Problem No.2 seems to be required for all students in grade II.

Similarly all students may not require to solve problems like:

$$50 + (60 + 75) = (50+60) + (? + 15)$$

Similarly in a subject like English the teacher may have the objective of teaching students 10 new words/phrases in a unit, but on the basis of usefulness, 5 words may be the minimum which should be acquired by lazy student of a particular class.

In a subject like science, the teacher may teach many concepts on a particular topic like cleanliness but from students' point of view, the child must know the following;

i) how to take care of eyes, ear, skin, teach
ii) what will happen if these are not taken care of

All the above illustrations indicate that though a teacher has to teach many things related to a topic but in practice, he need not be enthusiastic to achieve each from every student. Instances are time, where teachers of English complain that students do not know the simple use of tenses (indefinite) at Class VIII. Similarly teachers of Mathematics explain for students' inability to add simple fractions like 1/2 and 1/3 in class VI. All these indicate that are, the teachers emphasise all objectives while evaluating the child; but are not sure of some minimum concepts/skills to be acquired though a particular unit in a particular class. This has led to the inability on the part of students to follow in higher classes resulting in disinterest, poor achievement and detention. Hence it is high time that a teacher before proceeding to the next unit, must be sure that the students have achieved some minimum level. This minimum level has to be decided by a group of experienced teacher. Even the inexperienced teachers may prepare tests for minimum level of learning for each unit/chapter. It will be ideal if readymade tests on minimum level of learning for each unit are available with each school for immediate use on the part of teachers in a school.

This will help the teaches to identify the weaknesses on the areas of minimum level of learning on each unit and take necessary remedial measures. In fact, it is difficult to apply

remedial measures on the basis of weakness located through diagnostic tests covering all objectives related to a unit. But is within the reach of the teacher to eradicate the weaknesses detected through a test on minimum level of learning. In reality, it will be wise on the part of teachers to make a nice blend by grading diagnostic test into two parts; one for testing minimum level of learning and the other to test other important aspects of the unit.

Module 25: Action Research   By: Dr. S.P.Anand.

Objectives: The module on Action Research helps the reader to:

- know what is research;
- understand the importance of educational research;
- have the clear perception of action research in education;
- highlight the importance of action research for teachers as well as for the process of education;
- spell out the strategies for the motivation of teachers to undertake action research projects;
- cite specific problems which can be taken by teachers as action research problems.

Contents: Research

Research in Education

Action Research

Action Research and Teachers

Motivation of Teachers for Action Research

Problems for action research

Duration : One hour

Mode of Transection: Discussion and Participation of participants.

Research:

Traditionally, research has been acknowledged as an area of intellectual exercise in the pursuit of establishing fundamental truths of life. It is considered to be the domains that is enclusively meant for and reserved for intellectuals only. Research, as such, has been virtually viewed as the seat of wisdom.

Research is a thoughtfully speltout, systematically designed and very intelligently conducted creative activity.

In modern times, research has become a part and parcel of each and every human engagement. Research and Development (R+D) constitutes an important wing of well established institutions, organizati ns and of all types of worthwhile establishments. There prevails a furious research culture in all walks of present day life.

Research leads to innovations. Research results is now theories and inventions. Efficiency is enhanced and productivity is accelrated by research programmes. Civilization of the day in all its facets is accredited to research of one kind or of another kind.

Research is an insightful learning. It is a passion for learned people. A creative mind finds its real life in his research programme. In the quest of pursuing for an ultimate excellence in human life, research is a momentous movement of research oriented people.

Research is like a mission of missionary like people to render a humane service to humanity in the best of its misionary like spirits.

Research in Education:

Education has come to function as a specific process being conducted by the society specifically for the desired allround development of children. In this character-building man-making process, there are many pertiment questions which have been very successfully answered by the research workers engaged in educational research. It is on the basis of research findings in education that vital learning theories have been developed, methods of teaching have been arrived at and rational guide lines for curriculum construction have

been chalked out for the children of different age groups. The pedagogy has been sumptully benefitted and enriched by research in Education.

With its valuable contribution, educational research has come to establish the process of education as a scientific phenomenon. Research in Education has come to acquire a place of fundamental importance in the entire spectrum of research activity in the society. Research in the field of Education is recognised as equally challenging and fascinating to the educational researchers as it may be found by researchers engaged in any other discipline of knowledge.

Till recently, research in Education has been the domain of research workers who themselves are not actually engaged in the process of education. They are not field worker in education in the real sense of the word. These research workers have produced and gone to supply a good amount of valuable research findings to the consumers of these findings who are really practising the process of education. These out of the field research in education have laid emphasis upon what the teachers should teach and what not to teach, how to teach and how not to teach, who should teach and who should not teach. The kind of research pursued by theseresearch workers has come to be known as pure-research, fundamental research, normative research and historical research. The value of the contribution made to the process of education by these type of researches can hardly be undermined by any one. Actually these research have built up the modern system of education as such.

Action Research:

Action research in Education is more or less a recentl introduced movement in Education. In this type of research, teachers teaching and educational administrators in schools and colleges themselves are found to be involved in research in Education. Action research is the research in which practising personnels in the process of education arrive at systematic designs of research into the problems that they them-selves happen to face

> "Action research is focussed on the immediate application not on the development of theory, nor upon general application. It has placed its emphasis on a problem here and now in a local setting. It findings are to be evaluated in terms of local applicability, not in terms of universal validity. Its purpose is to improve school practices and, at the sometime, to improve those who try to improve the practices: to combine the research function with teacher growth in such qualities as objectivity, skill in research process, habits of thinking, ability to work harmoniously with others and professional growth". - John W.Best (1982,p.22)

Action research in Education is the research pursued by the active classroom teachers and educational administrators. This is the research pursued by these persons of education which is essentially the outcome of their felt need. This is the result of their concern for personal growth as well the teaching profession as such. Action researchers passionately analyse the problems that they themselves come across in their day-to-day working in the process of education.

Action Research and Teachers:

Action research is the real research in the sense that the need of it is felt by the practising teachers and they themselves involve themselves in this kind of educational research. These researchers are actually teacher researchers who conduct the research and test the validity of its results by implementing them in actual and real situations. These action researchers are supposed to have real perspectives of their research problems at hand. They have an insightful hypothesis to the problems, too.

Action-research teachers get into the investigation of their problems when they get themselves identified with the problem. They work with an urge to understand the problem, find its solution and improve upon their teaching efficiency. It adds to their personal efficiency and competency in their teaching profession. These action research workers in the successful completion of their piece of research work acquire self-confidence and self-reliance. It gives them ample satisfaction to work as teachers with accelerated enthusiasm. Such like action-research oriented teachers make a headway in their personal as well as in professional growth while still more adding an element of effectiveness to the process of education as a whole.

Teachers involved in action research are deemed to be conscientious teachers, responsible teachers who have the will to discharge their professional obligations as sincerity as best may be ever thought of by any one. Teachers who cherish no inklings for studying their day-to-day problems in teaching may be taken as devoid of their real love for the teaching profession. They may not be the keen observers of teaching-learning situations in which they actually work.

Action research is to be taken as side-by-side activit of the teachers in their teaching activity. This activity nee not be imposed upon teachers but may be self-imposed essentia programme accepted by teachers themselves. And for this teachers need by duly motivated for undertaking action research programmes in their respective schools.

For all practical purposes, teachers in their own interest and in the interest of teaching profession as such should have a fascination for action research. Research in Education when it is supplimented with the research of teachers, it becomes really a research of practical utility. Research in Education not supported by action resea-rch remains to be the research for only research sake without much of its findings being taken care of in teaching-learning situations. Research in Education becomes a meaningful research when it is meaningfully associated with action research which is essentially conducted by practising classroom teachers and educational administrators of schools.

Teachers need by fascilitated and motivated to examine their day-to-day pertinent questions with a research-oriented bent of mind. They should be encouraged to develop an attitude of mind to analyse their classroom ticklish problems in very systematic research like lines.

We may have pre-service courses of studies for action research at the very threshold of teachers joining the teaching profession. In-service, they may not be over-loaded with routine classroom teaching and with other school duties that they should loose sight of any programme of action research expected from them. Orientation courses and consultancy services may also be made available to

teachers who come forward to get into action research. Head of the Institution, Headmaster/Principal may always be expected to be competent and willing to serve as a good guide so easily and immediate available to teachers that they never loose track in their action research. Actually heads of institutions should instil an inspiration amongst the teachers for action research. The headmaster may arrive at his own design of team action research in which a team of teachers may make an intensive, joint coordinated and cooperative endeavour.

Financial aspect of action research can not be easily overlooked or set aside without being properly attended to. Teachers involved in action research or ready to enter into it, may need financial support their constructive pursuits. Although a close scrutiny may be very much desirable before sanctioning financial assistance to the teachers for their action research projects but this all should be done with an open heart and supporting attitude towards teachers who come forward for action research. However, a true action researcher should never mind and have the pleasure of financing his research from his own pocket. He should take it as the most right type of investment for his personal growth and satisfaction. A true researcher does not and should not depend upon the mercy of people who matter in sanctioning financial grants to their proposed research projects. A research should be taken as a mission towards which a sacrifice of some money must be taken as a matter of privilige and joy. NCERT, UGC and CSIR have elaborate programmes and schemes to finance research projects. Such like schemes need also be incorporated in the schemes of DIETS.

Teachers need be felicited for conducting action research of a wider and universal appeal and its application. NCERT runs a seminar Reading programme for action research projects and selected projects are awarded a merit certificate of National Award with a prize money of Rs.1,000/- each to the research worker. Such like schemes of rainforcement need be launched at State and District leveles, too. Action researchers should get incentives in the form of additional increments and out-of-turn promotions in their professional careers. All the more, State should give a wide publicity to the deserving action research projects as they might really deserve.

Problems for Action Research(Illustrations):

There can be a long list of problems which the working teachers may be experiencing in their day-to-day work. As for example, some of the problems may be cited as :

1. Study habits of students
2. Student's motivation for studies
3. Students' attitude towards studies
4. Influence of environmental factors on the personality development(habit for motion) of children.
5. Reasons of students coming late to the school.
6. Causes of students remaining irregular in the school
7. Student's likings for each other
8. Students' likings for teachers.
9. Students' family background.
10. Students' perception of teacher's style of teaching.
11. Student's perception of headmaster as their wellwisher.

12. Student's attitude towards hometask.
13. A study of student's pressing problems.
14. Student's love for home.
15. Student's love for the school.
16. Student's likings for school programme.
17. Students' complaints against the teachers.
18. Students who need special attention on the part of teachers.
19. Identification of handicapped children.
20. Identification of talented children.

Student who is found to be a problematic student, a difficult student may be brought under case study.

Experimental designs like the ones mentioned below can also be thought of under Action Research:

1. Impact of personality of the teacher on the learning of students in terms of their academic achievement.

2. The evaluation of a method of teaching as compared to another method of teaching the same subject and to the same age-group of learners.

3. Teachers' attitude towards teaching and students' learning thereof.

Such like small research designes can be arrived and conducted by the teachers. However, they need a little bit more of guidance and supervision to work over experimental action research projects as compared to this need while having non-experimental problems under investigation.Steps in Action Research:

Statement of the Problems:

The teacher visualizes the problem. He conceptulize it in its real perspectives. For this he may make a little

bit of survey of literature related to the problem at hand. He gets at the real footings of the problem. His discussion over the problem with his colleagues helps him have the clarity of the problem. It enables him to come out with a clear statement of the problem.

For an example, the teacher may be observing the students not finding duly inclined towards their studies. He may mark students indifference towards studies. Students' poor academic achievement may support teachers' contention. Now there can be many reasons for students' failure to make achievement in studies. Here, the teachers may like to study students overall placement at studies. Now, in this context one relevent aspect may be to study students' attitude towards studies. Here, it may be noted that students' attitude towards studies may be influenced by many factors. But for the action researcher teacher, here he is only concerned with the factual study of students attitude towards studies. He is not concerned for the factors building up or not allowing to build up a healthy attitude of students towards their studies. So, he comes to illustrate the problem as, A study of Students' Attitude towards studies.

A hypothesis illustrates an answer to the research problem which the researcher thinks it to be by virtue of his insight into the problem at hand. A hypothesis is a tentative answer to the problem with which the researcher comes to pursue his research study. A hypothesis is an answers to the problem which the researcher examines it for its acceptance or rejection as may be found logical on the basis of the evidence provided by the findings of the research at its end.

In the above cited study, the teacher has undertaken this study with the motion that students fail to make academic achievement up to his expectations because of their lack of desirable and healthy outlook towards studies. That means teacher thinks students cherish a poor attitude towards studies. For this, the hypothesis for this problem shall be formulated as:

"Students lack a desirable level of attitude towards studies".

Sample:

For the study of any research problem, it is not feasible and not required to include the total population of students. Statistical techniques help us to study the problem over a small population known as sample of the study. For the sake of our present problem we may say, the sample the study shall be constituted by students of Class V of 4 neighbouring schools.

Tools and Techniques:

Tools and Techniques are the wheels of a research programme. The researcher to begin with initiates his work with his research into the tools and techniques suitable for the study of his problem. He may like to be conversant with the tools and techniquenes available to serve his purpose. He may pick and choose any of them or may get an idea to develop his strategy to conduct the research problem at hand.

At elementary school level, we have to conduct our action research with the help of interview of students and their parents. An interview schedule may be developed with mutual discussions amongst members. Students' attitude towards studies may be studied by asking students questions

It is believed that we should not shirk using statistics to analyse the data but also we should also not be over enthusiastic to apply statistics for merely giving the data a statistical treatment. We should be rational in our approach. It is well advised that the researcher may read some research reports to be conversant with the right type of style for making meaningful interpretation of his data. The interpretation must lead to refute or accept the hypothesis with which the researcher might have started his resea rch work.

Practical Implications:

Findings ard alright but the researcher should also draw practical implications of his findings of the study. A record of practal implications makes the research study useful to one an all who are really interested in the improvement of teaching learning practices in a system of education.

Module No. 26

DIAGNOSTIC TESTING AND REMEDIAL TEACHING WITH REFERENCE TO MATHEMATICS

Sri G.S. Hat:

Many schools conduct turotial and annual examinations for the purpose of assessing the achievement af students. The results of those examination are mainly used to assist the Head of the institution to know whether a child is fit to be promoted to the next higher class. But these do not help greatly to the teacher to give feed back to the child for further improvement. A teacher must know whether he has been successful in teaching a particular unit before he moves to the next. A diagnostic test can alone serve this purpose.

After reading this module we will be able to :

- aim and need of diagnostic test.
- state how to construct a diagnostic test.
- state strategies for remedial teaching.

Diagnostic testing & Remedial teaching

Diagnostic tests in school subjects aim at identifying the strengths and weaknesses of an individual child in a specific area like profit and loss, pressure of liquid etc. These tests widely differ from achievement tests. For example the test used to measure achievement at the end of the year contains few selected questions from each chapter/unit but does not contain all vital aspects of each unit. It gives an overall picture of the achievement

of the child in the subject. Moreover, it may help the school to decide whether the child will be promoted to the next higher class or not. But it fails to give a complete picture of the specific strengths and weaknesses within a unit/sub-unit. On the other hand, diagnostic tests serve this purpose fully and include all aspects covered in a particular unit/sub-unit. The purpose of this type of test is also different. This test has nothing to do with promotion; it helps a teacher to know the specific strengths and weaknesses of individual child just after completion of a unit/sub-unit so that he can take necessary steps before proceeding to the next unit. It is very much required as weaknesses in a unit of an individual child will hamper the learning of subsequent units seriously. Hence a diagnostic test for each is a must for every teacher.

Construction of a diagnostic test:

To construct a diagnostic test in a unit in a school subject, the teacher must thoroughly go through the content and processes involved in the unit. On the basis of this he must divide the unit into some major concepts and then each concept has to be further devided into sub-concepts . Then questions will be framed on each subconcept. However, a diagnostic test does not give any rigid time limit to answer it only instructs students complete as soon as possible. It also spells clearly to the children that it has nothing to do with examination/marks. So children answer the question without fear/malpractice. They are further told that once their mistakes are identified, steps will be taken to remove them. This motivates them to take the test seriously.

Here is an illustration from Math. on writing the major concepts, subconcepts and questions for a diagnostic test on addition-numbers.

Major concept	Subconcepts	Question
1. Addition of one digit with one digit number.	a) One digit with one digit whose sum is 10	3 +4
	b) One digit with one digit whose sum is 10	7 +5
	c) One digit(No zero) with zero	5 +0
	d) there one digit number	3 4 +7
2. Addition of one digit with two digit number.		
	a) One digit with two digit with carrying.	17 +5
	b) One digit with two digit without carrying.	5 +11
	c) Row addition of one digit with two digit.	5 +16
	d) two one digit with one two digit.	14 +6
	e) two one digit with one two digit (Row addition)	4+13+5 = ?
3. Two digit with two digit	a) two digit with two digit without carrying.	12 +25
	b) two digit with two digit with carrying.	25 +37

4. Verbal problems

(Here different types of problems are to be identified depending on the pattern.

a) Problem with addition of case.

a) You have 2 chocolates your brother gave you 3 cholocates What is the total number of chocolates.

b) Problem will addition of two cases.

b) Sita has 2 rupees. Hari has 3 rupees more than Sita. How much do they have in total.

c) Problem with additional of 3 cases.

c) Gopal has 3 books. Rahim has 1 book less than Gopal and John has 1 book more than Rahim. Find out the total no. of books of Gopal, John and Rahim?

After this, questions may be framed on the sub-concepts These questions may be short answer or objective. Then the questions are to be analysed in order of difficulty so a diagnostic test contains directins for the test followed by questions on the unit.

After the test is administered, answer are evaluated and the responses are included in a two dimensional chart as mentioned below.

Response to question No.

Roll No.	1	2	3	4	5	6
1						
2						
3						
4						

The above is student-response chart of a dignostic test with 6 questions administered over 4 students. In the above chart, it is oberved that all the students have answered Q.No.2 and 6 correctly. Q.No.1 , 5 and 3 have been answered correctly by some students and nobody has answered the question No.4 correctly.

It is now necessary to locate the reasons for weakness in the students. The reasons sometimes may be cleab from the response or sometimes it requires interview with the individual child.

After locating reasons, remedial teaching may be planned and arranged as below.

i) For Q.No.4 the teaching may be applicable for all students.

ii) For Q.No.3 remedial teaching in smalll groups is required. However if reasons are different they may require individual teaching.

iii) For Q.No.1 and 5 individual remedial teaching is requested.

Diagnostic tests also reveal the weakness of teacher in teaching a particular sub-concept. This test gives a good feedback so that the teacher modifies the strategy/ methodology in subsequent years..

Like this diagnostic tests in other subjects may also be prepared. Common errors committed by students during class work, in home work and whole delivering a lesson help a teacher a lot of list the proper subconcepts and prepare valid questions for a diagnostic test.

As diagnostic test is a must for a teacher for each unit on every subject, it is desirable that a group of experienced teachers in the subject area may meet together to decide the major and subconcepts and prepare questions for a diagnostic test on a unit. If units in a subject are distributed among different schools of the locality for construction of diagnostic tests and then reviewed by experienced teachers and experts to give a final shape to the tests, then these tests can be used by all the schools of the locality for many years as these have nothing to do with marks.

Module No. 27

SCHOOL - COMMUNITY RELATIONSHIP

Dr. S.C. Panda

Overview

Community is an organised form of political, municipal or social unity. It is a body of persons living in the same locality, or with a common race, religion, pursuit etc. Consists of different kinds of human groups and each and every individual of the locality becomes a member of that community because of his birth, habitation or presence. School is part and percel of the community. It is one among many social institutions within the community which plays a very significant role to bring out socially desirable modifications with the learner's behaviour through its controlled efforts and endeavour.

This module aims at developing awareness and insight among teachers in regard to various kinds of participation of the community in educational programmes. Efforts is also made to enhance the teacher's ability to enlist support of the community for successful implementation of the educational programmes.

Here the community consists of a group of people with common interests and needs in promoting the cause of education within their place or village in particular and locality in general.

All of us have been working for the promotion of both formal and non-formal education. And for its effective implementation we always seek the cooperation and participation from the members of the community where we work. Our past experience shows that the government agencies are not that capable of promoting education to the level of expectation. We have to have sufficient community support

and prepare sufficient ground for that support to achieve the desired educational goals. No doubt the government has to increase the educational opportunities quantitatively but quality can not be lost sight of and can only be achieved through active participation of different agencies (government and private) with that of community. Hence, the participation and involvement of the community is very essential for successful implementation of the educational programmes.

Objectives

After completion of the trining programme, it is expected that you will be able to :

- Know and understand the meaning and types of community and community participation.
- Identify the available resources and areas in which community participation is essential and its feasibility.
- Understand the basic aspects of community like social life and civic responsibilities in school climate and community as well.
- Analyse the causes of insufficient community participation in educational programmes, and take remedial steps.
- Realise the need for community participation and the role of pupil-teacher relationship in particular and school in general in maintaining better community relationship in educational programmes.
- Realise the educational needs of the community and study the activities and worth of coming closer with the community.
- Practice some methods of community contact and drawing effective participation.

Learning Activities

Community participation in education system has been emphasised by many philosophers, sociologists, psychologists and educationists. They feel it as an integral part of education system. Our national government has also emphasised it from the beginning. As a teacher you must have realised also its importance in day to day teaching learning process. In various activities you must have felt the need of participation of the community.

It is commonly believed that any help rendered by the community in any manner is community participation. But the community participation has got more wider scope.

It indicates the involvement of the community, special contribution of the community, specific help rendered by the community. Support in some specific activities in different educational programmes carried out in different spheres of the community at different times. The involvement of the community has got much wider scope in comparison just to participate in certain educational activities. Let us try to understand and realise these aspects in a better way.

Activity Sheet No.1

Try to understand the meaning of community participation and its types.	Collect Collate Discuss

In many a occasions the presence of the community members play a vital role in the frame work of educational programme. It is not always necessary that they should keep themselves deeply engaged in the activities undertaken by the school. Their simple attendance encourage both the teacher and taught, they advise the students, enthuse the students on the need of involvement of the students in

day to day activities (curricular, co-curricular and extra-curricular). The utilization of expertise available in the community enriches the school climate. Through communication between the school and community which is a two-way traffic. Thus the community participation becomes a process of sharing expertise with each other. The involvement or the participation of the community in the educational programmes of the school are of different types depending on the contexts, condition or situation. Thus participation may be categorised as :

1. Voluntary or Spontaneous

Person from the community, who volunteer out spontanueously to participate in the school activities without any external support or force (Ex- If it is realised to have a school in the locality and it was decided to raise funds and materials to send their children to school).

2. Compulsion

Persons from the community, who have to participate under certain compulsions. Its violation may cause certain coercion. (Ex- If the parents are forced to contribute for the development of the school or else their children will not be admitted to the school).

3. Sponsored

Persons from the community, who participate because of some mendate or official endorsement. No external force is applied, but external support is being provided. (Ex- If the community is persuaded by some authorities for the purpose or some matching grants would be made available for the building, material or staff, it may be considered as 'sponsored' participation).

In a democratic country like India compulsion in the area of participation is neither desirable nor advisable. Voluntary participation is the most desirable and agreeable one as it will be more durable and satisfy the ideal of cooperation and participation.

Being aware of the meaning and types of community participation we will be able to know the need of community participation in educational developmental programmes which are community based. Many times you may have realised the need for the support from the community in some situation where government support is not that sufficient. Let us try to recollect such situations and discuss the need for community participation in educational programmes .

Activity Sheet No.2

Reflect some situation from your experience where you felt the need for community support/participation.	Collect Collate Discuss

School is an integral part of society. The child is reared in the family, the first social institution, then he enters the second one, the school. It takes up the responsibility in making the children understand the social life of developing citizenship, civic responsibilities, economic self-sufficiency, self-realisation and in achieving the vocational needs. These social responsibilities can easily be discharged by the school resting mostly on the support of the community.

The participation of the community is needed in all the aspects of functioning of an educational institution including planning, organisation of activities, material support basing on the resources available, regular functioning, increasing the number of beneficiaries, supervision and helping educational development.

For emphasising decentralisation of management of the school and the creation of a spirit of autonomy for educational activities the need for active participation of the community becomes a must. The National Policy on Education, 1986 gives pre-eminence to people's involvement, including association of non-governmental agencies and voluntary effort. As per National Policy on Education, 1986 the non-government and voluntary efforts including social activist groups should be encouraged, subject to proper management, and financial assistance provided.

It is always felt that there is not enough time for the teachers to contact the community. But it is felt that community support is very much essential. Sometimes for this purpose sometime is to be squeezed out of the busy schedules of the teachers. The functions organised in school should be based on the community support instead of making it official with inadequate community involvement. Let us now consider the feasibility of community support in areas where it is most needed.

Activity Sheet No.3

Enlist some important areas/aspects of educational programmes and institutional management in which community participation is needed.	Collect Collate Discuss

The areas in which community help is needed are related to academic, non-academic, management and administrative. The nature of the help is almost the same in both urban and rural context except in certain aspects.

1) There are many skilled persons in the community who can provide assistance in taking socially useful productive work classes. The expertise

available in different fields can be utilised to take classes in the field of their specialisation to enrich both the knowledge of the teacher and the taught. Even the qualified and educated person can teach part-timely for sometime in the absence of regular subject teachers.

2) School can take up some programmes of organising co-curricular activities and extra-curricular activities with the active help of community. The programmes of organising the observance of national days, observance of some social functions, cultural activities, training camps, organising community feasts, field trips, excursions, science clubs, science exhibitions, cleaning and maintaining public roads, controlling traffics, managing crowd in social gathering and festivals, fire-service programmes, first-aid training, population education programmes, hygiene programmes etc.

3) School with the help of the community can take up universal enrolment programme. Parents can be persuaded, motigated and pressed socially to enrol their children in the school, ensuing regular attendance and retention of their wards in the school.

4) Involvement of personnels in the school activities from the community helps smooth and regular functioning of schools by solving unforceseen day-to-day problems.

5) Interaction between students and teacher can be strengthened in a better way be parent-teacher interaction, which will pave the way for maintaining congenial atmosphere in the school,

6) If properly convinced and motivated the community can be brought forward in providing help man and material such as construction and maintenance of school building, furniture teaching aids, residence for teachers, free labour etc.

7) Community can contribute by way of giving valuable suggestion in planning and execution of activities. It can also provide authentic feedback with regard to the views of the children about teaching-learning process to bring about necessary modification. Community can further provide the guidance and counselling service as and when required and available.

8) The administrative problems of the schools are often taken care of well by the community. On occasion the parent teacher association, panchayat samiti or some influential personalities play important role to bring back the administration to normally.

There are so many other aspects, in which the community can participate and help educational system.

Participation is a two-way traffic. Let us now examine the role of a school in maintaining better school community relationships which play an important role in attracting community participation.

Activity Sheet No.4

Note down the activities that the school can undertake to maintain good relations with the community and obtain its participation.	Collect Collate Discuss

Following are some important aspects in which a school can help the community.

1) Centre for learning - school is the specified institution where learning for the pupils takes place in a formal way and can be made a centre for informal learning too, for the members of the community. The school can provide academic assistance to the members for further learning.

2) School can be made a centre of activities based on rich experiences and expertise available with the members of the staff. Activities like popularisation of science and science exhibition, fairs and musiums etc., familiarities with population education, presenting rarely available expertise from some other institutions can be taken up in the school.

3) School is a centre where meetings and functions can be held. School provides the infrastructural facilities like building, library play ground, audio-visual materials.

4) School can utilise the resources available from the community with regard to improvisation of apparatus. Hence school can be made a centre of utilizing resources available (man and material) from the community.

5) Teachers are considered as knowledgeable persons particularly in the school locality. People consult them in many spheres specifically in the field of educational and vocational guidance.

6) Educational institutions is a place where thinking process goes on to bring about necessary modification in the society. Always the voice against social evils, tabooes and dogmas etc., has been raised

from the educational institutions. The institutions help in collecting and disseminating new and innovative ideas relating to education and other developmental programme in society.

7) The result of the activities of school children may well be displayed before the parents and other members of the community to provide them a sense of satisfaction about their childrens' performance and if it pleases them, they can learn from the activities/experiences and in the light of these other works can be taken up in school.

Let us now try to find out the basic factors which influence the community participation.

Activity Sheet No.5

What are the basic factors influencing community participation as per your feeling.	Collect Collate Discuss

It is obvious from the foregoing discussion that the following are the major factors which influence the participation of the community in school programmes.

1) A sense of belongingness and sharing among the community members play an important role. The school and community should work as co-partners in planning the activities and their management. Hence the process of participatory planning and management is more important.

2) The effective functioning of different committees related to school and community is responsible for better community participation. The committee

like school management committee, school coordination committee, parent-teacher association should properly by activated and utilized for ensuring community participation.

3) Better utilization of existing social institutions like youth dormitories in tribal areas and community welfare centres in urban areas.

4) The active involvement of voluntary organisation in the community participation should be encouraged.

5) There should be proper survey and identification of the community resources available and be made available. The area like socio-economic status of the community, composition of social groups, cultural background, reasours for wastage and stagration of pupils in educational system, reasons for non-attendance of students and cooperation are to be taken care of for mobilising community resources for school improvement.

6) Proper Mobilisation of Youth Power in Society.

Apart from the factors mentioned above there are some important methods of community contact and working with it to ensure community participation. Let us discuss these methods.

Activity Sheet No.6

Where are the important methods of community contact and working with it to ensure community participation.	Collect Collate Discuss

For smooth management of community participation please try to see some effective methods of community contact to ensure community participation.

The following useful methods have been identified :

1) Know the community to the fullest possible extent about its social structure, economic constraints, cultural background, political set up, students background and other problems related to that particular area.

2) Identification of self of the teacher with the new community where he is going to be a member. The teacher is to come down to a level at par with the people of the community and respect them, their tradition, culture, customs etc.

3) Better understanding of social life, civic responsibilities, economic self-sufficiency so that better execution of the programmes of educational and vocational guidance can be provided.

4) Proper pupil-teacher planning for learning through community study for which the study of learner's entry behaviour (What he knows, what does the school want him to know, how can it be found out) and the community study experience (which includes the objectives, preliminary preparation, mechanics of arrangement, observing and recording, learner's response and its evaluation) are to be taken care of.

5) Instead of complaining about the children to their parents, positive suggestions to the parents and ensuring raciporcal behaviour from them with regard to their wards will contribute a lot to achieve the broader goals of education.

6) The sharing of experiences in community work and seeking cooperation from the expertise available in the community is very much useful.

7) Attending the social functions, religious festivals and other social gathering in the locality helps the teacher to come closer to the community.

8) The management committee which includes the important personalities of the area ensures for smooth running of the school.

9) By organising some science and social studies exhibitions, fairs etc., and rendering services of youth from the school through N.C.C., scounts and guides and N.S.S. movements school can be brought closer to the community.

10) The existence of and better functioning of parent-teacher association also plays an important role to bring school and community still closer.

Those methods cited above apart some other actions play important role in community participation. Those are :

1) The communication process which includes a sense of humour, tone and tenor of formulating and transmitting the message, control of the channels through which the message is transmitted, understanding the individuals (receivers) mental and physical maturity to receive and feed-back from the receiver.

2) Establishing rapport with community by respecting each and every individuals.

3) Understanding that there is no ready made solution to any problem and the solution is dependent on the judging capacity and action of the individual or a teacher in a particular situation.

4) Acting as a guide and goad the community in different situations.

= 0 =

b/s

Module No.28

TEACHING AND LEARNING OF MOTHER TONGUE AT PRIMARY LEVEL

Sri A.C.Sahu

INTRODUCTION:

The National Policy of Education (NPE) emphasises on universalisation of Primary education, which provides free and compulsory education upto the age group of 14 years and it is a directive principle of the constitution for materialisation of this primary education or mass education, we went an effective medium of instruction and obviously, this medium cannot be other than the Mother Tongue. Therefore, at primary or elementary level the effective teaching and learning of Mother Tongue is inevitable. In post-independence period Mother Tongue is associated with all walks of life and thus plays a vital key role in total curriculum. It nurtures the body spirit and mindof the child in an integrated manner and therefore, Gandhiji, the father of the nation has always advocated for the teaching of mother tongue. In post independence period, it is the medium of instruction at primary, secondary and university level and also enjoys the privilege of becoming the medium of administration. Therefore, the teaching and learning of mother tongue, which has been neglected till today, should be given due importance.

In the effective process of teaching and learning mother tongue, family and teacher have joint responsibility. But in a developing country like India, whose major population consists of scheduled caste, scheduled tribe and other backward communities, the family always, may not be in a position to discharge its duty towards desired language teaching and learning, as there are many first generation learners in primary and secondary level. Obviously the teacher's responsibility is multiplied and his role becomes more

crucial as the family of the child may talk a dialect or sociolect, which considerably deviates from that of a standard language, which normally enjoys the status of a regional language, the medium of instruction.

a) Please find out how many dialects and sociolects are found in the Mother Tongue, with which you are concerned ? b) How these dialects and sociolects adversely affect the teaching and learning of Mother Tongue ? c) What remedial measures you adopt to eradicate the mistakes caused by the aforesaid factors ?	Collect Collate Discuss

The teacher of Mother Tongue without much expectation from the family, in most of the cases, has to develop innovative strategies to teach mother tongue effectively. In such difficult and crucial circumstances, how the teacher can discharge the sole responsibility single handedly in an integrated and wholistic manner ? What are the strategies and methodology of teaching Mother Tongue at primary level, which can ensure integrated and total development of the child ?

Objectives

After reading this module the teacher of Mother Tongue should be able :

- To spell out minimum level of learning objectives in Mother Tongue which, should be the guiding factor for creating teaching learning environment and in developing innovative strategy of methodology and instruction materials.

- To organise teaching and learning process in a problem solving mede, by associating his experience and thinking.
- To make an integrated and wholistic approach in language teaching.
- To clearly distinguish the objectives of teaching mother tongue at primary level, from that of the secondary level.
- To innovate and suggest method of need-based data-collections and interpretation, appropriate to each stage of learning the Mother Tongue.
- To make learner-centered approach or child-centered approach so that language learning would be more effective.
- To adopt participatory approach by utilising the principle of 'learning by doing'.
- To promote oral-literacy, which is a most neglected phase in the learning of mother tongue.
- To make learner-centered approach or child-centered approach so that language learning would be more effective.
- To adopt participatory approach by utilising the principle of 'learning by doing.'
- To promote oral-literacy, which is a most neglected phase in the learning of Mother tongue.
- To encourage pupil to communicate with ease, comfort and spontneity, which are the distinguishing criteria of Mother Tongue.
- To have continuous comprehensive evaluation at every stage of learning Mother Tongue.
- To inculcate basic values like nationalism, patriotism, love, dedication and sacrifice etc. and right type of healthy attitude towards life.

- To train and encourage pupil to explore and utilise source materials of the knowledge in Mother Tongue such as reference books, children's Encyclopedia, Dictionary, newspapers, magazines and journals, mass media like radio and television should be utilised in a need based, regulated manner for learning the Mother Tongue.

Indian culture and heritage has been nurtured and preserved through Mother Tongue. In India alone, there are 3,000 languages, 4,000 castes and communities, 4,000 faiths. When looked through environmental, ecological, socio-economic and political parameters, it appear fragmented and dissociated. But the national, identity and cultural heritage has been and could be nurtured by inculcating and fostering conducige values, through effective teaching of Mother Tongue.

Basic Objectives of Teaching Mother Tongue

- Can a learner be said to know a Mother Tongue, which he can not effectively communicate ? The foremost and predominating objective of teaching Mother Tongue is to develop, potentialities so that the learner can effective communicate and interact in a style of his own through oral and written channel.

i) Let us ask ourselves and find out what is the percentage of students who can effectively communicate through the Mother Tongue with spontaneity, ease and comfort. ii) Is there tangible change in their oral expression by the means of teaching Mother Tongue ? If not, what are the causes of failure in producing the desired effect in teaching and learning process of the Mother Tongue ?	Collect Collate Discuss

iii) It might have been observed, that most of the adult talkers in radio and T.V. including V.I.P.'s are unable to communicate effectively in Mother Tongue. Why ? what may be the reasons of this ineffective communications ?

iv) Stress, intonation and rhythm are the life and soul of language. Are they being utilised in most of the oral expressions of the Mother Tongue ?

v) Do we feel the need of imparting/training to make the students conversant in terms of stress, intonation and rhythm ?

Which features are crucial to the learning process of the Mother Tongue ? Obviously, one of the reason is faulty model - the model built up by the teacher and speakers of the concerned associate community around the learners of the Mother Tongue. Let us find out, if there are any similar barriers and hurdles, which adversely affect the language learning situation and distorts the standard form of the Mother Tongue.

a) Do you agree with the factors mentioned above with reference to distorting the Mother Tongue in the process of acquisition ?

b) According to you, what are the other factors responsible for such faulty acquisition of Mother Tongue ?

Collect
Collate
Discuss

Impprting fundamental skills - four fundamental skills of learning the Mother Tongue, like any other language should be fostered effectively. These skills we know :

a) Listening with understanding
b) Speaking
c) Reading
d) Writing.

In otherwards, these skills can be classified as :

a) Comprehension of the spoken language (listening with understanding)
b) Production of the spoken language (speaking)
c) Comprehension of the written language (reading)
d) Production of the written language (writing)

These four skills are also common with reference to teaching any other language. In that case, how the objective of teaching and learning of mother tongue, distinguishes it from rest of the languages ? Inducing creativity and original thinking are the distinguishing features of the Mother Tongue.

- In the classroom teaching of Mother Tongue, at lower primary level, talk the Mother Tongue, instead of talking about the principle and formulae about it. The grammar of functional communication is much more important, than that of the formal grammar.

The Teaching-Learning Strategy at Primary Level

The Mother Tongue is usually the first language (L_1) for most of the learners at Primary level. All the leading educationists and Education Commissions have prescribed, Mother Tongue should be necessarily the medium of instruction.

At the lower Primary level it has been emphasised, no other language other than Mother Tongue should be taught. It facilitates the teaching of Mother Tongue. At this stage Mother Tongue has been marked as a core-activity in the curriculum and proportionately there is also provision of allotment of more time in the concerned time-table. Therefore,

the concerned teacher should optimise the opportunity to foster right type of language. Skill and competencies with reference to Mother Tongue keeping in view the minimum level of learning.

Different Phases of Learning the Mother Tongue

It's bottle necks and remedial measures

At pre-school stage, the child before entering to school, automatically acquires the functional skills and competancies of the Mother-tongue, with reference to listening and speaking abilities. After entering into schools these two skills are to be sharpened and strengthened to facilitate and promote oral expression and also to further support the learning problem of reading and writing, the next phase skills of the language-learning.

In case the child's acquisition due to substandard surrounding is faulty and learning of Mother Tongue is distorted, the teacher with utmost care and precaution, would gradually rectify the faults through phase-wise repeated drill work. It should not be done at the cost of the child's enthusiasm and interest of learning the language.

Narrow view about Language Instructions in Mother Tongue

Somehow or other most of the schools take the narrow view that, language-instruction is confined to the teaching of reading and writing, totally neglecting the oral literacy, oral activity and above all creativity and originality which help in developing an integrated personality.

a) What is your view point of teaching Mother Tongue in a wholestic manner ? b) Do you adopt any methodology out side the framework of the curriculum in Mother Tongue, in order to promote oral-literacy and other oral activities ?	Collect Collate Discuss

c) What are the group activities, that you can suggest to broaden the scope of teaching and learning of Mother Tongue ?

The reason of taking such a narrow view about teaching a language can be attributes to the teacher, who confines the curriculum as the absolute objective of teaching the Mother Tongue. The broad based language teaching instructions in Mother Tongue, transcends the four walls of curriculum to all walks of life and environment of the child.

Aids and Materials of Language Teaching in Mother Tongue

Aids of language teaching, particularly in Mother Tongue are abundantly available in open nature and surrounding environment. Besides that, many 'low cost' and 'no cost' aids can be produced by the concerned teacher, if he/she is a bit innovative and imaginative by nature.'Thinking aid's are most useful for the child, who is fanciful by nature, than that of traditional audiovisual aids/materials of teaching the language.

Besides the above teaching strategy, language materials in teaching Mother Tongue consists of :

i) Reading-readiness materials/Break through readers such as 'read and learn', 'Look and Say' series books.
ii) Games and toys.
iii) Conversation/picture chart.
iv) Library consisting of children's books, encyclopedia and children's dictionaries.

How to use Language-Learning Materials

The best learning-situation can be created by associating the life experience of the learner with reference to the aids/materials. Playful language-activities in Mother Tongue can be organised by utilising the learning materials.

Different co-curricular language-activities can be organised in order to enlarge and broaden the programme for Mother Tongue, so that optimum, total learning outcome can be achieved.

******

b/s

Module No. 29

EXTENSION PROGRAMME

Dr. S.K. Goel

Since independence there has been a large scale expansion and a degree of reconstruction in the field of education at all levels. In the field of teacher education also there has been not only quantitative expansion but there has also been some qualitative changes with the incoming of the influences of various new trends and other new features. Not only have the training institutions and the enrolment therein increased over the years but changes have come in the outlook for the preparation of teachers.

Educational reconstruction in India implies the use of integrated professional experience of specialists in research, planning, development and administration.

As text books and supplementary educational materials are tried out with practising teachers in workshops in which the teacher is evidently the instrument of change, so the entire structure of training and extension in field services is designed to bring about that volume of change that is implied in a continuous process of evaluation, discovery and feedback. All change, all innovation must reach out to take in the teacher, to make him the hub of the continuing revolution in education.

The NCERT seeks to train the specialists in curriculum development, evaluation and measurement, audio-visual education, guidance and counselling, research methodology, educational administration and other areas of educational enterprise through extension services programme.

Research and training apart, one of the main functions of NCERT has been to develop on subcontinental scale programmes in educational extension. This is done through the Department

of Field Services. The Department has evolved a new training programme through internship extension; workers have been given special training in the development of instructional materials and the improvement of the functional use of school libraries.

One of the important activities that the Council has undertaken is to extend educational information to educational workers. This is the underlying aim of the extension and field services organized by the Council in primary, secondary and higher education as well as for workers in teacher education and in educational research. The Directorate for Secondary Education set up by the Council comprising a large number of extension service centres (97) in different parts of the country seeks specially to cater for this activity of the Council. These centres are organizing on a continuing basis extension and in-service educational activities for the benefit of Secondary Schools in India. A large number of developmental programmes aimed at improving secondary education have also been conducted. Hundreds of schools are involved in the programme of intensive school improvement. Each school has developed a programme of improvement in specific areas depending on its need and the needs of its teachers.

In addition, various other Departments of the Council are engaged in the field of services. Short-term training courses, conferences, workshops, seminars and follow-up studies, clubs, fairs, exhibitions and film shows are the means through which the latest developments in education are made available to personnel in educational vocations.

Some conferences of State Education Secretaries and Directors of Public Instruction have been held to discuss the ways and means of strengthening the Extension Services.

It was recommended that the programmes of Extension Services should give priority to the state and national targets in secondary education. The staff of Extension Services should pay more frequent visits to schools, especially in the backward and rural areas. During these visits the Officers of the State Department of Education may accompany the Extension Services staff whenever possible. Extension Services should assist the State Department of Education in implementing the various schemes in secondary education, particularly those which are directly related to the improvement of schools. In important schemes, such as comulative record cards, organizing content courses, etc., the Extension Services Centres within a State should work together so as to divide the load and avoid duplication of efforts. The centres in a state should combine their resources in respect of publications so that worth-while publications may be brought out in adequate manner.

Since there is a shortage of standard books on education in Hindi and other regional languages, the training colleges should take up immediately the work of translation. The State Department of Education should provide necessary help for this purpose. There is a need to introduce inservice programmes in Training Colleges where Extension Departments have not been provided. Extension Services Units should be started in those training colleges which donot have an Extension Services Centre. In order to meet the expenditure for the Extension Services Unit, a grant should be placed at the disposal of each training college. Provision should be made for the training of guidance and counselling personnel in secondary schools. Efforts should also be made to provide career masters in as many higher secondary schools as possible. In collaboration with the Extension Services Centres, the Bureau of Educational and Vocational Guidance should

organize training courses for career masters. There is a need to formulate an integrated programme of action during the current five-year plan so that the resources, funds and manpower available with the Extension Centres as well as the State Department of Education may be mobilized to achieve the targets. It is felt that seminars should not always be held at the headquarter but should be distributed in the rural areas so that more teachers could participate in them. Seminars should be of a reasonable duration so that their impact may be tangible. The District Inspectors of Schools should be informed of all the activities of the Extension Centres and they should be invited to participate in the programmes as much as possible. It is observed that individual centres have been working on comulative record cards, each in its own way. In view of the importance of these records in giving guidance to the pupil, it is necessary to evolve a uniform pattern of the card. The extension centres in collaboration with the Directorate should therefore immediately take up a study of the question, analyse the existing cards and evolve a suitable pattern of cards, accompanied by a manual of instructions to teachers. The card should be so framed that it gives all the essential information necessary but at the same time it is not too difficult or cumbersome. It is essential that the teachers should themselves fill up these cards as they be in close contact with the pupils. A separate section in the card could be allotted for entries relating to the pupils' scholastic achievement as this data is required for the university admissions.

Extension Centres should visit the schools more frequently, attention should be given in greater measure to backward and rural areas. Extension Centres should assist the State Department in the proper utilization of science grants to schools. During their visits the Extension staff should verify whether the schools were satisfactorily utilizing the

grants given by the State Department for improvement of Science and also bring to the notice of the Department the names of other schools which required such assistance. The improvement of examinations should be taken at two levels - one at the university level and the other at the school level, starting from the earliest stages. This was necessary to prepare the children adequately for the new form of testing. In drawing up the future programmes of the centres, emphasis should be given to subjects such as social studies, general science and home science. The Education Department should provide the necessary resource personnel to the Extension Centres for these programmes. It is necessary to provide incentives to teachers to stimulate greater iterest in inservice activities. Provision should therefore be made for special increments and also for the confidential reports to indicate the degree of participation of teachers in such inservice programmes. The State Education Department should issue circulars to schools and managements so as to ensure the fullest participation. Copies of departmental circulars relating to secondary schools should be sent to all the Extension Centres so as to keep them informed of the instructions issued by the Department from time to time. The Director of Public Instruction may also issue instructions at the Inspectorate stressing the fact that Extension Centres were a part of the State Department and that they should extend the fullest cooperation to the Centres in their activities. All the training colleges in the state should be involved in inservice programme, each college taking up some part of the work in the area in its neighbourhood. This would be made possible if an allowance is given to a staff member of every training college who was interested in taking up the work. The success of inservice programmes of extension centres is so closely dependent upon the efficiency of pre-service training that it is essential to re-think about the entire

programme of teacher education. It would therefore be desirable to convene a conference of all the Principals and senior faculty members of training colleges in every state. The activities of the Extension Centres should also take into consideration the emphasis on secondary education programmes from the national point of view such as :

a) teaching of languages as tool subjects;
b) science education;
c) school libraries and development of reading habits;
d) cumulative record cards;
e) preparation of handbooks for the teachers.

The collection of text books available at the Central Bureau of Textbook Research should be made available to the State Education Department for being exhibited at the various Extension Centres for the use of teachers. It is necessary to make a continuous and comprehensive evaluation of every technique so as to assess which of them was more or less effective. The quarterly newsletters of the Extension Centres should be compiled and edited by highly experienced staff so as to make them interesting, informative and useful to the teachers.

It would be worthwile to examine the extent to which schools were associated with the Extension activities and to find out the impact on the schools. This would serve as a guide for determining the types of services that should be rendered to the strong and weak schools. Coordation is essential for the success of extension services. This coordination should be effected between the Extension Centres and the Training Colleges, among the Extension Centres and between the Centres and the State Department of Education. Coordination in the publications brought out by various Extension Services Centres would be very fruitful. Steps should be taken to evaluate publications of all the Extension Centres periodically and to select those which deserve wider

distribution. The subject consultants attached to the State Department of Education should work in close cooperation with the Extension Services and provide the resource persons. It is to be emphasized that the programmes of Extension Services should be reflect the local needs of the State Department of Education and the national targets and the programmes in the field of secondary education.

The NPE places complete trust in the teaching community. It envisages freedom for the teacher to innovate and to carry on his work in a manner that is relevant to the needs and capabilities of learners, and also reflects the concerns and aspirations of the community.

The NPE has suggested a variety of steps to improve the status of teachers with effective teacher accountability and the following are the suggested steps.

1) Introduction of reforms in the system of selecting teachers.
2) Involvement of teachers in the planning and management of education.
3) Creation of opportunities and an a atmosphere to promote autonomy and innovation among teachers.

Regarding the professional education of teachers, both the pre-service and inservice components will be overhauled to meet the thrust envisaged in the policy. District Institutes of Education and Training (DIET) are to be organized for pre-service and inservice education of elementary school teachers and for personnel working in nonformal and adult education. DIETs will in due course replace substandard institutions. Colleges of Teacher Education will be strengthened so that they are in a position to provide secondary teacher education of quality. The National Council of Teacher Education (NCTE) will be responsible for accrediting teacher education institutions and will provide guidance on curricula and methods.

+0=

b/s

A Tool of Evaluation of Induction Level Training of DIET Faculty

Prof. K.C. Panda
Dr.D.K.Bhattacharya

Instructions:

1. The purpose of this Information check-list is to obtain opinion of the participants of Induction Level Training of DIET faculty (IFIC Branch) held at Regional College of Education, Bhubaneswar from 11.2.91 to 25.2.91 in connection with evaluation of programme transaction.

2. Kindly feel free to reply/question/supply informations . your responses will be kept strictly confidential.

3. Additional information/comments/remarks concerning improvement of the programme may be given at the end of this information check-list.

4. Please put (|/) mark against only one appropriate response. However, in case of some items tick (|/) mark is to be put against a number of responses you feel appropriate.

Section A: Personal Data

1. Name of the participant:-
2. Age (in years) :-
3. Sex : Male/Female
   (Please put a (|/) mark)
4. Full postal address of the DIET to which you belong:-
5. Teaching Experience in completed years:-
6. Educational Qualifications:-

Section B: Programme Transaction

1. The organisation of Training:

   a) had logical sequence and easy to understand & follow.
   b) was partly easy and partly confusing.
   c) was difficult to understand and follow.

Contd...2

2. The Resource Persons:

   a) Encouraged open discussion

   b) Answered questions only

   c) Focussed on coverage of the module.

   d) Created proper motivation in the subject matter.

   e) All the above.

3. The presentation of the modules by the resource persons was:

   A) Clear, definite and useful

   B) Sometime clear and sometimes confusing

   C) Frequently vague

   D) Mechanical and monotonous

   E) Inadequate from the point of view of duration of the programme

4. The quality of modules developed by R.C.E.,Bhubaneswar faculty was:

   a) Excellent

   b) Good

   c) Average

   d) Poor

5. The name of the modules which was easy to comprehend (Please indicate only module No.(s).

6. The name of the modules which was difficult to comprehend (Please indicate only the module No.(s).

7. The resource persons were able to communicate the message presented in concerned modules (Please tick (against appropriate response.

   A. Very effectively

   B. Effectively

   C. Not effectively

Contd...3

8. The modules would help the DIET faculty (IFIC Branch) to design the courses for various target groups as outlined in DIET document.

   A. To a considerable extent
   B. To some extent
   C. Marginally

9. The modules developed by the faculty of RCE,Bhubaneswar covered various functions of IFIC Branch as outlined in DIET document.

   A. Adequate
   B. Moderately adequate
   C. Inadequate

10. Usefulness of the modules for preparing/conducing programmes of IFIC Branch at DIET level.

    i) very useful
    ii) useful to some extent
    iii) not so useful

11. Course Transaction methodology (Please put (|/) mark if more than one applicable.

    A. Lecture/talk
    B. Lecture cum discussion
    C. Lecture cum discussion cum demonstration.
    D. Lecture cum activities
    E. Participatory group discussion
    F. Investigation approach
    G. Self-study
    H. Practicals
    I. Sharing of experience
    J. Identification of practical problems faced in the fields Transaction of in-service message through audio-visual modes.
    K. All the above.

Contd...4

12. The duration of Training was:

    a) Adequate
    b) Moderately adequate
    c) Inadequate.

13. Level of interaction between resource faculty and participants were:

    a) High
    b) Average
    c) Poor

14. Level of competence of the resource persons as rated by you :

    a) High
    b) Average
    c) Poor

15. Level of involvement of the resource persons as observed by you :

    a) High
    b) Average
    c) Poor

16. Level of involvement of participants in the programme as observed by you :

    a) High
    b) Average
    c) Poor

Contd..

Section C : Programme Input

17. Quality of materials/modules developed by RCE,Bhubaneswar for the Induction Level Training.

    A. Excellent
    B. Good
    C. Average
    D. Poor

18. Availability of media in training (Please put tick(|/ mark if more than one are applicable).

    A. Teaching aids
    B. Black Board
    C. Audio Aids
    D. Visual aids
    E. Audio-Visual Aids.

19. Availability of space for seating arrangement was :

    A. Adequate
    B. Moderately adequate
    C. Inadequate.

20. Availability of space for group work was :

    a) Adequate
    b) Moderately adequate
    c) Inadequate

21. Availability of modules/materials prepared by RCE, Bhubaneswar to each DIET/SCERT.

    a) Adequate
    b) Moderately adequate
    c) Inadequate.

Contd...6

22. Distribution of module/materials was :

a) Timely   b) Delayed

23. Adequacy of the modules/materials for personnel of IFIC Branch of DIET.

a) adequate
b) adequate to a considerable extent
c) adequate to some extent
d) marginally adequate.

24. The comprehensibility of the modules/materials prepared by REE faculty for IFIC Branch of DIET.

a) Comprehensive
b) Comprehensive to a considerable extent
c) Comprehensive to some extent
d) Marginally comprehensive

Section D: Visualisation of roles of the DIET faculty (IFIC Branch) after training (Please put a (✓) mark in the items you feel the most appropriate response).

25. IFIC Branch of DIET is to organise.

1. Short term programme
2. Medium term programme
3. Long term programme
4. All the above

26. IFIC Branch of DIET is to organise training programme for

1. Primary school teachers
2. Upper Primary school teachers
3. Headmasters
4. Head of school complex

Contd...7

5. Block Education Officers/Circle Inspectors/ S.I. of schools.
6. AE/Non-formal education personnel
7. Resource persons
8. Community leaders/members of VEC/Voluntary organisation/Youths
9. All the above

27. IFIC Branch of DIET is to organise :

1. Main Programmes
2. Theme specific programmes
3. Both main and theme specific programmes

28. The functions of IFIC Branch of DIET are to organise:

a) Inservice educational programmes.
b) Extension programmes (field interaction).
c) Should encourage action research and dissiminate results of innovation.
d) Should monitor progress towards realisation of goals of UEE.
e) All the above.

29. The course Transactional methodology should be :

a) Minimum lecture
b) Lecture-cum-discussion
c) Lecture-cum-discussion-cum-demonstration.
d) Participatory group work
e) Case studies
f) Investigation approach
g) Practicals
h) Sharing of experience
i) Identification of practical problems faced in the field .
j) All the above.

Contd...8

30. Total approximate number of programmes a DIET is supposed to organise in a year :

    i) 10

    ii) 12

    iii) 14

    iv) 18

31. Minimum requirements for IFIC Branch of DIET involves formulating of :

    i) Annual Calender

    ii) 5 year perspective plan

    iii) Information proforma's for Data base in regard to various target groups.

    iv) All the above.

32. Is the experience in developing Annual calender and five year perspective plan useful and meaningful to you ?

    i) to a considerable extent

    ii) to some extent

    iii) marginally

33. Do you find the ideas for building up a comprehensive data base on all aspects of UEE helpful and practicable:

    i) to a considerable extent

    ii) to some extent

    iii) marginally

Contd...

34. Please indicate the strong and weak points of the programme.

<u>Strong Points</u> (in order of importance)

1
2
3
4
5

<u>Weak Points</u> (in order of importance)

1
2
3
4
5

****

CLEARING HOUSE FUNCTIONS OF IFIC ON RESEARCH AND INNOVATION IN ELEMENTARY EDUCATION

Prof. K.C. Panda

The terminology IFIC has three basic components which are closely related to the clearing house functions viz.

I. Inservice teacher education

F. Field interaction

IC. Innovation co-ordination

Besides these essential functions, the triparitte division of the role of IFIC in particular and DIET in general can be looked at from three angles.

Training

Resource Development

Action Research

Now the question would arise what should be the clearing house function ? Objectively speaking, the clearing house function should promote and undertake activities which would achieve the objectives of DIET i.e.,

UEE

UAE/NFE

with built in structure for achieving minimum learning levels and ensuring the qualitative change in Elementary Education.

Resource Development:

In DIET, information have to be collected, collated and analysed from various angles e.g.,

a) Research: The IFIC can conduct research, and collect research findings of others relating to Elementary Education. The research reports can be abstracted in an uniform manner. Metaanalysis can be done and the findings can be kept in storage.

b) <u>Training</u>: The training needs may be identified and a kind of data base be generated to draw teachers for various inservice and preservice training. Training curricula may also undergo changes through evaluation.

c) <u>Innovations</u>: Case Study of institutions, success stories, individuals who have outlived in the villages, noval approaches to reduce stagnation and increase motivation of pupils and build a good climate are some of the innovative measures on which information can be gathered.

d) <u>Action Research</u>: Action Research is a time bound micro-level situation specific study usually arising out of immediate need which can be undertaken and the findings can be discussed. For example, the discipline system in the school, how to increase motivation of pupils, How to raise aspiration etc.

<u>Dissemination</u>

Dissemination has a large implication. Dissemination can be done under certain ways. These include (a) prior to dissemination and (b) dissemination proper.

<u>Prior to Dissemination</u>

a) <u>Coverage, Development and Management</u>

This will cover inhouse action research, research on elementary education, data base on teaching personnel, schools, pupils, learning outcomes, educational survey information, Progress and Trend reports etc.

b) <u>Programming System</u>: As the materials will increase in years, Indexing and Abstracting are important. Abstracts may be kept in a common format normally used and indexing by author and subjects as well as titles, so that it can be retrieved.

c) <u>Data base Development</u>; Time and Resource Management are also important in developing a data base. It will be difficult within the IFIC infrastructure to be very optimistic but within the limits of various functions data base are necessary for programme planning.

d) <u>User Service</u>: There should be a provision for utilisation of information stored by teachers, administrators, members of other DIET/State/National level organisations. Hence, the lending system are to be activised and operationalised within the manpower at hand. Getting Feedback from users would be a concrete step for improving the system and some of the important publications be priced on no profit-no loss basis.

<u>Dissemination</u>

The following channels be used for dissemination of the research and innovative practices operative within the DIET.

a) Publication of News letter for use by Elementary Teachers within the DIET - one for each school.

b) Publication of Journal or magazine emboding the findings of research and innovation for use in schools.

c) Broadcast through AIR/TV and other channels i.e., pamphlets, awareness meetings, seminars where the ideas and findings can be floated.

d) Listing of papers available in this Newsletter for the knowledge of readers and procedure of availing these.

These are some of the suggestive steps for IFIC and its clearing House function.

=0=